स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

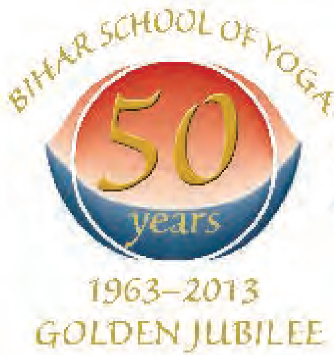
स्वर्णिम संग्रह 2

बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

स्वर्णिम संग्रह 2



WORLD YOGA CONVENTION 2013

GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA

23rd–27th October 2013

स्वर्णिम संग्रह 2

बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



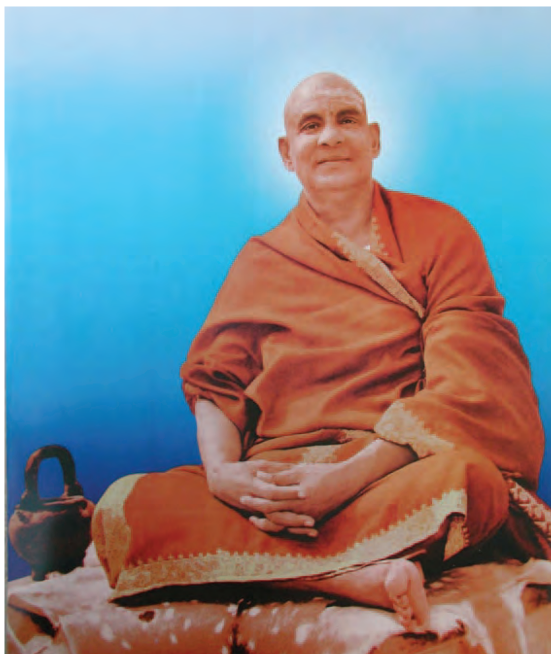
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा   प्रथम प्रकाशन 2012

ISBN: 978-93-81620-35-9

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,
ग्रेटर नोएडा

वेबसाइट : www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

वैराग्य विहार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रचनाकाल – 1938

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 1963, 2012



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

वैराग्य-विहार

भर्तृहरि के वैराग्य-शतक के मुख्य श्लोकों का यह भावानुवाद स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने पूर्वाश्रम में किया था, जिसे हम यथावत् प्रकाशित कर रहे हैं। इनका रचना काल सन् 1938 में मई का महीना है और स्थान है भिकियासेन, अल्मोड़ा जिले में स्वामीजी का पैतृक गाँव। यह रचना उनके संन्यास की दिशा का स्पष्ट संकेत देती है।

इस पद्यानुवाद का प्रथम प्रकाशन श्रीमती नारायणी देवी एवं श्री रामस्वरूप रतेड़िया, रायगढ़ की उदार पुष्पांजलि से योगविद्या प्रिंटिंग प्रेस, राजनाँदगाँव द्वारा सन् 1963 में हुआ।

– *सम्पादक*

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती–एक परिचय

ऐसे संन्यासी बहुत ही कम देखने में आते हैं, जिनके पास ऊँची आध्यात्मिक उपलब्धियाँ भी हों तथा जिन्होंने लम्बी साधना भी की हो। 18 वर्ष की कच्ची उम्र से ही, जबकि स्वामी सत्यानन्द जी ने घर छोड़कर संन्यास ग्रहण किया, वे एक ऐसी जीवन-पद्धति की खोज में लगे रहे हैं, जिसके द्वारा जन-साधारण के जीवन को बेहतर बनाया जा सके। ऋषिकेश में 12 वर्षों की साधना ने उन्हें मानव-प्रकृति की गहराइयों को अच्छी तरह समझने का अवसर दिया और उन्होंने अनुभव किया कि स्वयं आराम का जीवन व्यतीत कर, लोगों को कर्मशील बनने का उपदेश देना, शिक्षा देने का सही तरीका नहीं है। इसलिये बारह वर्षों तक कठिन आश्रम जीवन व्यतीत करने के बाद स्वामीजी बाहर चले आये और तब से, धीरे-धीरे, वे सारे भारत में भ्रमण कर रहे हैं।

स्वामीजी कई दृष्टियों से परम्परा के विपरीत हैं। यद्यपि धर्म के परम्परागत आदर्शों के प्रति उनमें अपार श्रद्धा है, परन्तु साथ-ही-साथ दूसरे धर्मों एवं संस्कृतियों के प्रति भी उनमें पूर्ण श्रद्धा है। स्वामीजी के मत में हिन्दू धर्म दिव्यत्व प्राप्त करने के प्रयत्न में लगी हुई मानवता का सिर्फ एक पक्ष है, इससे अधिक कुछ नहीं। इसी तरह संसार के दूसरे धर्म भी अपने-अपने नियमों तथा विश्वासों द्वारा मनुष्य को ईश्वर के निकट पहुँचाने का प्रयत्न करते रहे हैं।

स्वामीजी यह मानते हैं कि सैद्धान्तिक ज्ञान से ऊँची-से-ऊँची बुद्धिमत्ता तो प्राप्त की जा सकती है, लेकिन वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि हमारा ज्ञान हमारे कर्मों में प्रकट हो। यह आवश्यक है। यह पर्याप्त नहीं कि हम आध्यात्मिक सत्यों को सिर्फ समझ लें। हमें उन सत्यों के अनुरूप अपने जीवन को बनाना होगा, ताकि हमारे जीवन को देखकर दूसरे भी उससे शिक्षा ग्रहण कर सकें।

स्वामीजी की प्रमुख विशेषता है, उनका उन सत्यों का स्पष्ट रहस्योद्घाटन करना, जिनके विषय में अब तक भी लोगों की ऐसी मान्यता है कि वे सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों को उपलब्ध हो सकते हैं जो या तो कठोर साधना का मार्ग अपनाने को तत्पर हैं, अथवा जो अपने जीवन की आखिरी मंजिल में प्रवेश

कर रहे हैं। कुण्डलिनी योग, योग का सबसे कठिन अंग माना जाता है लेकिन हमारे स्वामीजी इस विषय पर भी पूर्ण विस्तार के साथ किसी भी साधक के समक्ष अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक चर्चा करते हैं।

अजपा-जप उनकी दूसरी अत्यन्त प्रिय शिक्षा है, जिस पर वे अत्यधिक जोर देते हैं। योग की यह कला और पद्धति अभी तक कुछ गूढ़ सूत्रों के अन्दर दबी पड़ी थी, तथा हिन्दुस्तान में केवल चंद साधुओं और साधकों को ही ज्ञात थी। स्वामीजी का कहना है कि अजपा एक ऐसी साधना है, जिसका अभ्यास आज कोई भी कर सकता है। और सच तो यह है कि स्वामीजी की शिक्षा एवं प्रेरणा से सारी दुनिया में आज हजारों लोग अजपा का अभ्यास कर रहे हैं। ऐसे लोग स्वामीजी के कितने एहसानमंद हैं, यह सिर्फ वे ही जानते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के आन्दोलन को सिर्फ एक ही उद्देश्य लेकर वे प्रेरित तथा संचालित कर रहे हैं–मानव मस्तिष्क में योग का पुनरुत्थान। वे आम, अर्धशिक्षित लोगों में योग के सम्बन्ध में प्रचलित अज्ञान तथा भ्रम का निवारण करना चाहते हैं। स्वामीजी की एकमात्र आकांक्षा, जो अब एक वास्तविकता बनते जा रही है, यही है कि लोगों को योग का दर्शन तथा अभ्यास सिखलाना और उसके द्वारा हर व्यक्ति को बेहतर मनुष्य बना देना। वे रूढ़ियों के विरुद्ध तो हैं ही, साथ ही वे जोर देकर इस सत्य की घोषणा कर रहे हैं कि योग की आवश्यकता सिर्फ आत्म-साक्षात्कार चाहने वाले लोगों को ही नहीं है, वह तो एक बेहतर जीवन का साधन भी है।

जहाँ भी स्वामीजी जाते हैं, बड़ी संख्या में लोग उनकी बातें सुनते हैं। सबसे अधिक लोकप्रिय तो उनके योगासन तथा ध्यान के क्लास होते हैं, जो वे प्रात: 4 से 6 बजे तक लेते हैं। पातंजल योग-सूत्रों पर उनकी विद्वत्तापूर्ण विवेचनाओं ने काफी बड़ी संख्या में बुद्धिजीवियों को भी उनकी ओर आकर्षित किया है।

बम्बई जैसे शहर में भी, काफी कठिनाइयाँ झेलकर जिस बड़ी संख्या में लोग उनकी प्रात:कालीन कक्षाओं तथा संध्याकालीन प्रवचनों में भाग लेते हैं, उसे देखते हुए यह अन्दाज लगाना मुश्किल नहीं कि आने वाले युग में मानव मस्तिष्क पर योग का ही सार्वभौम प्रभाव होगा।

उपेन बक्शी
बी.ए.(ऑनर्स), एल.एल.एम.

वैराग्य-विहार

देश-काल से छिन्न नहीं जो, वे अन्त सदा चेतन ज्ञानी,
निज-निज अनुभवगत जो होता, उससे शुभ हो मेरी वाणी!

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित् फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत्
तृष्णे जृम्भसि पापकर्मपिशुने नाद्यापि संतुष्यसि॥

भ्रान्त हुआ इस विषम धरा में किंचित फल भी हा! प्राप्त नहीं,
त्याग जाति और कुल की ममता, सेवा तो की, पर निष्फल ही।
भोग किया पर मान-विवर्जित, पर-गृह-शंकित जैसे कागा,
तृष्णे, दुर्मति पाप निरत री, नहीं अभी भी तोष तुझे हा॥1॥

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णे सकामा भव॥

खोदा निधि हित क्षिति तल मैंने फूँक दी गिरि की धातु तमाम,
निस्तीर्ण किया सरिता पति को, नृपति को कर परितुष्ट महान्।
मंत्राराधन तत्पर मन से बीती मरघट में ही रातें,
मिली नहीं हा कौड़ी भर भी मुझको, तृष्णे, त्यागो धातें॥2॥

खलालापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरैः
निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा।
कृतो चित्तस्तम्भप्रतिहतधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्तयसि माम्॥

खल के भी आलाप सहे हा, किसी तरह से सेवारत थे,
हृदय-नयन के आँसू रोके, हँसते भी पर सूने मन से।
चित्त स्तंभन करके हमने प्रहसित खल को अंजलि बाँधी,
तू आशे, ओ निष्फल आशे, क्यों तू अब भी नाच नचाती॥3॥

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषत:
सोढा दु:सहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तप:।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभो: पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तै फलैर्वञ्चिता:॥

क्षमा नहीं की धर्म समझ कर, गृह-सुख छोड़ा तुष्टिरहित हो,
सहकर दुस्तर शीत-वात-तप, क्लेश-विवश हो छोड़ा तप को।
ध्याते धन को निसिदिन नियमित, प्राणों से कब हरिपद ध्याते,
वे कर्म किए मुनिजन जैसे, पर फल से वञ्चित होते॥4॥

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता:
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:।
कालो न यातो वयमेव याता:
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:॥

भोग नहीं हैं भोगे हमने, भोगों से ही हम मुक्त बने,
ताप नहीं हैं तापे हमने, तापों से ही हम तप्त बने।
काल नहीं हा बीत चुका है, हम ही बीत चुके हैं सारे,
तृष्णा जीर्णा नहीं हुई रे हम ही जीर्ण बने हैं प्यारे॥5॥

वलीभिर्मुखमाक्रान्तं पलितेनांकितं शिर:।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

मांसलता से व्याप्त रूप है, सित केशों से अंकित सिर है।
गात्र सभी हा शिथिल बने हैं, तृष्णा ही तो तरुण बनी है॥6॥

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानोऽपि गलित:
समाना: स्वर्याता: सपदि सुहृदो जीवितसमा:।
शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो मूढ: कायस्तदपि मरणापायचकित:॥

क्षीण हुई हा भोगेच्छा भी, सत्कार सभी री गलित हुआ,
सम वय वाले स्वर्ग सिधारे, शेष स्वजन हैं तैयार अहा।
धीरे लकड़ी लेकर उठते, घोर तिमिर से रुद्ध नयन,
अहा निर्लज्ज काया फिर भी, चकित हुई जब निज सुना मरण॥7॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी
तस्या: पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वरा:॥

आशा-सरिता नीर-मनोरथ औ' तृष्णा की लहरें आतीं,
स्नेह मकरयुत् तर्क विहग हैं धीरज-द्रुम को ढाती आतीं।
मोह भंवर युत दुस्तर गहन महतर चिन्ता उसके तट हैं,
उसको तर कर शुद्ध-मननरत नन्दित होते योगीश्वर हैं॥8॥

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाक: पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशत:।
महद्भि: पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम्॥

नहीं जगत् के व्यापारों में, देख रहा हूँ मैं कुशलाई,
पुण्य जनित निज कर्म फलों का मनन करूँ तो अति दुखदाई।
महतर पुण्यों के चिर बल से, सम्यक् संचित भोग-विषय जो,
अति महिमामय होने पर भी, दुखदाई हैं विषयी नर को॥9॥

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत् स्वयममून्।
व्रजन्त: स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनस:
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥

निश्चय जानो गमन करेंगे चिरतर भोगे सब भोग अहो,
पुन: त्याग में भेद कहो क्या, तजे नहीं नर खुद जो उनको।
छोड़ेंगे जब स्वेच्छापूर्वक, अतुल व्यथा से भर दें मन को,
स्वयं करें यदि त्याग प्रथमत: जिससे शमता प्राप्त हमें हो॥10॥

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भू: परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं विशीर्ण शतखण्डमयी च कन्था
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति॥

भिक्षा द्वारा अशन करें वे वह भी नीरस एक ही बार,
शय्या जिनकी पृथ्वी ही है निज तन मात्र जिनका परिवार।
वस्त्र पड़े हैं जीर्ण दशा में, वह भी शत-खण्डित मलिन अहो,
हा हा फिर भी दु:ख होता है विषय नहीं जो त्यागें उनको॥11॥

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम्।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं
मुहुर्निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम्॥

दोनों स्तन मांसपिण्ड बस, पर कनक-कलश से उपमित होते,
उनका मुख है श्लेष्य-प्रपूरित, उसको विधु की समता देते।
स्रवित मूत्र से भीगी जांघें, करिवर-कर की स्पर्धा करती,
अहो धिक् इस निन्द्य रूप को, कवि-टोली कितना गुरुतर करती॥12॥

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं शीतमधुरं
क्षुधार्त: शाल्यन्नं कवलयति मांसादिकलितम्।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमालिंगति वधूं
प्रतीकारं व्याधे: सुखमिति विपर्यस्यति जन:॥

प्यासा व्याकुल होने पर नर, सुन्दर शीतल जल पीता है,
क्षुधा-प्रपीड़ित शाल्य-अन्न औ' मांसादि को तक खाता है।
दीप्त हुई हो काम-अग्नि जब, करता वह नारी-आलिंगन,
प्रतीकार करे व्याधि-दुख का वह 'सुख है' ऐसा जाने जन॥13॥

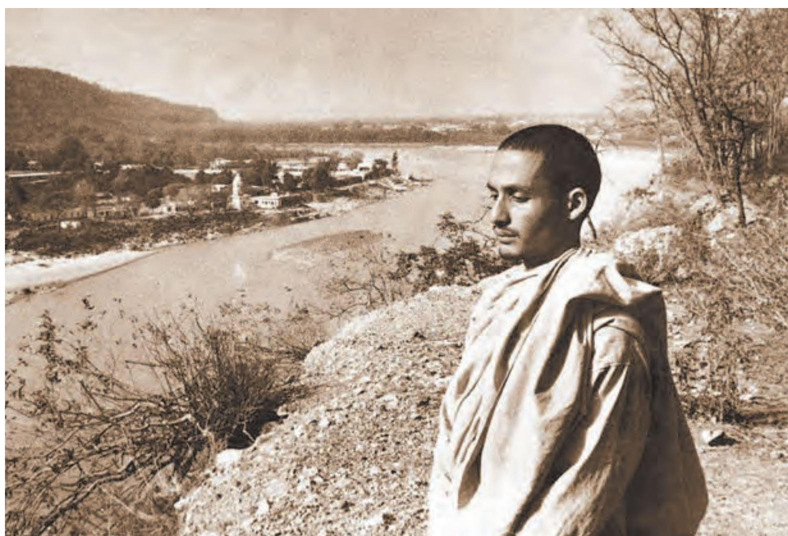
दीना दीनमुखै: सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बिरा
क्रोशद्भि: क्षुधितैर्निरन्नविधुरा दृश्या न चेद्गेहिनी।
याञ्चाभंगभयेन गद्गद्गलत्त्रुटयद्विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत् स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान्॥

दीना, दीन-मुखों से लक्षित, शिशु से आकृष्ट कन्थावाली,
रोते-भूखे, अन्न-विहीना नहीं लखे यदि गृह की नारी।
क्यों मान-भंग-भय से गद्गद्, टूटे-फूटे वाक्य निकाले,
कौन कहे 'दे ओ' दग्धित-जठरानल-हित-मनुज-महा रे॥14॥













गंगातरंगकण शीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषित चारुशिलातलानि।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः॥

गंगा जी के उर्मि-कणों से, जो हैं शीतल औ' शीकर तर,
विद्याधर हैं बैठे रहते जिन्हीं शिलाओं के तल पर।
स्थान हुए क्या हिम-गिरि के हा! निज-प्रलय-दशा को प्राप्त अहा!
जो निज अवमान-विवश भी हो, पर-पिण्ड-विवश रहता नर हा॥ 15॥

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः।
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां
दुःखाप्तस्वल्पवित्तस्मयपवनवशान्नर्तितभ्रूलतानि॥

क्या कन्द गुहा से नष्ट हुए, अथवा निर्झर गिरिवर से क्या?
ध्वस्त हुई क्या तरु से रसमय फलयुत्-बल्कलवाली शाखा?
देख रहे जो उनके मुख को, आश्रित होकर दुष्ट-जनों में,
कष्टोपार्जित अल्प-राशि-वश, पवनावर्तित-भौंह-लताएँ॥ 16॥

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां
पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम्।
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी
सहन्ते संतापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः॥

फल भी स्वेच्छापूर्वक बन में, कष्टरहित हो मिलते तरु में,
जल भी पथ-पथ में जो मिलता है, शीतल-मृदुकर सरितावर में।
मृदुतर शय्या बनी हुई है, शुचि ललित लता औ' पल्लव से,
सहते दुःख को फिर भी क्यों हैं, धनिक जनों के द्वार कृपण वे॥ 17॥

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

भोग में रोग, कुल में च्युति-भय, रहता है धन में नृप का भय,
मौन में दैन्य, बल में रिपुभय, सुन्दरता में वृद्ध-वयस भय।
शास्त्र के वाद, गुण में खलभय, काया में हैं मरने का भय,
सर्व-वस्तु भययुत् जग-नर की, 'वैराग्य' कहा है एक 'अभय' ॥ 18 ॥

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरसा चात्युज्वलं यौवनं
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमः।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैः
अस्थैर्येण विभूतयोऽप्युपहता ग्रस्तं न किं केन वा॥

जन्म ग्रसित है मृत्युकौर से, वृद्ध-वयस से उज्वल-यौवन,
सन्तोष हुआ धन-लिप्सा से, प्रौढ़ांगण सुखमय से जीवन।
मत्सरि दल में गुण हैं कवलित, सर्पों से वन, नृप दुर्जन से,
अस्थिरता से विभव जगत् का, किसने किसको नहीं ग्रसा रे ॥ 19 ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्त्रवति भिन्नघटादिवाम्भो-
लोकस्तथाप्यहितं आचरतीति चित्रम्॥

व्याघ्र-तुल्य ही अग्र खड़ी है, वृद्धावस्था भयकर सबको,
व्याधिवृन्द भी शत्रु-सदृश हो, घात-विकल कर मानव तन को।
आयु-क्रमण भी होता जाता, फूटे घट से जल की नाई,
लोक पुनः पर-अहित-निरत हैं, वास्तव में यह अचरज दायी ॥ 20 ॥

ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणांस्तृणकणान्यत्र स्थितो मन्यते
यत्स्वदाद्विरसा भवन्ति विभवास्त्रैलोक्यराज्यादयः।
भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते
भो साधो क्षणभंगुरे तदितरे भोगे रतिं मा कृथाः॥

तीनों जग की अधिपतिता भी, विरस बने जिस शासन में रे,
उसको पाकर अशन-वस्त्र-यश-भोगों की मत इच्छा कर रे।
भोग कौन है? एक वही जो परम नित्य हो, मिले सदा ही,
जिसके रस से विरस बने हों, तीन लोक के भोग-विषय भी ॥ 21 ॥

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥

सूर्योदय होता रजनी आती, ऐसे जीवन घटता जाता,
बहु व्यापारों, कार्यभार से कल नहीं है जाना जाता।
जन्म-मरण औ' विपद्-जरा लख, नहीं त्रास का उद्भव होता,
पीकर मोहक मादक मदिरा उन्मादित रे यह जग होता॥22॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मः अपि नोपार्जितः।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥

ध्यान नहीं कर ईश्वर-पद का, विधिवत् जग के छेदनहित ही,
स्वर्ग-द्वार-पट-पाटन करने, पटु-धर्म नहीं कर सञ्चित ही।
नारी-पुष्ट-पयोधर जंघा, स्वप्नालिंगित भी हुई नहीं,
माँ के केवल यौवन-वन के छेदनकारी हा! शस्त्र हमीं॥23॥

नाभ्यस्ता प्रतिवादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैःकरिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत्॥

अभ्यास नहीं कर वादि-वृन्द-दमनी विद्या सुखद उचित जो,
खड्ग कोण से करि-कुम्भ-दलन नहीं किया औ' पाया यश को।
कान्ता-कोमल-अधर-सुधा का, पान नहीं कर चन्द्रोदय में
तारुण्य हमारा निष्फल हा, दीप जले ज्यों शून्यालय में॥24॥

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता।
आलोलायतलोचनाः प्रियतमाः स्वप्नेऽपि नालिंगिताः
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते॥

विद्या न पढ़ी कलंक-विहीन, वित्तोपार्जन नहीं किया हा,
सेवा भी सु-समाहित-मन से पितृवरों की नहीं हुई हा!
लोल-नयन-युत्-बाला को जब, स्वप्नालिंगित भी नहीं किया,
समय यहीं पर-पिण्ड-लोभ में, लघुकाल समान व्यतीत किया ॥ 25 ॥

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥

आयु वर्ष-शत नर की सीमित, रात्रिकाल में आधी चल दी,
शेष-अर्द्ध की अर्द्ध-आयु भी, शैशव-वृद्ध-दशा में बीती।
शेष-आयु भी व्याधि-विरह औ' दुःख-मय सेवा में विलय हुई,
जल-उर्मि-चपल-सम-जीवन में, तू सौख्य कहाँ पावे प्राणी ॥ 26 ॥

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः।
जराजीर्णरंगैर्नट इव वलीमण्डिततनु-
नरः संसारान्ते विशति यमधानीयवनिकाम्॥

क्षण में बालक बन कर मानव, क्षण में यौवनमय-काम-रसिक
पल में धन से हीन हुआ वह, पल में होता अखिल-विभववित्।
जरा-विवश निज जीर्णांगों में, नट सम मांसल-मण्डित तन से,
वह नर अपने अन्त समय में आश्रित होता यमपुर पट के ॥ 27 ॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः॥

हम तुष्ट हुए वल्कल से ही, तुम्हें तुष्टि हुई दुकूलों में,
सम जानो परितोष हमारा विशेष-रहित-विशेष कहे हैं।
वह ही होता दीन महा है जिसकी तृष्णा सुविशाला है,
मन में ही यदि तोष रहा तो, कौन धनी औ' दीन बना है ॥ 28 ॥

अग्रे गीतं सरसकवय: पार्श्वयोर्दाक्षिणात्या:
पश्चाल्लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम्।
यद्यस्त्वेवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं
नो चेच्चेत: प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ॥

आगे तेरे गीत सरस औ', दायें-बायें कवि हों गायें,
पीछे तेरे कंकण-ध्वनि हो, रमणी जन जब चँवर डुलावें।
यदि हो ऐसा तब तो मानव इह लोक-सुखों का भोग करो,
नहीं तो सत्वर स्थिर होओ, निर्विकल्प समाधि लाभ करो॥29॥

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकारा:।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमित: परमर्थनीयम्॥

भक्तिपूर्ण हों, जन्म मरण का अन्तर तल में भयलेश न हो,
स्नेह नहीं हो मित्रवर्ग में औ' काम-जनित-द्वेष नहीं हो।
संग-दोष से पूर्ण-विरत हों, निर्जन वन में वास किए हों,
वैराग्य यही कहलाता है, कौन अधिक अब परमार्थ कहो॥30॥

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुष:।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य: प्रयत्नो महान्
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यम: कीदृश:॥

जब तक स्वस्थ रहे नर देही, जब तक दूर बुढ़ापा है रे,
जब तक इन्द्रिय शक्ति पूर्ण हैं, जब तक अक्षय आयु रहे रे।
आत्म-श्रेयहित तब तक विद्वत् कार्य करे औ' शुभ यत्न करे,
घर जलने पर कूप खने यदि, उद्यम वैसे अर्थ रहित रे॥31॥

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषांचित् एतत् मदमानकारणम्।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणां अतिकामकारणम्॥

‘ज्ञान’ कहा अतिसम्य जनों का, मान-अहं का ध्वंसक होता,
कतिपय लोगों में ज्ञान यही, मान अहं का कारण होता।
शून्यभूमि यदि शुभकर होती, संयम-शीलों के साधन में,
वही भूमि ही काम हेतु बन, काम जगाती कामातुर में॥32॥

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम सदृशो यान्तु दिवसाः
सदा पुण्येऽरण्ये शिवशिवशिवेति प्रजपतः॥

तक्षक हो या हार भले हो, निर्दय रिपु हो स्वजन-सखा या,
मणि हो या केवल-प्रस्तर, कुसुम-शयन या प्रस्तर-शय्या।
द्रुम में हो या नारीदल में, समदर्शी बन काल का यापन,
पावन शुचितर किसी विपिन में, शिव-शिव-शिव का करते प्रजपन॥33॥

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो
भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ।
इदानीं स्वः सिन्धोस्तट भुवि समाक्रन्दनगिरः
सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः॥

अतिक्रांत हुआ समय हमारा, सुन्दर नारी भोगों में ही,
महा भ्रमण से थकित हुए हैं चिर से जग की पथिका में ही।
आज चलें गंगा-तट पर, नारी-निन्दा करते-करते,
रे बाला हम त्याग किए हैं, शिव शिव शिव ही होंगे रटते॥34॥

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिनः॥

धीरज पिता औ’ क्षमा माता, नीरवता है जिसकी नारी,
सत्य मित्र है, दया बहिन है, मन का संयम जिसका भाई।
शय्या क्षिति तल, दिशा वसन हैं, ज्ञान-सुधा का भोजन भर हो,
ऐसा जिसका परिवार कहो, किससे हो भय फिर योगी को॥35॥

अवतार पुरुष

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रचनाकाल – 1943

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2012



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

अवतार पुरुष

स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा सन् 1943 में अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती के जन्मोत्सव के अवसर पर लिखी गयी यह कविता पहली बार पूर्ण रूप में प्रकाशित की जा रही है। विविध अलंकारों से सुशोभित यह भावभीनी कविता स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि पारखी शिष्य ने अल्पावधि में ही अपने महान् गुरु की महिमा और दिव्यता को पहचान लिया था...

– *सम्पादक*

अवतार पुरुष

पुण्य धरा जब त्रस्त हुई दु:ख-दैन्य-व्यथामय शाप लिये,
तत्क्षण आया वसुधातल पर अमर पुरुष नर-वेष लिये।
उद्विग्न बनी जब मानवता भ्रम में औ’ अज्ञान-विवर में,
पुण्य-रूपमय पुण्य-पुरुषवर आश्रय देता पुण्य अधर में॥1॥

अति दूर सुदूर दिगन्तों में जब जग-क्रन्दन ज्वाला जलती,
जग में जब क्रांति मचाता वह, मानव उर की शमता गलती।
जब नृत्य जगा शिव-ताण्डव औ’ अवनी अम्बर हो डोल उठे,
लहरें जागीं अम्बुधि तल से, ज्यों रण-डमरू हों बोल उठे॥2॥

दु:ख-द्रोह की भीषण ज्वाला धधक-धधक कर बढ़ती जाती,
सागर कंपित प्रलय-पवन में थी गिरती-पड़ती जाती।
क्षीण जगत् के युग मरघट पर चिता बना वसुधा जलती,
जब अपना ही शोणित पीकर मानव की समिधा बनती॥3॥

जब संसृति तल डगमग डोला औ’ झुलसा जीवात्मा का प्यार,
सत्य-स्नेह को ठुकरा करके रुधिर-सना था सिन्धु अपार।
फैलाते आतंक जगत् में अज्ञानी नर नग्न-नृत्य कर,
अन्तिम होली रचने युग में आया जब मानव मरघट पर॥4॥

पुण्य-रूपमय पुण्य पुरुष वह पुण्य ज्योतिर्मय प्रभा लिये,
शोणित स्नाता मानव भू में आया लीलामय विभा लिये।
अजर-अमर चिर पुण्य पुरुषवर संसृति-स्वप्नों का नायक,
बन, अज्ञात युगान्तर-साक्षी, जग-लीला का परिचायक॥5॥

मंगलमय शुभ-मंगलकारी जग-जन मंगल औ’ आत्मा था,
स्वप्न-सृष्टिगत मानव द्वारा कहलाता वह परमात्मा था।
शतलक्ष अंशुमाली सा वह अनुभव-पथ को ज्योतित करने,
लेकर शुचि-कांति विमल आया जगती में नवजीवन भरने॥6॥

प्रलय-रुद्र ने गरज-गरज जब जग को नृत्य दिखाया ताण्डव,
नीरवता की गोदी से तब आया वह स्वर्गिक अति मानव।
दूर-क्षितिज से, दूर दिशा से, अमर युगों का नेता आया,
मानवता का मंगलकर वह नीरव-गीत प्रणेता आया॥7॥

नहीं कभी था जग ने देखा स्वामी ऐसा उज्ज्वल पावन,
अंधों का था नयन अमर वह, अधरों का रक्ताभ सुहावन।
जग का वह श्रृंगार नवल था, मानवता का जीवनदानी–
वसुधा की गोदी में आकर उसने सुन ली करुण कहानी॥8॥

देख चुका वह जगतीतल को अवनति की बहती धारा में,
देखा उसने जग अतिरंजित अतिशान्त निरा की कारा में॥9॥

युगानुयुग से रोदन-तन्मय नर-भूतल को उसने देखा,
क्रांति-द्रोह से श्रान्त-क्लान्त जब क्रांति मही को उसने देखा।
मानवता की भौतिकता ने तब था सन्तत उत्पात मचाया,
रण-विस्फोटों का कौतुक कर वह द्रावक-भयपात मचाया॥10॥

ईश्वर बनने वाला मानव भी विनाश के बाट चला था,
अपने हाथों प्राण लिये वह सत्यसूत्र को काट चला था।
देव-पथिक बन मुक्ति-प्रकाशक-मानव सब कुछ भूल गया था,
जगी आसुरी-वृत्ति हृदय में, जमा ध्वंस का मूल नया था॥11॥

स्वानुभूति करने केवल नर दृढ़ अरमान लिये आये,
हाय, धरा के भार बने जो थे विषपान किये आये।
दीवाली कल्पान्त दिशा की मोतीवत् निज बिन्दु गिराये,
माया के तम उर में सोती युग-युग के उपहार सजाये॥12॥

वैभव-मद में उन्मद मानव सूखे निज मद बिन्दु गिराये,
मोह-विवर में रोता-फिरता पूरित पंकिल सिन्धु समाये।
व्यथा, दैन्ययुत् औ' क्रन्दनमय जग की लीला उसने देखी,
क्रांति द्वन्द्व के वक्षस्थलगत नर धरा विलय उसने देखी॥13॥

मानव की इच्छायें भू पर रजनी के दिव अंगारों सी,
नर घातक ही बन पायी थीं तीव्रतम तीर के धारों सी।
जगती तल के अंचल में था, जब उसने वेष सजा पाया,
तब स्वप्न विकल्पों ने उसके शुचि अन्तरतल को लहराया॥14॥

उसने जाना जग को मिथ्या, केवल पीड़ामय औ' रोदन,
देखे उसने कवि के आँसू, उपहार नहीं वे उर-क्रन्दन।
मानव के उस चिर-क्रन्दन से वैराग्य भाव का ज्वार उठा।
वह सोता सिंह जगा, जैसे भू-द्रोह निवारण भार उठा॥15॥

है उदय-अस्त औ' अस्त-उदय, मानव जग क्या? केवल माया,
निद्रा है यह केवल तन्द्रा, अस्थिर जग है, नश्वर काया।
दु:ख ही तो हम देख रहे हैं, है नाम-रूप बस यह छाया,
चिर-शक्ति अमर आचन्द्र-भानु, जीवन अनुभव, है जर काया॥16॥

मानव जग में व्यथा भरी पर हँसने का भी सार भरा,
पर स्रोत यही सब दु:खों की, बनती रोदनमय यह मर्म धरा।
शुचि शांत धरा पर आ उसने परिवार बसाया एक नया,
कालान्तर में उसने जग का मदमाता सुख भी त्याग दिया॥17॥

अजर-अभय था पुण्य पुरुष वह पूर्ण-ज्योति परिव्याप्त चराचर,
लीलामय मानव तन धर कर जगतीतल में ज्योति अमरवर।
जग, धन वैभव तजकर आया सत्य-धर्म पथगामी बनने,
झिलमिल करते जग-वैभव को दूर विजन में आया तजने॥18॥

मर्त्य धरा में वेष अमरवर, हो अवतीर्ण जगत् में शंकर,
सत्यदृष्ट चिर-धर्म प्रवर्तक सत्य महा बन आया भू पर।
वही पुरुष है यह जो करता, प्रतियुग अपनी लीला भू पर,
इसी पुरुष ने लहराया है सत्य-धर्म का गौरव ऊपर॥19॥

जब धर्मध्वजा अवनत होती, पालक का जब आना होता,
तब-तब मानव जग में निश्चय अमर ज्योति का आना होता।
साधुजनों की रक्षा होती अन्यायी का कर उन्मूलन,
धर्मप्राण का आना होता करने जग में धर्म-स्थापन॥20॥

बिखरे जग के चित्रों से मर्त्य लोक की नींव बनाने,
हुई मनुजता उत्थित अब जीवन की ज्योति जगाने।
शुभ, सत्य, सनातन, पावनतम, सुख-सौम्य-सुधासित-सत्य सजा,
शुभ-सकल सुसज्जित सत्य-स्नात सौरभश्लथ शुचि-सौन्दर्य-सुधा॥21॥

जगजीवन-जनित ज्वलन्त ज्योति, जीवन जाग्रति जाज्वल्य जगी,
जग-जन जाने जीवन-जाग्रति, जाग्रत जग, जाग्रति स्वयं जगी।
मानवता की सजल किरण सी, जीवन जागृति रेखा सी थी,
तमतल में हो कान्ति विमलतर, उसकी अनुभव लेखा सी थी॥ 22॥

मानवता का परिपालक वह दीप-शिखा-आगार बना था,
सान्ध्य-गीत सम शुभ्र-सजलतम, तत्क्षण जो आधार बना था।
पृथुजा में नव-क्रीड़ा की जब स्नेह-सहित शुचि आलिंगन कर,
विश्व-अहंता का मद विकृत, जग-जन मंगलदान अमर वर॥ 23॥

जाग्रति की आलोक किरण था, अन्तर पट की हरियाली था,
हँस-हँस उसने हमें सिखाया, खेल मुक्ति-पथ होली का था।
भागी मानव के सुख-दुःख का अमरत्व किरण संचारक था,
वह सत्यसन्ध नर-पुराचीन, भव केवट, जग का तारक था॥ 24॥

शैशव की शोभन छाया में वह शैशव लीला करता था,
भोलेपन की संसृति में वह पावन अमृत भरता रहता।
संगीत मनोहर बाल्यकाल, जिसमें है चन्द्र किरण छाती,
शुचि मुक्ता-छवि को लज्जित कर इस भूतल पर फिर है आती॥ 25॥

मानवता के विद्यालय में वह भी शिक्षा अद्भुत लेता,
आकुल पर निज अश्रु बहाता, अपना सुख सब पल में तजता।
शान्तोज्ज्वल अमर-चरित्र तथा रग-रग में था विश्वास भरा,
विश्वजीवन-दिनकर बनकर, हृत्पिण्ड महाचिर-तिमिर हरा॥ 26॥

सकला के कण्ठ-विमल में था विधुवच्चल पावन माला,
वह धीर-सिन्धु-सन्धित सन्ध्या, जीवन-मुखगत अमृत प्याला।
रह व्याप्त सदा अंबर में, वह अज्ञात जगत् के कोने में,
जीवन जाग्रति बनने प्रतिपल हँसता अमिताभ सलौने में॥ 27॥

प्रकृति के सुविकम्पन में था शान्त अमर गाम्भीर्य महान्–
इस राम-रूपमय जग में वह अभिनव-पावन, दिवपथ गान।
था एक अमर उद्देश्य लिये वह जगतीतल में आया जब–
भय-भीषण का प्रतिरोधी, शुचि नवल स्फूर्ति ला पाया तब॥ 28॥

मानव का वह वैभव प्यारा, जीवन की वह सुन्दरता था,
सरिता की चल-चपल लहर सा तरुदल की नीरवता था।
अज्ञात दिशा का वासी, वह सकल का था अन्तर्यामी–
जगती पथ पर वह चला, चले जड़ चेतन बनने अनुगामी॥29॥

शैशव से ही उसका अन्तर अति कोमलतम था बना हुआ,
दीनों की कातर-वाणी से वह बन जाता अनमना हुआ।।
वह शैशव-सोम सुधा पीकर कपिला अन्तर अभिसार बना,
शुचि उज्ज्वलता की सृष्टि तथा मधु-मलय पवन आधार बना॥30॥

कुसुमों से था हँसना सीखा, झूला चल लहरों में निशिदिन,
अभिशापमयी मानवता को सहलाता वह प्रतिपल, प्रतिदिन।
नर-जग के असहाय करों में, मानवता की भीषणता में,
वह नित पावन-धार बहाता मानव की दु:ख-दैन्य व्यथा में॥31॥

जाग्रति-अमृत-पात्र निराला, अनुभव का वह मधुर उजाला,
क्रांति समन्वित-किरण चतुर्दिक्, गिरि-वनपथ-नद-नभ ग्रहमाला।
वृक्षों की अति नीरवता में, भवसागर के तूफानों में,
नीरव अतिरव, कलछल करता, अंतरतलगत उरयानों में॥32॥

किरण-किरण की कमल कला का क्रन्दन-कम्पन्न क्लान्त किया।
कितनी करुणा का कुलिष-कुटिल अब उसने कलरव क्रान्त किया॥33॥

प्रकृति का पुरुष कहाता, वह स्मित सा हास्य निराला था,
प्यारा अनंत की गोदी का, जिसने अब भार संभाला था।
शृंगार-कला गिरि-पथ की ज्यों, नयनों की शुचि दीपित-छवि सा,
वारि विसिंचित हरिता सा, वह अम्बर पथ पर चन्द्र कला सा॥34॥

तरल तरंगों की गति में वह जीवन के इस-उस पार चला,
कोमल सुंदर-कलिका सा था, राका अम्बर की ज्योति-कला।
मानव अभिनव नायक था, वह उत्थान लहर में खेल रहा,
जग में चिर शान्ति जगाने वह प्रात:कालिक आलोक रहा॥35॥

ईश्वर का रूप अनुपम, वह परब्रह्म परात्पर पूर्ण कला था,
विश्व-परात्पर युग-चिर-नायक मानव जन के हाथ पला था।
जग दयासिन्धु उसको कहता, करुणा सागर साकार बना,
जग का पावन अंतर्यामी, वह वसुधा का आधार बना॥36॥

त्रय शूलों का आयुध संभाल करने आया संकट संहार,
निर्मूल अधर्म किया, कर दी सत्सत्य धनुष की रव-टंकार
क्षण-पल-निशिदिन उठता सत्वर, जागृतिमय जग को करता था,
सलिलाशय की गतिमय लहरों सा रह-रहकर दम भरता था॥37॥

जग-क्रन्दन में थी क्रांति मची, विप्लव भी तो थे डोल उठे,
रिपुधर्म विनष्ट हुए थे, सत्य विजय गौरव से बोल उठे।
'नानृतं जयति सत्यम्' कहने, वह सत्य बना, शुचि सत्य बना–
कह 'जहाँ धर्म है, विजय वहीं' जग जीवन सत्याधार बना॥38॥

प्रस्तर की उस अटल शिला सी, घनमालावृत अम्बर सी थी,
नभस्वान सम चंचल भी थी, नवयुग की नव मानवता थी।
प्रातदीप सम चपलमुखी वह, औ' जल बुदबुद-गति की नाई,
बन्दीवत् थी मानव आशा, अपना ही बस वध कर पाई॥39॥

जीवन के कोने-कोने में एक नया विप्लव मचता था,
मानव के दृग्वारि-सजल से अमित सलिल प्रतिपल बहता था।
अपने ही कुविचार लिये तब वह मानव बैठा था रोता,
कई युगों का थका हुआ था, तरु छाया के नीचे सोता॥40॥

सन्त पुरुष ने सब कुछ देखा, स्नेह भरा उपहार दिया फिर,
रवि-स्वर्णिम शशिकांत किरण ले, मानवता से प्यार किया फिर।
जीवन के उस प्रथम प्रहर से जीवन-दारुण देख रहा था,
जीवन की ही नश्वरता पर प्रतिपल अनुभव प्राप्त किया था॥41॥

इस निर्ममता का अन्त कहाँ जगतीतल में है प्यास सदा,
सुख भी न किसी ने पाया है जीवन की है यह कुटिल व्यथा।
रोते-रोते महाकल्प भी दो रातें ही बन जाते हैं,
रही-सही आशायें तजकर, वे निज गीत सुना पाते हैं॥42॥

दैन्य-निशा के सकल प्रहर में निशिचर से वे भयकर भीषण–
मानवता को ग्रास बनाते, करते मानव-शोणित शोषण।
तब संघर्ष सदा चलता है मानव के इन अरमानों में,
कपिला भी हा, रुदन मचाती, तरणी भी अब तूफानों में॥43॥








हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे





धिक्, कैसा यह मानव सुख है क्षणभंगुर अधिपथगामी है,
उन्मद गर्व लिये अपना ही जीवन भी स्वप्निल-कामी है।
स्वप्नों में जैसे हम सब हैं, स्वर्णिमपुर को देखा करते,
वैसे ही यह मिथ्या जग है औ' ज्ञानी संसृति-भ्रम कहते॥44॥

नहीं, नहीं रे, यह जग सुंदर, व्याप्त नहीं अस्तित्व कहीं है,
सत्यासत्यविहीन यही है, प्रजनन नहीं, न विनाश कहीं है।
कोई न बद्ध, साधक न साध्य, है मोक्ष-मुमुक्षु न एक कहीं,
सम्भव कैसे हो मुक्ति यहाँ जब शुद्ध-सत्य परमार्थ यहीं॥45॥

मानव जग है मानसी-क्रीड़ा, मिथ्या है, स्वप्न घड़ी का यह,
चल-सागर में प्रतिबिम्बित यह, नील खमंडल सदृश है यह।
शून्योद्भवगत मानव-जग यह शून्य विवर्द्धित रूप बना है,
शून्य-गर्भगत पूर्ण-सत्य यह, यह अखिल सत्य-स्तूप बना है॥46॥

पुरुष सदा है एक पुरातन, साक्षी वह है अमर युगों का,
खेला करता माया द्वारा चिर-अद्भुत भाग मनुष्यों का।
मायावश तो अखिला प्रकटित, कूद पड़ी उस अमर दिशा से,
मानो ज्योतित हुई ज्योत्सना अति ही भीषण कृष्ण-निशा से॥47॥

उदित हुई गुण-आत्मक महत्तर-प्रकृति और जीवनयुत माया,
उदित तभी यह अचल-विचल जग, विपुल विश्व औ' मानव-काया।
वैसे ही जग प्रकटित है रे, यह माया है संसृति न्यारी,
तत्त्वों का यह खेल अनुपम, जग की, नर की गति ही न्यारी॥48॥

नवों ग्रहों का उदय हुआ, तब प्रांगण-पथ प्राकीर्ण हुआ यह।
आना-जाना चक्रवृतोपम जन-अभिनव प्राकीर्ण हुआ यह।
रुदन-हास्य रे, यह आकर्षण अन्तर्निहित हुआ मानव में,
हँसना-रोना इस नरवर का अपने पुण्य-धर्म-सौष्ठव में॥49॥

क्रांतिद्रोहगुण मानवता का विप्लवकर्ता अंग हुआ,
मानव सचमुच 'मा नव' बनकर प्रेम-स्नेह से भंग हुआ।
कैसा है रे, अद्भुत मानव औ' मानवता का खेल निराला,
कैसी मानव की गति है मति रे औ' नर-मद-उन्मद प्याला॥50॥

सन्त पुरुष अविरत चिन्तित था मानवता के उन तापों पर,
अपने पावन बिन्दु गिराता वह सबके संतापों पर।
कैसे मानव के इन तापों का अंत करा पाऊँगा मैं अब
इन रोते उन्मद नयनों को पोंछ क्वचित् मैं पाऊँगा अब॥51॥

क्या इस हिंसक मानव की कटु प्यास बुझा भी पाऊँगा,
रोते इस मानव का नव-शृंगार करा क्या पाऊँगा।
अधर्म निरत यह सकल चराचर, कभी विरक्त करूँगा क्या
उलझी जीवन ग्रंथि पुनः मैं सुलझा सफल बनूँगा क्या॥52॥

जीवन की निबिड़-निशा में फिर नवजीवन-ज्योति जलेगी क्या,
निशिचारिणी यह मानवघातिनी मेरा पथ कभी तजेगी क्या।
क्या सोती इस मादकता के मूँदे तन्द्रित-नयनों में,
जागृति-जल को सींचूँगा, मैं प्रतिहत-नर के भी सपनों में॥53॥

जाकर सबके सब द्वारों पर नव-जाग्रति-शब्द करूँगा मैं,
मन्थर मृदुतर गतिमय होकर सबमें नव-प्राण भरूँगा मैं।
जलनिधि में वीचि तरल बनकर मैं खेल निराले खेलूँगा,
रत्नों में बन सौन्दर्य अमर क्या मानस अमृत दे दूँगा॥54॥

मैं शुचि-सहचर जगती का हूँ, सेवा करने आया हूँ।
मानव को नव-सुधा पिलाने, मैं मृत्युलोक में आया हूँ॥55॥

वास्तव में पुरुष पुरातन वह मानव-दुःखहर बन आया था,
साम्यमय-ज्योति स्वयं बनकर अभिनव नव-जाग्रति लाया था।
सौम्य-सत्य सुंदर सा था वह सत्य सुधा बरसाता सा,
था सत्य शान्ति सा सम्बन्धित वह पावन सत्य सनातन सा॥56॥

नव जाग्रति अधिनायक था रे, जीवन-वीणा का गायक था,
आया जीवन अभिनव करने नव चित्र-पटों का नायक था।
दीनों का वह पावन स्वामी, दुःखियों का वह अभिभावक रे,
आज तभी हम मानव कहते – वह जाग्रति का अधिनायक रे॥57॥

उदर-व्यथा-उपचार करूँगा, औ' मानवगत नारायण रे,
प्रभु ने तुमको जन्म दिया है करने दुःख का परिचालन रे
मानस को नर का निष्कलंक – उसकी वाणी का ध्येय रहा,
मानवता की अविचल सेवा ही उसका जीवन श्रेय रहा॥58॥

इन्द्रजालवत् मानव-क्रीड़ा सकल-अखिल सर्जन की माया,
जीवन-छवि भी भूल चुकी थी अनिल-अनल-संसार बसाया।
स्वप्नों की झिलमिल माया ने व्याकुलता का राग सुनाया,
नीरवता से विलासिता ने पुनः नाश का साज सजाया॥59॥

सोच रहा था नर निज मन में भोग-विलासों की ही बातें,
जाग्रति-ऊषा तन्द्रित-अवलक, जड़तामय मानव की रातें।
सोते जग के मत्त नयन में बिछती जब अश्विन-तम माला,
भूल रहा निज पथ को मानव होता विस्मृत अमित उजाला॥60॥

जाग्रति का सौन्दर्य अनोखा जल विद्वेषों की ज्वाला में,
शशधर से उस रहित-निशा में मानव सोया तममाला में।
स्वर्गिक-वैभव 'आह' भरे हा, दुर्लभता को प्राप्त हुआ रे,
मानवता का कल्पित पथ भी दैन्य-दैन्यमुख-ग्रास हुआ रे॥61॥

जगती की मधुमय छाया में शापमयी यह आकुल माया,
बिछी हुई थी, सोमक्षेत्र में, निज-विस्मृति-नीरद की छाया।
मानव-पथ के कण्टक भू पर पीड़ा का उपहार सजाते,
प्रतिनिधि बनकर ताप-विषम भी जीवन सुख को दूर हटाते॥62॥

अचल निमिलित काल-कराली नर-बलि देने आती थी,
काली चादर क्षितिज पटों पर लाने रजनी आती थी।
जीवन की चिर विकसित श्रद्धा बुद्धि तर्क में फँसी हुई,
अभिशापों की प्रतिहिंसा में कलुषित-असुरा छिपी हुई॥63॥

वह अनंत नीरद माला रे, भयकर भीषण औ' निर्मम रे।
मानव चेष्टा द्वेष-रागमय अति ही उद्यत औ' दुर्दम रे॥64॥

मानव का आलोक अमर वह जग-विस्तृत सीमा में आया,
वीणा पर निज कोमल कर से प्रतिज्योतिर्मय राग जगाया।
सत्य नहीं रे उनका कहना-जीवन है सब सत्य जगत् में,
चिता बनेगी अंत जगत् की, मानव-तन अति सत्य जगत् में॥65॥

नहीं-नहीं यह झूठा सब है, भ्रमपथ-परिवृत वे जग-जन हैं,
पथदर्शक के होने पर भी मार्ग-विरत वे मानव-मन हैं।
यही विनाश बनेगा रे क्या मानव के आवर्तन पट में,
क्या जग-अभिनय सीमित होगा इस अश्विन-युग के लघु घट में॥66॥

क्या मानव के चक्रित पथ पर स्थिरता का आना होगा,
क्या ताण्डव अरमान लिये ही दैन्य-व्यथा का जाना होगा॥67॥

सुन्दर-सुस्मित मानव-वारिद ज्येष्ठ मास का ताप बना-सा,
जाग्रति के दीपकाल में भी फैला कलि-अज्ञान घना-सा।
मानव के मृदु मुस्कानों में महामृत्यु रव-हास उठा था,
मृत्यु खड़ी हा, दक्षिण-कर-गत, भोग लुटा कि विलास लुटा था॥68॥

दु:ख-भ्रान्ति हाहाकार सभी महाभयंकर गर्जन करते,
सिहर-सिहर कर बाहु उठाते, अन्त नाश का बीज बिखरते।
दिखा जगत् में दर्प-ज्ञान औ' अतिज्ञान से अर्पित मानव
अहो आज अति दीप्त हृदय से बना रक्त का प्यासा दानव॥69॥

अनिल-अनलमय अम्बर ओ जग भृकुटि-विलास दिखा दो अपना,
रुको नहीं अब क्षण-भर भी तुम, अभी मिटा दो माया-सपना।
दीर्घ स्पन्दन भर दो तुम हे माया की नीरव काया में,
पुन: गहर दो वज्रपात को कारा की उन कलि साधों में॥70॥

युग-युग से है पीड़ित जगती, अम्बर भी तो डोल उठे हैं,
तरल वीचि सम वे लहराते, प्रलय-तरंगित बोल उठे हैं।
द्रोह-ज्वलित जगतीतल में फिर नवयुग का संदेश सुनाने,
युद्ध प्रलय की ज्वाला परिमित चिर-युग संसृति याद दिलाने॥71॥

चिर-युग मानव की नीति सखे धर्म-जाति पर छाप लगाने,
सन्त पुरुष से विकसित होती चिर-गत वैभव याद दिलाने।
आया रवि के जन्म-प्रात में, चमका तम के अन्तरपट में,
जगती में वह जाग्रति भरता, कहलाता अवतार जगत् में॥72॥

रवि के सुन्दर पथ से प्रतिपल देता आभा प्रांगण में वह,
उसकी उज्ज्वलता में जाग्रत, स्निग्ध-शान्ति था उपवन का वह
नीरवता के विराट्-निलय में पुरुष-युगी बन गात्र सजाया,
जीवन ऋतु के प्रथम प्रहर में कर दी जग की सुन्दर काया॥73॥

उसमें जग की आकुलता का नहीं कभी कुछ लेश रहा है,
जग में, दु:ख में, सुख में उसका अन्तरतल अविभेद रहा है।
उसने जग को आकर देखा हँसता नहीं न रोता है यह,
खड़ा जगत् में पार कहीं पर तन्द्रित जग है, सोता है यह॥74॥

शून्य गगन के पार अरे एक रूप बस चेतन होता,
मानव उसके स्वप्नों में भी हँसता नहीं न पल भर रोता।
जग के इस सम्बन्ध पाश में पल-भर का अस्तित्व बनाता,
अन्त प्रहर के दीप-चपल-सम नर-जग की है नश्वर-ममता॥75॥

क्षण-पल भी न निमिष भर को रे क्षण में ही नवयुग रहता है,
क्षण भी अपनी क्षणता पर ही हँसता नहीं न रोता है।
इस जीवन का सुन्दर पल भी कल तक था जो झिलमिल करता,
आज वही है रोता-फिरता, देख-देख निज-हीन अवस्था॥76॥

क्षणभंगुर है यह अहंकार, माया का है दर्शन सारा,
ममता का है राज्य यहाँ रे, नश्वर है, प्रिय, यह जग सारा।
चलता जाता मानव पथ पर, युगों-युगों की राहों पर,
शासन मद में उन्मद बन वह केवल अहम् प्रवाहों पर॥77॥

किससे पूछो, क्यों कर रे, नहीं अमर है प्रिय, कोई नर,
मनकल्पित ओ मेरे साथी, जीवन-भय है स्वप्नों का डर।
नहीं सृष्टि का चिह्न कहीं रे, उद्भव-प्रश्न नहीं वसुधा रे,
नहीं नाश का कार्य यहाँ रे या रचना कल्याण यहाँ रे॥78॥

सदा सनातन-सत्य यहीं शुभ, किंचिद् नहीं असत्य कहीं,
इस कल्पित के पार वहाँ रे, मानव-मानवता तथ्य नहीं।
इस कल्पित के पार वहाँ उस शुद्धि ज्योति का अनुभव होता,
भरता चिन्तन अमित युगों का नव-वट-पत्र-पुटों में सोता॥79॥

तत्त्व इसे तू जान महत् रे रहित-विकार अनादि-अनंत,
शुद्ध यही औ' बोध यही रे माया केवल शेष समस्त॥80॥

त्यागपरायण तभी पुरुष को दिव्य वस्तु का भान हुआ,
त्यागी जीवन-ममता-प्रियकर सन्त पुरुष अवतार हुआ।
कल्पित पथ से जागे सब नर सत्य पताका जगी महान्,
सत्य सुमंगल जगता पावन, अखिल धरा अवतार महान्॥81॥

सत्य सदा ही विजयी होता, असत् अयुक्त न सार कहीं है,
सत्य मार्ग का पाते गुरुवर, देव वही, देवत्व वही है।
सत्य वेदहित उद्यत ज्ञानी, जग उसको है कहता सुन्दर,
आदि पुरुष-चिर कहलाता वह, जिस पर है माया भी निर्भर॥82॥

सत्यमेव शुचि ज्ञान वही है, पूर्ण सनातन ज्ञान वही है,
सत्यानन्द अभिराम किरण चिर-विधि रचना का ध्यान वही है।
मानवता का ज्ञान वही है, जीवराशि का प्राण वही है,
मानवकृत चिर-पुण्य-मनोहर, पृथुजा का बस त्राण वही है ॥ 83 ॥

वह है जागृति जीवन-पथ पर, जीवन पथ की रति में डटकर,
स्वर्गिक-बल के ओज-अमित से कायरता के अरि को मथकर।
शूरवीर वह वीर कर्म कर, कर्मक्षेत्र में अविरत चलता,
चिर संचित अध्यात्म शक्ति को पल में उद्धत विकसित करता ॥ 84 ॥

जन-जन की वह सेवा करता, शान्ति सुधामृत देता जाता,
जग शासन का सत्य नियामक, दीपशिखा पर नर्तन करता।
देखो, वह सबसे उन्नत, उसका विश्व, वही है प्रहरी,
विश्व उसी की आत्मा भूमा, सन्त वही, वह जीवन-लहरी ॥ 85 ॥

सत्य धर्म के परम शिखर हे, शान्ति धरा के अनुशासक हे,
मानव को बस अमर बनाना, मानवता के उन्नायक हे।
तेरे चरण-रजों में प्रिय, है मानव का सर्जन उद्‌भव-नव,
सत्य-प्रेम-शुचि-अस्त्र समन्वित जग के पावन-कर्ता जय-जय ॥ 86 ॥

हम सब भी अवतार बने द्रुत, ऐसा शुभ-वरदान हमें दो,
जिससे यह भवपोत अमर हो, दिव्य अमरता प्रभो हमें दो।
विश्व अमर हो, देव अमर हो, आत्मा में हम शांत अभय हों,
सत्य शांति के अनहत-स्वर में, भेद विलय हो, हम चिन्मय हों ॥ 87 ॥

(नोट – श्री स्वामी शिवानन्द जी का जन्म सन् 1887 में हुआ था। श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने सन् 1943 में अपने गुरुदेव के जन्मदिवस पर उन्हें 87 पद्यों की माला से अलंकृत किया!)



चैतन्य ज्योति

(स्वामी शिवानन्द जीवनचरित्र)

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश द्वारा प्रकाशन – 1951, 2002, 2011
बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2012



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

चैतन्य ज्योति

(स्वामी शिवानन्द जीवनचरित्र)

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः॥

प्रबल श्रद्धा-विश्वास के बल पर जब शिष्य अपने गुरु के भौतिक स्वरूप से परे, उनके दिव्य स्वरूप से जुड़ता है, तब सब शास्त्रों के रहस्य स्वतः ही हस्तामलकवत् होते जाते हैं। सन् 1951 में प्रकाशित इस ग्रन्थ के परिशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि श्री स्वामीजी ऐसे ही एक आदर्श शिष्य थे, जिन्होंने अपने गुरु के सम्पूर्ण-कला-सम्पन्न परात्पर स्वरूप का साक्षात्कार कर, उनके विराट् व्यक्तित्व के विविध पक्षों को पूर्णब्रह्म की सोलह कलाओं के रूप में समस्त विश्व के समक्ष उद्घाटित कर दिया।

इस पुस्तक के पुनर्प्रकाशन की अनुमति के लिए हम माननीय महासचिव, दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश के अत्यंत आभारी हैं।

– सम्पादक

हे चैतन्य ज्योति, सदा और सर्वदा ज्योतित रहना...

कल्पान्त-निशा में दीपमालिका का नवीन और उल्लासप्रद त्यौहार लाना। हम भी सुन्दर-सुन्दर उपहार ले कर, विश्व की स्थाली को भरी-पूरी रखेंगे और विश्व-प्रलय के उत्तरकाल में, जब आप दिनमणिमाली बन कर पूर्व से जागोगे तो हम रविस्वर्णदिवस की प्रभातकालीन दीपमालिकाओं से आपकी आरती उतारने, स्निग्धनयन हो, इसी त्रिपथगामिनी के तीर जागृत होवेंगे... आपकी ज्योति में अमर ज्योति देखेंगे... उसके उपरान्त...

हे चैतन्य ज्योति, सदा और सर्वदा ज्योतित रहना...

ज्योति-प्रकाश

पिछले कई सालों से हमारी उत्कट अभिलाषा रही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में श्री स्वामी शिवानन्द जी का प्रामाणिक विवेचनात्मक-जीवन-चरित्र अपने पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करें। "शिवानन्द विजय" नामक नाटक के प्रकाशित हो जाने पर, श्री स्वामी जी के जीवन का प्रामाणिक-विश्लेषणात्मक इतिहास उच्च-साहित्य की कला से अभिरंजित हो कर, आवश्यक प्रतीत हुआ।

हमारे इस विचार की कार्यानुरूपता का श्रेय सर्वतोमुख कलाकार श्री स्वामी सत्यानन्द जी को है, जिनकी विद्वता आंग्ल-हिन्दी तथा संस्कृत-क्षेत्र में आदर्शवादिता का प्रतिनिधित्व करती, काव्यमयी सरस भावनाओं के लोकप्रिय-चित्रण में प्रचार-प्रवीण की ओजस्वी-शैली की रहस्यात्मकता है।

श्री स्वामी जी का वर्चस्वतेजोमय-आध्यात्मिक-जीवन, विविध-कलाओं का प्रसार करता हुआ, आंग्लभाषाविद् सुप्रसिद्ध विवेचकों के इन्द्रधनुष का सप्तरंग-आकर्षण रहा है तथा अपनी एक-एक कला की विशालता में किसी भी विवेचक के बौद्धिक प्रयास को नाना रूपों में स्थानान्तिरत कर सकता है। अत: हमें पूर्ण विश्वास है कि आंग्लभाषाभाषी हमारे पाठकगण यथावत् इस अनुपम-साहित्यानुरंजित-कृति का हार्दिक-स्वागत करेंगे।

8 सितम्बर, 1950 —दिव्य जीवन संघ

ज्योति-परिचायक

मुझे लेखक के विषय में कुछ कहना है, अत: उनके जीवन की विश्लेषणा करनी ही होगी।

तेजोमय युवक मुमुक्षु के रूप में इस पुस्तक के लेखक को प्रौढ़तम प्रतिभा के उत्तरदायित्व का श्रेय है। अपने कोमल बाल्यस्कन्धों में पौरोणिक-बुद्धिमत्ता के प्रतिनिधत्वरूपस्थ हमारे लेखक (श्री स्वामी सत्यानन्द जी) हिमालय प्रदेश के सौन्दर्यालंकृत-आँचल में झूमते उत्तुंग शिखरी चीड़ तथा सौरभसमायुक्त देवदारू की वृक्षावलियों के क्षितिजान्त-विस्तार से परिधानावृत, प्राचीन चन्द्रवंशी-साम्राज्येश्वरों के पदारविन्दानुरंजित तथा नैपालगत राज्येश्वरों की वीरता से अभिषिक्त, कूर्मांचलीय अनुशासन की राज्यस्थली, अल्मोड़ा की वैष्णवी भूमि में पूर्वपोषित-जीवन का वंशावतंश हैं। वैदिकयुगीन-कालीन हिमशिखरसमाश्रित ऋषियों तथा मुनियों, सन्तों तथा महात्माओं के यावच्चन्द्रदिवाकर अमर-जीवन ने, जिनके जीवन पूर्वजत्व पर प्रत्येक भारतीय का जीवन प्रतितिष्ठित है–हमारे युवक मुमुक्षु स्वामी जी के रोम-रोम में अभिसिंचित तथा स्फुरित होकर उनकी जिज्ञासु तथा सूक्ष्म प्रतिभा को विकसित कर, उसे सत्यान्वेषण की कसौटी पर परीक्षित किया; जिस सत्य के हिरण्यवर्ण आलोक ने उनके पूर्वजों के हृदय में अपूर्व तथा विश्वातीत ज्ञान का अभ्युदय किया था।

क्षत्रियवंशपरम्परागत-सम्भ्रान्त-कुलकिरण परन्तु शुद्धवैष्णवसम्प्रदाय-आचरणपुनीत जैमिनी-शाखानुयायी, श्री स्वामी जी में आदर्शवादी काव्य का नैसर्गिक-सौन्दर्य तो वर्तमान था ही, अत: जीवन के प्रथम रंगमंच पर ही हिन्दी साहित्य ने उनकी काव्यारविन्द-सौन्दर्य का विकास किया; जिसकी रचनात्मकता के लालित्य का आप इस पुस्तक में प्रतिरूप पायेंगे।

अल्मोड़ा नगरी के प्राकृतिक दृश्यों में रमणीय तथा नयनाभिराम चेतना है। इसी पर्वतीय वातावरण की सुखद गोद में नैसर्गिक-विभूति के प्रकाश की किरणें लेखक के अन्त:प्रदेश में पूर्णत: कलामय हुईं तथा उन्हें विश्व-सृष्टि

में व्यापक पारलौकिक कला के साक्षात्कार का वरदान प्राप्त हुआ। इसी भाँति अपने जीवन के कई वर्ष तक वे रजतपरिधानाच्छन्न-शिखरों तथा रहस्यमयी कन्दराओं की कोटिकन्दर्पलावण्यछटा में विस्मयमुग्ध हो, नित्य-जीवन-प्रभात का उदय देखते रहे। आत्मप्रेरणा से अभिप्रेरित हुए, वे मलयानिल की शीतलता में, गिरते हुए पत्तों के सौन्दर्य में, प्रकृति का अभिवन्दन करते हुए खगवृन्दों के स्वरों में तथा अरण्य-पशुओं की प्रतिनिनादिनी ध्वनि में, वेदों की जन्मभूमि विशाल उपत्यकाओं के गर्भ से प्रतिमुखरित, प्रशान्त और नीरव गाने तथा उन आदि महर्षियों के पावन सन्देश को मुक्त-हृदय से सुनते रहते थे। आज उनकी रचनाओं का कलात्मक-स्वरूप तथा उनके आत्मा के गीतों की जनप्रिय स्वरलहरी, हमारे पाठकों के हृदयप्रदेश की विशाल क्षेत्रावलि में प्रतिध्वनित हो रही है।

हमारे लेखक स्वामी जी उच्चकोटि के हिन्दी साहित्य की रहस्यात्मकता के आदर्श प्रतिनिधि हैं; जिस उच्चकोटि के रहस्यात्मक-साहित्य का जन्म निश्चयतया अल्मोड़ा नगरी के पर्वतीय गर्भ से हुआ था और जिसकी साहित्यिक सत्ता समस्त उत्तर प्रदेश में शासनातीत होती आई है।

विधि के विधान ने उन्हें परम-आदर्श-क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखा था। माया-निर्मित वाणी-विलास की अपेक्षा किसी कठोर कर्मक्षेत्र में उनकी आवश्यकता है। *'अनित्यसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्'* के भागवत विधान ने उन्हें अमर आत्मा के अनन्तकलात्मक सौन्दर्यातीत-स्वरूप की महिमा के गीत गाने के लिए अपने अंक में चिर-पोषित किया था; न कि अनित्य संसार की क्षणभंगुर बालुका से निर्मित विशालाकार-प्राचीरों के वृथा काव्य-कलाप के लिए।

अत: जीवन में प्रथम प्रभात के उदय होते ही परमपिता परमात्मा ने उनकी मानवीय चेतना में अतिसूक्ष्म-वैराग्याग्नि को प्रतिष्ठित कर दिया; जो कालान्तर में बौद्धिक, आध्यात्मिक, चाक्षुषी तथा आत्म-जागृति की साधना के मन्थर-मन्थर वेग से प्रज्ज्वलित होती हुई, संवत्सरों के बीतते ही, विश्वाकार वैराग्याग्नि के ताण्डवेग में जाज्ज्वलयमान् हो उठी। आधुनिक शिक्षाप्रणाली के केन्द्र, आंग्ल-विद्यालय के शिक्षा के कारण उनकी आन्तरिक अभिलाषा पलभर भी प्रभावित नहीं हुई। अपितु, आडम्बरपूर्ण-शिक्षा के नि:सार-वृथाभिमान तथा संसार रूप परिभ्रमणशील-स्वप्नमायाच्छादित-चित्रों की परिवर्तनशील प्रकृति ने उनकी तीव्र इच्छा को

पारलौकिक-सौन्दर्य तथा परात्पर सत्य के अन्वेषण की ओर उत्तेजित तथा नेत्रित किया।

आध्यात्मिकता की ज्वाला से गम्भीरतर उत्कण्ठा की प्रभा का आलोक विकीर्ण हुआ। त्याग ही श्रेयस्कर सिद्ध हुआ; जब कि संसार भस्मस्तूप में परिणत हो चुका था। आश्चर्य! मेधावी युवक ने अपने को नंगे पाँव (उपनिषदोक्त) छूरे की धार पर पदार्पण करते हुए देखा और यही मार्ग उस मुमुक्षु को गंगातटस्थ योगियों की तपोभूमि उत्तराखण्ड के मनोरम आंचल में ले गया। श्री स्वामी शिवानन्द जी सदृश महर्षि ने सप्रेम उसे अपने प्रेम-प्रपूरित विशाल अंक में अभिनन्दित किया तथा करुणाकर स्वामी जी के स्नेहालिंगन में हमारे मुमुक्षु को सान्त्वना मिली तथा आनन्द मिला। उसने 'दिव्य जीवन' की सक्रियता में भाग लिया और 'दिव्य जीवन' के कर्णधारों का यशस्वी अंग बना। श्री स्वामी शिवानन्द जी के महर्षि-जीवन में उसने अपने आदर्श को, अपने लक्ष्य को केवल केन्द्रित ही नहीं किया; अपितु स्वत: ही अपना हृदय तथा अपनी आत्मा का लौकिक स्वत्व भी उनके श्रीकर चुम्बितचरणों पर न्योछावर कर दिया। यह तो सात वर्ष पूर्व की कथा है।

सन् 1945 की महाशिवरात्रि के महिमामयपर्व पर, हमारे लेखक अखण्ड ब्रह्मचर्य के मन्त्रपुनीत-आश्रम में (ब्रह्मचर्याश्रम में) महर्षि द्वारा दीक्षित किए गये। तदनुसार उनका पुनर्नामकरण हुआ और वे ब्रह्मचारी श्री सत्य चैतन्य के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार सत्य की खोज में, आनन्द कुटीर के महर्षि की प्रेमाप्लावित-आध्यात्मिक-छत्रच्छाया में, हमारे लेखक सत्यात्मक जीवन के मन्त्र में दीक्षित हुए। अपने गुरु तथा इष्टदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी की प्रेममयी सुरक्षा में उनके उपदेशों के अनुसार अपने जीवन को विकास के पथ पर द्रुतगति से ले जाते हुए ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य ने गुरु की कृपा का सम्पादन किया और उसी गुरुकृपा ने आत्मपुरुष के आध्यात्मिक रंगमंच पर, अध्यात्मरत्न के आसन पर उन्हें अभिषिक्त किया।

गुरुसेवा में इस युवक ब्रह्मचारी ने अहोरात्रों की सन्ध्या मनाई (रात और दिन एक कर दिए) तथा शान्तिपूर्वक, प्रेम से, आडम्बरशून्य हो, श्री सत्यजी संघात्मक-उत्तरदायित्वों का सम्पादन अकेले ही इस अनुपम योग्यता से करते थे, जोकि छह पुरुषों की सामूहिक शक्ति से भी परे होता। बिना पूछे ही, वे निरपेक्षतया, जहाँ उनकी आवश्यकता होती थी, अथवा जहाँ वे हाथ बँटा सकते थे, सहर्ष और अप्रतीक्षितरूप से पहुँच जाते थे। तात्पर्य

कि चाहे स्वस्थ शरीर हो; अथवा कार्यभार से शरीर अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गये हों, अथवा रोगाक्रान्त शरीर हो; हमारे ब्रह्मचारी श्री सत्य चैतन्य ने अपने सुगठित बाल्यस्कन्धों को 'दिव्य जीवन' चक्र की प्रशस्त-कीलिका के निर्माणहेतु न्योछावर किया; कालान्तर में इसी स्कन्धरूप-कीलिका ने विश्वात्मक-जागृति-यन्त्र को अनवरतरूपेण संचालित रखा।

12 सितम्बर, 1947 के परमपुनीत दिन ने हमारे लेखक के जीवन में महत्त्वपूर्ण अध्याय का श्रीगणेश किया। श्री स्वामी शिवानन्द जी की षष्टि-पूर्ति के महामहिम महोत्सव पर, आनन्द कुटीर के सन्त की 'हीरक जयन्ती' की प्रतिष्ठा में ब्रह्मचारी श्री सत्य चैतन्य ने उत्तमाधिकारी-प्रकृतिसम्पन्नता प्राप्त कर, अपने गुरु महाराज से संन्यास-धर्म में दीक्षा ली। उस मंगलात्मक मुर्हूत में परमहंस संन्यास का 'सरस्वती' द्वारपथ, श्री स्वामी शिवानन्द जी के आध्यात्मिक संघ के कर्णधार (हमारे लेखक) विशालबुद्धि, शक्तिशाली बाहु तथा कोमल-हृदय व लोकोत्तर समन्वय–अध्यात्मरत्न श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के स्नेह-स्निग्ध अभिनन्दन में खुला हुआ था; जिस परमहंस संन्यास की परमानन्दप्रदायिनी छत्रच्छाया में उन्होंने अपने गुरुदेव के आदेशानुसार, व्यवहार तथा उपदेश द्वारा ज्ञान, भक्ति, योग और सेवा के पारमात्मिक वैभव की पुन: प्राप्ति का संकल्प किया और श्रीगणेश किया–शान्ति की पुन: संस्थापना का, प्रेम तथा आनन्द द्वारा, धरा को स्वर्गीय बनाने का।

हमारी परमपिता परमात्मा से यही हार्दिक याचना है कि हमारे (लेखक) स्वामी जी चिरंजीव रहें तथा नित्य नवीन-शक्ति से सम्पन्न हों; सत्य का उदय करें; और करें–मानवता का चिरवांछित कल्याण। *सत्यमेव जयते।*

8 सितम्बर, 1950 –स्वामी चिदानन्द सरस्वती



ज्योति-किरण

प्रिय आत्मन्,

जय सच्चिदानन्द। मुझे अतीव हर्ष का अनुभव हो रहा है कि मैं आपके सम्मुख प्रस्तुत कृति को यथासमय रख सका। इस पुस्तक के पीछे एक कहानी है, जो इस पुस्तक के जन्म का श्रेय प्राप्त करने योग्य है। सन् 1945 की घटना है। मुझे अरण्य विश्वविद्यालय के प्रधानाध्यक्ष की मित्रता का अवसर प्राप्त हुआ। वैसे तो हम सन् 1944 मार्च से ही एक-दूसरे को जानते थे। परन्तु संन्यासी होने के कारण हमारा पारस्परिक सम्बन्ध उतना घनिष्ठतर नहीं होने पाया, जितना साधारण व्यक्तियों के विषय में बहुधा पाया जाता है। वे स्वयं विद्वान् तो थे ही, अपि च दूसरों की विद्वत्ता के पारखी भी थे। अत: उन्हें मेरी साहित्य-प्रियता से परिचित होने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ।

समय-समय पर वे मेरे साथ धर्मचर्चा करते थे; जिसके फलस्वरूप मुझे अपनी साहित्यप्रियता का दिग्दर्शन कराने में देर न लगी और जिसकी छाप उनके ग्राहक हृदय में अविलम्ब ही अंकित हो गई। उस दिन के उपरान्त वे नित्यप्रति हमारे गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के विषय में चर्चाएँ करते और मैं अत्यन्त उत्सुकता से सुनता रहता। कहना नहीं होगा कि मेरी कवित्वमयी भावना, जो संन्यासोद्भूत निरासक्ति की भावना से दबी पड़ी थी, उन औपन्यासिक उपाख्यानों का सहारा पा कर जाग उठी। मैंने अपने सुहृद् और गुरुभाई श्री स्वामी चिदानन्द जी की (यही उनका नाम था) चर्चाओं को मनोगत कर लिया और निश्चय किया कि यदि मैं अपनी भावना द्वारा गुरुदेव के इतिहास को अंकित कर दूँ तो आशातीत सफलता और उनके आशीर्वाद का भागी बन पाऊँगा।

गुरुदेव के आशीर्वाद से मैंने पुस्तक लिखनी आरम्भ कर दी। प्रारम्भ में भाषा प्राय: क्लिष्ट हो गई; परन्तु उत्तरोत्तर भावाधिक्य के कारण भाव और भाषा दोनों का स्वरूप साहित्यमय हो गया। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अतिसूक्ष्म

अनुसन्धान के उपरान्त कथानकों का वर्णन किया है। कोरी काल्पनिकता को आख्यान के प्रचलित-विषय से कहीं भी सम्बन्धित नहीं किया, क्योंकि मैंने इस पुस्तक के ऐतिहासिक स्वरूप को अविच्छिन्न जो बनाये रखना था। अवश्यमेव अलंकारादि को मुक्तवाही स्वतन्त्रता दी है, जो किसी प्रकार भी पुस्तक के आख्यानों की सत्यता को प्रभावित नहीं कर पाती है। जहाँ-तहाँ कुछ अप्रचलित शब्द आ गये हैं, जिनका प्रचलन सुशिक्षित साधु-समाज में प्राय: होता रहता है और अलंकार भी वैसे हैं, जिनका उपयोग वेदान्तमीमांसक-ग्रन्थों में ही हुआ है। भाषा और उसका उपक्रम न तो कट्टर साहित्यिकों की अवहेलना या उपहास का पात्र हो सकता है और न वेदान्तविद् तार्किकों के खण्डन-मण्डन का विषय ही; क्योंकि मैंने विचार-विमर्श करने पर ही भाषा का प्रयोग किया है। कवित्व की भावना के साथ-साथ मैंने इस दृष्टिकोण को निरन्तर अपने सामने रखा है कि यह धर्मग्रन्थ है, जिसका मनन कर, सहस्त्रश: हिन्दीभाषाभाषी परमार्थज्ञान की प्राप्ति करेंगे, अत: योगवासिष्ठ, गीता तथा अन्यान्य वेदान्तग्रन्थों का अपूर्व समन्वय इस पुस्तक का अलौकिक-सौन्दर्य है।

कथा की ओर

वैसे तो पाठकगण पुस्तक से बहुत कुछ उपाख्यान जान सकेंगे; परन्तु संक्षिप्त में पुस्तक के विषय का श्रीगणेश करना अनावश्यक नहीं होगा। संक्षिप्तत: कथा इस प्रकार आरम्भ होती है–

''दक्षिण भारत के पत्तमडै ग्राम में पी.सी.वेंगु अय्यर नामक एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण नवयुवक कुछ विरक्त-सा हो गया। उसने एक दिन अपना घरबार छोड़ दिया। दिनभर धूप में चलने के उपरान्त उसने सारी रात्रि अरण्यस्थित एक निर्जन देवालय में बिताना निश्चित किया। थका तो था ही, बैठने पर उसे तन्द्रा ने आ घेरा और उसी अवस्था में उसे एक महापुरुष का प्रतिभान हुआ; जो साक्षात् शंशाकशेखर ही थे। शशांकशेखर भगवान् चन्द्रमौलि ने उसे घर वापस जाने का आदेश दिया और यह भी सूचित किया कि वे स्वयं उसके घर में अवतार लेंगे। देवाज्ञा थी; उसका पालन करना पड़ा और नवयुवक घर लौट आया।''

''कालान्तर में तत्कथित वेंगु अय्यर की पत्नी सौभाग्यवती पार्वती के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। यही बालक समयान्तर वैदिक संस्कृति

और सनातन-धर्म की रक्षा के लिए संन्यासधर्मपरायण हुआ। आज हम उसी बालक को श्री स्वामी शिवानन्द जी के रूप में देखते हैं। श्री स्वामी जी ने जो-कुछ किया है, वह विश्वविख्यात है और जो-कुछ करने जा रहे हैं, भविष्य का इतिहास उसे स्वर्णलिपि में अवश्य अंकित करेगा।''

आगामी अध्यायों में आप उनका सम्पूर्ण जीवनचरित्र पायेंगे। किस प्रकार उनके दिगन्तोज्जवल-वर्चस्व का उदय हुआ; कौन सी प्रेरणा के वशीभूत हो, वे परम रमणीय काषायधर्म प्रवृत्त हुए तथा किन-किन घटनाओं के वे चामत्कारिक नायक बने, यह सब आप पुस्तकावलोकन से जान पायेंगे।

प्रिय बन्धु, यह पुस्तक उनके महान् जीवन का केवलमात्र विहंगम अवलोकन है। यदि उनकी जीवनी का विस्तृत वर्णन किया जाये तो ग्रन्थ पर ग्रन्थ रचे जा सकते हैं। मैं कई वर्षों से उनकी सन्निधि में ही सहस्रश: घटनाओं का अवलोकन कर चुका हूँ जो सहज ही किसी को विस्मयमुग्ध कर सकती हैं।

नम्र निवेदन – कृतज्ञता-प्रकाशन

अत: मुझे आशा है कि शिक्षित समाज इस कृति का सहर्ष आलिंगन करेगा। शेष दूसरे संस्करण में, मैं अवश्यमेव कुछ और रोमांचक घटनाएँ समाविष्ट करूँगा। मुझे अभिलाषा है कि यह रचना केवलमात्र सीमित-समाज में ही चक्कर न लगाये; वरंच विशालक्षेत्र की दूरी नापती हुई, लाखों व्यक्तियों को अपने आध्यात्मिक-सूत्र में पिरोये।

अन्तत: मैं अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन न करूँ तो रचना की विशेषता जाती रहेगी। मैं सचमुच 'योग-वेदान्त अरण्य विश्वविद्यालय' के अधिकारीवर्ग तथा वहाँ के प्रधान श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी के साहित्यिक और भावुक सहयोग का अनन्य ऋणी हूँ; जिनकी प्रेरणा और क्रियात्मकता द्वारा ही इस पुस्तक का श्रीगणेश और प्रकाशन हुआ। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का श्रेय प्रिय बन्धु श्री वेंकटेशानन्द जी को है; जिनकी अभूतपूर्व-स्फूर्ति द्वारा रचना ने यह नया दिन देखा और जिनकी समय-समय पर प्राप्त कृपाकटाक्ष-वीक्षणलहरी से मेरे सोये हुए भाव जाग उठते हैं।

इसके अतिरिक्त मुझे सदा और सर्वदा अपने गुरुदेव का जो चिरभिलषित प्रसाद – आशीर्वाद और स्नेह के रूप में, नवजीवन और ज्ञान के रूप में प्राप्त होता आया है, वाणी-विलास के परे है। श्री गुरुदेव की आन्तरिक प्रेरणा

आज सजीव हुई है। मैं उनके ऋण से उऋण तभी हो सकता हूँ जब मैं उनके उपदेश, उनका सन्देश जन-जन के हृदय में भर दूँ और स्वयं इस दारुण जगजीवन पथ पर उनके चरणारविन्द की विभूति के सौरभ में ओतप्रोत हो, उनकी तपोल्लसित-स्निग्ध-चन्द्रच्छाया में, महानिर्वाण, परमधाम तथा सद्गति की ओर चिरन्तन-युगों के साथ चलता रहूँ और अविश्रान्तगत्या चलता रहूँ–शाश्वत सत्य और अविस्मरणीय-परमार्थ के अखिल-सौन्दर्यसज्जित महामहनीय परात्पर की ओर। *सत्यमेव जयते।*

8 सितम्बर, 1950 –स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



धन्या माता च धन्यं कुलमथतटिनी ताम्रपर्णी च धन्या।
धन्या सा द्राविड़ीभू ऋषिजननी भारती चापि धन्या॥
धन्या कुब्जाम्रकाभूरथ तुहिनगिरी: स्निग्नकाश्चास्मदाद्या।
लब्धो यस्मादिनोद्वद्द्युति शिवयतिसम्पर्कसौभाग्यलाभः॥

श्री स्वामी तपोवनम्

लक्ष्यं काक्ष्यं नराणां निखिलमुनिवरैर्वैदिकैर्वेदबाह्य-
श्चादिष्टं यद्वरिष्ट सुखपदमभयं जीवनं दिव्यमेकम्॥
लोके तद्वृद्धिहेतोस्तदभिनवगुरोर्जीवन श्रीशिवेन्द्र–
स्यारोग्यं चापि दीर्घजननधनिचय हे नराः प्रार्थयध्वम्॥

जय जय गुरुदेव

श्री उपासनी कन्याकुमारी स्थान,
साकुरी (शिवानन्दाष्टमी)

जय जय जय दयाघन शिवानन्द महाराज।
गेरूधारी पुनरवतारी,
सन्त सकल सम्राट्॥ जय जय ...॥1॥
देह धरे तुम भक्तन कारण,
सद्गुरु परम उदार॥ जय जय ...॥2॥
हम क्या जानें महिमा तेरी,
देव गए सब हार॥ जय जय...॥3॥
दया करो हम दासी पर,
भक्तवत्सल महाराज॥ जय जय...॥4॥
जय जय जय दयाघन शिवानन्द महाराज।

"सती गोदावरी माँ"

ज्योति-समुच्चय

स्वामी शिवानन्द
अथवा
चैतन्य ज्योति

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे शिवानन्दाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्॥

प्रथम कला

अतीत की अनुभूति में

युग बीते जाते हैं, परिवर्तनों में भी परिवर्तन हो जाते हैं, इतिहासों के पन्ने महापुरुषों की गाथाओं से खंचित हो जाते हैं। परन्तु वे चले जाते हैं। पुन: युगान्तरों में याद आते हैं 'अतीत की अनुभूति में'।

Countless ages roll away;
Change itself doth suffer change;
The narratives of the Great Ones
Fill up History's Scroll.
Doubtless, even they do pass away.
But, at the end of Time's endless lane;
You find them there,
Shining forever,
Clad in the raiment of Transcendent Life.

हरित दृश्य की शीतल छाया से पूर्ण अरण्य, शशधर की मनोहर किरणों के नीचे, जो पार्श्ववर्ती सरोवर से शुचि क्रीड़ा करती सुशोभित हो रही थीं; दक्षिण-प्रान्त-स्थित पत्तमडै-नामक ग्राम से बीस मील की दूरी पर, शरदावतरण-कण-सम्पातगत सन् 1889 के सितम्बर मास की 8वीं तिथि की सुरभित निशा में, एक शिवालय को अपने वक्षगत करता हुआ, अत्यन्त सुन्दर छवि से, नयनों की शुचि शोभनता पर, उज्ज्वलतम दृश्य की नयनोत्फुल्लिका सखी हरिता में, अनेकानेक-कनक-विभासम्पन्न छाया पथों द्वारा परिपूर्ण, नव-पल्लव-पुंज-प्रवाहित, चंचल-पवन की क्रीड़ा से ध्वनियुत्, व्योम-जगत् के तारकों को अपनी शुचि-काया दिखा कर, शून्यावस्था-वस्थित हो, सुदूर-प्रवाहिनी ताम्रपर्णी के मृदुल निनाद को श्रुतिगत करने की इच्छा करता हुआ भी, आज किसी अंकगत शुचितर-स्मृतिगाथा का अज्ञात श्रवण करता हुआ, मानवता की महाव्यथा के निवारण-नाट्‌य के भूमिकालय में 'साक्षी चेता' केवलोनिर्गुणश्च, बना हुआ, अत्यन्त सुशोभित और दर्शनीय हो रहा था।

'देवाधिदेव...' अरण्य-स्थित-अतीत-कालीन शिवालय के अन्तर्भाग से शत-शत जल तरंगों के सुमधुर कलरव को लज्जित करता, कोकिल की सुरीली तान को भी नीरस करता हुआ, एक विनय-पद रात्रि के मध्य प्रहर में, जब कि सुदूरस्थित केवल पट्टमडै ग्राम ही नहीं, वरन् समस्त संसार महामौन की जड़निद्रा में विलीन था, प्रेम-रसान्वित-शून्य में सीमित हो गया।

शिवालय के अन्तर-भाग में, मन्द-दीप प्रकाश के मध्य शिव प्रतिमा के सम्मुख, युग्म-कर-बद्ध हो बैठा हुआ, अनन्य-भाव-मग्न हो, एक मानव प्रार्थना में मग्न था। उसके लिए बाह्य-ज्ञान की अनुभूति का आभास अदृश्य हो गया था। उसका हृदय प्रेममय हो, द्रवित एवं गद्गद् था। उसके हाव-भाव से प्रत्यक्ष जान पड़ता था कि मानो उसने अद्यावधि-जीवन में ऐसी सुखानुभूति का अनुभव कभी न किया हो। उसका सुन्दर, मधुर तथा उज्ज्वल कान्तियुत्-मुख-मण्डल, अपूर्व-विभालोक की किरणों से सेवित उसकी किशोरावस्था के सौन्दर्य की गाथा का प्रदर्शन कर, स्पष्ट सिद्ध करता था कि वह किसी पवित्र-वंश में अवतरित हो, उसे और भी परम पवित्र कर रहा है। उसे लौकिकदृश्य अतीत से परे ज्ञात होने लगे। उसके हृदय-सागर में भक्ति-विचारों का ज्वार-भाटा उद्भूत था। उसके अन्तराकाश में विचार की मेघ-मालाएँ, भक्ति-भाव के जल से सम्पन्न हो आह्लाद की विद्युच्छटा की पलक भर तक दर्शिका होती थीं। उसके नयनों में अश्रुधारा प्रवाहित होती हुई, उनके अन्त: की विगलितावस्था का आभास करा रही थी। वह नेत्रोन्मीलितावस्थावस्थित था। वह निश्चल हो कह रहा था।

'प्रभो! मेरी आकांक्षा पूर्ण हो गयी है। जीवन की घृणास्पदावस्था से घबराया हुआ मैं मानव-प्राणी, प्रभो! आपकी असीमानुकम्पा से आज सब-कुछ की पूर्ति कर चुका हूँ। मेरा जीवन-वैभव पूर्ण हो गया है। मेरी विद्वेलित, एक महानाकांक्षा आज पूर्णत्व की भूमिका से युक्त है। मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ नाथ, अपनी अवस्था का। मैं जो-कुछ कहूँ, वह कम ही है और जो-कुछ न कहूँ, वही यथेष्ट है। आराध्य देव! आज केवल मैं प्रसन्न ही नहीं हूँ, अपितु आज मैं समस्त संसार को सुखी अनुभव करता हूँ। आपके बाईस वर्ष पूर्व प्रदत्त वरदान आज अंकुरित हैं। मैं आज मान गया कि दो वर्ष पूर्व अवतरित बालक, पूर्ण-विभामय आप ही स्वयं हैं।'

'नाथ' वह बोलता गया, अविरल गति से, 'आज बालक की द्वितीय वर्षगाँठ के अवसर पर, रचित-जन्म-कुण्डली कथित-विवरण द्वारा वह

समस्त संसार के दु:खों की निवृत्ति करने वाला सिद्ध होता है। उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह बालक केवल साधारण एवं महान् ही नहीं – वरन्, इससे भी परे है। वह षोडश-कलान्वित-शुद्ध-चैतन्य स्वयंज्योतिर्मय स्वरूप से समाविष्ट हुआ है। उसने असम्भव को सम्भव कर, 'नहीं' को 'हाँ' कर देना है। उसने अनन्त काल से दु:खित अखिला का असत्य-भार उठाना है। उसने असत्य, अधार्मिकता का नाश कर, सत्य धर्म की नींव जमा देनी है। प्रभो! केवल इतना ही ही नहीं, ज्योतिषी जी बालक के पूर्ण विवरण को कहने में अपने को पूर्ण-असमर्थ बताते हैं। वे भी बालक के भाग्य एवं भविष्य को देख अति चकित हैं...।'

वह कहता गया। उसका मुख-स्रोत प्रकाश का उद्गम सा बना ही रहा।

पाठक! आप वास्तव में भ्रमित हो गये होंगे कि यह ऊट-पटांग भूमिका सी क्या? न तो नायक का ही नाम है; न उसकी प्रार्थना का पूर्ण विवरण ही। न यही ज्ञात कि आखिर यह बालक कौन है और इसका वरदान से क्या सम्बन्ध है? यह वरदान किसने, किसको, कब और क्यों दिया था?

अच्छा आप निश्चिन्त रहें। व्यग्र होने से कोई लाभ नहीं। यदि आप इस विषय को जानने के इच्छुक हैं तो आपको आज से बाईस वर्ष-पूर्व की एक घटना के मध्य में पहुँचना होगा। अरे, आप तो घबराने लगे। आइए, निर्भय हो, मेरे साथ आइए। मैं आपको बाईस वर्ष पहले की घटना में पहुँचाता हूँ।

बाईस वर्ष पूर्व – अतीत की अनुभूति में

ग्रीष्म ऋतु की उत्तापित धारा के प्रचण्डोत्ताप से परिपूर्ण वातावरण की ऊष्मित विदग्धता में, जब कि समस्त पक्षीगण तृषा एवं ग्रीष्म-निदाघ से आक्रान्त, अपनी चौंच खोले, शीतल स्थान का सहारा ले बैठे हुए ग्रीष्म की इस ताण्डव-क्रीड़ा पर अतिक्षुब्ध हैं, जब कि गरीबों की एकमात्र दुनिया उनकी झौपड़ी, प्रचण्ड ग्रीष्म वातावरणाच्छन्न, उनको खस-खस की टट्टियों का स्मरण दिलाती हुई, उस उत्ताप को स्वयं सहन कर, उन प्राणियों की यथाशक्ति रक्षा करती है, एक नवयुवक नंगे-पद अस्त-व्यस्तावस्था में अज्ञात की ओर गमन करता है। पाठक, आपको अधिक गहराई में न डाल कर, नवयुवक का नाम पी.एस. वेंगु अय्यर बताना ही उचित है।

कारण क्या? जो यह इस प्रचण्ड लू नंगे पाँव अग्रगामी हो रहा है। पाठक! आपको ज्ञात नहीं – उसका हृदय वैराग्य से परिपूर्ण है। उसने संसार के सुखों

को तिलांजलि दे, निवृत्ति मार्ग की ओर पद बढ़ाया है। उसने ताम्रपर्णी सदृश सरिता-तट स्थित पट्टामडाई का परित्याग कर दिया है, आत्म-साक्षात्कार के लिए। उसने पारलौकिक परम दिव्य शान्ति प्राप्ति हेतु, अपने चिर-गृह का इस भयंकर प्रहर में त्याग कर दिया है। उसने परमात्मानुभवार्थ अपनी शरीर स्थिति की परवाह न कर, इस भयंकर बेला में मार्ग की ओर पग बढ़ाया है।

देखो, वह किसी विचार में तल्लीन है। उसे न तो ज्ञान है इहलौकिकता का, न अनुभव है इस भयंकर ग्रीष्माग्नि का। उसके अन्तर-उपवन में प्रज्वलित वैराग्याग्नि तो, केवल इसी अग्नि-वर्षा के समान ही नहीं, वरंच–एतद्वत् कोटिश: अग्नि राशियों की ज्वाला के समान प्रज्वलित है। अत: यह ग्रीष्माग्नि उस महतोत्ताप के समान कहाँ?

समस्त दिन चलने के उपरान्त, विलीयमान सूर्य की लोल-रश्मियों के अदृश्य हो जाने पर उदीयमान अन्धकार ने उसका स्वागत किया। सन्निहितारण्य मध्यस्थ शिवालय के मंजुल-स्थापनभूत-अस्तित्व ने, बीस मील से तप्तमान-अग्निवर्षा का सामना कर और उसे पराभूतावस्था में छोड़ कर आते हुए उस निवृत्ति मार्ग के पथिक को विश्राम दिया। विजन-विपिन के चरमराते हुए पत्रों से आच्छादित भूमि के मध्य-स्थित सरोवर ने उसकी तृषा शान्त की; उसे नव-स्फूर्ति का आभास कराया। नभ वृक्ष के पुष्पों ने उसे अपने नेत्रों से देख आनन्द की अनुभूति करते हुए, उस विजन-अरण्य-स्थित-तम की व्यापकता के निवारणार्थ टिमटिमाते शब्दों से पुष्पराज चन्द्र का आवाहन किया। प्रतीचि-सागर से अज्ञात ने सुधा कलश को अखिलाम्ब-रांगन-स्थिर कर उसकी वैराग्य-ज्वलित-दाहन-क्रिया में शीतलता का विस्फुरण किया और सम तारण्यालोकित-शून्यता ने उसे ध्यान-मग्न कर दिया। वह बैठ गया, दीवाल के सहारे – और सोचने लगा...।

'कितनी शान्ति व्याप्त है यहाँ। अन्तर स्वयमेव विगलित हो जाता है। सर्व-श्रान्त पूर्ण क्लान्त पथिक भी केवल पलभर के दर्शन मात्र से आनन्दित एवं शान्त हो जाता है। परन्तु पता नहीं, क्यों मनुष्य को कोलाहल-सीमिता-नगरी में वास्तविक सुख का आभास होता है? क्या कारण है, यह मानव अज्ञानी हो, निवृत्ति मार्ग को विस्मृत कर, अनेकों व्यर्थ सांसारिक उत्तरदायित्वों के मध्यस्थ ही सुख की अन्वेषणा करता है? किस कारण से ये लोग संसार से विरक्त नहीं? कितना क्षुद्र एवं घृणास्पद है, इन अज्ञानियों का जीवन? और कितना दिव्य है, यह एकान्त जीवन। जहाँ एक मनुष्य, साक्षात्कार ही साध

लिये, सर्वत्र इह लौकिकता की तिलांजलि दे; अपने को कठोर तपश्चर्या द्वारा, अमर पद के योग्य तथा परिपुष्ट बना लेता है...।

सहसा उसकी विचार-धारा में स्थिर-भाव का संचार हो गया। उसके नेत्र स्वप्नों की स्रोतस्वरूपिणी सुषुप्ति से आँख मिचौनी खेलने की योजना करने लगे और संसार से विरक्त उस सुकुमार-नवयुवक को अत्यन्त-तीव्र वैराग्य से गृहत्यागोपरान्त, शिवालय के प्रस्तर-निर्मित-स्तम्भ के बल निद्रित कर दिया।

आदर्श एवं अनुकरणीय है यह महान्...।

वह अधिक न सो सका था कि सहसा एक अज्ञात विद्युत्वत्स्फुरणावेग से जागृति को प्राप्त हो गया। नेत्र खोलते ही उसने मन्दिर के आन्तरिक भाग से विकीरित ज्योति व्यापकता को दृष्टिगत कर आश्चर्य माना। अनवरत-गति से वह व्यापकता विजन-वन के चन्द्र-कला से शोभित पथ पर, आलोकित हो स्वर्ण में सुहागे के समान ज्ञात होने लगी। शुभ्र वह प्रस्फुटित ज्योत्सना अखिल निर्जन पथ पर प्रकाश जीवन का दान दे रही थी। ऐसा आभास होता था मानो कोई अज्ञात, अज्ञाताज्ञात के परमाज्ञात पथ पर किसी अज्ञात को अज्ञाताभा का पराज्ञात उपहार दे रहा हो अथवा जगती के निशा पटल पर कृष्ण-युवती को सुप्त देख, उस मुग्धाकर्षणाकर्षित हो कर हरणार्थ आया हो, अथवा उपरोक्त अज्ञात कारण के प्रकाशन हेतु, अज्ञात-व्यापकता बन, स्वयं अज्ञात के दृष्टि क्षितिज में अज्ञात था; अथवा वह आलोक, नवयुवक पी. एस. वेंगु अय्यर के निद्रित कोरों में आवाहन की ऊषा का प्रकाश कर रहा था; अथवा उसके मानस पटल में श्रावण की हरिता-प्रकृति की अवस्था का प्रकाश वैकीर्य्य गतिगत करता था। हो सकता है कि सत्यानन्द स्वरूप परम रवि का द्वादश कलायुक्त प्रकाश, निशि-तम के आंचल को सुशोभित करता हुआ, काम-क्रोध-विजड़ता की जड़ता में चैतन्यस्फुरण दान कर मानवता को दिव संचय के संचयनार्थ, विमल धरा के आनन में स्वर्गीय अभिनय की प्रकाश युक्त व्यापकता का आलोक प्रत्यालोकित करता था।

अनेकों कल्पनाओं के वीचि-विहोड़ में, अलौकिक उस ज्योति वैकीर्ण्य में, उसने एक मधुर स्वर का आलोक आता हुआ, कर्णों से ज्ञात किया। उसके कर्णों में मानो अमृत का संचार हो गया हो। उसके नेत्र उस ज्योति की व्याप्त-स्निग्धता में अभिराममय हो गये। उसने सुना...

'पुत्र, तेरी आकांक्षा निस्सन्देह महती है; वह सराहनीय है। इसमें शंका की आवश्यकता नहीं। परन्तु तुझे अपने इस विचार को स्थगित कर, संसार

के उत्थान एवं पतन की ओर मोड़ना होगा। आज संसार की अवस्था कैसी है, यह तुझसे छिपी नहीं है। अत: अधर्म-परिपीड़िता अखिला की करुण पुकार को मैंने सुनना है। प्रकृति एवं विभूतियों की प्रार्थना पर ध्यान देना है। मैंने अनेकों अंशावतारों की सृष्टि तो की; परन्तु वे शत-प्रतिशत साफल्य-किरीटाधिकारी न हुए। अत: भक्तों की रक्षा के हेतु मेरे को स्वयं पृथिवी तल में सगुणाविष्ट होना पड़ेगा और मैं तेरे ही कुल में स्वरूपाविष्ट होना चाहता हूँ। यही उचित भी है।'

'अत: लौट जा घर! संसृति के ह्रास की दैन्य अवस्था को देख कर! गृहस्थ धर्म रत हो जा! इस शोचनीय अपकर्षावतरण को देख कर!! निमित्त मात्र बन जा! अखिला के करुण विलाप को सुन कर!!!'

'जा लौट जा पुत्र! संसार के कल्याण के लिए! जा! गृहस्थ धर्म प्रवृत्त हो जा पुत्र! दु:खियों के उद्धार के लिए!! जा! निमित्त मात्र बन जा पुत्र! पतितों के जागृति-आधार के लिए!!!'

'मैं तेरे पवित्र कुल में लीला करने के लिए, रोतों को हँसाने के लिए, पतितों को उठाने के लिए, संस्कृति एवं सभ्यता को जगाने के लिए, विलगों को मिलाने के लिए, पथाकांक्षी को पथ बताने के लिए, भक्तों को उबारने के लिए आऊँगा। अधर्म को मिटाने के लिए, असत्य को डुबाने के लिए, जड़ता को हिलाने के लिए, भौतिकता को जलाने के लिए, बाधाओं को हटाने के लिए, क्रान्ति को गिराने के लिए, भ्रम को छेदने के लिए, अविश्वास को बेधने के लिए, अमर ध्वजा फहराने के लिए, सत्य घोष को घहराने के लिए, अस्थिरता को ठहराने के लिए, अमल प्रकाश उर्मि लहराने के लिए, अमर नाम कहलाने के लिए, भीषणों को दहलाने के लिए, धर्म शत्रु को हराने के लिए, अस्थिर वृक्ष को ढहाने के लिए, सेवा के महासागर में नहाने के लिए, संसृति दु:ख-चक्र को भंग करने के लिए – मैं तेरे परम पवित्र कुल में केवल एक के हेतु नहीं, वरन् निस्सीम अपार के दु:खों की निवृत्ति करने के हेतु आऊँगा।'

'जा! जा!! जा!!! अविलम्ब ही लौट जा!!!'

प्रकाश अदृश्य हो गया, शान्ति को उपसंहार बना कर सर्वत्र शून्यता विराजमान थी। वृक्ष, पत्र, लता, गुल्म आदि 'सन् सन्' की ध्वनि करते हुए, वर्णन से परे थे। पी. एस. वेंगु अय्यर के अन्तराकाश के अज्ञात-सुदूर से प्रतिध्वनि होती थी – 'जा! जा!! जा!!! अविलम्ब ही लौट जा!!!'

वह उठा। मूर्ति को अनन्य भक्ति से प्रणाम कर बहिराज्ञात में अदृश्य हो गया। शिवालय पूर्ववत् शून्यता का बाना पहने, शून्य हो गया। केवल सन् सन्... !!!

चन्द्रमा सुदूर नभ से क्रीड़ा विस्मृत कर, इस अरण्य घटना को देखता था। तारे टिमटिमाते कोरों में आश्चर्य प्रदर्शन करते थे। पूर्वाकाश में एक मेघ ने थोड़ा सिर ऊपर उठा कर, उनके आश्चर्य का कारण जान लिया और वह भी चन्द्रमा के पास ही आ कर लीला देखने लगा।

सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो गया।

*　　*　　*

उपरान्त...

कहना नहीं होगा, पाठक! निमित्त मात्र वह नवयुवक पी. एस. वेंगु अय्यर लौट कर, लक्ष्मी-सदृशा, सकल-गुण-सम्पन्ना, सुन्दराचार-विभूषिता, सती पार्वती को अर्द्धांगिंनी रूप में ग्रहण कर एक ऐसे महान्-शुभ-लक्षण-युक्त पुत्र के अवतरण का कारण हुआ; जिसकी द्वितीय वर्ष गाँठ के अवसर पर कुण्डली रचयिता ज्योतिष शास्त्र प्रवीणों ने सर्वसम्मत हो उसे परब्रह्म का षोडश-कला-युक्त-पूर्णावतरण स्वीकार किया। साथ-साथ यह भी बतलाया कि इसने संसार के अणु-परमाणु से भी दु:खों की निवृत्ति कर देनी है। इसने अखिल का पूर्ण भार मिटाना है। और...।

आज एतद्कारणवश वही पी. एस. वेंगु अय्यर उसी शिव मन्दिर में गया है, जहाँ उसे आज से बाईस वर्ष पूर्व अतीत की अनुभूति में वर प्राप्त हुआ था। वह विनय पदावली के अन्तिम भाग को कह रहा था...।

'... विभो! मैं जान गया। वह आप ही शाश्वत पुरुष हैं। मैं कृतज्ञ हूँ, भक्त वत्सल नाथ। जो आपने सगुण द्वारा आवरणित होने की लीला खेलकर, केवल मुझको ही नहीं, वरन् समस्त ब्रह्माण्ड को कृत कृत्य किया...।'

सहसा एक प्रकाश विकीरित हो गया। एक अज्ञात-मधुर संगीत किसी अज्ञात-प्रदेश के पराज्ञात-सुदूर से प्रस्फुटित हो किसी अज्ञात में विलय हो गया।

श्री वेंगु अय्यर बैठे थे अनेक पूर्व कल्पनाओं के वीचि हिलोर में। उनके युग्म-कर बद्ध थे। नेत्रों से नीर प्रवाहित था। उन्हें पूर्व-स्मृति-दृश्य लक्षित हो रहे थे, जो उन्होंने आज से बाईस वर्ष पूर्व अतीत की अनुभूति में अनुभव किये थे।

यह हुई 'अतीत की अनुभूति में' नामक प्रथम कला समाप्त॥

द्वितीय कला

स्वरूप का समावेश

समावेश होता है जब,
व्याकुल संसृति हँसती है तब;
चिर हत वैभव पाऊँगी अब –
युग युग का पोषित मानव, आह्लादित हो जाता तब।
समावेश होता है जब।।

Lo! The Glorious Advent taketh place;
Now sorrowing earth all laughter raining,
Long lost-grandeur in triumph regaining.
Cradled and nourished by brooding Ages,
Mankind in ecstasy sings the paean of praises.
Lo! The Glorious Advent taketh place.

ऊषा की मधुरिमा से क्षितिज का आञ्चल सुशोभित होता जाता है। नीलाकाश में नक्षत्रों की निराशाजनक टिमटिमाहट से ऐसा प्रतीत होता है; मानो मानव के संस्कार माया-रूप-अन्धकार में जगमगाते हों और पूर्ण रूप से उसके मन मन्दिर में निराशा पूर्ण झलक दिखाते हों। परन्तु मानव अतृप्त ही रहता है। पुनः ज्ञान-प्रत्यूष की मधुरिमा का अनवरतागमन देख कर वे निराशा रूप तीव्र संस्कार विलीयमान पथावरोहण करते हैं। संसृति की मदालसा नेत्र रूप नर्तकियाँ जागरूकता के भवन में पदार्पण करती हुईं, आशा और निराशा, प्रेम तथा घृणा, प्रतिकूल एवं अनुकूल विषय वातावरण का संचार करती हैं।

यह प्रकृति का नित्य श्रृंगार है। इसमें आश्चर्य का लवलेशमात्र भी नहीं। परन्तु वास्तव में आज कुछ नवीन स्वप्नों की जागृति अतीत से भिन्न होती सी अनुभव मात्र में ज्ञात पड़ती है। कुछ ऐसे शुभ लक्षणों की क्रियाओं का स्पष्टीकरण, अनुभव का माध्यम ज्ञात होता है; जिससे यह सिद्ध होता है कि आज का प्रातःकाल, प्रकृति का न तो नित्य का ही श्रृंगार है और न ही नैमित्तिक ही। यह प्रातःकाल नवीन स्वप्नों की जागृति के अतीत से प्रसवित

न होते हुए भी एक चिरकालीन महत्ता, सभ्यता तथा संस्कृति-रत्न-विभूषित भारतवर्ष को नवीन रूप में आने का सन्देश सा देता है मूक भाषा में। परन्तु हाय! भारत की क्षत विक्षत अतीत महत्ते, तू इस मूक संकेत को नहीं समझ सकती है। ओ अज्ञान निशा की भ्रान्त बाले, तू सोई है। तेरे को ज्ञात नहीं, आज का प्रात:काल पत्तमडै ग्राम को धन्य भाग्य करने आया है। केवल यहीं नहीं, समस्त तिरुनेल्वेली की जनसंख्या आज अज्ञात जागृति के स्फुरण मात्र का अप्रत्यक्ष अनुभव कर रही है। आज आरोहणमुखी भरणी नक्षत्र एक मृदु पुरातन स्मृति का पुन: अनुभव करता है। वह इस विषय का साक्षी है कि आठवें सितम्बर सन् अट्ठारह सौ सत्तासी, बृहस्पतिवार का प्रात:काल केवल तिरुनेल्वेली जिले के अन्तर्गत पत्तमडै ग्राम को ही धन्य नहीं करता; वरन् संसृति को जागरूकता, चैतन्य तथा नव स्फूर्ति देता है। यह तुझको अतीत के गर्भ से उत्थान पथ की ओर ले जाता है। ओ अज्ञान मदिरा प्रेरित सुकुमारे! तेरा वह अतीत यौवन पुन: तेरी ओर आता है। तेरा वह अतीत वैभव इस मृदुल प्रात:काल में निर्गुण को समाविष्ट कर चुका है।

वह देख, सामने के गृह में कुछ कोलाहल सा हो रहा है। वह हर्ष के चिह्नों से ओत-प्रोत ज्ञात होता है। वह कोलाहलमात्र नहीं; वह जागरूकता की ध्वनि है। अच्छा देखो। दो दक्षिणी पण्डित इधर आ रहे हैं। उनकी वेशभूषा साधारण होते हुए भी, वे अत्यन्त गम्भीर विचार के जान पड़ते हैं। उनके मुख मण्डल में पाण्डित्य झलक रहा है। उनके गमन से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि वे किसी शुभ समाचार का प्रकाशन करने जा रहे हैं। यह लो, वे निकट ही आ गये। सुनो, वे क्या कहते हैं।

अच्छा हम आपको प्रथमत: इन महानुभावों का परिचय दे दें। देखो वे महाशय, जो अत्यन्त सुडौल शरीर के हैं; जिनके दक्षिण गण्डस्थल पर एक कृष्ण वर्ण तिल है, एट्टायपुरम् एस्टेट के तहसीलदार श्रीमान् पी. एस. वेंगु अय्यर हैं। वे साधारण व्यक्ति नहीं, स्वयं महाराजा एट्टायपुरम् तथा नागरिक लोग आपकी पवित्रता तथा भक्ति से प्रसन्न हैं। आपको शिव का वरदान है। दूसरे महाशय जो चश्मा धारण किये हुए हैं, वे संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् तथा उपरोक्त महानुभाव के कनिष्ठ भ्राता, श्री अप्पय शिवम् हैं।

'लो भाई,' श्री अप्पय शिवम् बोले, 'आपकी तो एक महती अभिलाषा पूर्ण हो गयी। भाभी की तो चिन्ता ही शान्त हो गयी।'

‘ठीक कहते हो तुम; मेरे उल्लास का आज अन्त नहीं। मेरी तो पूर्व आकांक्षा आज पूर्ण दिखलायी पड़ती है।’ कह कर वेंगु अय्यर चुप हो गये। उनकी भाव भंगी से ज्ञात होता था, मानो वे किसी गहरे विचार में लीन हो गये हों।

सहसा गम्भीरता को भंग करते हुए छोटे भाई ने कहा, ‘केवल आपकी ही आकांक्षाएँ पूर्ण होती नहीं जान पड़ती हैं। मुझे तो स्पष्ट अनुभव होता है कि इस बालक का जन्म समस्त संसार की अभिलाषाओं की तृप्ति के लिये हुआ है।’

‘कोई सन्देह नहीं भाई!’ वेंगु अय्यर किसी स्मृति में गोते लगाने लगे। सहसा एक गाय दौड़ती हुई, दक्षिण भाग से निकल गयी। पूर्वाकाश में दिवसेश-रश्मिशेखर ने जिन-दल-बल-सहित स्व पदार्पण किया। उनकी प्रथम रश्मि ने, इन महानुभावों के नयनों का स्पर्श किया। वे सहसा ही बोल उठे ‘यह अवतार है, इसमें कोई सन्देह नहीं।’

इतने ही में वे एक महती अट्टालिका के निकट आ गये। उसके निकट ताम्रपर्णी का मृदुल आलाप उसके वातावरण को नयनाभिराम बना रहा था। वेंगु अय्यर ने दरवाजा खटखटाया। किंचिद् समयोपरान्त, एक प्रौढ़ा ने आ कर द्वार खोला।

‘पण्डित जी अभी उठे नहीं हैं क्या?’ बड़े भाई ने पूछा।

‘उठ तो गये हैं, स्नान भी कर लिया; पूजा में बैठे हैं। क्यों, क्या शुभ समाचार तो नहीं हैं?’ उत्कण्ठित हो वह प्रौढ़ा बोली।

‘हाँ पुत्र हुआ है।’

‘बस, बस!’ प्रौढ़ा बोली, ‘अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। आइए, अन्दर आइए। वे पूजा समाप्त कर चुके होंगे।’

प्रौढ़ा उनको ले कर अन्दर चली गयी। दो हर्षित स्वरूप इस स्थिर सुख को नित्य सुख भ्रम कर अन्दर चले गए। परन्तु...

मानव! तेरी आकांक्षाओं का कहीं अन्त भी है क्या? ये आकांक्षाएँ तेरे पुनर्जन्म का कारण हैं। ये ही तेरे प्रारब्ध की निर्माता हैं, तेरे संस्कारों का मूल हैं। यदि तुझे ज्ञात हो कि यह बालक, जो आज जन्मा है, वह तेरी वर्तमान नश्वर इच्छाओं की पूर्ति से परे होगा, तो तेरी यह आशा निराशा में लय हो जायेगी एवं तुझे याद आ जायेंगे, मधुर स्वप्न अतीत की अनुभूति में। परन्तु तू माया के कारण अतीत की अनुभूति के माध्यम को विस्मृत

कर चुका है। अतः निश्चय है, तेरा हर्ष, तेरा उल्लास, तेरी प्रसन्नता, तेरा आह्लाद, कहाँ तक कहें सब विषाद की अतल सीमा में सीमित हो जायेगा। परन्तु यदि तू आगे वास्तविक ज्ञान की चेष्टा करे और अपनी भूत घटना को विस्मृत न करे, तो सम्भव हो, तुझे ज्ञान हो जाये, शान्ति हो जाये, तृप्ति हो जाये। परन्तु तू अज्ञान विजड़ित हो गया है, सच्चे सुख को दबा बैठा है और शून्य को स्वरूप प्रदान कर बैठा है, स्वरूप को निर्गुण रूप में कल्पना कर चुका है, निर्गुण रूप की भी तो कल्पना करता है। सगुण में भला कैसे प्राप्त होगी अलौकिक शान्ति? कैसे मिलेगा वास्तविक सुख? कैसे अनुभव होगा – स्वर्गीय तृप्ति का? मृग-तृष्णा में भ्रमित तेरे को कहीं शान्ति नहीं; सब तेरे लिए ऐश्वर्य की वस्तु हैं। सांसारिकता तेरे लिए सुख की सीमा है। मृग-मरीचिका तेरे जीवन का लक्ष्य है। भ्रान्ति तेरे लिए ज्ञान है। अज्ञान तेरे लिए अनुभव है। प्रतिबन्ध रूपी आशाएँ तेरे पथ की निर्देशिका पत्रिकाएँ हैं। बता कैसे मिलेगी तुझको शान्ति? कैसे प्राप्त होगी तृप्ति? जब कि तू अनन्त स्वप्नों के झिलमिल करते हुए मोह में भ्रमित रहेगा, अज्ञान की प्रौढ़ता में प्रविष्ट होगा। मदमाती हुई, अस्थि पंजर मात्र, रक्त से सिंचित देह में तेरी इतनी आसक्ति, तेरे स्वरूप को बन्धन में डाले है।

जाग जा! अज्ञान तिमिर में उन्मादित मानवता के पाहुन!! क्षणिक नेत्र खोल!!! देख तो, वह 'स्वरूप का समावेश' हो चुका है।

यह हुई 'स्वरूप का समावेश' नामक द्वितीय कला समाप्त॥



तृतीय कला

शिक्षा के पथ पर

निज-पद-सत्वर रखते, कभी सिहर कर चलते।
आते हैं वे शिक्षा के पथ पर॥

Quick and nimble they set foot,
Stepping along with infinite care,
Thus they pass on the ancient route,
That leads from here over to there.

सायंकाल की विलीयमान प्रकृति की आभा से समस्त जगत् ने सुन्दर-सा आवरण-परिधान कर लिया है। पश्चिमाकाश में दिनकर की प्रखर रश्मियाँ अपने परिश्रम के फलस्वरूप, विश्रामार्थ, पश्चिमोदधि में गिर रही हैं। एट्टायपुरम् एस्टेट के विद्यालय में अत्यन्त कलरव हो रहा है। चलिए पाठक, जा कर एक बार विद्यालय के अन्दर के रहस्य में तो पहुँचा जाये।

देखिए, पाठक! सामने हॉल के बाहर आंग्ल भाषा में लिखा है 'दि राजाज़ हाई स्कूल' (The Raja's High School) और अन्दर बड़े हॉल में सब स्कूल के विद्यार्थी एकत्र हो रहे हैं। एक ओर शिक्षक लोग बैठे हैं। सबके हृदय में उत्कण्ठा का समावेश जान पड़ता है। सहसा एक हलचल के साथ सारे उपस्थित छात्र-गण मौन हो गये। सबने एक नेत्रों से देखा कि प्रधानाध्यापक महोदय स्थिर गति से उस हॉल में प्रवेश कर रहे हैं। उनके पीछे एक किशोर मूर्ति है। उसका शरीर सुदृढ़ एवं सुडौल है। उसके ललाट से एक महत्त्वपूर्ण तेज का प्रदर्शन होता है। उसकी मुखाभा प्रत्यक्ष संकेत करती है कि यह एक महापुरुष का लक्षण रखता है। उसके नेत्रों से सहृदयता टपकती थी। उससे स्पष्ट ज्ञात होता था कि इसके नेत्र किसी करुण दृश्य को देखने से द्रवित हो जाते होंगे। वह षोडश वर्षीय सुकुमार अत्यन्त ही देखने योग्य तथा एक मानव लेखक की लेखनी की सीमा की असीमता पर था।

क्रमशः सब छात्र उठे और पश्चात् बैठ गये। प्रधानाध्यापक महोदय ने विराजमान हो कर, अपने चतुर्दिक् एक बार देखा और एक सन्तोष की श्वास छोड़ कर मंच पर खड़े हो गये। समस्त छात्रगण एक अनुभूति की दृष्टि से देखने लगे, कि किन शब्दों में विषय का स्पष्टीकरण होता है।

'आदरणीय शिक्षक वृन्द, प्रिय विद्यार्थी समुदाय!' एक उच्च तथा मधुर ध्वनि मंच से उठती हुई, क्रमशः शून्य में विलीन हो गयी, 'आज के सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य आप लोग जानते हैं कि वर्तमान वर्ष दशम श्रेणी की परीक्षा में यह विद्यार्थी,' पूर्वोक्त किशोर मूर्ति को इंगित करते हुए कहा, 'प्रथम श्रेणी में मद्रास विश्वविद्यालय से घोषित किया गया है। आप लोग जानते हैं कि गत आठ वर्षों से यही होनहार विद्यार्थी, अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय, आप लोगों को देते आ रहा है। यह हमारे लिए गर्व का विषय है, तथा साथ-साथ हर्ष का भी, कि आपका सहपाठी अत्युत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया है। परन्तु शोक इस बात का है कि अब हमारे विद्यालय को एक प्रतिभाशाली योग्य विद्यार्थी को विदाई देनी होगी। अब आपका सहपाठी, त्रिचन्नापल्ली के महाविद्यालय को प्रकाशित करेगा। हम लोगों को आन्तरिक हृदय से प्रेम प्रकट करते हुए, इन्हें विदाई देनी चाहिए।'

समस्त उपस्थितों में सन्नाटा छा गया। प्रधानाध्यापक बैठ गये। सहसा एक ओर से, एक वृद्ध शिक्षक महोदय ने उठ कर कहा – 'मैं उस सफल विद्यार्थी के मुख से, व्याख्यान के कुछ शब्द सुनना चाहता हूँ।'

एक मृदु हलचल के साथ सबने इसका समर्थन किया। पुनः उठते हुए प्रधानाध्यापक महोदय ने कहा, 'श्री कृष्ण स्वामी, एम.एस.सी. के अनुरोध स्वीकारार्थ वह होनहार विद्यार्थी खड़ा हो जाये।'

आश्चर्य! वास्तव में आश्चर्य!! वही तेजस्वी सुकुमार, जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं, स्थिर गति से मंच की ओर बढ़ा। उसके मुख मण्डल पर मुस्कान रूपिणी सौदामिनी का उदय हो चुका था। उसके प्रत्येक पग में उल्लास, स्थिरता, सन्तोष, समानता, विनयशीलता इत्यादिक गुणों का समदर्शन होता था। उस समय साक्षात् आभास होता था कि निशिकर अपनी मनोहर आभा लिये हुए, समस्त नक्षत्रों को ज्योति प्रदान कर, नीलांगन को शुचि कर रहे हैं, अथवा एक दैवी मूर्ति मानव वेश में आ कर, उस स्थान को पवित्र बना रही हो, अथवा ऐसा भी हो सकता है कि बालारुण महाराज अपनी मृदुल-रश्मियों से संसृति को उपहार दे रहे हों।

'ॐ...!'

हॉल की सीमा को बेधते हुए, एक मेघ गर्जन हो गया। सबके कर्णों में मानो वीणा का स्वर श्रुतिगत होता था। प्रकृति भी सहसा सोचने लगी, 'क्या वीणापाणि तो नहीं आ रही हैं? शिव भक्तों ने सुना कि महादेव जी का डमरू गरज रहा है। अनेक कल्पनाओं के मध्य में पुनः...

'ॐ...!'

समस्त छात्र मण्डली में अदृश्य स्फूर्ति का संचार हुआ। वे स्वयं को विस्मृति के अतल निलय में विलय देखने लगे! उन्हें वर्तमान वातावरण ॐमय ज्ञात होता था। वह 'ॐ' उन्हें उसी 'ॐ' से प्रस्फुटित जान पड़ता था। पुनः तीसरी बार...

'ॐ...!'

सर्वत्र निस्सीम शून्यता छा गयी। वास्तव में उस 'ॐ' की मृदुल ध्वनि ने उस स्थान के अस्तित्व को निरर्थक सिद्ध कर दिया। कुछ सोचने अथवा विचारने के क्रम का अन्तर्भूत हो गया। प्रणेता भी उस 'ॐ' में विलीयमान, दिवसेश की समता करने लगा।

'परम पूजनीय श्रीमान् प्रधानाध्यापक महोदय, माननीय गुरुवर्ग तथा बन्धु गण! सेवक की धृष्टता क्षमा हो कि वह एक अनुचित कार्य को खड़ा हुआ है, जो आप सदृश प्रखर-ज्ञानवानों के सामने उचित नहीं है।'

कुछ देर तक सन्नाटा रहा; पुनः गम्भीर-नाद सबके कर्णगत हुआ।

'मेरे सहपाठियों! आज का विशेष आह्वान आपको है। आपको इसे श्रवण करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करना होगा; क्योंकि आप मातृभूमि की भावी आशा हो। आप कल के बनने वाले नागरिक हो। आपको सदा जीवन के लक्ष्य पर विचार करना चाहिए और उसे प्राप्त करने के लिए, अपने जीवन में सुधारों की नींव डालनी चाहिए। उसके सुधार के लिए आपको सुनियमित नैतिक जीवन बनाना होगा। क्योंकि नैतिक बल आध्यात्मिकोन्नति का पृष्ठ वंश है।'

'चारित्र्य गठन आध्यात्मिक साधना का एक मुख्य अंग है। आपका सारा जीवन और जीवन का साफल्य, आपके चारित्र्य गठन पर निर्भर है। संसार के महान् पुरुषों ने केवल चारित्र्य बल से महत्त्व प्राप्त किया है। संसार की देदीप्यमान उज्ज्वलात्माओं ने यश, ख्याति और सम्मान केवल चारित्र्य बल पर ही प्राप्त किया है।'

'ब्रह्मचर्य का पालन करो। मैं आपसे कहता हूँ कि निस्सन्देह ब्रह्मचर्य एक अमूल्य रत्न है। वह महान् अमृत है, जो समस्त तापों तथा मृत्यु का निवारण करता है। शान्ति, कान्ति, स्मृति, विद्या और ईश्वर-पद प्राप्त करने के लिए, आपको ब्रह्मचर्य व्रत पर अटल रहना चाहिए। यही सर्वोच्च धर्म है, यही सर्वोच्च ज्ञान है, यही सर्वोच्च बल है।'

'मेरे प्यारे बन्धुओं, देश की आशा और यश के स्वरूप! अपने मदमाते नयनों को खोलो। अब जाग जाओ। अब जाग जाओ। चतुर बनो। कुसंग से बचो। स्त्रियों से विनोद परिहास मत करो। यह आपके वीर्य्य में क्षीणता का विकार उत्पन्न करेगा। वीर्य्य की क्षीणता मृत्यु के समान है। वीर्य्य की क्षति होने से रोग, क्लेश और अकाल मृत्यु अनिवार्य है। शुद्ध दृष्टि का अभ्यास डालो।'

'हर अवस्था में सत्य बोलो। किसी भी जीव को मन, वचन तथा कर्म से दु:ख मत पहुँचाओ। अपने अध्याय को याद करो। माता, पिता तथा बड़ों की आज्ञा का पालन करो। अपने चारित्र्य और व्यवहार में आदर्श बनो। अपने विद्यालय के पाठ को नियमानुसार याद करो और गुरुजनों से विनययुक्त व्यवहार करो। अपने सहपाठियों से प्रेम भाव रखो। आपस में वैमनस्य भाव रखना योग्यता का लक्षण नहीं। नियमपूर्वक प्रात:काल चार बजे उठो। सोने के पूर्व और निद्रा-त्याग के अवसर पर परमात्मा का नाम स्मरण करो। प्रात: चार से छह बजे तक, भगवन्नाम का उच्चारण करो और श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करो। भगवन्नामोच्चारण से आपको असीम लाभ होगा। आपकी बुद्धि में प्रखरालोकाभास होगा और ज्योति, आनन्द, शान्ति तथा प्रसन्नता की प्राप्ति होगी। जागो! उठो!! अपने को पवित्र बनाओ।'

'वेदों और मन्त्रों की शक्ति पर विश्वास करो। नित्यप्रति ध्यान और अभ्यास करो। सात्विक भोजन करो। अपनी भूल पर पश्चात्ताप करो। कुविचारों, दोषों और दुर्बलताओं के साथ संघर्ष मत करो, वरंच उच्च और दिव्य विचार बनाओ। सब से प्रेम करो।'भगवान् की कृपा से आप सब ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा, सदा सत्य भाषण के द्वारा, अपने गुरुजनों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए, महत्त्वपूर्ण सिद्धि प्राप्त करें। आप सब सर्वदा भगवान् के पावन नामों को स्मरण करते हुए, दिव्य तेज प्रकाश उदित गति गत होवें। ज्योति स्वरूप परमात्मा आपकी बुद्धि को सन्मार्ग दिखलाये। दिव्य शक्ति और शान्ति आप में सदैव निवास करें।'

‘ॐ...!ॐ...!!ॐ...!!!’

समस्त हॉल में एक गम्भीर-सन्नाटा छा गया। सब समाधिस्थ से हो गये। किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकला। निकलता कैसे, जब कि एक दिव्य स्वरूप के उद्‌गार प्रवाहित हो समस्त स्थान को स्वयं में सीमित कर रहे हों।

दूसरे दिन उस विद्यार्थी ने प्रात:काल की ट्रेन से एट्टायपुरम् को अपनी स्मृति के साथ छोड़ दिया। एट्टायपुरम् का एक दिव्य सुकुमार, केवल अपने आदर्श को छोड़ चला गया – तिरुच्चिनापल्लि के एस.पी.जी. कॉलेज को अलंकृत करने के लिए। एट्टायपुरम् के विद्यार्थी, शिक्षक, प्रधानाध्यापक, नागरिक तथा स्त्री-पुरुष उस आदर्श विद्यार्थी के सुकुमार सौन्दर्य को ध्यान कर रोने लगे।

आज भी एट्टायपुरम् में जायें तो कई वृद्ध पुरुष जो उस समय में जीवित रहे थे, आपको उस दिन का पूर्ण वृत्तान्त करुण वाणी में प्रकाशित करेंगे जिस दिन उस आदर्श विद्यार्थी ने शिक्षा के पथ पर आरोहण किया था। वे आपको वह अतीत इतिहास सुनायेंगे, जिस दिन वह योग्य विद्यार्थी एट्टायपुरम् को त्याग कर तिरुच्चिनापल्लि के एस.पी.जी. कॉलेज में जा कर, शिक्षा के पथ पर आरूढ़ हुआ था।

यह हुई ‘शिक्षा के पथ पर’ नामक तृतीय कला समाप्त॥



शिक्षा जीवन रूपी वृक्ष की जड़ है, संस्कृति फूल और विवेक उसका फल। शिक्षा का उद्‌देश्य मनुष्य को उच्चतर संस्कारों और संस्कृति से सम्पन्न बनाना है। सच्चा मनुष्य बनने की शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है। इसका लक्ष्य छात्र की बौद्धिक प्रखरता को उभारना और उसे धर्मनिष्ठ, निष्कपट, निर्भीक तथा आत्म-संयत बनाना है। शिक्षा को मानव-निर्माण एवं चरित्र-निर्माण का ऐसा माध्यम होना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों के जीवन के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं का सम्पूर्ण विकास हो सके।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

चतुर्थ कला

उन्नति के पथ पर

ओ, आद्यन्त विहीन पथ के राही! अब भी आजा सँभल-सँभल कर।
ओ, चिर-मायाविष्ट-नश्वर प्राणी! निजपद रख तो उन्नति पथ पर॥

O Wayfarer one, on track that knows not
begining nor end;
Now draw Thou nigh with infinite care
O Evanescent Creature, long shrouded in the
dark delusion's fold,
Set thou thy foot upon perfection's upward Path.

ओ आत्माराम! यह भ्रम कैसा?

रात्रि के गहनान्धकार में, एक पथिक क्षुधा तथा तृषा-युगल कष्टाक्रान्त, अत्यन्त-परिश्रान्त एवं व्याकुल, सुदूर एक मन्द प्रकाश की रेखा को प्रकटीभूत लक्ष्य कर, उस पथ पर अग्रसर होता है और कल्पना करता है – 'उधर एक भवन होगा, जलाशय होगा, मैं वहाँ जाकर विश्राम करूँगा' इत्यादि इत्यादि सोचते हुए, वह प्रारब्ध भुंजीयमान् मानव प्राणी वहाँ पर पहुँचता है, एक आशा तथा उत्साह के साथ। परन्तु सब आशा शून्य में विलीन हो जाती है, नैराश्य के सागर में सीमित हो जाती है, एक श्मशान का दृश्य दृष्टिगत कर, एक करुण तथा हृदय विदारक दृश्य देख कर सारी कल्पना, अट्टालिका तथा विश्राम का स्वप्न स्वप्नवत् ही हो जाती है उसी में, जो उसने देखा! यह तो मानव की आशा के पूर्णत्व की सीमा है।

मनुष्य जो कुछ विचार करता है, वह सब उसके विरुद्ध ही प्रतिफलदायक होते हैं। वह सोचता कुछ है और होता कुछ और। बलि ने स्वर्गाधिकार की चेष्टा की थी, उसका पृथ्वी में भी अधिकार न रहने पाया। रावण ने सीता हरण कर, कुछ और ही सोचा था। परन्तु वह किस स्थिति को प्राप्त हुआ, सर्व प्रसिद्ध है। दशरथ ने रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक कर सुख से जीवन बिताने का यत्न किया था; परन्तु ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटी कि वे इस नश्वर शरीर को त्याग कर, चल ही दिये। परन्तु यही बात नहीं, कि आपको

शत-प्रतिशत इसके उदाहरण मिलते हुए, ऐसा होता ही हो। नहीं – कोई महापुरुष इस धरा के गर्भ में चैतन्य को सगुणाविष्ट कर, कारणों से सर्वथा भिन्न रहता है। वह न तो इच्छा ही करता है; और न उसके पूर्ण होने में विलम्ब ही होता।

इन्हीं में से वह विद्यार्थी ऐसा ही महान् था, जो सर्वदा सांसारिक कार्यों से बाह्य-रूपेणाच्छादित दृष्टिगोचर भी, आन्तरिक रूप से सर्वथा भिन्न था, और महान्। उसका जीवन केवल अवलोकन के योग्य ही नही, वरंच अनुसरण के योग्य भी है। वह अवतारांश नहीं, वरन् स्वयं चैतन्य था...।

(प्रथम)

'पिछले दो वर्षों से उस विद्यार्थी के प्रारब्ध का अवलोकन करता आ रहा हूँ। देखता हूँ, सफलता उसकी सखी सी है। कॉलेज के अध्यापक गण, यहाँ तक प्रधानाध्यापक श्री एच.पैकनहम वाल्श (Rev. H. Pachenham Walsh) तक उसकी प्रखर प्रतिभा पर मुग्ध हैं।' सुन्दरेशन् सोचता था।

'... उस दिन कॉलेज में जब नाटक खेला गया था, तो उस दिव्य स्वरूप ने एथेन्स की हेलेना (Helena of Athens) का अभिनय कर, कितना मर्मस्पर्शी संगीत गाया था। उसने तो मध्य ग्रीष्म निशा के स्वप्न (Mid Summer Night's Dream) नाटक की शोभा बढ़ा दी। और सचमुच ही में तो प्रधानाध्यापक महोदय ने व्याख्यान में कहा था, 'हमें 1903 का वह शुभ दिन सर्वदा स्मरण रहेगा, जिस दिन इस होनहार बालक ने इस कॉलेज में पदार्पण किया। धन्य है वह बालक जो आदर्श है, प्रतिभाशाली है, सफल है! सफल है वह विद्यार्थी जो नम्र है, विनीत है, महान् है!! महान् है वह विद्यार्थी जो इस होनहार विद्यार्थी के समान है, सत्य ही तो कहा था...।'

(द्वितीय)

सान्ध्य अरुणिमा ने दिशाओं को नवीनाम्बरावृत कर दिया था। नगर का नर-नारी समाज अपने-अपने कार्यों से विरत हो कर घरों को लौट रहा था। उसी समय रंगास्वामी अय्यर नामक विद्यार्थी ने सोचा कि चलो इसी रास्ते से तो जाना ही है, क्यों न सुन्दरेशन् से मिलता चलूँ। जरा उस होनहार विद्यार्थी के विषय में कुछ बातें करेंगे। ऐसा सोच कर वह सामने वाले मकान के दुमंजिले वाले कमरे पर पहुँच गया और दरवाजा खोल कर प्रविष्ट हुआ।

... सहसा विचार-धारा रुक गयी। कल्पनाओं और समालोचनाओं में अवरोहण गति का सहसाऽऽह्वान हो गया। कुरसी से उठते हुए सुन्दरेशन् ने कहा – 'अहो, इस कुसमय में यह मूर्ति कैसे आ गयी?'

'आपने तो दीपक भी नहीं जलाया। पता नहीं, किस विचार सागर में गोते लगा रहे हो? क्या उस विद्यार्थी के विषय में तो नहीं सोच रहे हो?'

'वास्तव में...' दियासलाई से लैम्प जलाते हुए सुन्दरेशन् ने कहा, 'बात यही थी। मुझे आश्चर्य है कि कितना प्रतिभाशाली है वह। देखो, जो कोई भी बोलता है उसकी बुद्धि की प्रगल्भता पर। इतने सहस्र विद्यार्थियों में यही विद्यार्थी धन्य है। आओ, इस कुरसी पर बैठ जाओ।'

दोनों मित्र बैठ गये। सुन्दरेशन् ने एक बैग से मूँगफली निकाल कर, मेज पर रख दी। दोनों मित्र खाने लगे।

'और भी देखो!' सुन्दरेशन् बोला, 'इस वर्ष मदुरा में, तमिल संघ द्वारा जो तमिल परीक्षा हुई थी, उसमें यही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।'

'अजी बस, तुम तो केवल इतना ही जानो। मैं सुनाऊँ तुम्हें एक दिन की घटना। वह बाजार में जा रहा था। उसको एक अन्धी वृद्धा दिखायी दी। उसका हृदय द्रवित हो गया। वह उसको बुला कर घर लाया; उसे भोजन दिया और साथ-साथ एक सौ रुपये भी। तुम्हीं बताओ, कौन होगा इससे और महान्!'

'दिन-प्रतिदिन उसका यश-कुमुद प्रखर-प्रतिभा रूप कौमुदी के प्रकाश से विस्तृत होता जा रहा है और यह भी सुनने में आया है कि वह मेडिकल लाइन में पदार्पण करेगा।' एकाएक दरवाजे की ओर देख कर, उठते हुए कहा, 'कहिए, रामरतन जी आप भी आ गये?'

... सहसा द्वार खोलते हुए, एक युवक विद्यार्थी ने प्रवेश करते हुए कहा, 'केवल यही नहीं, वह भी प्रतिदिन उन्नति पथ पर आरोहण कर रहा है ...'

यह हुई 'उन्नति पथ पर' नामक चतुर्थ कला समाप्त॥



पंचम कला

सुदूर से आहवान

ओ भीम-प्रकम्पन के चिर-नायक!
वह होता आह्वान उधर से, तव-स्वागत का परिचायक,
अखिला खोजे बिलख-बिलख कर, तुझ को हे अज्ञात-विधायक!
ओ भीम-प्रकम्पन के चिर-नायक!

O Thou Ancient Actor!
Awesome Hero of the Transcendent Play!!
There sounds the call from the dim distance far,
The revealing note of Mankind's welcoming lay,
Tearful earth, sobbing yet searches for Thee,
O Thou that art fast concealed in the great
unknowability!!
O Thou Ancient Hero of Life's Awesome Play!!!

'होनहार बीरवान के होत चिकने पात' कहावत चरितार्थ हुई। वह होनहार विद्यार्थी मलाया के सुदूर प्रान्त में, स्वप्न की कल्पनाओं की नाईं चल दिया। 14 सितम्बर, 1913 को तिरुनेल्वेली के प्यारे बालक ने एक अज्ञात देश की यात्रा की। उसका जाना आवश्यकता से खाली नहीं था। संसार के कल्याण के लिए उसने सगुणाविष्ट हो, दृश्य दिखलाना था। उसने सहस्त्रों दीन-दु:खियों के करुणाश्रुओं से परिसिंचित मलाया की अपार जनता के आँसू पोंछने थे। उसने जीवन के अनुभव में प्रवेश करना था। माता-पिता की सुखदायी छत्रच्छाया से हीन, उस होनहार प्राणी ने संसृति की आँखों में शान्ति भरनी थी। उसने अनाथों को छत्रच्छाया में करना था। उसने रोते हुओं को हँसाना था, उनके आँसू पोंछने थे; सोते हुओं के द्वार खटखटाने थे, उन्हें प्रकाश दिखाना था। पथभ्रष्टों को मार्ग बताना था और उसने असार असत्य मानव भूमि की मानवता के कर्ण कुहरों में अपना मधुर संगीत अलापना था–'अरे अभिभावकों के पास से सुदूर में वास करने वालों! पर्वत के समान अटल रहो। कोई वातावरण तुम्हें प्रवाहित नहीं कर सकता है। सांसारिक

अनुभवों से भागो। प्रभु के स्मरण में तल्लीन रहो। अपने हृदय कपाट को खुला छोड़ कर, वहाँ स्वमनोहारिणी वाणी रूप स्वागतम् को रखो। सबको अपने हृदय में स्थान दो।'

ऐसा होनहार बालक एक लीला रचने को 'नेमो सैम्बलिन' में डाक्टर-इन-चार्ज रूप में प्रविष्ट हुआ। सप्त वर्ष पर्यन्त इस पर सन्तोष कर, उपरान्त उसने जोहरु बाहरु की यात्रा की, जो सिंगापुर के निकट था। वहाँ वह तीन वर्ष रहा। डाक्टर पार्सन्स, ग्रीन, गार्लिक एवं ग्लैनी उसको अत्यन्त प्रीतिभाव से देखते थे। भला ऐसा महान् किस के द्वारा आदरणीय नहीं होता है? डाक्टर उसकी प्रतिभा को देख कर आश्चर्य करते थे, कितना पुरुषार्थी है यह डाक्टर?

सायंकाल का समय है। दिशाओं ने आज विशेष अन्धकार का आँचल ओढ़ा है। कारण आज कुछ जल की बूँदाबाँदी भी हो रही है। कोई भी बाहर जाने का नाम नहीं लेता। ऐसे ठण्ढ के समय में डाक्टर पार्सन्स अपने कमरे में बैठे हैं। अँगीठी में आग जल रही है। कभी-कभी आग कम हो जाने पर वे उसमें लकड़ी डाल देते हैं, बीच-बीच में कभी झुँझला से उठते हैं – कैसी ठण्ढ! कोई काम भी नहीं करने देती। सोचा था आज हेनरी अष्टम नाम की फिल्म देखनी चाहिए। पर यहाँ तो शीत के कारण बाहर जाने की इच्छा ही नहीं होती है।

डाक्टर सोचते-सोचते चिन्ता में मग्न हो गये। सिगार आधा मुख में रखा-रखा स्वाहा हो गया। सहसा एक धड़ाके के साथ द्वार खुला। देखा कि डाक्टर ग्रीन, डाक्टर गार्लिक तथा डाक्टर ग्लैनी महोदयों की मूर्तियाँ कमरे में आ गयी हैं।

'आइए, मित्रवर! बैठिए' कहते हुए डाक्टर पार्सन्स उठ गये। सिगार को अँगीठी में डाल, नये सिगार निकाल कर मित्रों को दिये। यथास्थान बैठने पर सहसा गार्लिक बोला, 'अजी, आज हेनरी अष्टम की फिल्म आयी है...!'

'ओजी,' बात काटते हुए ग्रीन बोला, 'कह दिया कि मेरे सामने सिनेमा का नाम मत लो। यदि देखने की इच्छा हो तो जा कर देख लेना।'

'क्रोध का विषय नहीं। भला सिनेमा से हानि क्या है। थोड़ा समय व्यतीत हो जायेगा।'

'समय!' भौं चढ़ाते ग्रीन बोला '... चलो बाइबिल न पढ़ लो। उससे क्या समय नहीं कटता है। जब देखो सिनेमा। देखा नहीं, उस दक्षिणी डाक्टर

को? कभी भी हमारे समान उद्देश्यहीन तथा अकर्मण्य नहीं रहता है। क्या वह समय नहीं व्यतीत करता है? तुम लोग तो सिनेमा में पैसा भी खर्च करोगे। साथ-साथ आँख तथा चरित्र की भी बलि दोगे।'

'और क्या,' ताने के तौर पर गार्लिक बोला, 'शहर के मैले-कुचैलों को धन दे कर हमने अपनी मर्यादा थोड़े घटानी है?'

'ओहो, तुम समझते हो कि वह डाक्टर जिस दया भाव से गरीबों की सेवा कर रहा है, वह सब निरर्थक है।'

'और तो मैं दो हफ्ते में हारमोनियम मास्टर को दो सौ डालर देने वाला थोड़े हूँ।'

'जभी उसके नाम को एम.आर.ए.एस.एम.आर.आई.पी.एच. (M.R.A.S.M.R.I.P.H.) से सुशोभित देखते हो।'

'मि. ग्रीन मेरा अपमान न करो। वरना...'

'वरना...'

'बस! बस!' पार्सन्स बोला, 'जिसके विषय में बात, कहाँ तुम तो मुठभेड़ पर तुल गये हो।'

'यही तो मानवता की दुर्बलता है' ग्लैनी ने उबासी भर कर कहा, 'श्रीमान् ग्रीन ने कोई असत्य नहीं कहा। वास्तव में उस डाक्टर सा अद्वितीय विद्वान्, संसार में कोई अनुसन्धान करने पर भी नहीं मिलेगा – और ऐसा दयालु, दीन सेवी तथा सत्यात्मा भक्त...' कुछ ठहर कर ग्लैनी फिर बोला, 'तुम लोग लड़ो नहीं, मैं डाक्टर के बँगले के निकट रहता हूँ। मैं उसके विषय में एकदम परिचित हूँ।'

'सुनो, तुम आश्चर्य करोगे कि रात्रि को कभी-कभी समस्त रात्रि तक डाक्टर के कमरे में प्रकाश रहता है। मुझे भी पहले बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु एक दिन, मैं साहस करके उसके कमरे के पास पहुँच गया और द्वार खोल कर अन्दर प्रविष्ट हुआ। देखा डाक्टर कुर्सी में बैठा कुछ लिख रहा है। कभी-कभी सोचता भी है। उसको मेरे आगमन का ज्ञान तक न हुआ। वह प्रशस्त-बुद्धि अपने कार्य में तल्लीन रहा।'

'सहसा उसकी कलम रुक गयी। वह सोचने लगा। वह मग्न हो गया। उसके नेत्रों से जल-प्रपात होने लगा। उसके शरीर में स्थिरता आ गयी; वह पूर्ण ध्यान-मग्न हो गया। कभी-कभी बीच में बड़बड़ाता था, *ॐ नमः शिवाय*।'

'श्रीमान् गार्लिक! मैं न रुक सका। मैं झपट कर गया। डाक्टर की बाहू को झकझोर बैठा। डाक्टर सहसा चौंक कर उठ गया! मेरे को देख वह *ॐ नम: शिवाय* बोल उठा। मैं निर्वाक् था। डाक्टर ने मेरे को कुरसी पर बैठाया। सामने के चर्च में रत्रि के साढ़े तीन बज चुके थे, पर डाक्टर को ज्ञान न हुआ। उसने मुझ से मेरे आगमन का कारण पूछा। मैंने कुछ न छिपा कर सत्य बता दिया। साथ-साथ मैंने पूछा, डाक्टर बताओ, इसमें क्या भेद है? मैंने उसके चरण पकड़ लिये।'

'हाँ तो,' एकदम उछल कर ग्रीन बोला, 'डाक्टर ने क्या उत्तर दिया?'

'शान्ति करो,' ग्लैनी बोला, 'तब डाक्टर ने कहा, मि. ग्लैनी जीवन असत्य है। *समस्त कल्पनामात्रमिदम्* – सब शून्य है फिर भी देखो, वह पाप है, यह पाप है, कहीं पुण्य नहीं। यह दीन है, वह दीन है; शान्ति कहीं नहीं। वकील से पूछो तो वह कहता है, बैरिस्टर सुखी है। बैरिस्टर से पूछो तो वह बोलता है कि जज सुखी है। जज से पूछने पर वह वायसराय को सुखी बताता है परन्तु कोई प्राणी संसार में नहीं, जो वास्तविक सुख को जान सके। न्यूयार्क की 75वीं मंजिल पर बैठ, स्वर्ण जटित थाली में भोजन कर, आधा फेंक देना ही क्या सुख है? अर्धपेट भोजन करते हुए बेचारे दीनों को सताना, क्या वास्तविक शान्ति दे सकता है? मि. ग्लैनी, धिक्कार है इन नर पिशाचों को, ये लोग निरे असभ्य हैं! ये धर्म के चुल्लू में, कभी पानी नहीं पिये हैं। ''डाक्टर ग्लैनी'', आह भर कर वह डाक्टर बोला, ''मैं पागल हो गया हूँ। मैं कैसे इन दीन प्राणियों की अन्तरात्मा को शान्ति प्रदान करूँ? संसार की आँखों में तिरस्कृत, यह दीन स्वरूप कैसे सुख प्राप्त करेगा? नवीन प्रकाश से अपना चरित्र खोये हुए, ये नवयुवक कब पथ पर आयेंगे? कब मानवता अपने वास्तविक पथ पर मेरे द्वारा निर्देशित की जायेगी? चोट से कराहते हुए, रुग्ण नर-नारियों का समूह, क्या कभी इस महान् दु:ख से निवृत्ति पायेगा? क्या इसकी निवृत्ति का उपाय, मैं इन्हें बता सकता हूँ? रोते हुए, विदग्ध हृदय ले, सेठों के चंगुल में विराजमान, दलित भारत के भविष्य और भारत भविष्य के सच्चे सपूत... एक फटी धोती से भी रहित कभी शान्ति का स्वप्न भी देखेंगे? डाक्टर! डाक्टर! मेरे लिए सृष्टि शून्य हो गयी है। मैं जब इन अश्रुप्लावित नेत्रों में हर्ष का सिंचन करूँगा, जब मैं सोती मानवता को जगाऊँगा, उसका शृंगार करूँगा; तब मेरी सृष्टि होगी। वही मेरी वास्तविक गृहस्थी होगी। सुजन-दुर्जन, ऊँच-नीच, राजा-रंक, सदाचारी-दुराचारी, सब

मेरे से जब प्रेम करेंगे, तब मेरी संसृति की बुनियाद होगी। मैंने संसार को पथ दिखाना है, सत्य पथ। परमात्मा! ओ परमात्मा!! मेरे को कर्त्तव्य सुझा!...'' ऐसा कह डाक्टर हिचकी भर कर रोने लगा। मैंने उसे धीरज बँधाया... डाक्टर तेरी इच्छा पूर्ण होगी। तेरा उद्‌देश्य महान् है। तू धैर्य रख; और उस दिन की प्रतीक्षा कर। यह कह कर मैंने विदाई ली। अपने कमरे में लौट कर आया, देखा चार बजे थे। बिस्तर पर लेट गया, पर निद्रा न आयी। बारम्बार डाक्टर का चेहरा दृष्टि में आता था। क्रमशः पाँच बजे मन्द समीर ने मुझे थपकी देकर सुला दिया। जब निद्रा खुली तो देखा, प्रातः दश बज चुके थे। खिड़की खोल कर बाहर देखा तो करुणा के अवतार, डाक्टर के द्वार पर नित्यरूपेण दीन जनों का खचाखच समाँ बँधा हुआ था। उस दिन से मैं डाक्टर की महत्ता जान गया। वह मनुष्य नहीं, देव है।'

'हाँ,' ग्रीन बोला, 'मि. ग्लैनी का कथन अक्षरशः सत्य है। वह महान् है।'

'ओह,' गार्लिक ने अकड़ कर कहा, 'सारा समय विवाद में नष्ट हो गया। अच्छा मैं तो चला।' कह कर वह चला गया।'अजी, रुष्ट हो गया। हम भी चलें', कह कर ग्लैनी ने भी विदाई ली। ग्रीन ने अनुसरण किया। केवल पार्सन्स रह गये।ऐसे ही उस डाक्टर के जीवन पर प्रथम-वैराग्य का पात हुआ, कोई भी इसे न जाना। कौन जानता था कि यह साधारण डाक्टर नहीं और यह इस मानवीय-डाक्टरी-जीवन से सन्तुष्ट नहीं अपितु दिव्य डाक्टरी जीवन में प्रवेश करने की इच्छा करता है। यह सीमित घृणित डाक्टरी कार्य उसे सन्तोष नहीं देता। आपरेशन करने वाला कर्म उसे सिद्धि नहीं देता, अपितु वह असीमित विराट् डाक्टरी जीवन के पथ पर आरोहण करना चाहता है। कोई इसे ज्ञान रूप में न ला सका कि डाक्टर इस मानव स्वर में लय नहीं, उसे 'सुदूर से आह्वान' हो चुका है।

यह हुई 'सुदूर से आहवान' नामक पंचम कला समाप्त॥



षष्टम कला

परिवर्तन की ओर

जग में दु:ख ही दु:ख है रे।
सुख-गृह को ये कण्टक हैं घेरे।
टिमटिम-दीपक की नाईं, सबको गौरव औ' अभिमान।
युग-युग की आशाओं में, बना यह मानव-जग बीरान॥
नील-जलधि में अथाह, अजान।

Sorrow and sorrow alone reigns on earth.
Little joy that is, is encircled with obstacles.
The pride and pelf of puny man
Are like the insignificant twinkles of tiny wicks.
Out of desire and craving of ages,
Is fashioned this empty world of human vanity
Only to be swallowed up
In the Fathomless Depth of the unknown.

एक भिखारी था।

दरिद्रता की प्रतिमूर्ति, विषाद की छाया।

उसके क्षत विक्षत जीर्ण वस्त्र उसके अंग को स्वान्तरालवर्ती किये, उसकी दरिद्रता को परिसूचित कर रहे थे।

प्रात: होते ही वह नगर की सड़क पर बैठता, आने जाने वालों से दैन्य परिप्लाविता-पीतान्विता दृष्टि से भिक्षा की याचना करता था। कोई दयावान् एकाध पैसे उसे दे देता। परन्तु कोई उसको दुत्कार देता था – 'बड़ा चला है माँगने वाला। रोजाना अपने बाप की बपौती समझ कर, यहाँ आसन जमा देता है और मारे भिक्षा-भिक्षा के नाक में दम कर देता है।'

उस दिन भी सुबह हुई। मगर शुष्क सुबह हुई...! वह तो अपनी अनुभूति को जगदाकार देख रहा था!

भिखारी सड़क के एक कोने से भिक्षा के लिए गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा था। परन्तु हाय...

एकाएक एक सेठ जी नौकरों के साथ सामने से गुजरे। उन्हें भी वह दयार्द्र स्वर सुनाई दिया, पर वे उसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ गये। एक विषाद-भरी-निरीह युवक की आत्मा मृग के तुल्य नेत्र उघारे, सतृष्ण-भाव से देखती रह गयी। परन्तु वह नरकात्मा, वह धनी-सेठ की उपाधि-धारण किये, दो-तीन नर-चाण्डालों से सेवा किये जाने वाला, वह नर लोलुप, वह निर्मम, वह हत्यारा, वह पिशाच, कोई भी परवाह न कर चल दिया। उसे तभी अनुभव होता, जब उसे इस भिखारी के स्थान पर बैठ कर, इसकी अवस्था में रोना पड़ता। ये लोग क्या जानें दीनता के अनुभव हो। भोग-विलास ने इन्हें पागल बना दिया है, धन-सम्पत्ति ने इन्हें गर्व प्रदान किया है। ये साक्षात् यम, दीन जनों के रक्त को शोषण करने वाले, नीच, कर्म-चाण्डाल, लम्बी-लम्बी पगड़ी बाँधे, यदि दो गज की सिगरेट को मुख में दबाये चलते हैं तो क्या ये परमात्मा का अनुभव कर सकते हैं? जब ये मूर्ख एक भिखारी को दो-पैसा प्रदान करने में उपेक्षा करते हैं तो ये संसार में क्या कर सकते हैं? अस्तु।

उसके मुख से केवल एक शब्द निकला...'आह।' कितना मर्म-स्पर्शी तथा भेदी शब्द था वह...! उसके चतुर्दिक अन्धेरा छा गया...! उसके लिए मानो समस्त जगत् अन्धकारमय हो गया।

इसके बाद...

* * *

किसी भाँति रात कटी। पुनः प्रभात...

भिखारी पुनः सड़क पर बैठ गया। क्रमशः आदित्य-महाराज मध्याह्न होते हुए, अपराह्नगामी हो गये। भिखारी निराश हो गया। सहसा ...

कुछ दूर से एक नवयुवक कुछ विचार-मग्न हो, आता हुआ दिखायी दिया! एक अज्ञात-कारण से भिखारी प्रसन्न हो गया। उसने मुख से एक अस्पष्ट-स्वर निकाला – 'अब आ गये डाक्टर!' फिर देखता रहा।

डाक्टर एकदम सन्निकट आ गये और एकाएक सिर उठाया। भिक्षुक लज्जित हो गया। और धीरे से बोला, 'ॐ'।

'क्यों, क्या बात है? निराश क्यों दिखते हो?'

'महाराज...' भिखारी और कुछ न कह सका। उसका कण्ठ रुक गया। अपनी अवस्था का वर्णन करने में वह असमर्थ था।

डाक्टर ने देखा – एक दुबला, पतला, अस्थिपिंजरावशेष-देह, विषाद-युक्त-काया, दरिद्रता का घर। सब समझ गये।

'चलो घर, भोजन पाना।'

'नहीं श्रीमान्, मैं ...' भिखारी कुछ हिचकिचाया।

'ऐसी बात नहीं। आपको चलना होगा। मेरा अनुरोध आपको स्वीकार करना होगा।'

'श्रीमान्...'

'कह दिया कि आपको चलना होगा। मैं आपको ले जाये बिना छोड़ नहीं सकता।'

'महाराज!' भिखारी चरणों में गिर गया, 'मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। आप सचमुच में मेरे जीवनदाता हैं।'

'अरे, यह आप क्या करने लगे। यह तो प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि उसे यथाशक्ति अन्य की सहायता करनी चाहिए। यही सबसे महान् तपश्चर्या है, आत्मानुभव का सुगम सोपान है। यह कोई आश्चर्यजनक वस्तु नहीं कि मैंने आपको सहायता दी है। यह सहायता नहीं। क्याँ माँ अपने बच्चे को सहायता देती है? नहीं, नहीं – वह तो प्रेम करती है। मैं तुम्हारे प्रेम को चाहता हूँ।'

'महाराज, यह पगड़ी-धारी सेठ आपसे अधिक धनाढ्य, परन्तु इतने संकुचित-मन के क्यों?'

'कोई-कोई, सब नहीं।'

'नहीं महाराज सब,' भिखारी बोला, 'कल से इसी स्थान पर बैठे मेरे सामने से लाखों मनुष्य चले गये। परन्तु उनमें से आप ही ने मेरी सुधि ली।'

'यह तो ठीक है, परन्तु माया ने उन्हें अन्धा बना दिया है। वे सांसारिक विषय-वासनाओं के पीछे दौड़ते हैं। उन्हें 'यह मेरा' 'तेरा नहीं' भाव प्रबल रूप से दबाये हैं। उन्हें कोई ऐसा सुयोग्य शिक्षक नहीं मिला, जो उन्हें प्रेम, दया, सहानुभूति, लोकोपकारिता, भ्रातृ-भावना का पाठ सिखाये। वे धन-मद-उन्मत्त हैं। वे परमात्मा का नाम स्वप्न में भी नहीं जानते हैं। यदि कोई उन्हें सत्संग में जाने को कहे, तो वे बिगड़ उठेंगे और उससे बोलना भी बन्द कर देंगे। यही कारण है, उन्हें प्रत्येक शुभ कार्य में बाधा का सामना करना पड़ता है। अच्छा, तो आओ। चलें।'

'महाराज, परमात्मा आपको दिव्य-सम्पत्ति दे। आपको महान् बनाये। आप सर्वदा ही मुझ सदृशों का दुःख दूर करते रहें।'

यह कह कर भिखारी अति कृतज्ञ-भाव से दबा हुआ डाक्टर के साथ गया। डाक्टर उस दरिद्र-नारायण के अन्तिम वरदान प्राप्ति से अति हर्षित, अपने घर पहुँचा।

कहना नहीं होगा पाठक कि डाक्टर ने दरिद्र नारायण को अपने हाथों से नहला कर, उसे सुन्दर वस्त्र दिये। उसको अपने भोजन में सम्मिलित किया। नित्यप्रति उसे औषधि दे कर, उसे आरोग्य कर दिया, और उस रुग्ण-दीन वेश में नारायण की इतनी सेवा की, कि वह नव्य-काया ले, डाक्टर के साथ रह, रुग्णों को खोज कर लाने के कर्त्तव्य पथ पर अग्रगामी हो गया।

कितना देदीप्यमान् है इस महान् का शुभ्र-दृष्टान्त। कितना आदर्श है उसका प्रेम, उसकी दया, उसकी सहानुभूति, उसकी लोकोपकारिता, उसकी भ्रातृ-भावना का उदाहरण। संसार को ऐसे महापुरुष की आवश्यकता हो गयी थी। अंक-परिवर्तन का आयोजन हो चुका था। केवल अभिनेता के आने की देर थी। वह अपने को सुसज्जित कर रहा था। वैराग्य का बाना पहन कर, वह वास्तविकता के मंच पर आ रहा था और शनैः-शनैः, मन्थर गति से। इस भिखारी की घटना ने, और वरदान ने उसे विस्मृत कर दिया था, पागल कर दिया था, उसको परिवर्तन की ओर फेर दिया था।

यह हुई 'परिवर्तन की ओर' नामक षष्टम कला समाप्त॥



गिरे हुए को उठाना,
अन्धे को राह दिखाना,
अपना सब कुछ दूसरों के साथ बाँटना,
दीन-दुःखियों को सान्त्वना दिलाना,
पड़ोसियों से प्रेम करना,
यही मेरा लक्ष्य और आदर्श है।
मैं आप सबको खुशी देने के लिए जी रहा हूँ।
यह शरीर सेवा के लिए ही बना है।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सप्तम कला

आह्वान की ओर

जिस आह्वान की राह देखे, तेरी आँखें झुलस उठी।
वह हुआ आह्वान उधर से, उषा की मृदु लहर उठी॥

While yet Thou awaited for the call of sound
Heavy and dry with unshed tears thy eyes did seem,
Then came the call rising from the Holy Ground,
Now with soft wavelets of glad dawnlight,
Thy twin eyes gleam.

'वास्तविक शान्ति!' कह कर डाक्टर ध्यान-मग्न हो गया। 'निशा का मधुर आगमन हो गया है। हरित-विभामय-छवि-दीपक के विमल प्रकाश से प्रकृति-मन्दिर, अत्यन्त स्वच्छ तथा उज्ज्वल दिखायी देता है। सहसा प्राचि-द्वार से पीत वस्त्र धारी एक देवी, स्वयं दीपक ले कर आयी। उसका उज्ज्वल-दीपक समस्त जगत् में जगमग प्रकाश करता है, जिससे अम्बर और जग प्रकाश्य-दृष्टि आता है। अभी तक तो जगत् क्षीण-विभामय था, वही जगत् उस दीपक के स्वर्णिम तथा स्निग्ध-प्रकाश से विमोहित हो गया है, अथवा ऐसा भी हो सकता है कि वह देवी, प्रकृति-रूप-तन्वी में मद-प्रभाव-वृद्धि-कारणार्थ अपने स्वर्ण कलश में मद लाती हो जिस को पीकर समस्त जड़ और चेतना बेसुध हो जाते हैं, और हम सो जाते हैं; अथवा दु:खिता-हरिता का दैन्य-भरा-मन-सहलाने को वह सुधा कलश को ला कर, उसका समस्त तन-सिंचित करती हो।'

सहसा व्यग्र हो वह डाक्टर बोला।

'कहो कहो, ओ! रजनी बाले! तुम हीरकों से सुसज्जित सी, अन्धकार तम का नाश तो नहीं करती हो? और विभे! प्रथम-दिवस, तेरा यह नव-नीरव-तन, अपूर्व-विभामय होता है। शनै:-शनै: तुझ में क्षीणत्व और धुँधलापन आने लगता है। जैसे-जैसे तुझ में विकास तथा विमलता स्पष्ट होती जाती है वैसे ही क्रमश: क्षीण भी होती जाती है।'

'हाँ, समझ गया,' वह सोचने के उपरान्त बोला, 'ऐसी ही अवस्था मानव की भी है। वह महान्-आशामय बन कर पुन: यत्न करता हुआ, पराभव को

प्राप्त होता है। वह उच्च-क्षेत्र की आकांक्षा करते हुए भी, अपकर्ष को प्राप्त होता है, क्यों? कारण कि वह कर्म से उस क्षेत्र-प्राप्ति के योग्य नहीं है। वह ज्ञानमय हो कर भी, ऐसे-ऐसे कुविचारों से आच्छादित रहता है कि उसकी प्रतिभा, रात्रि के सितारों की नाईं टिमटिमाती हुई, अस्थिरता का परिचय देती है। वह काम-क्रोध-मद-लोभ-आदि अन्ध-वासनाओं से घिरा हुआ, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार न कर, दलदल में फँसे हुए आदमी की अवस्था को प्राप्त होता है। वह मानव-यात्री, जीवन-यात्रा में, काम-सिंह-ग्रास-ग्रसित हो जाता है। क्यों? वह अज्ञानी है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विचार शून्य है।'

'बस, बस, मानव! बस कर, अपनी इस कामुकता का अन्त! ओ, स्वेच्छा की समाधि के दानव, ध्यान दे अपने इस अस्थिर-तत्त्व पर। और सोच। काम-विहार-विदग्ध-विचुम्बिता, यह तेरी नष्टप्राया नौका, कब तक जल धारों की विकट विघातों को सहन करेगी?'

कुछ देर तक डाक्टर शून्य की ओर देखता रहा। वह अकेला था, सोचने लगा 'मानव की गति क्या है? किस में उसने लय होना है? इससे रक्षित होने का क्या साधन है? अरे, फिर यह क्या? विद्वान् कह गये हैं – *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*। गौड़पादाचार्य कहते हैं –'नहीं संसृति, नाश नहीं'; और भी – *न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधक: मुमुक्षुर्न वैमुक्तं इत्येषा परमार्थता, यथा गन्धर्वनगरं तथा संसृति विभ्रम:* और *जगन्नाम्ना न चोत्पन्नं न चास्ति न च दृश्यते*। तो फिर...! ठीक तो है। सब होते हुए भी नहीं है, सब साकार-रूप में निराकार है। हँसना, रोना, मुस्कराना, दु:ख, सुख सब समान हैं, परन्तु...!' आह खींचता है।

'ओ मानव प्राणी। तू कब समझेगा? तूने ही हँसना है, तूने ही रोना है। तूने ही इस संसृति में आ कर, पुन: नाश रहित ही होना है। ओ पंचभौतिक मर्त्य शरीर! जानता नहीं जग भी रोना, मग भी रोना और अतल-सिन्धु भी रोदनमय है। सिन्धु की फेनिल वीचियाँ रोदनमय हैं। यह जग रोदन है और वेदनामय भी है। इसी रोदनमय जग में व्यथा भरी है और हँसने के तत्त्व भरे हैं। परन्तु यही हँसी तो दु:खों का भण्डार है, स्रोत है और इस रोदनमय-संसृत्योपादन से सम्बन्धित है। जैसे नारी का आभूषण रूप है, वैसे ही इस जगत् का वास्तविक रूप दु:खाश्रु-परिप्लावित है। मानव, तू मुस्कराते हुए अपने को, रोदन गह्वरस्थ समझ। जानता नहीं कि प्राण रहित वृक्ष भी तो हिलते हैं, परन्तु शान्ति को उपसंहार बना कर!'

'अरे, तू उनके फेर में पड़ा है, जो जीवन को सत्य बताते हैं, जो चिता को उसका अन्त बताते हैं। नहीं, नहीं, यह झूठा है। वे मार्ग भूले हैं। वे पथ प्रदर्शक के न होने से ही ऐसी उक्तियों को कहते हैं। मैं उन्हें मार्ग बताऊँगा, मैं उन्हें पथ पर लाऊँगा। इस कार्य का श्रेय मुझ पर है; उत्तर-दायित्व भी मुझ पर है। ओ, स्वरूप! ठहर, मैं आ कर तुझ को पथ का अनुसन्धान कराऊँगा।'

'अच्छा', गगन-विकीरित-तारकों को निर्निमेषदृष्टि से देखता, वह मग्नाभिभूत था, 'आकाश दीप तुम जलते रहो और रात्रि से बातें करते रहना। मानवता के अन्त दिवस तक रात्रि में भी तुम तेज पुंज को प्रकाशित रखना। तुम केवल मानवता के पथ पर उज्ज्वलता की झलक दिखाना! 'क्षण में जलना, क्षण में बुझना' यही मानव उक्ति सुझाना और सुनो। तुम चिल्ला कर, मानवता को सीधा तथा उज्ज्वल मार्ग बताना। ओ, जग के भविष्य-पथ-प्रदर्शक! तुम वास्तव में यही बन, उन्हें पथ का यह भेद बताना कि, 'असार-जगत् के अनन्त तट पर और पार सत्य का सुन्दर पुल बना है – और इसी के बल, मनुष्य का तरण सम्भव है। तभी वह उस पार मुक्ति धरा पर पहुँच सकता है। यही सुन्दर-मुक्ति-जगत् ही सत्य से सम्बन्धित रहा है। यही मुक्ति मैं दीप हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं सर्वद्रष्टा, सर्वमुक्त हूँ, मैं शुद्ध-बोध-स्वरूप हूँ, मैं साक्षी, पूर्ण, एकमुक्त, चैतन्य, अक्रिय, असंग, निर्लिप्त-शान्तात्मा हूँ। मैं मायातीत, निर्विकार, प्रकृति से परे, ज्ञान-स्वरूप हूँ। मैं तेरा साक्षी हूँ, तुझे प्रकाश देता हूँ...।'

डाक्टर पुन: विचार में लय हो जाता है। एकाएक चिल्ला उठता है।

'बस, बस। निश्चय कर लिया। जाऊँगा! जाऊँगा–और अवश्य जाऊँगा। जहाँ शान्ति मिलेगी, वहाँ! जहाँ सुख मिलेगा, वहाँ!! जहाँ दैवी-कार्य-सम्पादन करूँगा, वहाँ!!! केवल अपने लिए नहीं, समस्त संसार के लिए। केवल एक कार्य – केवल एक! संसार की मायाविष्टा-विदग्ध-हृदया राग-द्वेष वियुक्ता मानवता को मनश्शान्ति! मैं अपनी इस पंचभूत प्रतिमा का बलिदान कर, संसार को कल्याण की ओर ले जाऊँगा। मुझे आह्वान हो चुका है, सुदूर से, अज्ञात प्रदेश से। मैं जाऊँगा और अवश्य जाऊँगा! मेरी आवश्यकता है संसार को। मैं जाऊँगा और अवश्य जाऊँगा! आह्वानदाता मेरी बाट जोह रहा होगा। वह अज्ञात रेखा मेरे मार्ग का प्रदर्शन कर रही है, और मैं स्वयं रेखामय! मेरा गमन संसार त्यागार्थ नहीं, अपितु प्राणियों के दु:ख त्यागार्थ होगा। मैं जोर से

माया-प्रवाह प्रवाहित प्राणियों को सहारा दूँगा। मैं जोर से कहूँगा, मैं आ गया हूँ तुम्हारी सेवा करने के लिए। मेरा जीवन तुम्हारी सेवा को हुआ है। मेरा जीवन तुम्हें हर्षित करने को हुआ है। मैं तुम्हें कैवल्य पद पर पहुँचाने में सहायता दूँगा और कहूँगा – प्रकाश पुत्र! जीवन का लवण, स्वार्थ रहित सेवा है। जीवन की रोटी, विश्वप्रेम है। जीवन जल चित्तशुद्धि है। जीवन की मिठास भक्ति है, जीवन का सौरभ उदारहृदयता है। जीवन का अर्थ विशेष ध्यान है। जीवन का लक्ष्य आत्मानुभव है। अत: उठो! प्रेम करो। शुद्ध बनो। ध्यान द्वारा अनुभव को प्राप्त होओ। फिर यदि वे न उठें, तो कहूँगा – महान् बनने की प्रारम्भिकता अहंनाश है तथा अन्त शाश्वत रूप है और कुंजी ब्रह्मचर्य है। महान् का प्रकाश विश्व प्रेम है, हार कर्त्तव्य है और चिह्न समदृष्टि है। महान् का पथ अनवरत ध्यान है और नींव यम-नियम है। फिर वे जाग जायेंगे। मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जायेगा। नहीं, नहीं, मेरे कर्त्तव्य का अन्त नहीं – असीम, अनन्त! मैंने कहते ही जाना है – कार्य करो, परन्तु फल ईश्वरार्पण करो। उसको अपना सब जानो। उसके लिए रहो। कार्य भी उसके लिए करो। उसकी सब रूपों में सेवा करो। उसकी चिन्तना में लय रहो। उसी में ध्यानस्थ हो। उसे ही सब जगह देखो। उसी का अपने हृदय में पूजन करो। उसी में विश्राम करो।'

क्रमश: डाक्टर का स्वर मन्द हो गया। उसने नेत्र मूँद लिये। उसकी भाव-भंगी से ज्ञात होता था कि वह अन्तरालवर्ती सागर में मोती खोजता हो। वह मन्द स्वर में बड़बड़ाने लगा।

'क्या 'मैं', 'तुम्हारा', 'वह', 'उसका' विद्यमान स्वरूप है? नहीं, नहीं, इसमें कोई भी तीनों कालों में विद्यमान नहीं। उपनिषद् कहते हैं – *न कश्चिज्जायते जीव: सम्भवोऽस्य न विद्यते*। यह तो केवल माया की कल्पना है – *मायामात्र दृशो भ्रान्ति: शून्या: स्वप्नानुभूतय:*। यदि कोई अनन्त से तीनों कालों में विद्यमान रहा है, तो वह एक सर्व नियन्ता शुद्ध चैतन्यात्मा है, परन्तु उसके लिए तीन काल भी नहीं। तो ये तीन काल किसने, किसके लिए बनाये? ... मनुष्य के लिए ...? परन्तु – संसार... *'न निरोधो न चोत्पत्ति:...'*, *'जगन्नाम्ना न चोत्पन्नं, न चास्ति, न च दृश्यते।'* सर्व-ज्ञानी-जन संसार को उत्पत्ति रहित भ्रम बताते हैं – *'स्वप्न माये यथा दृष्टे गन्धर्व नगरं तथा'* एवं *'विश्वमिदं दृष्टं वेदा तेषु विचक्षणै:'*। तब तो सब असत्य है – *'न दृश्यमस्ति सद्रूपं न द्रष्टा न च दर्शनम्।'* एतद्वत् और भी *'यथा स्वप्नस्तथा जाग्रदिदं नास्त्यत्र संशय:'*। परन्तु हम यह भी नहीं कह सकते।

सत्य तो यह है कि *'नात: सत्यमिदं दृश्यं न चासत्यं कदाचन'*। तब कैसे...? अरे, मैं फँसता ही जा रहा हूँ। मैं तैरने में असमर्थ गहरे पानी में उतर रहा हूँ। परन्तु यदि उत्पत्ति ही नहीं, तो मैं तैरने में असमर्थता का विषय क्यों लाता हूँ?' कुछ ठहर कर, सहसा चिल्ला उठा, 'यदि उत्पत्ति ही नहीं, तो कौन, कहाँ और किस विषय को लाता है? कौन तैरता है? कहाँ तैरता है? जब कि सर्व शून्य है और शून्य से भी परे है। केवल...'

'कर्र-र्र...' सहसा दरवाजा खुलता है।

'कौन, डाक्टर ग्लैनी। आओ।'

'नहीं डाक्टर,' बैठता हुआ डाक्टर ग्लैनी बोला, 'मेरा कोई कार्य नहीं। आज सहसा मेरे हृदय में एक भावना जाग्रत हो गयी है कि समस्त संसार सुख की कामना करता है, परन्तु उसे सुख क्यों नहीं प्राप्त होता? यदि किसी को प्राप्त होता भी है तो वह अनुभव कैसे करता है? और सब प्राणी इतने सांसारिक सुखों में फँसे रहने पर भी दु:खी क्यों रहते हैं? डाक्टर, मुझे बतलाइए।'

'हूँ,' डाक्टर कुछ शुष्क मुस्कान से बोले, 'यह आपका सत्य अनुभव है कि संसार का छोटे-से-छोटा तथा बड़े-से-बड़ा प्राणी सुख की खोज में रहता है। वास्तव में सुख माया की सृष्टि है, जो देश-भेद तथा कालानुसार परिवर्तित होती रहती है। डाक्टर, सच पूछो तो सुख सबके लिए नहीं है। जो आज सुख है, कल को दु:ख में परिवर्तित हो जाता है। मेरा सुन्दर भोजन दूसरे को हलाहल के समान हो जाता है। मेरी मधुर वस्तु आपके लिए कड़वी हो जाती है। जब आप किसी वस्तु को ले कर पहाड़ पर चढ़ते हैं, तो आप कहीं पर उसे पृथ्वी पर रखने से, थकान के स्थान पर सुख का अनुभव करते हैं। विपरीत इसके, एक रिक्तहस्त मनुष्य, उसी पर्वत पर जब कहीं बैठता है तो अत्यन्त थकावट का अनुभव करता है। एक संसार विरक्त, निवृत्ति मार्गगामी, एकान्त अरण्य में ही सुख की अनुभूति करता है। किन्तु, इसके विलोम - एक सांसारिक गृहस्थ अपने परिवार सहित, महान् जनता के कोलाहल में ही वास्तविक सुख का अनुभव करता है। दुर्वासना पूर्ण स्थान में वास, वाराह को अति सुखदायी है, परन्तु सबको नहीं। भूख से तड़पते हुए प्राणी को, एक समय के भोजन करने पर वह सुख मिलता है, जो सुख स्वर्ण जड़ित कलशों में भोजन करने पर, न्यूयार्क की 75वीं मंजिल में बैठने वालों को प्राप्त नहीं! यही कारण है कि सुख वास्तविक रूपेण मायाकृत है! अत: वास्तव में सुख की तुमने प्राप्ति करनी है, तो सब सुखों का अनुसन्धान त्याग

दो। केवल आत्म-साक्षात्कार की ओर दौड़ो। परम पिता परमात्मा से प्रेम करो। उसी में स्वयं को जानो। मायाकृत भेद विच्छिन्न कर, अपने वास्तविक रूप को पहचानो। वही सुख है। क्या अब भी सुख चाहते हो? अरे! तुम चीनी हो कर मिठास का अनुसन्धान करना चाहते हो।'

'बस, बस – डाक्टर! और गहरे जल में न डालो। मुझे कोई सरल उपाय बताओ।'

'सबसे सरल उपाय दीन-दु:खियों की सेवा करना है, सबमें उस केवल को विराजमान देखना है, सत्कर्म में मनोवांछा रखनी है, परन्तु पुरस्कार का ध्यान छोड़ देना है।' वह कहता रहा।

'दूसरा सरल उपाय भक्ति है। इसमें आपने अपने को परमात्मा में लय करना है।'

'तीसरा सरल उपाय शरीर को स्थिर कर, अपनी इन्द्रियों को वशीभूत कर, संयम तथा नियम द्वारा चित्त निरोध कर, जीवन को उन्नत करना है।'

'अन्तत: उसी को समस्त विश्व मानते हुए समस्त संसार से आन्तरिक विरक्ति रख कर, ब्रह्म-चिन्तन में संलग्न हो जाना है।' यह कह कर डाक्टर चुप हो गया।

'मैं समझ गया डाक्टर। तुमने मेरी आँखें खोल दीं। गुरुदेव! मैंने तुम्हारा अमूल्य समय नष्ट किया। क्षमा करें! अच्छा मैं जाता हूँ।'

डाक्टर ग्लैनी चला गया। पुन: वही अकेला, ध्यान मग्न हो गया।

सहसा वह उठ खड़ा हो गया, विद्युच्छटा के समान उसके नेत्र एकदम तेज पुंज की नाईं दृष्टिगत होते थे। उसके मुख पर निश्चयात्मक लक्षण स्पष्टरूपेण दृष्टिगोचर होते थे। उस समय उसका मुख मण्डल अलौकिक छटा से प्रकाशित हो रहा था। उसने एक बार समस्त कमरे की स्थित वस्तुओं पर शिवव्याप्त पूर्ण दृष्टिपात किया। उसे समस्त वस्तुएँ शून्याम्बर से भी अधिक निरस्तित्वमयी प्रतीत होने लगीं। कलम, दवात, कागज, टाइप, वस्त्र सभी अद्वैत ब्रह्ममय शुद्ध चैतन्य स्वरूप। मकान की दीवाल भी ब्रह्ममय।

समस्त माया उसके नेत्रों से अदृश्य हो गयी। उसने देखी महाऽज्ञात-ज्वालामयी शुद्ध बुद्ध चैतन्य की असीमता, प्रकाश, अज्ञात तत्त्व...! और उसने अनुभव किया – एक शिखा का; अज्ञात एक, केवल एक...! सहसा ही उसे अनुभव हो गया – एक ज्योति, चैतन्य-ज्योति...।

दृश्य नष्ट हो गये। डाक्टर खड़ा था। वह चिल्लाया।

'वही पूर्ण ज्योति मैं! बस, बस! जाऊँगा और अवश्य जाऊँगा। माये, तू मार्ग छोड़। साहस, विवेक, वैराग्य! आओ, साथी बनो। सिंगापुर! मलाया!! मद्रास!!! ... नहीं, नहीं – कुछ नहीं। ओ डाक्टर, भूल जा मलाया! विस्मृत कर दे सिंगापुर। डुबा दे मद्रास! वह देख। सुदूर प्रदेश में अनन्त कण तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह आह्वान अनवरत गति से हो रहा है। संसार मेरी प्रतीक्षा में है। मेरे पथ में प्रकाश है... मैं स्वयं पथ एवं प्रकाश हूँ। वह सुनो; अज्ञान आह्वान। और लो मैं यह गया उस अज्ञात सुदूरगामी आह्वान की ओर।'

एकदम डाक्टर द्वार खोल कर बहिर्गामी हो गया। द्वार खुला रहा। कलम-दवात मानो चिल्लाने लगी, 'डाक्टर'। टाइप चिल्लाता था, 'डाक्टर'। कमरे की प्रत्येक वस्तु 'डाक्टर' की आवाज निकालती सी प्रतीत होती थी।

अर्द्धनिशा का शशधर नीलाकाशस्थित, यह दृश्य देखता था। अनन्त नक्षत्र देखते थे... एक महान् ज्योति को।

डाक्टर सड़क पर उतर गया। इधर-उधर देखा। सब शून्य था। उसने *ॐ नमः शिवाय* कह कर, अपने निवास-गृह से विदाई ली। सहसा उसने सुना, मानो एक भिखारी सुदूर अनन्त क्षितिज से गा रहा हो ...

उस अस्त प्रहर से छिड़ा हुआ, हा! यह रण,
कभी विचुम्बन शशधर का, कभी ग्रहण।
कभी विशद गगन पथ निरत-तारक मय,
तो कभी रोर अमर सखि, अहा विलय।
तब क्षण में उसने यह कह, स्वर्ण छटे, पड़ी रहो।
यह कह चिर कानन से बस, मुख मोड़ा अभी अहो।

अर्द्धरात्रि की निस्तब्धता में, मानो प्रकृति बाला, अखिल उद्यान में गा रही थी –

जिस आहवान की राह देखे,
तेरी आँखें झुलस उठी।
वह हुआ आह्वान उधर से,
उषा की मृदु लहर उठी॥

सहसा डाक्टर बड़बड़ाया, 'चलता हूँ। यह गया, कर्मक्षेत्र की ओर। यह गया, संसृति के श्रृंगार करने को, आँसू पोंछने को!! द्वार खटखटाने और धैर्य देने को!!! यह प्रयाण किया, अज्ञात प्रदेश के आह्वान की ओर।'

यह हुई 'आहवान की ओर' नामक सप्तम कला समाप्त॥

अष्टम कला

अपूर्व महापुरुष

उन पुरुष महानों की गाथाएँ॥
उनके चरणों की धूलि मनोहर, उनके कर्मार्णव की लहर लहर।
एकीकृत हो आएँ सिहर सिहर, मानव को तम तल भेद बताएँ।
उन पुरुष महानों की गाथाएँ॥

May the stories of those Ideal Souls,
May the dust of their feet,
May the waves of their action,
Come with a whistling tune,
In order to unveil the hidden secret of Illusion,
That has overwhelmed the human being entirely.

मलाया की झिलमिलाती दुनियाँ को त्याग कर आदर्श एवं महान् प्रज्वलित वैराग्य से युक्त, वह मद्रास पहुँचा। जहाँ उसने प्रथम श्वास ली थी, जहाँ उसने प्रथम चरण का आविर्भाव किया था। आज वह उसे विस्मृति की भावनाओं में भी नहीं ज्ञात हुआ। मद्रास की भूमि को पुन: छोड़ कृष्ण नर्मदा को पवित्र कर, वह महान् अपने पथ को जा रहा था। उसका पथ वास्तव में अनुपमेय था।

उसके अन्तराल में अदृश्य-विलोड़न हो रहा था। उसने निश्चय कर लिया कि वह आज उद्‌देश्यों की वेदी की ओर आरोहण कर रहा है। उसकी श्वास-श्वास में निश्चयात्मकता का अनुभव होता था। उसके पद उसे अनन्त की ओर ले जा रहे थे। न तो थी उसे आवश्यकता विश्राम की; न थी उसे आकांक्षा भोजन की। क्षुधा एवं श्रम से परिक्लान्त वह महान् चल रहा था, अज्ञात की ओर!

उसने कभी नहीं सताया, दीन प्राणियों को – भोजन के लिए। उसे सब अनुभव थे। उसने क्षुधा को सहर्ष सहन किया। परन्तु कभी भी किसी को दु:ख पहुँचाना, केवल एक समय भोजन के लिए, उसे स्वीकृत नहीं हुआ। नहीं, कभी नहीं! उसे अहर्निश भ्रमण, वृक्ष के तले एवं पहाड़ी शिलाओं में विश्राम करना स्वीकार हुआ; उसे हिंसक पशुओं की दिलदहलाती गर्जना सुननी पसन्द

थी – परन्तु वाह रे आदर्श! कभी नहीं उसने भिक्षा के लिए, कभी नहीं उसने विश्रामार्थ झोपड़ी के लिए किसी को दु:ख दिया। उसने रोग-ग्रस्त-चिन्तातुर व्यक्तियों को मन, वचन, कर्म से सहायता देने में, भूखे पेट भी कोई त्रुटि न की; परन्तु अनुकरणीय है उस महापुरुष का उदाहरण, जिसने रात्रियाँ घूमते बिता दीं। दिन सेवा में, एवं उद्देश्य की ओर अग्रसर होने में लगा दिये। उसने शरीर का शत-प्रतिशत मोह त्याग दिया था एवं बलिदान भी दे दिया था। मासों की बुभुक्षा ने उसके वैराग्यानल में घृतपात भी कर दिया था।

यह केवल लीला थी। उसने संसार के सामने ज्वलन्त दृष्टान्त रखना था। उसने वह कार्य कर दिखाना था, जो वह कर रहा है एवं कर चुका है। वह यहीं सगुण द्वारा समाविष्ट हुआ था। उसका प्रत्येक रक्त बिन्दु, संसृति के प्रति सहायतार्थ उपयोग में आने वाला था। वह आदर्श, डाक्टर की उपाधि की प्रतिष्ठा के गर्व को क्षितिज के उस पार ही छोड़ चुका था। उसका समावेश किसी साधारण रूप से नहीं, वरन् एक अन्य कार्य के लिए हुआ था, जिसके हेतु उस शुद्ध चैतन्य ज्योति को षोडश-कलावित हो, सगुण द्वारा आविष्ट होना पड़ा और आज उसी महान् की अमर गाथा, अप्रतिबिम्बित वाणी से आज उसी महान् के चरणों की रज, अनन्त एवं अवर्णनीय कर्म सागर की लहर-लहर से एकीकृत हो, मधुरालाप करती हुई, ज्ञान वीणा के दीपक राग से सिहर-सिहर कर, मधुरालोक छिटकाती हुई, हमको इस अनन्त के उस अनन्त तट पार, मुक्ति की सुन्दर असीमता का गुप्त भेद, परिचयात्मकरूपेण ज्ञान-गत करा रही है और हम स्पष्ट देख रहे हैं – उपस्थित वर्तमान; एवं देखेंगे – आगामी भविष्य को भी...!

(एक)

सायंकाल की मनोहारिणी लालिमा ने चन्द्रभागा के जल को रक्तिम वर्ण प्रदान किया है और समस्त दहलज का ग्राम एक अनुपम नैसर्गिक तथा नयनाभिराम सौन्दर्य युक्त चन्द्रभागा में स्व-प्रतिबिम्ब सा देखता है। विलीयमान प्रभाकर की उत्तम रश्मियाँ भी पश्चिम सागर में जा कर, उदीयमान अन्धकार के कार्य का मौन निरीक्षण सा करने लगीं। अपने कार्य से थक कर आते हुए स्थानीय पोस्ट मास्टर की दृष्टि, सहसा चन्द्रभागा के कूलस्थित कृष्णवर्ण प्रस्तर स्थित, एक नवयुवक पर पड़ गयी। कुछ परिचय की इच्छा हुई, 'देखने से तो ज्ञात होता है कि कोई नवीन अपरिचित है। अच्छा, परिचय तो पूछ लूँ।'

कुछ आगे बढ़ने पर – 'अरे, वह कुछ बोलता है', कह कर धीरे-धीरे से चलने लगा। एकदम निकट आने पर, उस अनजान का स्वर स्पष्ट सुनायी देने लगा। पोस्ट मास्टर ध्यान दे कर सुनने लगा।

'... वहीं दूसरी ओर भूचाल, ज्वालामुखी, आग, बवण्डर, भयंकर व्याधियाँ फैली हुई हैं, जो एक ही बार में अगणित प्राणियों को अपने गाल में डाल देती हैं।'

'स्त्री मनोमुग्धकारिणी होती है। उसके अंग-प्रत्यंग से सौकुमार्य का वर्षण होता है। वही स्त्री नृत्य करने पर, सर्व हृदय ग्राही हो जाती है, परन्तु यही नारी यदि किसी भयंकर रोग से आक्रान्त हो जाती है तो उसका सौन्दर्य, विकृत हो जाने पर, घृणास्पद हो जाता है।'

'क्या कारण है, मनुष्य के लिए वसन्त प्राणदायक, उल्लासयुक्त तथा चित्तोत्फुल्लक होता है, परन्तु ग्रीष्म और हेमन्त नहीं? क्या कारण है, माता-पिता अपने पुत्र की उत्पत्ति पर, उसके विवाह पर प्रसन्न होते हैं और आनन्द मनाते हैं, परन्तु यदि वह मर जाता है तो शोक करने लगते हैं? मेरी समझ से, इस विश्व की भ्रामक वस्तुओं में वास्तविकरूपेण, माया का ही खिलवाड़ है। ये सब वस्तुएँ जलबुद्बुद्सन्निभ और मृगतृष्णासत्य हैं, परन्तु यह क्या! इतना होने पर भी मनुष्य विषयों की ओर दौड़ता है। वह जानता है, संसार परिवर्तनशील है, परन्तु अपयश रूप यश की ओर भागता है। कौन नहीं जानता, गत युद्ध में प्राणियों की आहुति का बखान और महामहाऽट्टालिकाओं का ध्वान्त स्वरूप? परन्तु उनमें कोई ऐसा भी है, जिससे यह शब्द निकलते हों? ओह, सब मिथ्या है। उनमें से किसी ने कोई महान् शिक्षा ली है? उनमें से कोई ऐसा भी निकला, जिसने वैराग्य पथ पर कदम बढ़ाया हो? ईश्वर ही इनको विवेक, वैराग्य और भक्ति दे।'

'संसार की सभी वस्तुएँ नाशवान् हैं, घृणा के योग्य हैं, परन्तु हाय रे मानव प्राणी, तू कब समझेगा? तू कब इस अज्ञान निद्रा से आँखें खोलेगा? देख, इस शरीर गढ़ में काम, क्रोध, और लोभ रूपी तीन तस्कर छिपे हैं, जो ज्ञान रूप रत्न का अपहरण करना चाहते हैं। अरे! जाग!! सावधान हो!!!'

'संसार में जन्म लेना दुःखों का कारण है। वृद्धावस्था में दुःख ही दुःख हैं तथा नारी सब दुःखों की प्रधान अभिनेत्री है। यह संसार सागर ही दुःखमय है। अब भी तो मूढ़ मानव! जाग!!'

‘न कोई किसी की माता है, न कोई किसी का पिता। भाई, बन्धु, कोई किसी का नहीं। धन दो दिन की वस्तु है, संसार मिथ्या है। अरे, अब तो नेत्र खोल।’

‘अनेकानेक दुर्वासनाओं, चिन्ताओं, और क्षुद्र कर्मों द्वारा जीवन इस संसार रूपी सुदृढ़-शृंखला में आबद्ध है। अत: प्रिय आत्मन्, तुझको पता नहीं चलता कि प्रतिक्षण ह्रासोन्मुखी हो रहा है। अरे उठ।’

सहसा उस अनजान की विचार धारा में परिवर्तन हो गया। वह युग्म-कर-बद्ध कर बैठ गया और गद्‌गद् वाणी में कहने लगा, ‘तेरी माया, प्रभो, तुम अति सूक्ष्मतम हो। तुम अज्ञेय हो। तुम त्रिकाल में विराजमान हो। ओ करुणा के सागर, ओ भक्तज्ञेय, तुम निर्लेप हो, निर्विकार हो, परन्तु समस्तगुणायुत् हो। ओ वाणी और बुद्धि से भी परे, तुम ही मेरे सब हो। मेरी रक्षा करो। पथ दिखाओ।’

‘हे प्रभो, अन्तर्यामिन्, विश्वेश, सर्वात्मा, सर्व रक्षक, तुम्हीं सब कुछ हो। सब तुममें हैं और तुम सबमें हो। ओ मोक्षदाता, तुमको अगणित प्रणाम।’

‘हे परमेश्वर। आप ही मम नेत्र ज्योति, हृदय प्रेम, जीवन के जीवन एवं आत्मा की आत्मा हो! ओ हृदयेश्वर, ओ जीवनधन आत्माधीश! आपको नमस्कार है!!’

‘हे स्वामिन्, आपकी दिव्य ज्योति से मेरा ज्ञानालोक प्रदीप्त हो रहा है। आप ही की ध्वनि से मेरे हृदय-प्रान्त में मधुर स्नेह-संगीत गुंजारित हो रहा है!’

‘हे विभु! तुम सूर्य हो, तो मैं किरण हूँ। तुम सागर हो, तो मैं लहर हूँ। तुम गंगा हो, तो मैं जलकण हूँ। तुम उद्यान हो, तो मैं पुष्प हूँ। तुम विद्युत् हो, तो मैं रेखा हूँ। तुम मनोरम भूमि पृष्ठ हो, तो मैं दूर्वादल हूँ। तुम चन्द्र हो तो मैं चन्द्रिका हूँ। तुम नक्षत्र हो, तो मैं गति हूँ। तुम दीप हो, तो मैं प्रकाश हूँ। तुम स्वैर नभस्वान हो, तो मैं मृदु हिलोर हूँ। तुम चैतन्य हो, तो मैं ज्योति हूँ। तुम प्रेम हो, तो मैं प्रेमी हूँ। तुम अमरत्व हो, तो मैं अमर हूँ। हे नाथ! तुमको पुन:-पुन: प्रणाम!’

‘हे करुणाधाम, सर्वाधार, सर्वरक्षक, सर्वस्रष्टा, सर्वान्तर्शासक, सर्व स्वामिन्, सर्व लक्ष्य प्रदाता, सर्वाज्ञान नाशक, सर्व ताप निवारक, मेरा दण्डवत् स्वीकार हो। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मेरे जीवन पथ के कण्टकों का निवारण कर दीजिए। मुझ को सन्मार्ग दिखाओ। शुद्ध बुद्धि

दो, ज्ञान दो, चरण-कमलों में स्थान दो। हे विश्वेश! मैं धन-सम्पत्ति, राज्य-सम्पदा, मोक्ष-कैवल्य किसी भी कामना नहीं करता। मेरी एकमात्र कामना, संसार के दु:खों की निवृत्ति है और उनको मुक्ति हासिल कराना है।'

सहसा...

'मनवा, तज दे खोटे काम...
तज दे खोटे काम मनवा, तज दे खोटे काम!'

एक स्वर लहरी ने अनजान की तल्लीनता में विघ्न डाल दिया। 'कितना सुन्दर स्वर है,' कह कर वह उठा ही था कि आँखें चार हो गयीं।

गाने वाला आगे बढ़ गया था। कुछ तमस्विनी का संचार हो चुका था। अनजान उस व्यक्ति को देखता रहा।

'श्रीमन्', पोस्ट मास्टर प्रश्न-सूचक स्वर में बोला, 'आप किस प्रान्त से पधारे हैं? आपकी वेश-भूषा से तो आप किसी उच्च घराने के जाने पड़ते हैं। कहिए, मेरे प्रश्नों का उत्तर दे कर मेरी शंका का समाधान कीजिए और यह भी बतलाइए, आप अकेले हैं अथवा आपके साथ आपके मित्र-वर्ग भी हैं?'

'आपने सच कहा,' मृदुल हँसी हँसता हुआ अनजान बोला, 'मैं अनन्त से आता हूँ, अनन्त को जाता हूँ। मेरा कोई प्रान्त नहीं। मैं कोई उच्च अथवा नीच घराने का नहीं। मेरा कोई मित्र-वर्ग नहीं, केवल एक ही है। वह मेरा अत्यन्त प्रेमी है...। '

'तो भगवन् वह कहाँ रहता है?'

'वह सर्वत्र विराजमान है।'

'तो', प्रश्न-सूचक स्वर में पोस्ट मास्टर बोला, 'आप उसके साथ कहाँ तक रहते हैं? कैसे देखते हैं?'

'मैं सर्वदा उससे मित्रता कर उसके साथ रहता हूँ।'

'अच्छा!' पोस्टमास्टर का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया, 'तो वह कौन है?'

'वह!' गम्भीर स्वर में वह अनजान बोला, 'दिव्य सम्राट है; वह सबका माता और पिता है। वह महान् ज्योति है। वह दया सागर है...'

'महाराज, समझ गया...'

'वह जीवन का जीवन है,' वह अनजान कहते गया, 'वह मेरा शाश्वत मित्र है। वह मेरी आत्मा की आत्मा है। वह मेरा केन्द्र और लक्ष्य है...।'

पोस्टमास्टर टकटकी लगाये देखता था; अनजान कहता चला गया, 'वह मेरी प्रश्वास है, जो *सोऽहम्* का उच्चारण करती है। वह मेरा पथ-निर्देशक है, वह मेरे कानों में सर्वदा कहता है, 'ॐ'। वह मेरा तिमिरघ्नी है, मेरे ग्रासोन्मुखी आवरण का फाड़ने वाला है। वह मेरे को आनन्दमय करने वाला है...'

'महाराज! मैं जान गया, आप कौन हैं। मैंने व्यर्थ में प्रश्न किये। क्षमा करें। आइए, मेरे घर चल कर कुछ विश्राम कीजिए। मेरा शून्य-घरबार आपके आगमन से बस्ती के समान हो जायेगा।'

'नहीं, मेरा लक्ष्य यहाँ ठहरना नहीं है।'

'परन्तु एक दिन विश्राम कर तो लक्ष्य-निर्णय कीजियेगा।'

डाक्टर सोचने लगा, 'यहाँ ठहरने में कोई हानि नहीं। निश्चयात्मक-रूपेण, लक्ष्य-निर्णय करूँगा। सम्भव है, कुछ स्रोतोत्पत्ति हो जाये।'

'अच्छा!' डाक्टर बोला, 'चलियेगा।'

प्रिय! अब आप जान गये होंगे कि यह अनजान और कोई नहीं, वरन् हमारा महान्-नायक, वही डाक्टर है। अस्तु।

दोनों चलने लगे। अन्धकार हो गया। सहसा पूर्णमासी की निर्मल कौमुदी नभ में खिलखिला पड़ी। पार्श्ववर्ती-सरोवर में कुमुदिनी विकसित हो गयी। इसी समय पूर्ण-चन्द्र को श्वेत मेघ के मन्दावरण ने आवृत कर लिया। अहाहा! ऐसा ज्ञात होता था, मानो वह चन्द्र-रूप-नल, मेघ-रूप-स्वर्णहंस द्वारा कमलिनी रूपिणी दमयन्ती को रव ललाम-सन्देश प्रेषित कर रहा हो।

उसी सरोवर के तीर, एक छोटा सा दुमंजिला मकान बना हुआ था। उसके पार्श्ववर्ती पुष्पोद्यान ने उसकी शोभा में वृद्धि कर दी थी। मकान कोई विशेष बड़ा नहीं, तो भी अत्यन्त स्वच्छ दिखायी देता था।

पोस्ट मास्टर ने आवाज दी – 'सुरेन्द्र।'

कुछ क्षण में एक नवयुवक ने आ कर द्वार खोल दिया। उसने अपने मालिक के साथ एक अजनबी को देखा। वह उसके अस्त-व्यस्त-श्रृंगार को आश्चर्य की भावभंगी से देखने लगा।

'क्यों, दीपक जला दिया है न?'

'हाँ, मालिक', विचार भंग करते हुए सुरेन्द्र बोला, 'जला दिया है। कमरा खुला है।'

'आइए श्रीमान्,' पोस्ट मास्टर बोला, 'अन्दर प्रवेश कीजिए।'

अनजान ने पोस्ट मास्टर के साथ अन्दर प्रवेश किया।

(दो)

चार महीनों के बाद...

'इस ग्राम में रहते मुझको लगभग चार महीने हो चुके हैं। इस पोस्ट मास्टर के स्वभाव ने मेरी इच्छा पर वश कर लिया है! अत्यन्त विचार का धनी है तथा धार्मिक विचारों का है! परन्तु नहीं, मैंने विलम्ब नहीं करना है। मैंने उस आह्वान के केन्द्र पर पहुँचना है। अच्छा, आने दूँ पोस्ट मास्टर को। अपने सब विचार प्रकाशित कर दूँ...।'

डाक्टर सोचता था। वह अभी तक अपना परिचय रहस्यमय किये था। सब गाँव के लोग उसे 'डाक्टर' कह कर सम्बोधित करते थे। वह सबको सहानुभूति की भावना से देखता था। उसके चरित्र पर सब मुग्ध थे। उसकी टूटी-फूटी भाषा सबको मनोमुग्ध कर रही थी। परन्तु वह वहाँ अधिक नहीं ठहर सकता था। उसे अपने कार्य की पूर्ति करनी थी।

एकाएक सीढ़ियों में पदध्वनि होने लगी। कुछ क्षणों में पोस्ट मास्टर की धार्मिक मूर्ति कमरे में आ गयी। डाक्टर सोचता रहा, उसे पोस्ट मास्टर का आगमन नहीं मालूम हुआ।

'श्रीमान्!' प्रसन्न मूर्ति पोस्टमास्टर बोला, 'क्या सोच रहे हैं?'

'अरे!' सहसा डाक्टर चौंक कर बोला, 'आप आ गये?'

'हाँ, आ तो गया, परन्तु आप क्या सोचते थे?'

'ऐसे ही...'

'आखिर कुछ तो बताओ,' पोस्ट मास्टर अनुरोध के साथ बोला।

'अच्छा सुनो। मेरे को इस स्थान में रहते चार महीने हो चुके हैं! मैंने आपको पर्याप्ताधिक कष्ट दिया है। मेरा लक्ष्य कुछ और ही है। मैं एकान्त साधन तथा अकट तपश्चर्या करना चाहता हूँ। मैं आज सायंकाल ही इस स्थान को छोड़ दूँगा।'

'परन्तु जाइयेगा कहाँ?'

'जहाँ मुझे तपश्चर्या में सुगमता का अपरिपूर्ण-अभाव ज्ञात होगा।'

'अच्छा, यदि आपका यही निश्चय है तो आपको रोक कर मैं आपके कार्य में बाधक नहीं होऊँगा। यदि आप ऋषिकेश जायें, तो वह स्थान आपकी इच्छा के अप्रतिकूल आपके कार्य में सहायक हो सकता है!'

'क्या कहा?' डाक्टर बोला, 'ऋषिकेश? यह स्थान कहाँ पर...?'

'उत्तर-भारतगत हरिद्वार-सन्निकट मनोरम-हिमांचल-पदरजस्थित यह रमणीय स्थान अपनी चिर-अनुपम-स्वर्गीय महत्ता से अलंकृत हो, साधुओं से युक्त है। गंगा जी उसका स्पर्श करती हैं; मन्द समीर उसे थपकियाँ देता है...'

'बस, बस – वहीं जाऊँगा और अभी।' डाक्टर खड़ा हो गया।

'अभी?' पोस्ट मास्टर आश्चर्य-चकित हो बोला, 'भोजन के उपरान्त चलना।'

'नहीं, अभी और इसी क्षण!' डाक्टर निश्चयात्मक-रूप से विदाई लेते बोला, '*ॐ नम: शिवाय*।'

'मैं भी आऊँ? आपको पथ बता दूँगा।'

'नहीं, नहीं – मैं स्वयं चला जाऊँगा।'

डाक्टर बहिर्गत हो गया द्रुत-गति से। पोस्ट मास्टर देखता रहा, जब तक वह अदृश्य न हो गया।

'अपूर्व महापुरुष!' कह कर पोस्ट मास्टर बैठ गया। कुछ सोचने लगा। उसकी समझ में कुछ नहीं आता था। उसको नहीं मालूम कि यही महापुरुष एक सुदूर-प्रदेश से इस अज्ञात की ओर आ गया है, बिना मानव-निर्देशक के, तो अब इसे किस निर्देशक की आवश्यकता है।

वह विचार में लय हो गया। उसे डाक्टर का महामहत्त्वपूर्ण मुखमण्डल दिखायी देता था। सहसा उसको एक झपकी आ गयी। उसने देखा –

एक नाव नर-नारी, बाल-वृद्धादिकों से युक्त, वर्षा के भयंकर प्रवाह से उद्घाटित, सरिता के गर्भ में निरवलम्ब हो रही है। यात्री समुदाय चिल्ला रहा है। एकाएक – एक महाकाय काषाय वस्त्रधारी महात्मा अपने प्राणों की तनिक इच्छा न कर, नदी में उस तरणी की संरक्षा हेतु कूद पड़े। उनकी कमर में एक रस्सा बंधा था जिसका दूसरा छोर नदीतटस्थित, एक साधु मण्डली द्वारा पकड़ा हुआ था। सहसा ही महात्मा जी तैर कर नाव पर पहुँच गये। उन्होंने अपनी कमर का रस्सा तरणीबद्ध कर दिया। बस फिर क्या था, तटस्थित साधुमण्डली अपने पूर्ण बल से नाव को खींचने लगी। नाव कूलागत-अवस्था को लब्धिभूत हुई। आश्चर्यचकित हो पोस्ट मास्टर चिल्लाया – 'अरे! यह महात्मा तो वही महापुरुष हैं।'

स्वप्न भंग हो गया। पोस्ट मास्टर आश्चर्यचकित हो गुनगुनाया – 'ओह! यह वही अपूर्व महापुरुष थे।'

यह हुई 'अपूर्व महापुरुष' नामक अष्टम कला समाप्त॥

नवम कला

शिवानन्द – पूर्व स्वप्न की ओर!

इन स्वप्नों में सुख जग का है, इन भावों में पागलपन है।
इसी पुरुष में चिता सजग है, पर जग में तो सूनापन है॥

In such dreams of the Great indeed,
Do the seeds of human welfare dwell.
From them do the waves
Of my inspiration swell.
Though in truth, verily nothing exists,
This Soul fully the light of Consciousness manifests.

वह 1924 के जून की प्रथम तिथि थी। ऋषिकेश की चरणदास धर्मशाला में उबासी लेते हुए यात्रियों के मध्य में, एक मन्द 'ॐ' की ध्वनि समस्त प्रात: में एकीकरण को लब्धिभूत हुई।

रश्मिभावन का मृदुल प्रकाश, संसृति के नयनों में जागृति के मोती बिखेर रहा था। कई दिनों की अनवरत यात्रा से अत्यन्त क्लान्त एवं परिश्रान्त, डाक्टर ने उठ कर बाहर देखा। उसे आज नवीनानुभूति का अनुभव हो रहा था। अनेकानेक देशों से आगत दीन-मलीन यात्रियों के बीच में सोने से उसे वह आनन्द प्राप्त हो रहा था, जो इनसे घृणा करने वालों को नहीं। वह मन ही मन परमात्मा को प्रणाम कर रहा था। सड़क पर गुजरती हुई काषाय वस्त्रधारी सेना को देख, उसे अत्यन्त आह्लाद का अनुभव हो रहा था। 'कितना सुखद जीवन है इनका!' कह कर डाक्टर उठ खड़ा हुआ। उस समय उसका वेष दर्शनीय था। सचमुच में, वह अपने शरीर को भूल चुका था।

बाहर आ कर डाक्टर ने वायु से क्रीड़ा करती हुई, परमपुनीत कल्लोलिनी गंगा का मनोहारिणीय दृश्य देखा। वह आगे बढ़ता गया। उसका हृदय गंगा के नयनाभिराम एवं नैसर्गिक-दृश्य का अवलोकन कर, उसमें वैराग्य के तीव्रतर भाव जागृत करने लगा।

'अहा! हाँ! यह वही पुण्य भूमि है', डाक्टर बड़बड़ाया, 'जहाँ अनेकानेक सिद्ध पुरुषों, महात्माओं, योगियों इत्यादियों ने तपश्चर्या कर, संसार के

लिए उज्ज्वल चरण-चिह्न छोड़े हैं। यह वही पावनस्थली है, जहाँ सांसारिक भावनाओं की तिलांजलि दे, अनेक विद्वानों ने अद्वैत-सिद्धि प्राप्त की है। यह जाह्नवी वही है, जो पुरातन काल में थी।'

डाक्टर गंगा के कूलस्थित, एक प्रस्तर पर बैठ कर सोचने लगा –

'सौरभ-श्लथ यह पावन भूमि, हरीतिमा के मंजुलालोक में, सद्यः सौन्दर्य-प्रपूरिता, दिगदिगन्त-सौन्दर्य-प्रवाहिनी, सुन्दर अप्सरा सी मुग्धा, छाया-छवि, प्रणव-प्रतिमा, वसन्तालोक आलोकित, मन्मथ कृत-नव्य-सृष्टि खग-वृन्द-गुंजन-गुंजित, काषाय की मधुरिमा से परिप्लावित संसार की आध्यात्मिक केन्द्रभूता मोक्षपुरी उषा की इस मौन ज्योति में, विहग वृन्दों की लोल वाणी से, भगवन्नामोच्चारण की प्रकाश शिखा से स्वर्णिम हो उठी है, प्रदीप्त हो उठी है। प्रभात के जगाते ही भव्य हो उठी है, अलौकिक हो उठी है।'

'कवित्व-नायिका, यह मोक्षपुरी; भाव-मण्डिता यह स्थली दिशा-विदिशा पर्यन्त बालसूर्यातप-स्निग्ध सौन्दर्य पलकों में विकीर्ण होती, स्वागत उपहार को निखिल अरण्यार्पित कर, और सौरभ सृजन कर, व्योम जगत् में भी सौन्दर्य सृष्टि कर, शिशिरानप-पीड़ित मनुष्यों को चेतना प्रदान कर रही है, और सौरभ-श्री ला कर हरित-औष्ठों पर मुस्करा रही है।'

'चलते-फिरते मानवों से इसका नाम सुनता हूँ, जो शोभनमय एवं यौवन में है। कैसा सुन्दर मिठासयुक्त है इस नगरी का नाम। इस नाम से फूट पड़ती है आध्यात्मिक अमृत की ज्ञान सरिता सारी; दीपित हो उठता है आध्यात्मिक जीवन का विवेक, वैराग्य तथा भक्तिमय भावक-वैभव; खुलता है अखिल ज्ञान एवं शान्ति का द्वार; विकीर्ण होती हैं सद्भावों की स्वर्णिम किरणें; जागृति में दृश्य आते हैं मानवता के तमिस्र स्वप्न।'

'जहाँ कलकल करती एक ओर प्रवाहित होती है एक सरिता। सम्भवतः मानव व्यथा अन्तर्हित-गह्वर से अश्रु-परिवर्तित हो, धारारूप में बह रही हो। अथवा अतीत-स्मृति-विलोड़ित, वह नगरी रूप धारिणी रमणी, वेदनामय उः श्वासों को मुख-गह्वर से प्रस्फुटित करती थी, अपनी अलक-लट छितराये, उन महादैत्यों के चरण तल जो उसे चतुर्दिक घेरे हैं, चित्रित हो कर नत-शीश किये हैं; अथवा सर्व कलुष भंग कारिणी पावनी गंगा, प्रेमवश हो, अपना कर्त्तव्य पालन कर रही हो।'

'अहा हा! यह अस्त व्यस्त अलक लट, सूर्याभा-आभित, चम्पक-द्युतिमान्, दैन्य तमिस्र को आच्छन्न किये, ऋषिकेश की ज्ञान-कन्दरा से

रजनी क्षय कर, सुन्दर, स्वर्णिम स्वर्गिक, नैसर्गिक आध्यात्मिक चेतन-प्रभात का कर्ण प्रियमधुर राग अलाप रही है, इन उड़ते हुए सहस्त्र कोकिल कण्ठों से...!'

गंगा में अनेक साधु स्नान कर रहे थे। सहसा एक रमणी ने स्नान करते हुए, अपनी स्वभाव-सुलभ चपलता के कारण बड़े जोर से चित्कार मचाया। डाक्टर की विचार-धारा भंग हो गयी और परिवर्तित भी हो गयी। एक तो उसे स्वभाव से ही स्त्री घृणित और वैराग्य मार्ग में बाधक जान पड़ती थी और आज प्रत्यक्ष-दृश्य से वह और भी उन्मत्त हो गया।

'धिक्!' उसके मुख से एक स्वर निकला। वह सोचने लगा, 'कितनी अभिशाप है यह नारी मानव को? वह शरीर जो अशुद्धियों से पूर्ण है, सब कृमिमय है, जो स्वभाव से घृणास्पद है, नश्वर है, मल-मूल कोष है, यदि कोई इसमें आनन्द की इच्छा करे तो वह नारकीय है, मूर्ख है। ये स्त्रियाँ सौन्दर्य की अग्नि से युक्त समस्त मानव-समाज को सूखी लकड़ी के समान विदग्ध कर देती हैं। वे सरसा ज्ञात होने पर भी वास्तव में निरसा हैं। वे नरकाग्नि को प्रज्वलित करने वाली सौन्दर्यमयी परन्तु भयंकर लकड़ी की संग्रह हैं। परन्तु फिर भी ये अज्ञानी मनुष्य, काम-किरात-विरचित स्त्री-रूप-बन्धन में आबद्ध हो जाते हैं। ये लोग जानते हैं कि स्त्री दोष-रत्न में महा-रत्न है, परन्तु ये फिर भी काम-विचुम्बित हो, निज स्वरूप को विस्मृत कर देते हैं। ये नहीं जानते कि स्त्री दु:ख बन्धन है। जभी तो उपनिषद् इस विषय की साक्षी देते हैं –

यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा, नि:स्त्री कस्य क्वभोग भू: ।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥

जिसके पास स्त्री है, वह वासना की ओर दौड़ता है, उसकी भोगेच्छा प्रबल होती है। परन्तु उसको भोगेच्छा कहाँ, जिसके पास स्त्री ही न हो। अतएव स्त्री त्याग से सारे संसार का त्याग हो सकता है और संसार त्याग से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। स्त्री सब दु:खों और बन्धन का कारण है। अरे अज्ञानी मानव! देख यह स्त्री अन्य वस्तु नहीं, केवल अस्थि तथा रक्त की प्रतिमा है जो सबको सदा दु:ख देती है, तेरी शक्ति को क्षीण करती है तथा दुष्वृत्तियों को जगाती है। केवल उसको सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिए तू न जाने क्या-क्या कर बैठता है। किन्तु जो भी परिणाम मिलता है, तुझको ही।'

'अरे! स्त्रियों के पीछे-पीछे फिरते तुझको क्या आनन्द आता है? उसमें सौन्दर्य कहाँ है? विचार कर, चिन्तन कर! तब भला फिर कैसे तू भ्रमजाल में फँस सकता है? क्या तू नहीं जानता कि स्त्री के शरीर में जो सौन्दर्य दिखायी देता है, वास्तव में उसकी अन्तरात्मा का प्रकाश है।'

डाक्टर अपने विचारों में इतना तल्लीन था कि उसे अपने पीछे आकर खड़े होने वाले एक तेजस्वी संन्यासी की मूर्ति का आभास न हुआ। वह सोचता चला गया। कभी-कभी बीच में बड़बड़ा भी उठता था।

'यदि किसी रुग्ण स्त्री की ओर देखा जाये तो तुरन्त मालूम पड़ेगा कि वास्तव में उसके शरीर में सौन्दर्य नहीं है। उसकी आँखें बैठ जायेंगी। चेहरा सूख जायेगा तथा कोमलता नष्ट हो जायेगी। फिर क्यों नहीं मनुष्य उसके प्रति आकृष्ट होता? क्यों नहीं उसके सौन्दर्य पर रीझता? कारण तो स्पष्ट है, स्त्री एकदम सौन्दर्यहीन है! मनुष्य मन में सौन्दर्य तथा रूप की कल्पना कर लेता है तथा भ्रामक माया जाल में आबद्ध हो जाता है। उसकी बुद्धि मन के कुविचारों से भ्रमित हो जाती है।'

'यह सब माया के खेल हैं। माया एक अति कुशल जादूगरनी है। उसने शरीर का निर्माण कर, उसके भीतर गन्दगी भी दी है और ऊपर से सुन्दर, चमकदार चमड़े से उसको ढक दिया है। परन्तु अरे भ्रान्त मनुष्य! कब तक इस शरीर से मोहित तथा आसक्त रहेगा? इससे तो अच्छा है कि जब तक शरीर स्वस्थ है और रोग-दोष से मुक्त है, जब तक तू वृद्ध नहीं हुआ है, जब तक तेरी इन्द्रियाँ हृष्टपुष्ट हैं, जब तक उनकी गतियाँ विषय पर विशेष आकृष्ट नहीं हुई हैं, ब्रह्मसाक्षात्कार करने के पुनीत कार्य में लीन हो जा। आग लगने पर कुआँ खोदने से कोई लाभ नहीं होता...।'

पीछे खड़े महात्मा सहसा चौंक उठे। क्योंकि उन्होंने अन्तिम वाक्य सुन लिया था –'अच्छा, दक्षिणी पण्डित ज्ञात होता है। परन्तु सोचता क्या है?' कह कर वे पदध्वनि करते हुए आगे बढ़े।

डाक्टर का विचार-क्रम भंग हो गया। उसने देखा एक तेजस्वी मूर्ति को। प्रणाम कर मौन हो गया। उस महात्मा ने डाक्टर को ऊपर से नीचे तक देखा और कहा, 'किस प्रदेश से आगमन हुआ है पुत्र?'

एकाएक प्रश्न से डाक्टर आश्चर्यान्वित हो गया – 'एक अत्यन्त सुदूर प्रदेश से महाराज!'

'तीर्थयात्रा को आये हो?'

‘नहीं महाराज’, डाक्टर बोला, ‘तीर्थयात्रा को तो नहीं, परन्तु एक महान् उद्देश्य को ले कर आया हूँ।’

‘यहाँ कहाँ ठहरे हो?’

‘कोई निवास स्थान नहीं। पृथ्वी मेरा बिछौना है, अम्बर मेरा ओढ़ना है। प्रकृति मेरा गृह है। वैराग्य, विवेक मेरे साथी हैं। परब्रह्म परमात्मा मेरा पिता है। सन्तोष मेरा भोजन है। ज्ञान मेरा जल है। उद्देश्य मेरी शान्ति है; केवल स्वार्थ शान्ति नहीं – संसार शान्ति।’ डाक्टर चुप हो गया।

‘शान्ति के लिए यहाँ’, महात्मा ने कहा, ‘तुम्हें कैसे मालूम? तुम तो दक्षिण से आते हो न?’

‘हाँ महाराज! कथा बड़ी लम्बी है। एक बालक अपनी उन्नति के लिए, अपने दक्षिण देश को छोड़ कर मलाया के सुदूर देशों में चला गया। परन्तु उसे सांसारिकता से घृणा हो गयी। उसे संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान् प्रतीत होने लगी। संसार का सुख उसे विनाशी ज्ञात हुआ। उसे विचार आया, ‘इनसे दूर भागना चाहिए, अलग रहना चाहिए।’ उसने सांसारिक ताप के प्रचण्ड उत्ताप से उत्तापित विदग्ध मानव को देखा, उसका हृदय द्रवित हो गया। उसको विचार आया – ‘इनको शान्ति देनी चाहिए, इनके दु:ख को दूर करना चाहिए।’ उसने मलाया के प्रदेशों से डाक्टरी की तिलांजलि दे दी और विभिन्न स्थानों में भटकता रहा। किसी ने उससे ऋषिकेश की महत्ता का वर्णन किया। वह आज यहाँ आया है।’

डाक्टर मौन हो गया।

‘तो अब जीवन का उद्देश्य और कहाँ तक जाने का है?’ वह तेजस्विनी मूर्ति बोली।

‘कहीं नहीं’, डाक्टर बोला, ‘जहाँ शान्ति मिलेगी वहाँ।’

दैवात् डाक्टर को एक विचार ने आ दबाया, वह सोचने लगा – ‘मेरा उद्देश्य, संसार के लिए शान्ति का उपार्जन करना है। मैं अपने इस अस्थि-रक्त वाले विनाशी शरीर का बलिदान संसार के कल्याण के लिए करूँगा।’

‘अच्छा’, महात्मा जी को अब समझ में आ गया, ‘संन्यास ग्रहण करोगे?’

‘हाँ, महाराज! इच्छा तो यही है।’ कुछ देर तक स्वामी जी शून्य की ओर देखते रहे और विचारमग्न हो गये। किंचिद् समयोपरान्त, प्रकट रूप से बोले– ‘पुत्र, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। चलो कुटिया में।’

‘चलिए, महाराज।’ दोनों बढ़ गये और सामने के मोड़ में अदृश्य हो गये।

आत्माराम! कहना नहीं होगा कि डाक्टर से जिस महात्मा की बातें हुई थीं, वे एक महान् योगी थे। वे ऋषिकेश में तपस्या करते थे और प्रिय आत्मन्, विशेष प्रसंग की आवश्यकता नहीं कि डाक्टर ने संन्यास दीक्षा ग्रहण कर ली। संसार का डाक्टर, आध्यात्मिक डाक्टरी के कोर्स में आरूढ़ हुआ; आपरेशन को छोड़, सिद्धि की ओर चला। औषधि प्रदान करने वाला डाक्टर, दिव्यौषधि तथा उपदेशामृत द्वारा सबका दु:ख दूर कर, उन्हें शान्ति देने को चला।

वह जून 1924 की प्रथम तिथि थी, जब डाक्टर कर्मपथ की ओर अग्रसर हुआ। वह जून 1924 की प्रथम तिथि का मध्याह्न था, जब वह डाक्टर उपाधि को छोड़, शिवानन्द-रूप में, पूर्व स्वप्न की ओर आरूढ़ हुआ।

यह हुई ‘शिवानन्द-पूर्व स्वप्न की ओर’ नामक नवम कला समाप्त॥

श्री स्वामी विश्वानन्द जी को नमन
जो मेरे सद्गुरु थे
जो साक्षात् ब्रह्म ही थे
जिन्होंने मुझे ‘तत्त्वमसि’ में दीक्षित किया।
कितने कृपालु थे वे
जिन्होंने मेरे वस्त्रों को काषाय रंग दिया,
काली कमली वाले क्षेत्र से
मेरे लिए भिक्षा प्राप्त की,
मेरे साथ दिव्य गीत गाये,
चरणदास धर्मशाला के बरामदे में
मेरे साथ भूमि पर शयन किया
और मुझे आध्यात्मिक शिक्षा दी।
श्री स्वामी विश्वानन्द की जय!
उनकी कृपा हम सबको मिले!

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

दशम कला

चैतन्य ज्योति

ओ चैतन्य ज्योति! निराली।
जलते रहना ज्योति-अमर तुम! कल्पांत-निशा में बनो दिवाली।
सुन्दर-सुन्दर भेंटे ले तुम। सजाते रहना काराम्बर-थाली।
अनन्त-प्रलय के उत्तर तुम। पुनरोदित करना दिन मणि माली।
इसी अम्बर में हो केवल। चैतन्य-ज्योतिमय-सजल दिवाली।।
औ' होवे जग-अम्बर खाली।
ओ चैतन्य ज्योति! निराली।

O thou Light of Consciousness incomparable!
Keep Thou forever Thy blaze imperishable.
Gaily illumining the darkness of age's end.
Man's bountious homage constantly take
And limitless spaces full beauteous make.
When numberless aeons have rolled away,
Raise again the bright monarch of the day.
Do Thou unto this vast infinitude,
The dawn Light of Effulgent Consciousness send.

समय के चक्र ने अनेकों ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि को अपने अतल निलय में विलय कर दिया। अनन्त-मन्वन्तर द्रुत-वेग से समय की अति तीव्र गति के माध्यम में, अनुभूति-भावना को अवशिष्ट-मात्र कर, निस्सीम हो गये। समय के महाभयंकर-झंझानिलाघात ने सहस्त्रों-सृष्टि-रूप नौकाओं को प्रलय के फेनिलमय सागर में विलय कर दिया।

सत्ययुग ने त्रेता को, त्रेता ने द्वापर को, तथा द्वापर ने कलियुग को समय के प्रति अर्पण कर, स्वयं शून्य की राह ली। हँसने वाली आबादियाँ रोने लगीं। अत्यन्त प्रसन्न चित्त मानव, व्यथा सागर में गोते मारने लगा। मानव के हरे-भरे अरमान सूख गये। प्रकृति का सजाया हुआ हृदयासन, परिवर्तन के स्वरूप में आविष्ट हो गया। भक्ति, प्रेम, ज्ञान, कर्म, शिष्टाचार, सौम्य-चरित्रादि

महाविभूतियाँ, कलियुग की जाज्वल्यमान् असत्व-रूप प्रदीप्त शिखा में भस्मीभूत हो गयीं। संसार रूप-आर्द्र-पर्वत मालाएँ फल स्वरूप आज भी अतीत स्वप्नवत् गम्भीर तथा रहस्यमयी-मुद्रा प्रकाशित किये, अपने चिर वैभव पर अश्रुपात करती हैं। असत्य के कारण एक अन्धकार की सृष्टि उत्पादित हो गयी है। चतुर्दिक् झंझावात का बिड़ोलित संगीत गुंजरित हो रहा है।

क्रमश: चैतन्य की ज्वाला तीव्र हो गयी। शंकरादि प्रभृति चैतन्य कणों ने, संसार में प्रकाशदान प्रसारित किया; अनन्ताम्बर में जगमगाये, एक मधुराभा प्रदान कर, ज्ञान की शिखा प्रदर्शन कर, धर्म-ध्वजा को आरोपित कर; और अन्त में काल के वशीभूत हो, अपनी गति में स्थिर हो गये।

अब स्वयं महान् ज्योति का आविर्भाव हुआ। संसार ने उसे देखा; एक महान् प्रकाश के रूप में, एक संरक्षक के रूप में, एक सैनिक के रूप में। भ्रमित पथिकों ने देखा; मार्ग निर्देशक के रूप में; विश्राम गृह के रूप में। अज्ञानियों ने देखा; ज्ञान शिखा के रूप में, नेत्रोत्फुल्लक प्रकाश-किरण के रूप में। सांसारिक रोग से पीड़ित मानवता ने देखा, डाक्टर के रूप में, जीवनदाता के रूप में, अमृत रूप में तथा औषधि रूप में। भक्तों ने देखा, महान-स्वरूप, परब्रह्म, अलौकिक प्रकाशयुत्, अनादि, अनन्त, निज इष्टदेव के रूप में। ज्ञानियों ने देखा, निर्गुण स्वरूप, निरन्तर निष्क्रिय चैतन्य रूप में। परन्तु...

सबने एक दृष्टि से देखा, संसार सागर का नाविक, मानवता के हृदय-मंच का अधिकारी, हिमालय की मनोरम चरणरजों में स्थित रूप परब्रह्म, चैतन्य ज्योति, आनन्द कुटीर का महर्षि, अज्ञानान्धकार विनाशक, ज्ञानयुत्– नहीं, नहीं; स्वयं ज्ञानस्वरूप, अस्तित्व महान् तथा आनन्द स्वरूप, परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती! केवल इतना ही नहीं...!

(एक)

'क्या कहा?' कैलाश नारायण पीछे फिर कर बोला। उसे हॉकी के मैदान को देरी हो रही थी। 'स्वामी शिवानन्द... हाँ, हाँ। आगे कहो।'

'अभी तक आपने क्या सुना?' कुछ झुँझला कर श्याम सुन्दर बोला, 'कभी बात पर ध्यान ही नहीं देते। आज हॉकी नहीं खेली जायेगी।'

'क्यों-क्यों, भला कौन सी घटना घट गयी है, जो हॉकी नहीं खेली जायेगी।' विमला बाधक रूप में बोली, 'चलो कैलाश, हम तो चलें। ये तो

नहीं आयेंगे। इनका मन तो आज श्रीमान् हरकुली के चबूतरे में चलने को जोर मार रहा है।'

'भला वहाँ आज क्या कोई तमाशा है?' कैलाश उत्कण्ठित हो कर बोला, 'परन्तु एडवोकेट चन्दनारायण हरकुली तो तमाशे से प्रेम ही नहीं करते हैं।'

कैलाश, श्याम तथा विमला सीतापुर हाईस्कूल की सप्तम श्रेणी में विद्याध्ययन करते हैं। परन्तु श्याम का आचरण अवशिष्टद्वय से प्रतिकूल भक्ति की ओर ढला है। वह, जहाँ भी धार्मिक सभाएँ होती हैं, पहुँच जाता है। आज उसने सुना कि ऋषिकेश वासी, आध्यात्मिक जगत् के उजवल प्रकाश, श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज रामेश्वरम् की यात्रा से लौटे हैं और उनकी उपस्थिति में श्री चन्दनारायण हरकुली, एडवोकेट के चबूतरे में सत्संग होगा। बस फिर क्या था, उसे वहीं जाने की इच्छा हो गयी।

'नहीं', श्याम गम्भीर मुद्रा में बोला, 'कोई तमाशा नहीं, वरंच आज श्री स्वामी जी का भाषण है।'

'श्री स्वामी जी!' बीच में बात काट कर विमला बोली, 'वही स्वामी जी, जो ऋषिकेश में रहते हैं न!'

'उनके उज्ज्वल-यश से कौन अनभिज्ञ है विमला! समस्त संसार उनके आध्यात्मिक-प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। वे बड़े उदार हृदय के हैं। जो उनको एक बार देख लेता है, बस छोड़ने का नाम भी नहीं लेता। जनता से उन्हें इतना अत्यधिक-स्नेह है कि वे अहर्निश उनकी सेवा करते हैं। तुम नहीं जानती, बाबूजी कहते थे कि उन्होंने ऋषिकेश में 'सत्य-सेवाश्रम-औषधालय' खोला है।'

'हाँ, हाँ! मैंने देखा है', कैलाश विजय की मुद्रा से बोला, 'गत वर्ष मैं स्वरूपा बहिन के साथ गया था। तब उसने मुझे गरुड़ चट्टी जाने वाली सड़क पर, दक्षिण भाग की ओर, एक विज्ञप्ति दिखाते हुए कहा था, यह स्वामी शिवानन्द जी का सत्य सेवाश्रम औषधालय है।'

सहसा उसे एक बात याद आ गयी। 'हाँ, हाँ! स्वरूपा बहिन ने मेरे को एक प्रसंग और बताया कि एक दिन श्री स्वामी जी गंगा के मधुर स्वर में ध्यानस्थित थे। सहसा एक कृश तथा रुग्ण साधु के पदशब्द ने उनकी सीमा का उल्लंघन कर दिया। वे अपने को न रोक कर, उस साधु के पास गये, तथा चरण-स्पर्श कर पूछा–महाराज! कहाँ पधार रहे हैं? उत्तर में साधु ने अपना गमन बद्रीनाथ

को बतलाया और अपनी रुग्णावस्था का विस्तृत वर्णन प्रकाशित किया। सुनते ही कोमल हृदय स्वामी जी ने उसे औषधि प्रदान कर, उसे कुछ योग्य शिक्षा दी। उपरान्त स्वामी जी को विचार आया कि वे अमृतधारा की शीशी देना तो भूल गये। महात्मा जी अधिक दूर नहीं गये होंगे, ऐसा सोच कर स्वामी जी उसी अवस्था में, अमृतधारा की एक शीशी ले कर, उस महात्मा के पथ पर चले। धन्य हो वह महान्, उसने पाँचवें मील पर उस महात्मा का दर्शन कर लिया और एक प्रेमपूर्ण पितृस्नेह प्रदर्शन कर, उसे अमृतधारा की शीशी दी। वह महात्मा आश्चर्यान्वित था कि स्वामी जी ओड़ में अदृश्य हो गये।'

'अजी, तुम तो एक जानो', श्याम बोला, 'मैं कितने ही उदाहरणों का श्रवण कर चुका हूँ।'

'अच्छा, सुनाओ तो श्याम।'

'न', श्याम बोला, 'रात को सुनायेंगे। अभी देर हो रही है। मेरा तो सन्देह है कि भाषण प्रारम्भ हो गया होगा।'

'तो जल्दी चलो', विमला बोली, 'अब विलम्ब क्यों?'

'हाँ, हाँ! विमला उचित बात कहती है,' कैलाश बोला।

तीनों आगे बढ़ गये।

(दो)

'... उत्पत्ति के पूर्व, केवल वह अस्तित्व मात्र व्याप्त था। तब न तो सत् वस्तु थी, न असत् ही। वह वही है, जो प्रलयोपरान्त भी समरूप में रहता है। अन्य सब मिथ्या है, माया है, जड़ है, कल्पना है, असत्य है, अन्धकार है, अस्तित्वहीन है। वही सब का उत्पादक है, परन्तु वह उत्पादन क्रिया से विलग है... ' वह कह रहा था।

'देखो, देर हो गयी,' फाटक के पास श्याम बोला।

'देखो, कैलाश! वही...'

'चुपचाप सुनो!' विमला की बात काट कर कैलाश बोला, 'बाद में सब समालोचना करना।'

'प्रत्येक', स्वामी शिवानन्द जी की वेदान्तिक गर्जना से समस्त धरा कम्पित थी, 'मनुष्य को अन्वय व्यतिरेक द्वारा उसको जानने की लगन लगानी चाहिए, जो सर्वकाल में सर्वस्थित रहता है। अनुभव करो उस सत्य का निर्विकल्प समाधि द्वारा। फलतः तुम माया रहित हो जाओगे।'

'ओ वेदान्तात्मा,' उस ने कहा, 'अन्तः को वशीभूत करो। किसी वस्तु के पीछे मत दौड़ो। किसी सांसारिक वस्तु की आकांक्षा से विलग रहो। जो मनुष्य सर्वाकांक्षा से स्वतन्त्र हो कर अन्तःकरण तथा इन्द्रियों पर साम्राज्य करता है वह उस अन्तराल में ब्रह्मज्योति का दर्शन करता है। उसके लिए न जन्म है, न मृत्यु; न जननी है, न जात; न मित्र है, न शत्रु; न हर्ष है, न शोक; न शुभ है, न अशुभ; न प्रकाश है, न अन्धकार; न स्वर्ग है, न नरक; न जड़ है, न चैतन्य; न सृष्टि है, न नाश; न पिता है, न पुत्र; न जप है, न समाधि; न बन्धन है, न स्वातंत्र्य सुख; न योग है, न साधना; न ज्ञान है, न अज्ञान; न ध्यानी है, न ध्यान; न कैवल्याकांक्षा है, न कैवल्य पद; न स्वामी है, न दास; न सम्बन्धी है, न माता-पिता; न गुरु है, न शिष्य; न विचार है, न अविचार; न यह है, न वह ही। क्योंकि वह इन सब भारभूत शृंखलाओं के अनुभव सागर का तरण कर चुका है। वह उस महान् में स्वयं चैतन्यरूप हो लय हो चुका है। अब क्या इच्छा है उसको? कुछ नहीं।'

'ओ भक्तात्मा! वही एक महान् है। वही सब अस्तित्व का आदिरूप है। देखो उसकी माया को! वेद, पुराण, उपनिषद् उसके साक्षी हैं; स्वयं ससांर उसका साक्षी है; स्वयं वह ही साक्षी मात्र है। परन्तु श्रुतियों ने 'नेति नेति' कह कर निजासमर्थता प्रकट की है। अतः उसको महान् जानो। उसको हृदय में विराजमान देखो। उसकी अनुभव प्राप्ति के लिए रोओ। उसका साक्षात्कार करो। समस्त सुखों को तिलांजलि दे दो।'

'अरे, तुम सुख की कामना कर, दुःख से विलग होना चाहते हो।' वही नाद गरज उठा, 'अनन्त-विश्व का कोना-कोना अन्वेषण की सीमा में परिमित हो जाता है। परन्तु फल क्या होता है कि आप माया की निस्सीमता में लय हो जाते हैं, अज्ञान रूप हो जाते हैं। परन्तु प्रिय पुत्र! इतना नहीं जानते कि जिस सुख की अन्वेषणा में आप तत्पर हैं, वह तो सांसारिक सुख है, जो नश्वर है। वह तो प्रभात के दीपक की नाईं चपल, जल बिन्दु के समान क्षणिक; देश, काल, परिस्थिति के अप्रतिकूल, परिवर्तन का सहोदर है और इससे आपको आकांक्षित सुख की अनुभूति नहीं होगी।'

'आप नहीं जानते,' सिंह गरजता रहा, 'यह माया निर्माण अपूर्ण है। इसकी समस्त वस्तुएँ, चैतन्य के अभाव में निष्क्रिय होती हुई भी, मायामय हो, क्रिया-रूप में दृष्टिगत होती हैं। यथा एकान्त में बैठा हुआ बालक,

पिशाच की कल्पना करता है और यर्थाथत: उसे कल्पना ही सत्य-स्वरूप में दृष्टिगत होती है। परन्तु ऐसा नहीं।'

'नदी के ऊपर तैरती हुई नाव के यात्रियों की प्रतिच्छाया जो जल में देख, मूर्ख अज्ञानी बालक, मनुष्य की सृष्टि करता है, यथावत् अज्ञानी-जन, मायावश हो असत्य की सत्यरूप में सृष्टि करता है, क्षणिक सांसारिक सुख को ही अपने जीवन का वास्तविक सुख समझता है।'

'ओ प्रकाश पुत्र!' मंचस्थित, वह काषाय-महान्, कोटि सूर्यसमप्रभामय था। 'सच पूछो, संसार में सुख लेशमात्र भी नहीं है। देखो, ऐश्वर्य एवं सखांकित-पोषित अस्थिरानन्द की केवलावस्था में आरूढ़ मानवों के अन्तर गह्वर में, दु:ख, पीड़ा एवं वेदना वर्तमान है। क्यों, क्या कारण है? क्या धन-सम्पत्ति से शाश्वत सुख प्राप्त हो सकता है? नहीं, कभी नहीं! यदि धन-सम्पत्ति शाश्वत शान्ति प्रदान कर सकती तो वर्तमान धन कुबेरों तथा नृपतियों के हृदय में अशान्ति क्यों है? यदि धन-सम्पत्ति में ही वास्तविक सुख है तो आज महा-धनाढ्य क्यों रो रहे हैं? कारण स्पष्ट है कि धन-सम्पत्ति से पारलौकिक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।'

'देखो!' महा-आह्वान हुआ, 'इस जगत् में मनुष्य असन्तुष्ट, निराश और अशान्त है। आप इस बात का अनुभव करते हैं कि आपको किसी वस्तु के अस्तित्व का अभाव है। परन्तु आपको अभाव का वास्तविक कारण ज्ञात नहीं होता। आपको जिस त्रुटि या अभाव का अज्ञातानुभव होता है आप उसकी पुष्टि, तुष्टि और शान्ति, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति में ही प्राप्त करने की आशा करते हैं। परन्तु जब आपकी सारी सांसारिक आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाती है, तो भी आप अपूर्णता का अनुभव कर नैराश्य मग्न हो मायापाश में आबद्ध हो जाते हैं। आपको इस मूर्ति में सुख का लेश भी नहीं प्राप्त होता। आप संसार के सब कल्पित-सुखों की अनुभूति करते हैं, परन्तु आप मृग-मरीचिका के उदाहरण ही बने रहते हैं। आपको सच्ची शान्ति और तुष्टि नहीं होती। अब आपको अनुभव होता है कि यह विश्व केवल कल्पना-कलोल है। वह मुझे शाश्वत सुख तो क्या, सुख का लेशमात्र भी प्रदान नहीं कर सकता है। अब आप अन्य उद्‌देश्यों से सुख की प्राप्ति चाहते हैं। परन्तु क्या आप उसका स्वल्पमात्र भी अनुभव करते हैं? नहीं। अब जा कर आपको कुछ अनुभव होता है कि ये वस्तुएँ व्यर्थ ही थीं; क्योंकि वे आपको सच्चे सुख की स्फूर्ति का कण भी नहीं प्रदान कर सकीं।'

'ओ अमृत-पुत्र! *यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखं; भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति* अर्थात्, जो पूर्ण है वही सुख है। जो अल्प है, उसमें सुख नहीं है। भूमा ही सुख है, भूमा को ही जानना चाहिए। हे भगवत्! भूमा का ही अन्वेषण करना।'

'अरे! आप नहीं जानते कि आपकी अशान्ति का मूल कारण आत्म-ज्ञान के अभाव में, चिर-संगी 'आत्मा' के सुन्दर सहयोग से वंचित रहना है, जो आपकी हृदय गुहा में नित्य-विराजमान है, जो सर्वदा आपको स्वयं में लिपटाये हुए है। यदि आप भी सच्चे हृदय से उसके अन्वेषक बनो, यदि आपको उसकी वास्तविक आध्यात्मिक पिपासा हो, तो आपको कुछ अप्राप्त नहीं करेगा। आत्म-साक्षात्कार के उपरान्त कोई भी ऐसी वस्तु नहीं रह जाती है, जो अपूर्ण रहे।'

'*एष आत्माऽपहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपास: सत्यकाम: सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजां अन्वा विशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपद य क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीविन्ति* – यह आत्मा, जिसे पाप छूता नहीं; अव्यय, अजर, अमर, शोक और क्षुधा-पिपासा रहित; सत्यकाम और सत्यसंकल्प है। इस अविनाशी परम तत्त्व की खोज सबको करनी चाहिए। इसको ही समझना चाहिए; क्योंकि इसको जानने के बाद कुछ भी अविदित नहीं रह जाता। इसका ज्ञाता सर्व-लोक को प्राप्त करता है, और उसकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।'

'अब स्पष्ट है कि जिस सुख के अन्वेषण में समस्त मानवता है, वह केवल भ्रम है। ओ अमृत पुत्र!' उसके स्वर में प्रवाहन गति का मृदुल उच्छ्वास था, 'अब भी तो जाग, नेत्र खोल, विवेक बुद्धि को विकसित कर। नित्य, निरुपाधिक, निरतिशय आनन्द केवल आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार पर ही अनुभव-जन्य हो सकता है। इहलौकिक विभूतियों से विरक्ति होने पर ही वास्तविक तथा असीमानन्द-प्रपात का चामत्कारिक-दर्शन हो सकता है। अतएव ऐहिक भूतियों से विपरीतगम्य हो, उस चैतन्य स्वरूप, सर्वसाक्षी, परम पिता भगवान् की व्यापकता में व्यापक हो जाओ। वैराग्य की भावना का अर्द्धोन्मुख पुष्प तीव्रेच्छा रूपी जल से विकासावस्था में परिवर्तित कर दो। वैराग्य ही आध्यात्मिक-पथ का उद्गम-क्रोड़ स्थान है और यही आपको सुख के अपरिमित अन्तराल में, अनुभव-सागर की वीचि-हिलोरें दिखायेगा।'

'प्रिय स्वरूप! अज्ञानाबद्ध-मानव ही सुखेच्छाबद्ध हो, इतस्तत: भ्रमजाल में विलाप करता फिरता है। वह धन-सम्पत्ति, स्त्री, सन्तान, नाम, यश को निज-जीवन के लक्ष्य की झाँकी बना कर, आत्मसुख परम शान्ति, अक्षयानन्द तथा आध्यात्मिक-ज्ञान को भ्रम के क्षितिज में ही सीमित कर लेता है। वह इन विषयों की आलोचना को मिथ्यावाद कह कर, सन्तोष कर लेता है। किन्तु यह निश्चित है कि पुरुषार्थी व्यक्ति निजोद्योग द्वारा स्वसंस्कारोच्छेदन करने में पूर्ण समर्थ रहता है। मनुष्यों की परिमिति परिस्थितियों तथा अवस्थाओं में शृंखलित नहीं। वह निज प्रारब्ध नायक है। सांसारिक मृग मरीचिका में पथहीन, लौकिक कार्यों में व्यस्त मनुष्य को यदा-कदा विवेक तथा शान्ति की रश्मियों से मिलन होता है तो उसके जीवन की लौकिक-संकीर्णताएँ, निशा की नाईं उच्च समस्याओं के प्रकाश में परिमित तथा सारगर्भित हो जाती हैं। उसके हृदय नाविक के द्वारा संसार-सागर की यात्रा का संकल्प-विकल्प होता है। उसके हृदय में एक क्षीण ज्योति का आभासजन्य-अनुभव, उत्पत्ति के मंच पर आरूढ़ होता है। 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, यह उत्पत्ति किस आरम्भ की श्रेणी से अवरोहण गति को प्राप्त हुई है?' वह पुरुष तन्मय हो जाता है। वह सत्यानुभव के प्रत्यक्ष-द्वार में प्रवेश करता है। उसका अन्त:करण विवेक बुद्धि के कुसुम में अलंकृत हो जाता है। अन्तत: वह उस महान् गति को पूर्णरूप में अनुभव करता है, जो सुखरूप है; जो स्वयं सुख है, आनन्द है, ज्ञानमय है। सहसा ही वह कहता है, 'मैं संसार की आत्मा हूँ, मैं पूर्ण हूँ, मैं स्वयं सुख हूँ। मैं भय-कालातीत, भयावस्थातीत, निष्क्रिय, परन्तु सर्वोत्पादक चैतन्य-स्वरूप हूँ। मैं पंचभूत नहीं, अत: भौतिक देह भी नहीं। किन्तु सर्वसाक्षी मुक्तात्मा हूँ। मैं लहर, फेन, समुद्र, चन्द्र, चन्द्रिकादि, किसी से भी भिन्न नहीं; मैं सर्वोत्पादक अद्वैत आत्मा हूँ।'

'मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। मैं आपका सेवक हूँ। मैं आपका पुत्र हूँ, पिता हूँ। मेरा जन्म आपकी सेवा करने को हुआ है। मैं तुम्हें प्रोत्साहन दूँगा, आगे की ओर बढ़ाऊँगा। आप पथ से भ्रमित हो जायेंगे, तो मैं आपका पथ निर्देशन करूँगा। इस अगाध संसार में निमग्नोनमुख, तुम्हें ऊपर उठाऊँगा। ओ सुशील। मैं तेरा स्वयं हूँ, मुझे न भूल। जहाँ-तहाँ तू भ्रम के चक्रव्यूह में पड़ेगा, मैं तेरे को राह बताऊँगा। जहाँ-तहाँ तू मेरा स्मरण करेगा, मैं उपस्थित हो, तुझे सान्तावना दूँगा। मैं तुम्हें आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य प्रदान करूँगा। मैं युद्ध कर रहा हूँ; तुम्हारे स्वातन्त्र्य सुख के लिए – राजनैतिक नहीं, परन्तु आध्यात्मिक।'

‘उठो! जागो!! मेरे स्वरूप!!! अज्ञान-निशा का अन्तिम प्रहर भी बीत चुका है। मैं कुक्कुट, अपने आह्वान के साथ ज्ञान-प्रत्यूष का नवल-सन्देश लाया हूँ और तुम्हारे कान फूँक-फूँक कर कहता हूँ, उठो! जागो!! जप करो!!! उसका नाम-स्मरण करो। उसकी अनन्त-निर्गुण-व्यापकता का ध्यान करो। वह व्याप्त है; पावस की शुभ-हरियाली में, कुसुम कली की शुचि प्याली में! वह पूर्ण है; उषा काल की शुभ लाली में तथा तरुवर की डाली-डाली में। वह अपूर्णत्वाभाव प्रदर्शन करता है; कवि-उर के नित नव क्रान्त में, भावुक जन के हृत स्पन्दन में! वह एक है; रुचिर-लता के तरु-बन्धन में, मुग्ध शिखि के शुचि-नर्तन में!’

‘उसको देखो! निर्जन में दीपशिखा सा, निशि में उषा की मृदुल-रेखा, उर में उसे करुणा सा, आँसू सा उसको दृग में। उसके आने की प्रतीक्षा में हृदयासन को सुसज्जित तथा पावन कर लो। देखो, मानव के अरमानों की कलियाँ, करुणामय से करुणा का जल ले, प्रति-दिवस पलकों में उपहार लिये, सकुचाती हुई आँसुओं से सिंचित होवें। ओ पागल, उस मिलन की याद में रोओ।’

‘वह देखो, ज्ञानेश। अब मधुर-मधुर सुनहली ऊषा सुन्दर आत्मा-गगन में आ गयी है। सारा जगत् पुलकित हो उठा है और ऊषा के झिलमिलाते हुए मोती समस्त गगन में व्याप्त हो गये हैं। पुष्प विकसित हो गये हैं। पत्र पादप-मिश्रित हो, सुख संगीत का गान करते हैं। वह निरखो, मेरा आत्म-संगीत, कल-सुधा से अखिल वसुधा को मन्थर समीर की झकोरियों में स्वर्णिम करता है।’

‘यही जागृति है, यही आह्लाद है। यही सुख है, यही आनन्द है। यही ऊषा है, यही चेतना है। यही प्रकाश है, यही किरण है। यही रूप है, यही सौन्दर्य है। यही लक्ष्य है, यही प्राप्ति है। यही प्रभा है, यही शिखा है। यही स्पर्श है, यही अनुभव है। यही मधुर है, यही मृदुल है। यही अम्बर है, यही प्रत्यूष है। यही सुहर्ष है, यही रव है। यही चैतन्य है, यही स्वर्णातप है। यही संगीत है, यही सुधा है। यही स्मृति है, यही विस्मृति है। यही वसुधा है, यही स्वर्णिम है। यही समीर है, यही चांचल्य है। यही दिगन्त है, यही लालिमा है। यही प्राण है, यही चेतन है। यही आत्मा है, यही जीव है। यही माया है, यही मानव है। यही अलि है, यही छवि है। यही वैभव है, यही लोलुप्त्व है। यही आशा है, यही उल्लास है। यही शुचि है, यही सुन्दर है। यही महान् है, यही वह है। यही शिव है, यही कान्त है। यही ब्रह्माण्ड है, यही उत्पत्ति है।

यही अंकिम है, यही विश्राम है। यही अधर है, यही चुम्बन है। यही माता है, यही ममता है। यही पिता है, यही पोषक है। यही शुष्क है, यही वृक्ष है। यही हरित है, यही वृक्ष है। यही पूर्ण है, यही पूर्णता है। यही पुरुष है, यही प्रकृति है। यही द्वैत है, यही अद्वैत है, यही द्वैताद्वैत है, यही द्वैताद्वैत-विहीन है। यही विशिष्टाद्वैत है, यही शिवाद्वैत है। यह परम है, यही पावन है। यही राम है, यही कृष्ण है...।'

'केवल इतना ही नहीं, मानवता पर प्रलय के मन्वन्तर ग्रास-रूप हो जायेंगे। परन्तु अन्त नहीं मिलेगा। संसार केवल अनुभूति अवस्था में शेष रह जायेगा। परन्तु अन्त नहीं मिलेगा। अतः प्रत्येक का कर्त्तव्य गहरे पानी में पैठना है।'

'उठो! कमर बाँधो। वैराग्य का बाना पहन कर, नाम-रूप अस्त्र ले, रणस्थली में विजय घोष को प्रतिनिनादित कर दो। आन्तरिक शत्रुओं के दिल दहला दो। सच्चा-सुख आप में है। अमर आत्मा आप हैं। इस छोटी स्वार्थपरता को विच्छिन्न कर, दिव्य मार्ग को ग्रहण करो और अमरत्वामृतपान करो। बस, बस! वह देखो। अज्ञात-प्रदेश में लहरें व्याप्त हैं। उठो, अपने पद को प्राप्त करो तथा असीम ब्रह्मादिक-पद पर शान्ति पाओ।'

एक महान् आकस्मिक शान्ति के वातावरण में उपस्थित-जनता तन्मय हो गयी! एक तीव्र-विद्युत् ने उन्हें आदर्श सागर में निमग्न कर दिया।

'अपूर्व-महापुरुष हैं!' सिर हिलाते एक सज्जन बोले।

'अजी', पास ही बैठे श्यामसुन्दर ने ये शब्द सुन लिये। वह बोला, 'महापुरुष ही नहीं, अपितु उससे भी परे हैं।'

सहसा उन सज्जन का ध्यान उस बालक की ओर आकृष्ट हुआ। 'अरे, तुम इन्हें पहचानते हो? ये कहाँ से आते हैं?'

'क्या आप इन्हें नहीं जानते हैं?' विमला ने उत्तर दिया, 'ये ऋषिकेश के परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी हैं और...।'

'सुनो भी, स्वामी जी गाते हैं।' कैलाश बात काट कर बोला, 'वार्तालाप बाद में करना।'

बातें समाप्त भी नहीं हुई थीं कि एक सिंहनाद ने, एक शंख-घोष ने, एक वीणा ने, एक मधुर-स्वर-लहरी ने, एक संगीत ने, एक कीर्तन ने सबके मर्म को स्पर्श कर दिया। कीर्तन की मृदुल-हिलोर, तरंगित फेनों की नाईं, उस चबूतरे में आँखमिचौनी खेल रही थी! वे गाते थे...

आनन्दोऽहम्, आनन्दोऽहम्, आनन्दम्, ब्रह्मानन्दम्॥

सचराचर परिपूर्णशिवोऽहम्
सहजानन्दस्वरूपशिवोऽहम्
व्यापकचेतनआत्मशिवोऽहम्
व्यक्ताव्यक्त-स्वरूप शिवोऽहम्
आनन्दोऽहम्, आनन्दोऽहम्, आनन्दम्, ब्रह्मानन्दम् ॥1॥

नित्य शुद्ध-निरामय-सोऽहम्
नित्यानन्द-निरंजन-सोऽहम्
अखण्ड-एकरस-चिन्मात्रोऽहम्
भूमानन्द-स्वरूप-शिवोऽहम्
आनन्दोऽहम्, आनन्दोऽहम्, आनन्दम्, ब्रह्मानन्दम् ॥2॥

असंगोऽहम् अद्वैतोऽहम्
विज्ञानाघन-चैतन्योऽहम्
निराकार निर्गुणचिन्मयोऽहम्
शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपोऽहम्
आनन्दोऽहम्, आनन्दोऽहम्, आनन्दम्, ब्रह्मानन्दम् ॥3॥

असंग स्वप्रकाश निर्मलोऽहम्
निर्विशेष चिन्मात्र केवलोऽहम्
साक्षी चेतनकूटस्थोऽहम्
नित्यमुक्त स्वरूपशिवोऽहम्
आनन्दोऽहम्, आनन्दोऽहम्, आनन्दम्, ब्रह्मानन्दम् ॥4॥

संगीत बन्द हो गया। वह पुन: बोला –

'अहा हा! परमात्मा का नाम कितना अमृतवत् होता है और कैसा दिव्य शक्तिशाली होता है। उसका स्वर वर्णमय है, रूपमय है तथा स्वरूपायुक्त है। यह वही नाम है, जिसके बल से प्रह्लाद को चटचटाती वह्नि-ज्वालाएँ तक हिमवत् अनुभवगत हुईं। यह उसी नाम का प्रताप है, जिसके बल से रामेश्वर के सागर-वक्ष में प्रस्तर तैरते थे। वह उसी भगवन्नाम की अपूर्व शक्ति है, जिसने तस्कर रत्नाकर को ऋषि-आचरण में परिवर्तित कर दिया था। वाल्मीकि, जगाई, और मधाई को भक्तरूप में। यह भगवन्नामोच्चारण

वही उच्चारण है, जिसके बल से पंच वर्षीय बालक ध्रुव ने अपने इष्टदेव के दर्शन किये थे।'

'अत: अपने अन्तर कोर से उसका गुणानुवाद कीजिए। उसमें विलय हो जाइए। उसमें स्थापित हो जाइए। यदि आप आत्मानुभव में विलम्ब करते हैं, तो आप मृतक हैं। विजय हो उस महान् की, जो हमें सर्वदा आयुष्मान् रखता है। पुन: विजय घोष है उस नाम को; जो संचारित करता है – असीम आनन्द, महान् शान्ति तथा अमरत्व। धन्य हो वह पुनीत स्थली, जहाँ संकीर्तन-सम्मेलन होते हैं। पुनीत है वह स्थली, जो भागवतों के चरणों से पवित्र होती है। पुन: धन्य हैं वे, जो नित्य संकीर्तन करते हैं तथा अत्यन्त विजयनाद है उनको, जो संकीर्तन-सम्मेलन की नींव जमाते हैं।'

उन शब्दों का घोष सुदूर-क्षितिज की जगमगाती तारिकाओं से अठखेलियाँ करने लगा। अम्बर के अंगारे, अपने बिखरते अरमानों की पोटली बाँध अपने को भूल गये। वे समस्त जगमगाते हुए अरमान, उन मानवों पर आ गये जो परिव्राजक-रूप में परिवर्तित, आत्मा के डाक्टर की रंगीली दुनियाँ में मस्त हो रहे थे।

शशधर की मृदुल-मुस्कान ने ऊपर से देखा, सीतापुर के दैवी-चमत्कार से आच्छादित-चबूतरा; अज्ञान के वशीभूत हो मिश्रित हो गया – उस मानव के आह्लाद में। सीतापुर की जनता के अकुलाते हुए, आध्यात्मिक पथारोहियों ने सामने देखा। क्या...?

एक महान्-तेजस्वी मुखमण्डलमय वेदान्तमूर्ति, योगीराज-पथज्ञाता-भक्तराज, कीर्तनप्रेमी, आध्यात्मिक केशरी श्री शिवानन्द-चैतन्य ज्योति!

नि:सीमाम्बरस्थित-तारक एक दूसरे से मानो कहते थे...'अरे, वही विद्यार्थी।...वही पुन: डाक्टर।' सहसा शशधर आश्चर्यान्वित हो बोला, 'श्री शिवानन्द-चैतन्य-ज्योति।'

यह हुई 'चैतन्य ज्योति' नामक दशम कला समाप्त॥



एकादश कला

आनन्द-कुटीर से प्रकाश!

जब दैन्य, ताप तथा मृत्यु-भय रूप-सन्तापानुभव, मानवता के पग-पग में बाधक होता है; जब-जब वह नैराश्य-दृष्टि से पुकार उठता है; जब उसकी अवस्था निर्देशन की कामना करती है, तब-तब एक महान्, आनन्द कुटीर के विद्युत-गृह से प्रकाश को उदयीभूत करता हुआ, उन्हें देदीप्यमान् प्रकाश से अस्तित्व, ज्ञान तथा आनन्द का पथ निर्देशित करता है।

When poverty, disease and the fear of death–
These agonising experiences of man,
Under the thraldom of nature–
Overtake him at every step forward;
He cries out in despair;
And looks askance for help and guidance
And there could be seen
An Effulgent light of Consciousness
Emerging from the Power-house of
Anand Kutir,
Showing him the way to–
Existence, Knowledge and Bliss.

संसार को एक महापुरुष की आवश्यकता थी, जो मर्त्यलोक की भारभूत शृंखलाओं की कड़ियाँ तोड़ कर क्षत-विक्षत कर दे और धर्म की पताका का आरोपण कर दे। धरिता को एक सैनिक की आवश्यकता थी, जो अधर्म तथा अनीति का समूलोच्छेदन करता। जगती को एक परिवर्तक की कामना थी, जो अर्द्धोन्मुख गुटिका को पलट देता। संसृति को एक प्रियतम की आकांक्षा थी, तो उसे सन्तोष दिलाता। भूमाता को एक पुत्र की इच्छा थी, जो उसे सुखी करता। जगज्जनी को एक लाल की अन्वेषणा थी, जो आदर्श होता।

मानवता पथ को भूल गयी। तमस्विनी के कारान्धकार में वह निज-पथ-परित्यक्त कर, विभिन्न कल्पनाओं के मध्य, सुन्दर पथ की सृष्टि करती हुई,

भौतिक गह्वर में अवनति के हिंसक प्राणियों से आच्छायमान् हो गयी। आध्यात्मिक पथ शून्य हो गया। आध्यात्मिक केन्द्र खण्डहर-सृजन कर, विध्वंस की परिमा उल्लंघन कर गये। वैकुण्ठ-धाम में सुख की मधुरिमा के मध्य दर्शन करतीं पारलौकिक मूर्तियों ने यह प्रलयकारी लीला देखी। प्रकृति ने कहा – 'तुमसे पहले स्वरूप के समावेश की लीला निर्गुण को शिवानन्द-रूप में आविष्ट कर चुकी है।'

'हूँ', महाविभूतियों ने आश्चर्य माना।

'नहीं, तो क्या अपने वचन असत्य हैं?' उसने कहा – 'वह देखो! संसार के तापोत्तापित-जीवों को शान्ति पहुँचाने वाले महान् की लीला! दर्शन करो, संसृति की आँखों में जागृति-स्फुरणोत्पादन करने वाले आदर्श की कर्म-दर्शिणी! देखते नहीं, जागृत के अभिनेता, अज्ञानान्धकार-नाशक, परम सत्य, आध्यात्मिक-स्फूर्ति, सेवाभाव-वेद्य, प्रेमावतार, ज्ञानगम्य, आदि-महर्षि धर्मोपदेशक, अविश्वासोच्छेदक, वैराग्य-शिक्षक, स्वयं-अनुभवगम्य, समदर्शी, सत्यपथ के निर्देशक, आदर्श-शिक्षक, समवर्ती, विश्व-पूजक, विश्व-पूजित, योग-दर्शन-प्रचारक, वेदान्त-वक्ता, गीतोपनिषद्-पारंगत, अष्टावधानी, सर्वदा-स्व-स्वरूपानुसन्धानशील, योग-निष्ठा-निमग्न, दयासागर, कल्याणकारी, सच्चिदानन्द स्वरूप, सदाचारशील, सुप्रभात प्रदाता, जगत्कारण-सत्स्वरूप-चित्स्वरूप, जगद्व्यापक, मोक्ष-साम्राज्य-दाता, भव-व्याधि-निवारक, परब्रह्म स्वयं चैतन्य, चैतन्य-ज्योति ममोत्पादक मेरे प्रभु को? तो हृषिकेश में काषायवस्त्रयुत् निवास करता हुआ; मेरा तो क्या, श्रुति भी जिसे 'नेति-नेति' कह कर छोड़ देती है, सहस्त्र-शारदाएँ जिसको अनुभव गम्य भी नहीं कर सकती हैं, संसृति में परिवर्तन की बाढ़ विबाढ़ित कर रहा है।'

'क्या?' महाविभूतियों ने आश्चर्य माना।

'तुम्हारी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। तुम्हारी वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। तुम्हारा अनुभव उसकी सीमा स्पर्श नहीं कर सकता। जिसने मेरे को कारण बना, तुम्हारी तथा अखिल भुवनों की सृष्टि की है! परन्तु वह निष्क्रिय है। जिसने रज से पंच-महाभूतों का सृजन किया है। जो त्रयकालातीत है। जो सर्वदा शान्तिरूप हो, उससे विमुक्त और अस्पर्श है। जिसने राम, कृष्ण की लीला दिखायी। जिसने वसिष्ठ, शुक, व्यास सदृश महानों की प्रकृति की। जो अकर्ता है। जिसने शंकर-प्रभृतियों की जीवन गाथा संसृति

के विलीनोन्मुख-लहर में अंकित कर दी। वही स्वयं संसार में स्वरूपाविष्ट है। जो स्वतन्त्र तथा निर्विकल्प है, वही आज सगुण से घटाकाशवत् शोभित है। जो निर्गुण और वर्णनातीत है, वही देखो! नीचे शिवानन्द रूप में।'

'आश्चर्य!' महाविभूतियों ने नेत्र-विस्फारित कर दिये।

'केवल यही नहीं। मेरी माया ने प्रभु के स्वरूप की सेवा के लिए, उसके अनुसरण के लिए, केवल दर्शन-मात्र, निमित्त-मात्र बना कर अनेकों भूतों की सृष्टि की है; जो उसका अनुसरण कर, उसका धर्म, उसका उपदेश, उसके कर्म-रूप की फैनिल्य वीचियाँ, इस अनन्त में विस्तृत कर देंगे। उसने सांसारिक सिद्धान्तों से ही उसका मूलोच्छेदन करना है। उसने दिव्य संस्थाएँ स्थापित कर, सबको चैतन्य स्वरूप का अनुभव कराना है।'

'कैसे?' दिव्य ज्योतियों ने पूछा।

'देखते रहो! आध्यात्मिक-विद्युत-संचालक-गृह ऋषिकेश को, जहाँ मानवता को शीतल करने की लीला खेली जा रही है। जिसमें मैं प्रधान हूँ, वह तो केवल साक्षी-मात्र है। मैं ही अभिनेता हूँ। वह तो केवल शुद्ध-साक्षी है।'

'बहुत सुन्दर!' दिव्य ज्योतियाँ सन्तुष्ट हो गयीं।

'केवल इतना ही नहीं...!'

'तब कितना?'

'देखते रहो!' उत्तर मिला, 'परन्तु कभी अन्त नहीं होगा; नेति-नेति – 'केवल इतना ही नहीं, केवल इतना ही नहीं' ही दृष्टिगत एवं श्रुतिगत तथा अनुभवगत होगा!'

महान् ज्योतियों की बाँछे खिल गयीं! साथ-साथ आँखें भी। वे मुस्करायीं– 'अच्छा, देखेंगे उसको!'

'किस को?' प्रश्न हुआ।

'जो लीला करता है', विभूतियाँ बोलीं।

'नहीं, जो लीला का साक्षी-मात्र है।'

'साक्षी-मात्र...?'

'हाँ, लीला का मूक साक्षी-मात्र।'

* * *

शरद ऋतु के कुहासे से परिवेष्टित-प्रभात ने प्रकृति में रंग डाल कर मधुराभिनन्दन किया। ऊषा अरुण-औष्ठों पर मुस्करा रही थी। अक्षय रत्न-कलश ले, शरद् ने वसन्ताम्बर को निखिलोपहारार्पित किया। सद्य-

सुरभि-सम्पन्ना-नैसर्गिकाभा-वसन्त-मधुरिमा के मृदुलोक में, क्षितिज पर्यन्त सौन्दर्य-सृष्टि करती हुई, वासन्ती आभा से हँस रही थी। सहसा उदयाचल में बालारुण ने हँसते-हँसते वसन्त का अभिनन्दन-गान सहस्त्र-काषाय-कोकिल-कण्ठों से किया। प्रकृति एक युग से साध लिये, अखिल पुष्पमय अपने 'जीवन' राह देख रही थी, प्रसन्न हो उठी। शरत्कालीन उदीचि-पथ, जो तिलक-शून्या रमणी की नाईं अप्रिय प्रतीत हो रहा था, सो अब विशद विभामय छवि-दीपक से पुनरुज्जविलत हो उठा। शीताभा से प्रत्याभित नैसर्गिक नयनाभिराम-दृश्य मनोहर केलियाँ करते हुए; कवि-कल्पना-सिन्धु में वीच विहार सा कर रहे थे। उस को देख, सहसा स्मरण आ जाता था; 'सुस्पष्ट रात्री, सुविताप चन्द्रः सुस्पर्श्यं प्रातः भुवनेऽपि वन्द्यः। सुवि आतपों से परिपूर्ण सारी, वासन्त्य ऊषा, निशि पीत चन्द्रः॥'

विजन वन में अलसायी हुई वल्लरियाँ, जो सुहाग से थकी हुई थीं; स्नेह-स्वप्न में पूर्णरुपेण निमग्न, स्वप्नों की छाया का अम्लान दृश्य लिए कह उठीं – 'स्वागत है तेरा वसन्त।' पल्लव-दल भी शिशिरातप तुहिन-बिन्दु की लड़ियों का साज त्यागने की आकांक्षा करते हुए, जागृत हो गये।

सुन्दर चित्रिणि-सम, मुग्धा, विमल-छाया, प्रकृति-किशोरी, जाज्वल्यमान् नैसर्गिक छवि-दीपक से धरिताऽऽलय को आलोकनार्थ प्रस्तुत हो गयी। वसन्त ऋतु मनोहर चोला पहिने, होलियाँ खेलता हुआ सहस्त्र काषाय कण्ठों से अपना मंगल गान सुनता हुआ; शिवग्राम ऋषिकेश में नव-विभा, नवल-स्फूर्ति, नूतनोत्तेजना का स्त्रोत बहाता हुआ, अपने स्वामी मन्मथ की आज्ञा के अनुसार आ पहुँचा। सम्भवतः सुप्त मानवता को जड़ता की तपश्चर्या में लीन देख कर उसे जागृत करने आया हो।

शिशिर ऋतु ने जैसे-जैसे अवसान के अगाध जल में अवरोहण करना प्रारम्भ किया, त्योंहि उसे वसन्त रूपी मणि प्राप्त हुई। प्रकृति ने वेष परिवर्तन कर लिया। कुहासे का सित आंचल छोड़, केशरिया बाना पहिने, वसन्त से युद्ध साज सज्जित किया। तपस्वियों की परीक्षा का समय आ पहुँचा। संसार विमुग्ध हो गया। सुन्दर अक्षय रत्न कलश ले, वसन्त ने प्रकृति में होली खेल दी। ऊषा के अरुण अधरों में मुस्कान प्रस्फुटित हो गयी। कवि का संसार कल्पना के सागर में डुबकियाँ खाने लगा। विविधि विधि के विहग-वृन्द, स्व-कोकिल कण्ठों से मलार राग गाने लगे। सुन्दर-सुन्दर तितली अपने नीले-पीले-रक्त-रजत-पर विस्फारित किये, सुन्दर अप्सरा सी नीलाकाश

की अनन्त सीमा में उड़ कर सुदूर क्षितिज में समासीन सी हो जाती थी। सहसा कवि के मुख से निकल पड़ता था –

हे कविरूपिणी, सुन्दरप्रतिमे, हे गतिशीले, परम उदार।
भ्रान्त भंवर में मानव तरणी, प्यारी तितली! पार उतार॥

सत्य ही तो है, एक ओर से कोकिलाएँ काषायमय हो, संसार में विस्मृत-रूप हैं। दूसरी ओर शरद ऋतु का मृदुल-आवरण अनन्त-क्षितिज के अवदात-अधरों में प्रथम-प्रहर की निद्रा का भ्रान्तिपूर्ण-आवाहन कर रहा है। एक ओर प्रभात की प्रथम-रश्मि, आनन्द-कुटीर के प्रांगण में आँख-मिचौनी खेल रही थी, तो दूसरी ओर (पाश्चात्य प्रदेशों में) शान्त-निभृत-सूनी वासन्त्य-सन्ध्या, अलसायी-वियोगिनिसी, पश्चिमाँगन में मेघ-रूपी-अलक-लटें छितराये, दीप-नृत्य कर, निर्वाणोन्मुख-मुस्कान से हँस रही थी, क्षितिजोष्ठों पर। नील-पीत-विविधवर्णी-पक्षी भी सौम्य-नृत्य कर, सुस्ताने बैठ चुके थे। कुररी भी वेदनामयी-उ:श्वासों से निस्तब्धता में भीषण-अट्टहास करने लगी।

यह देखो, काषाय-कोकिल के प्रथम-स्वर में होली का नृत्य होने लगा। सुरभि-सम्पन्ना, नीरव-कम्पिता, अविरागोन्मादिता, विजन-विपिन के पथ-स्थित-आनन्द-कुटीर पर विद्रूपावलि पूर्ण विकसित थी। आनन्द-कुटीर-कोयल के प्रथमावाहन ने बालारुण को झोली बिखेरने पर बाध्य किया।

'वह देखो!' आनन्द-कुटीर-कोयल ने तान छोड़ी। 'भ्रमरों से मानव की मदमाती हुई टोलियाँ निकल गयीं तथा माँ-बहिनों ने अबीर-गुलाल वितरण कर निज ममता का प्रकाशन किया। यह मानव की होली है।'

'होली के रतागमन ने मानव की अलसायी हुई, निद्रामय-पलकें खोल दी। वे निखिलोत्साह से आनन्द को खोज रहे हैं। माँ पुत्र में, पुत्र अन्य में। यह मानव की होली है।'

आनन्द कुटीर का प्रखर प्रतिभामय शिव बोला। उसे एकान्त में अत्यन्त हर्ष प्रतीत हो रहा था। अनेक वातावरणों से मुक्त हो उसने स्वर्गाश्रम की कुटिया को छोड़ प्रतिकूल तट पर आनन्द कुटीर का उद्घाटन किया। परन्तु अग्नि अदृश्य-यत्न में असमर्थता की सहकारिणी बनती है। विद्युद्वेग को कोई नहीं रोक या छिपा सकता। उदधि को कोई अप्रकाशित करने में समर्थ नहीं होता। भला वह महान् समस्त विश्व की आत्मा, कैसे अनुभव गम्य नहीं हो सकती थी। सौरभमय पुष्प को घ्राण रूप में लक्ष्य कर, भ्रमसमूह दौड़ा आया

तथा रस त्रयण कर, मधु कोष उत्पन्न किया। भक्तगणों का समूह सहसा दौड़ा आता था। शिवानन्द रूप अक्षय तथा अमरत्व मधुप्रदाता अमल मनोहर पुष्प से यथाशक्ति मधु संचय कर, एक महान् दिव्य जीवन परिपालक संस्था (The Divine Life Trust Society) रूपी मधुकोष का ऋषिकेश में संस्थापन हो गया। पिपासों को जल, बुभुक्षों को अन्न, क्लान्तों को विश्राम, शीतातप्तों को ऊष्णता, मुमुक्षुओं को मोक्ष, अमराकांक्षिओं को अमरत्व, भक्तों को इष्ट देव एवं एतद्वत् प्रत्येक को इच्छित वस्तु प्राप्त होती थी। सन् 1936 जनवरी मास की तेरहवीं तिथि को वसन्त के मधुरागमन से संयुक्त आनन्द कुटीर में दिव्य जीवन परिपालक संस्था की परम पावन बुनियाद पड़ी। उस महान् की कार्यस्थली में एक कार्य सम्पन्न हो गया। उसने जान लिया, जो स्वयं ज्ञान से परे था कि तप्त मानवीय विभूति को कुछ शान्ति प्राप्त हुई। उसको शून्य गगन में तारावलियाँ चमकती हुई दिखायी दीं। उसने दृढ़रूपेण निश्चय किया– 'बस मानव! अब मैं तुझे चकोर के समान चिंगारियाँ नहीं चुगने दूँगा। वह देख! दिव्य जीवन परिपालक संस्था होली का स्वागत कर रही है।' वह आनन्द कुटीर के अग्र-कक्ष में बैठा, स्थिर चित्त से शून्य की ओर दृष्टि लगाये था।

'श्वेत वस्त्र में,' वह विचारों में लय था, 'विविध वर्णों की छटा, तरल वीचि-सी सुशोभित हो रही है। वह देखो! इस अवसर पर मानवता की (अति सुन्दर कल्पित) भोली निर्ममता भी अस्त-व्यस्त हो गयी है। यह तो मानव की होली है।'

'फिर देखो! मानव ने स्वर्णिम मुग्धित निःस्व विभा ले, निज समता की कृत्रिमता प्रक्षालित कर दी है।' सहसा उसके विचार समता-सम्बन्धित हो गये। 'ओह! क्या प्रतिकूल दृश्य है? कहीं तो रक्त विभा-व्रण उड़ रहे हैं, परन्तु कहीं मानवता फूट-फूट कर रोती है। यह भी मानवता की होली है।'

'यदि इधर अबीर-गुलाल से मदमाती होली खेली जा रही है तो और कहीं खूनी कण भी उड़ रहे हैं और रक्त तक से होली खिलती है।' कुछ ठहर कर कहता है, 'तुम मानी हो, मानव! क्यों तुम युग-युग की उपार्जित साधना को ठुकरा कर त्यक्त करते हो? ऐसी होली तुम्हें शोभा नहीं देती, सखे! यह होली जीवन की चेतनता में सुप्ति-मात्र है। यह जीवन की जागरूकता का मतभेद है। यह साधना की साधन-हीनता है।'

'देखो शुभ! यदि यहाँ ममता हँसती है तो वहाँ निर्ममता की कटु बोली सुन पड़ती है। यदि यहाँ सुन्दर उपहारों के थालों में होली मनायी जा रही

है तो कहीं प्राणों का उपहार मृत्यु के अर्पण हो रहा है। मानव! क्या यही तेरी होली है?'

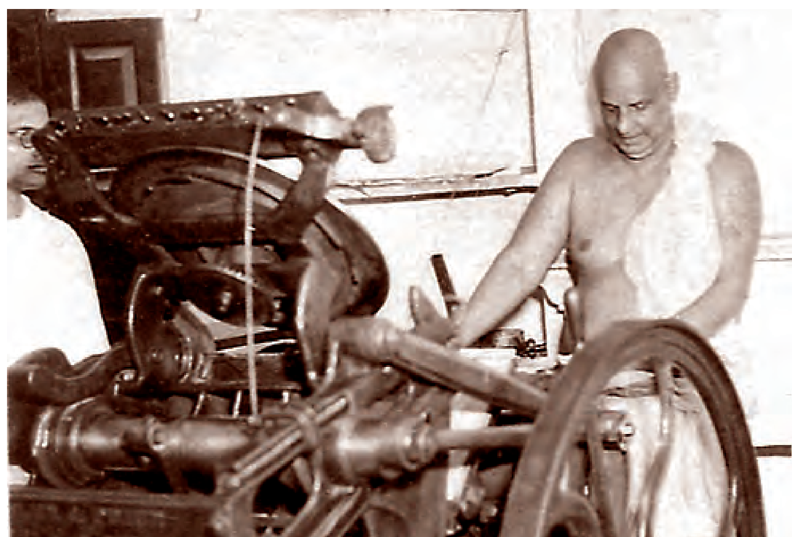
'चेत! कहीं शासन कम्पायमान् होते हैं, कहीं अबलाओं का करुण-क्रन्दन चौदहों भुवनों में प्रविष्टगत हो रहा है। यदि अज्ञ! यहाँ गायन-वादन की मजलिस बैठी है, तो क्या? कहीं तो कालों में होली जुड़ रही है। क्या यही होली का खेल है?'

'उठ! दर्शन कर सिहरती-मानवता का; कम्पित-सेनानी-वृन्दों का; युगों को रोती साधों का; उड़ती हुई होली का। चल, देख! भौतिकता के शूरों को; मानव-तन-धर-क्रूरों को; आध्यात्मिकता के शत्रु, अज्ञानी-शूरों-वीरों को, जो इस परम-पुनीत-होली के अवसर पर, साम्राज्य लिप्सा के हेतु, अतीत सभ्यता एवं संस्कृति की बलि दे रहे हैं। अब तो अवहेलना छोड़ दे। सखे! यह अवहेलना मानव मात्र को स्वत: ही गलित करती है। सजल मानवता के यौवन में, आध्यात्मिकता का मृदुल-समन्वित-एकीकरण ही जीवन है, आशंका नहीं। पथ-भ्रष्ट-पथिक सी धारणा का क्या तू उपरूप नहीं है? क्या निभृत-निशा में सनसनाहट नहीं होती? क्या करुणा में दया का सन्देश नहीं; क्या हास्य में रोदन का रहस्य नहीं? विद्रपावलि पल्लव मात्र की स्पन्दन शक्ति है। आध्यात्मिक वीचियों की होड़ में लय मानव, क्या उस महान् ज्योत्सना से प्रेम कर, मर्यादा को भंग कर देता है? क्या यह भक्ति नहीं? पुन: होली का स्मित हास्य ही जीवन का सार होता तो असन्तोष क्यों शाश्वत शान्ति का हनन करता? क्यों मानव चकोर, मृग मरीचिका में भ्रमित होकर, चिंगारियाँ चुगता फिरता? क्या यह होली का उपभेदी अस्त्र नहीं? क्या यह असन्तोष, पर शान्ति नहीं?'

'यही कारण है कि तू वेदना को अन्तर्हित किये है। तू यह नहीं जानता जब तेरे हृदय में हाहाकार विषमता अपनी जड़ता को लिये, तेरे हृदय में उठती, अनुपूर्वश: अनन्त में लय हो जाया करती है। जब ब्रह्म ज्योत्सना सर्वत्र व्याप्त है, तू तब उसे भूल जाता है।'

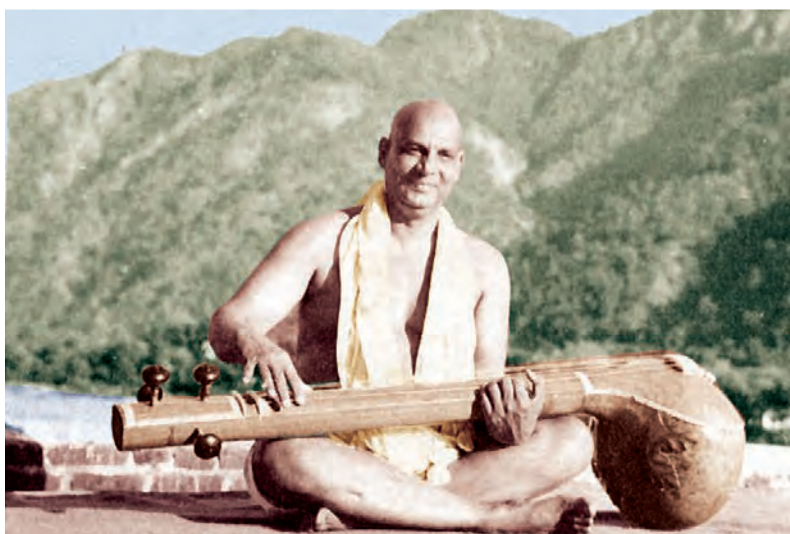
'परन्तु अब होली का समय नहीं, प्रिय! दुर्वासनाओं से होली खेलो। भौतिक्य से होली खेलो, पदार्थ विश्वस्तों पर होली खेलो, प्रियवर! उन्मद ममता छोड़ो और छोड़ दो, दुर्विचार और उसका ध्यान। माया-मोह को त्याग कर, वैरियों पर पिल जाओ और अज्ञान के तम-तल में निज-प्रदीप्त शिखा को ले कर, बढ़ते जाओ। तब वास्तव में सच्ची होली होगी। भ्राता! मदमात निमित्त त्याग कर, सत्य मुक्ति के कारण तो होली खेलो।'













'फिर भी मानव जागता नहीं। उसमें आध्यात्मिकता का नव जीवन नहीं हुआ है। अहो।' स्वामी जी गम्भीर विचार मग्न थे, 'तेरा नव जीवन निकट है। जब भौतिक्य मानव की पिपासा बुझ जायेगी; जब शुचि पावन सुन्दरता हँसने लगेगी; जब भौतिकता तथा अज्ञान की वेदी पर मानव! तेरी क्षीण कामनाएँ सो जायेंगी; जब निर्दयता रोती होगी, जब धरित का यौवनकाल हो जायेगा; जब आध्यात्मिकता के शान्त नीर से मानव! तेरा आवरण होगा; तभी तेरा नव जीवन होगा।'

'जब कामी मानव, इच्छाओं की समाधि से जाग जायेगा; जब वह वैराग्य बाना पहिने सत्य हास हँसता होगा; जब मानव आध्यात्मिकता के शरण में अपना शीश झुकाता होगा; जब भौतिकता के शोणित से मानव विजय का सेहरा रंगाता होगा; जब दम्भ द्वेषास्त्राच्छन्न-मस्तक स्वर्गीय पताका, पुन: फुहराती होगी; जब अज्ञ-दानवी के उर में मानव, निर्मूल शूल गड़ाता होगा, तभी तेरा नव जीवन होगा।'

'जब संसृति की शुचिता, जो कोने में बैठी हाथ मल-मल कर रोती थी पुन: स्मित हास्य से सजल हँसी हँसती होगी। जब निद्रित मानवता, निष्फल स्वप्नों की माया का त्याग कर, जागरूकता के मंच पर आरूढ़ हो गयी होगी। जब स्वप्नों सी जग की माया, इन्द्रजाल पर खो गयी होगी। जब मदमाता सा उन्मद यौवन 'हा! हा!' कह कर रोता होगा। जब जीवन मंजुलतामय होगा। जब ज्ञान सरिता प्रपातित होगी। जब अट्टहास सा प्रलयंकारी का नाद शान्त हो गया होगा, तभी मानव, तेरी नव जीवन होगा।'

'जब होली हंस आती होगी; जब यह शोणितमय-अन्तर-जल परिवर्तित होगा; जब ज्ञान सरिता वेगवती होगी; अस्थिर-दानव बहता होगा। जब दिनमणि भी नीलाम्बर में क्रोधवेश को छोड़ अरुण-द्युतिमय हो विलास करेंगे; जब मानव पर झुका हुआ कालभद्र भी डमरू लेकर, उल्टे पाँव लौटता होगा; जब आच्छन्न ताण्डव-नृत्य की नींव, ज्ञानागमन से शान्त हो जायेगी; जब जागते हुए तेरा आध्यात्मिकता के शान्त नीर से श्रावण होगा, तभी तेरा नव जीवन होगा।'

'जब उत्तिष्ठत 'बम्-बम्'-मय आन्तरिक-रुद्रों के सो जाने पर, मानव जाग उठा होगा! जब आध्यात्मिक-केशरी बन कर मानव अन्त:करण में मग में विजय पताका फहरा कर, शान्ति-पथ की ओर बढ़ता होगा। जब झंझा के कम्पित तम में, नव-जीवन-ज्योति जली होगी। अहा! जब समस्त-जीवन

नूतन होगा, अशुभ कंकालों का संग्रह जलेगा। जब दिनकर भी प्राचि-उदित हो, अखिल नभ में खिलखिला पड़ेगा। जीवन के वैभव से जब मानव का चित्त उचट चुका होगा। जब बिखरी आँखों में, बिछुड़ी-आध्यात्मिक दुनियाँ अंकित होगी। जब उन बिखरे-चित्रों में ही मानवता ने बनना होगा, तभी मानव! तेरा नव जीवन होगा।'

'जब दिव्य-जीवन-परिपालक संस्था उज्ज्वल-स्वर्णिम-हँसी हँसेगी। जब उसके मुक्ता-दर्शन से अम्बर-धरती दमक उठेंगे। जब अज्ञान-निशा का राज उठेगा; मानव-जग जब परिनव होगा। जब आध्यात्मिकता के श्रावण में आनन्द कुटीर द्वारा शान्ति-जल का सिंचन होगा। जब नव जीवन उन अज्ञ-स्वप्नों के आबद्ध-पाश से विच्छिन्न हो जायेगा। जब बिखरे अरमानों का संग्रह कर शुचिता का अभिवादन होगा और 'छल-छल' मोती उपहारों का थाल सजाये बरस पड़ेंगे। उन्हीं उपहारों की नवविधि में आध्यात्मिके! तेरा अभिवादन होगा। नीरवता के नील-निलय में मानव! गात सजाता होगा। ओ! सत्यवैराग्य की सहवासिनी-मुक्ति! तूने ताल मिलाना होगा। तभी तो नवजीवन होगा।'

'जब शन्य-शान्तिमय धरा बसा कर, नव-युग का अभिनन्दन होगा; नव-युग-आतप-मौन-प्रभा में मानवता का जब पटपरिवर्तन हो जायेगा। जब सोया मानव जागृत होगा, नास्तिकता की चिर-रजनी से और जब सत्य-युग सम-सद्वैभव ले कर मानव-पथ पर गमन करेगा। निस्सार-धरा के आंगन में जब नव नन्दन-कानन प्रकटित होगा; जब अनुपम-स्वर्गिक-संचय ले कर स्वर्ग तो क्या, मुक्ति का सबको अनुभव हो जायेगा। जब दिव्य-ज्योतिमय-जग, संस्कृति का गात सजाने को प्रस्तुत होगा। जब दिव्य-जीवन-मय यह 'आनन्द-कुटीर' होगा मानव को मुक्त्यानुभव कराने के लिए; और जब तू जाग ही चुका होगा, तभी नव-जीवन भी होगा!'

'जब यह सच हो जायेगा, ज्ञान-रेखा झलक उठेगी। तब ज्ञानमय-ज्योति जगा कर मुक्ति का सुन्दर-अनुभव होगा। जब सुदूर-हृदय-गगन से धवल अनुभव रेखा का दर्शन कर, मानव स्वर्ण-विहानमय हो, स्वयमनुभविक हो जायेंगे, तभी हे मानव! तेरा नव-जीवन होगा।'

पाठक! वह 'जग-जीवन-प्रकाश' इन विचारों में इतना लय हो गया कि उसे करुण-क्रन्दनमय-मानव की मौन-प्रतिमा अनुभवगत होने लगी। दैन्य-विजड़िता-मोहयुक्ता, युग परिवर्तन की नायिका मानवता की अश्रुप्लाविता-

व्यथा, उसे भासमान होने लगी; तथा उसे बाहर से दरवाजा खोल कर प्रवेश करते हुए, एक साधु मूर्ति के आगमन का ज्ञान तक न हुआ।

सहसा वह प्रवेशक स्तम्भित हो गया, 'स्वामी जी के नेत्र अश्रुप्लावित क्यों, जब कि परिपालक संस्था स्वीकृति प्राप्त कर चुकी है।'

उसके बड़े-बड़े केश, उसके गेरुवे वस्त्र तथा उसके हावभावों से जान पड़ता था कि वह उस समाधिस्थ ज्योति का कण है। वह निमिषमात्र तक कुछ सोचने के उपरान्त निश्चय-पथ पर आ गया और बड़बड़ाया, 'अच्छा, स्वामी जी इस विकल मानवता के कार्यों पर अश्रु बहाते हैं, जो धर्म पथ को परित्यक्त कर, अयोग्य पथगामिनी हो रही है। हाँ, यह सत्य है कि कुछ लोग अवश्य आध्यात्मिक विचारों के हैं; परन्तु उनकी संख्या है ही कितनी। ओह, विभो! शक्ति दे, मुझे!! जो मैं अपने गुरु के उद्देश्यों में उपयुक्त रीति से हाथ बँटाने में समर्थ हो सकूँ। हे योग्यते! मेरे को पुष्ट और परिष्कृत कर, कि मैं अपने महान् गुरु का सुयोग्य सेवक तथा योग्यानुगामी बनूँ।'

आगन्तुक के बड़बड़ाने से, स्वामी जी की तल्लीनता उच्छिन्न हो गयी। सहसा वे आसन से उठ खड़े हुए। वे कुछ कहें कि आगन्तुक साधु ने चरण स्पर्श कर लिये।

'अच्छा, निजबोध! कब से खड़े हो?' स्वामी जी ने पूछा।

'स्वामी जी!' निजबोध विनीत भाव से बोला, 'कुछ देर से।'

'अच्छा', कुछ सोच कर स्वामी जी बोले, 'अब तो दिव्य-जीवन-परिपालक-संस्था स्वीकृति प्राप्त कर ही चुकी है, हमें अब विलम्ब की आवश्यकता नहीं। बस, भक्तों तथा योग्य साधकों की सहायता से, वितरणार्थ पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए। क्यों ठीक है न?'

'ठीक है स्वामी जी,' उसने कहा, 'परन्तु मेरा प्रधान विचार है कि अर्थ-संचय के अभाव में हम इस कार्य में शत-प्रतिशत सफलता नहीं पा सकते हैं।'

'तभी तो यह संस्था नाम-रूप में समावेश कर गयी है। परन्तु महान् उद्देश्य के किसी प्रकार भी सफल होने की पूर्णतया सम्भावना हो, तो हमें उसमें विलम्ब करना उचित नहीं। हाँ! आप कार्य अत्यन्त चतुरता से करें, जिससे संसार में कणभर दुःख भी अवशेष न रहे। मेरी हार्दिक इच्छा अपने मोक्ष की नहीं; परन्तु इस अभागे मानव के मोक्ष की है!' इतना कह कर स्वामी जी गम्भीर हो गये।

'हाँ, स्वामी जी। एक बात और है,' कुछ ठहर कर कहता है, 'यदि वह 'ब्रह्म-विद्या' नाम का पत्र पुनः प्रकाशित कर वितरण कर दिया जाये तो अत्युत्तम हो।'

'वही,' स्वामी जी कुछ सोचने के उपरान्त बोले, 'जो सन् 1924 में जी.ए.नटेशन एण्ड कम्पनी, मद्रास से प्रकाशित किया गया था न?'

'हाँ, स्वामी जी!' निजबोध चुप हो गया, 'अच्छा, मैं जरा पत्र देख लूँ' कह, चरण-स्पर्श कर, बाह्य-गत हो गया।

निजबोध को गये अधिक विलम्ब नहीं हुआ था कि स्वामी जी के अन्य शिष्य नारायण स्वामी ने प्रवेश किया और नम्रता से चरण-स्पर्श कर लिये।

'क्या नया समाचार है मेरे धार्मिक जगत् का?' स्वामी जी मुस्करा कर बोले।

'यही स्वामी जी!' नारायण स्वामी बोले, 'स्वामी जी के आदेशानुसार 'रैमिंगटन टाइप राइटर' की रसीद आ गयी है। कल हम स्टेशन से ले आयेंगे।'

'ठीक है...'

स्वामी जी अधिक कहने भी न पाये थे कि क्षेत्र की घण्टी दिशा-विदिशा से काषाय-वस्त्रों का संग्रह सा करती हुई, निज सीमा में स्थित हो गयी। 'शेष कार्य अपराह्न में,' कह कर, स्वामी जी कमण्डलु ले कर खड़े हो गये। उनकी आभा देखने योग्य थी। उनके स्वच्छ-वस्त्रों के अन्तर्गत, वह दिव्य अंग मधुर ज्योत्सना के समान था। उनके ललाट से अवर्णनीय ज्योति का माधुर्य-विकीरित हो रहा था। पास ही कागजों का संग्रह आनन्द-कुटीरस्थ हो, आनन्दमय था।

सारा जन-समूह होली में विक्रीड़ित था। अपने-अपने कार्यों से विरत हुईं आनन्द-कुटीर के विद्युत-गृह के संचालकों की आध्यात्मिक पंक्तियाँ, उस महान् इंजीनियर की अनुगामिनी बनीं...।

'ठीक है, जब दैन्य-ताप तथा मृत्यु-भय-रूप सन्तापानुभव, मानवता के पग-पग में बाधक होता है। जब-जब वह नैराश्य दृष्टि से पुकार उठता है। जब उसकी अवस्था निर्देशन की कामना करती है, तब-तब एक महान्, आनन्द-कुटीर के विद्युत्-गृह से प्रकाश को उदयीभूत करता हुआ, उन्हें देदीप्यमान्-प्रकाश से अस्तित्व-ज्ञान तथा आनन्द का पथ निर्देशित करता है।

यह हुई 'आनन्द-कुटीर से प्रकाश!' नामक एकादश कला समाप्त॥

द्वादश कला

वेदान्त केशरी

न तो यह स्वप्न का ही गन्धर्वनगर है, न स्वप्न की मायामात्र अनुभूति ही।
जगत् की असृष्टिभूतावस्था न तो विद्यमान है, न विदित वा अविदित ही॥
न तो दृश्य है, न द्रष्टा है, न दर्शन की क्रिया ही है।
परन्तु कल्पना या वास्तविक नहीं॥
न तो यह स्वप्न जागृति है, न यह जागृति ही स्वप्न है।
वास्तव में 'नातः सत्यमिदं दृश्यं न चासत्यं कदाचन'
न तो यह दृश्य सत्य है और न यह कदापि असत्य ही...!
अतः गुह्यतम-रहस्य है यह...।

Tis neither the city of dreams,
Nor the experience of delusion in the illusory dream state.
It shines not, as never was it created,
In this non-created world,
Nor it is known, nor unknowable.
Sith, seer or the process of seeing,
It is not;
Neither even can it be called figment of imagination pure,
Nor is it a waking dream,
Or a dreaming wakefulness.
In Truth –
Natah satyamidam drishyam na chaasatyam kadachana
Neither is it Truth, not even untruth,
But transcends both;
Verily, Mystery of mysteries it is.

'कितनी शोचनीय है मानवता? कितनी अज्ञता भरी हुई है इसमें? उत्पत्ति को प्राप्त होती है, दिन-प्रतिदिन ऐश्वर्य-विलास में नष्ट कर देती है। बाह्य पदार्थों की अनुगामिनी बन, अपने जीवन के अनुपमेय क्षणों की आहुति दे देती है। देखो! उपनिषद् भी पुकार-पुकार कर यही कहते हैं –

पराचःकामानुनयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वंविदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न पार्थयन्ते॥

अर्थात् मूर्ख अज्ञानी मानव आकांक्षाओं के बाह्य पदार्थों की ओर भागता हुआ, मृत्यु की शिखरिणियों में प्रतिबद्धित हो जाता है। अर्थात् उस मूर्ख को यह ज्ञान नहीं होता कि वह क्या कर रहा है। वह वास्तविकता को विस्मृत कर, पदार्थवाद और असत्य की ओर भागता है। भौतिकता के भारभूत-कड़ों में अपनी अभिज्ञाता-बुद्धि को परवश कर अन्त में काल के कराल-गह्वर में नियमानुसारेण समासीन हो जाता है।'

हरिद्वार-स्थित हरि की पौड़ी पर, एक महात्मा का जोशीला-व्याख्यान हो रहा था।

'परन्तु विपरीत इसके बुद्धिमान् लोग वास्तविकता, अमरत्व तथा अविनाशी-तत्त्व की प्रकृति से पूर्ण परिचित, इस तृष्णामय-संसार के पदार्थों से उलोभित नहीं होते। वे पदार्थ का वास्तविक मूल्य नहीं जानते हैं। वे वास्तविकता की कसौटी पर, प्रत्येक वस्तु को परखने वाले दिव्य जौहरी हैं। उन्हें संसार में कोई सार वस्तु नहीं मालूम होती। केवल यही नहीं, उनके आगे संसार का कोई महत्त्व तो क्या, प्रादुर्भाव तक नहीं है। वे संसार को सृष्टि रहित ही मानते हैं। उन्हें सर्वत्र एक ब्रह्म की सर्व-व्याप्त-व्यापकता ही अस्तित्व-रूप में अनुभवगत होती है। वे कहते हैं–*'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूतादि वासः साक्षी चेता केवलोनिर्गुणश्च।'* अर्थात् वह ब्रह्म सर्वव्याप्त है, क्योंकि वह सर्व है, अतएव व्याप्त है। उसके परे कुछ नहीं, केवल वही व्याप्त है। वह सब भूतों की आत्मा में व्यापक है, कारण कि वही सर्वभूत है, अतः वही आत्मा है, अतः व्यापक भी है। वह सब कर्मों का अध्यक्ष मात्र है। हेतु कि वह स्वयं कर्म है। अतः अध्यक्ष होने में कोई सन्देह नहीं। वह सर्व-प्राणियों में वास करता है, वही साक्षी चैतन्य है। वही केवल है तथा गुणों से परे है। कारण कि जब कुछ नहीं तो गुण भी नहीं, फलतः वह सर्वव्याप्त होने से केवलमात्र, गुण सृष्टि न होने से निर्गुण है।'

'वास्तव में है भी यही। वह या यह परब्रह्म न तो निराकार है न साकार ही। शैवों का शिव यही ब्रह्म है, जो वेदान्तियों का है। पृथक्त्व केवल विचार में है, बुद्धि की संकुचितावस्था में है। क्योंकि जिस गति को एक वेदान्ती प्राप्त करता है, उसी को एक शैव भी प्राप्त करता है। वास्तविकता तो गति के प्रश्न से ही रहित है।'

'परन्तु फिर भी देखो!' व्याख्यान दाता के मुख-चन्द्र से उज्ज्वल-ज्योत्सना का स्फुरण बहिर्गत सा होता था। 'भेदभाव अपनी उसी पुरानी कार्य कारिणी सभा के साथ गमन कर रहा है। यहाँ तक कि आध्यात्मिक क्षेत्र भी इसके पंजे से नहीं बचे हैं, भला भौतिकवाद या पदार्थवाद का ठिकाना ही क्या। बाह्य-विद्वत्ता तो शत-प्रतिशत विद्यमान है। परन्तु व्यवहार की त्रुटि होने से सर्वनाश हो रहा है। वेदान्तियों को देखो तो अपने निर्गुण ब्रह्म के बल तर्कना करते हुए, किसी को टिकने नहीं देते हैं। परन्तु उनका हृदय शुद्धियों के अभाव से परिपूरित ही रहता है। वे कभी निदिध्यासन के असीमानन्द का अनुभव नहीं किये हैं। केवल तर्कना के बल वेदान्ती बन जाते हैं। वे जानते ही नहीं कि वेदान्त वास्तव में है क्या?'

'ओ मनुष्य!'

मंच पर स्थित वह ऐसा जान पड़ता था कि मानो उदयाचल से सहस्त्र-कोटि-सूर्य-सम प्रभामय एक महान् सूर्य उदित हो कर, जनता के हृदयोच्छ्वास-रूपी कमल को विकसित कर रहा था! काषायाच्छन्न उसका वैयक्तिक-स्वरूप, प्रकाशाच्छन्न सूर्य की नाईं जान पड़ता था!

'उपनिषदों के उस उच्चतम और अन्तिम मत का नाम वेदान्त है, जहाँ वेद-रूप ज्ञान का अन्त हो जाता है। यह आप लोगों की सार्वजनिक सम्पत्ति है। किसी सम्प्रदाय या मत-मतान्तर से इसका कोई भी विरोध नहीं! यह सब को निजांकिम में विश्राम देता है और सुग्राह्य सार्वभौमिक सिद्धान्तों का बीज वपन करता है, जिसे समस्त संसार के मत-मतान्तरों का जनक कहा जा सकता है। वेदान्त समदर्शी है। वह सबके प्रति समता का भाव रखता है। वह एकीकरण का विधेय है। वह निज-क्रोड़ में सबको समान स्थान देता है। वेदान्त हमें शुद्ध और मनोरमानन्द के अमरत्व-कोष और शाश्वत कल्याण की ओर ही ले जाता है। वह तत्क्षण-जीवन-प्रदात्री संजीवनी है। एक वेदान्ती के घर में चाहे भोजनार्थ कुछ न हो; वस्त्र से यदि वह रहित हो; परन्तु अत्यन्त शोचनीय-अवस्था में भी वह स्वयं को राजराजेश्वर तथा चक्रवर्ती सम्राट से महान् ही समझता है। सत्य है; वेदान्त से उसे आत्म-शान्ति मिलती है। वेदान्त नव बल दायक, नव जीवन संचारक तथा सुदृढ़ शक्ति सारक है। नैराश्य की अतल-सीमा में भ्रमित मानवता को वेदान्त आशा के मनोरम कूल की ओर ले जाता है। निर्बल को बल प्रदान करता तथा ओज हीन को ओजस्विता का पाठ पढ़ाता है।'

बीसवीं शताब्दी की नयी चमक में, जब वेदान्त अपने ठिकाने से भटक रहा था, ज्ञान-रेखा अज्ञान के कुहासे से आच्छादित थी, अज्ञ-मानव को जीवन-पथ पर तम की कण्टक-रूढ़ियों से सामना करना पड़ रहा था, एक चैतन्य ज्योति ने स्वरूपाविष्टमात्र बन कर, एक महापुरुष की मूक-लीला प्रदर्शित की। उसने वेदान्तियों से कहा-जोर से चिल्ला कर, सचेत करते हुए।

'वेदान्त सभी जाति, कुल, सम्प्रदाय, मत, पन्थ और राष्ट्रों को भी अपनी समदर्शिता की छत्रच्छाया में समरूप से समान स्थान देता है। वेदान्त भारत के प्राचीन मन्त्र-द्रष्टा ऋषि-महर्षियों के श्रुति-गोचर सिद्धान्तों का समुचित निरूपण करता है। यह मानवता के अन्त को महत्ता प्रदान करता है। यह नूतन जीवन-दान करता है। यह आत्म-कल्याण और परमानन्द का दायक है। मानवता को मानवता से पृथक्कारिणी-आवरण-रूपा सभी यवनिकाओं का निवारण करता और सबको एकता के सूत्र में सम्बन्धित करता है। वेदान्त शक्ति प्रदान करता है तथा भय, संशय, सन्देह, भ्रम, भ्रान्ति, मोहादि के व्यामोह से संरक्षित करता है।'

'ओ, सलौने आत्म स्वरूप!' उसने आह्वान-स्वर में कहा। अज्ञान की निवृत्ति होने लगी – 'आप नैतिक रूपेण निज-शरीरार्थक आहार-स्त्री-सुत-बान्धव इत्यादिकों की चिन्ता किया करते हैं। पर आप मन को अन्तर्मुख कर, इस बात के जिज्ञासु नहीं बनते कि आपके अन्तस्तल में, आपकी अन्तर-कन्दरा में कौन सी शक्ति कार्य-संचार कर रही है। सम्भवत: आप यह समझते हैं कि आपका यह शरीर – चर्म, अस्थि एवं मांस का यह स्थूल-पिण्ड ही वस्तुत: सत्य है। अत: आप अपने इसी विश्वासाधार पर, निज-जीवन की महती आकांक्षाओं और अन्तर्गत प्रयत्नों का अभेद्य दुर्ग भी निर्माण कर लेते हैं। आपने विम्ब को ही सार तत्व ज्ञानाभित किया है। आप आडम्बर के ही बाह्यिक मिथ्या-स्वरूप पर आसक्त हैं। यद्यपि आपमें विचार-शक्ति या विवेक-बल की पर्याप्तता है, तथापि अपनी उस शक्ति अथवा विवेक-बल का सदुपयोग, आप उस अमरात्मा के अन्वेषण में नहीं करना चाहते। आपने आत्म-रत्न को फैंक कर, कंच-कण को ही ग्रहण किया है! क्या यह आपका मूर्खतापूर्ण उद्योग नहीं है। स्मरण रखिए; वृद्धावस्था के प्रकाशन में आपको केवल रोना एवं पश्चात्ताप ही शेष रह जायेगा। मेरे प्यारे बन्धु-वर्ग!'

हरिद्वार-स्थित मनोरम-मंजु-कल्लोलिनी-भागीरथी के सुरम्य तट पर, अपार जनसमूह के मध्य, एक स्वर्गीय-अनुपम वाणी-रूप प्रकाश प्रस्फुटित

हो रहा था। वह वेदान्त-केशरी रंगमंच पर खड़ा, मध्य-मध्य में, आंग्लभाषा में भी निज-अप्रतिसिद्ध वाग्झरी से सन्निकट-प्रवाहिनी-गंगा के वेश को भी पराभूत किये देता है। उसके गह्वर से शब्दों की अनुपम रचना सृष्टिक्रम की नाईं तैलधारावत् उश्वासित हो रही थी। श्रोताओं में सन्नाटा छाया था! कोई मध्य में – 'अरे! ऋषिकेश वाले स्वामी शिवानन्द जी!' कह कर आश्चर्य का प्रदर्शन करते थे।

'तुम भेड़ की तरह मैं-मैं क्यों कर रहे हो? अपने जन्मसिद्ध अधिकार को पहचानो! अपने सच्चे ब्रह्म-स्वरूप को पहचानो! क्यों तुम भेड़ की माँद में पोषित सिंह की नाईं 'मैं-मैं' 'बां-बां' का असमर्थ-स्वर कर रहे हो? क्यों तुम अपने वास्तविक दिव्य-स्वरूप को भूल गये हो? तुम्हें माया ने विमोहित कर रखा है! उस ठगिनी और मोहिनी माया के मोह-पाश से येन-केन-प्रकारेण शीघ्रातिशीघ्र मुक्त हो जाओ तथा वास्तविक-केशरीवत् ही 'मैं-मैं' न करते हुए, 'ॐ ॐ ॐ'–'अहं ब्रह्मास्मि' के ही सिंहनाद से भेड़-रूप सभी इन्द्रियों को खदेड़ भगाओ। वेदान्त के सच्चे केशरी 'नृसिंह' का ही असली रूप धारण करो! तू जीव नहीं, तू अमृतात्मा है! अपने को इन्द्रियजन्य इस स्थूल शरीर से भूल कर भी अध्यास-रूप में एकीकृत न होने दो! अपने को उस शाश्वत, अविनाशी नित्य ब्रह्म के रूप में ही देखते हुए चिर-स्वतन्त्र हो जाओ!'

भीड़ के अन्दर बैठे श्रोताओं में, युवक राजानी लाल चौधरी ने अपने छोटे भाई ललित कुमार चौधरी से कहा – 'देखा न! कैसे सुन्दर-व्याख्यानदाता हैं? जभी तो मैंने तुमसे उस दिन कहा था कि चलो, ऋषिकेश घूम-फिर आयें...।'

'अब तो वे ही आ गये हैं न?' बात काट कर ललित कुमार बोला, 'परन्तु बाबा! मैं किसी वस्तु में सत्य का आभास भी नहीं मान सकता हूँ। केवल साम्यवाद को ही...।'

'चुप-चुप' राजानी लाल बोले, 'कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा?'

'कहने भी दो न! मैं क्यों परवाह करने लगा। अच्छा यह बताओ, क्या ये वे ही शिवानन्द जी हैं, जो स्वर्गाश्रम-साधु-संघ के संस्थापक थे?'

'हाँ! हाँ! मेरे अनजान भाई! वही शिवानन्द जी, स्वर्गाश्रम छोड़ने के बाद, विपरीत-तट-स्थित आनन्द-कुटीरस्थ हो, दिव्य जीवन परिपालक संस्था को जन्म दे अनेकों उपदेशों का वितरण कर रहे हैं।'

पास बैठे एक सज्जन ने उनकी ओर देखा। राजानी लाल ने समझ लिया कि वह क्यों देखता है। अत: चुप हो गये।

'प्रकाश पुत्र!' पुन: वही काषाय-मूर्ति बोली, 'इस दृश्य-जगत् के मूल में एक नित्य-वस्तु भी है! इस नाम-रूप तथा व्यक्त-जगत् के मूल में शाश्वत-सत्य का ही अधिष्ठान है। यह 'शाश्वत सत्य' ही ब्रह्म कहा जाता है; यही आत्मा है। वही तुम्हारा आत्म-स्वरूप है।'

'मनुष्य-जीवन का मुख्य लक्ष्य, इस परिवर्तन-दृश्य-जगत् के अधिष्ठान-रूप 'वस्तुत्व' अथवा सत्य का ही साक्षात्कार करना है। मनुष्य-जीवन की सभी कामनाओं का आदि एवं अन्त, आत्म-स्वरूप की प्राप्ति में है। केवल आत्मानुभव ही अज्ञान एवं अज्ञान-जनित दु:खों का नाश कर सकता है। आत्मस्वरूप की उपलब्धि अथवा स्व स्वरूप की आत्मिक-स्थिति ही खड्ग से कर्मपाश को छिन्न-कृत्य करने में समर्थ हो सकती है। ब्रह्मात्मैकीकरण का यह अपूर्णाभाव ही आपको शान्ति, चिर-स्वतन्त्रता या मुक्ति प्रदान कर सकता है।'

'क्रियामरात्माओं! *'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'* एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है तथा अद्वय-व्यापकता है। ब्रह्माण्ड दृश्य कण एवं शरीर-पिण्ड, ये पदार्थ-द्वय रज्जू-सर्प की भाँति ब्रह्म में अध्यारोपित हैं। येन पर्यन्त रज्जू को माया का ज्ञानाभास अनुभव-गम्य नहीं होता है तथा सर्प-भावना अन्तरालवर्ती रहती है, तेन पर्यन्त आप भय-मुक्त नहीं होते। एतद्वत् जब तक ब्रह्मानुभव नहीं हुआ है, तभी तक यह दृश्यजगत् भी आपको वास्तविक-सत्य सा प्रतीत होता है। जब तुम प्रकाशवश रज्जू का मूल अस्तित्वाभास कर लेते हो, तब आप का सर्प-भ्रम रज्जू की मूल प्रकृति के ज्ञान से शून्यगत हो जाता है तथा सर्प-भय भ्रम-पदार्थ की जड़ता को साक्षात्कार कर विलय हो जाता है। एतद्वत् जब आप ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेंगे, उसी निमिष यह दृश्य जगत्, रज्जू में सर्प के भ्रम की नाईं शून्याम्बर-क्रोड़ में केवलमय हो जायेगा तथा आप जन्म एवं मरण के भय तथा आवागमन-रूप संसार के सृष्टिहीन-चक्र से विमुक्त हो जायेंगे। यावज्जीवन ही मुक्त – जीवन्मुक्त बन जायेंगे।'

'वह जीव-कोटि का जीवन्मुक्त है, जिसने निज-वैयक्तिक एवं प्राबलिक यत्न द्वारा श्वैर गति से निजानुभव का स्व-संवेद्य अनुभव प्राप्त किया है। वह ध्यान के बल ही, स्व-जीवत्व से ब्रह्मत्व प्राप्तिगत-व्यापक हो जाता है। वह अनेकानेक योनियों में जन्म ग्रहण कर चुका है। येन केन प्रकारेण, वह जन्म मरण की शृंखला से अपने को स्वातन्त्र्य-सुख की व्यापकता में, एकीकरण की अनुभूति कराता है। वह गण्य-प्रधानों की ही सहायता करता है। वह

सर्वोद्धार-असमर्थ है। उसकी स्थिति उस वृषभ-शकट की नाईं है, जो सरिता में केवल चार या पाँच व्यक्तियों का महान् काष्ठ-खण्डों सहित आनयन कर सकता है। परन्तु ईश्वर कोटि का नित्य-स्वतन्त्र-जीवन्मुक्त है। वह संसार में धर्म की प्रतिष्ठा, साधुओं की संरक्षा तथा मानवता के कल्याणार्थ सगुण स्वरूप द्वारा घटाकाशवत् आविष्ट होता है। उसमें कोई परिवर्तन अथवा किसी भी स्वौरूपत्व का कणाभास भी नहीं। वह स्वरूप द्वारा आविष्टगत, अवधि से ही 'सिद्ध', 'जन्म सिद्ध' वा 'नित्य सिद्ध' हुआ करता है, (यथावत् हम घटाकाश की रचना करते हैं।) अलौकिक दीप्ति का आविर्भाव उसके घटाकाश के निर्माणकाल में ही हो जाता है! वह बहुतों का उद्धार कर सकता है। वह अवतार-रूप में दृश्यगत होता है, (जैसे हम कहते हैं, यह घड़ा है अथवा उसकी व्यापकता का प्रदर्शन करते हैं) तथा लोक संग्रह कार्य समाप्तोपरान्त, व्यापकता में व्यापक हो जाता है। भगवान शंकराचार्य ईश्वर-कोटि के, नामदेव जीव-कोटि के जीवन्मुक्त थे।'

व्याख्यान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, सृष्टि के गमन की नाईं। श्रोता-मण्डली एकटक हो सुन रही थी। काषाय-वस्त्र धारियों की विद्वन्मण्डली अवाक् थी। सभी विषय प्रत्येक को सुगम ज्ञात होते थे। परन्तु इनमें एक ऐसा नवयुवक भी था, जिसके नेत्राकाश में एक दिव्य ज्योति का प्रदर्शन हो रहा था। उसके अन्तराल में अनुभव की मात्रा प्रलय सदृश विलोड़ित हो रही थी। उसका बाह्य शरीर जड़वत् था। उसको प्रत्यक्ष कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। केवल एक ज्योति ही हृदयाकाश में मध्याह्न वर्तिनी। उसने अनुभव किया, कुछ नहीं; देखा, कुछ नहीं; सुना, कुछ नहीं; अस्तित्वगत, कुछ नहीं। केवल शून्य...! विशेष प्रसंग-रहित हो, उसका नाम राजानी लाल ही बताना उचित है, यथेष्ट है।

'उत्ताल...' वह कहता गया, 'मन की चपल प्रवृत्तियों को पराभूत करो तथा उसे निर्विकल्प समाधि में स्थित कर, समाहित कर लो। एतदर्थ अनवरत एवं विश्राम रहित ध्यान रूप ब्रह्माभास की आवश्यकता है। आरम्भ में यदाकदा ध्यान की यह अजस्त्र स्नेहझरी दुर्बाधित भी हो सकती है, परन्तु दीर्घाभ्यासवश आपको पूर्ण की परिपूर्ण पूर्णता, पूर्ण-पथ पर, पूर्ण-प्रकारेण-प्राप्तिगत हो जायेगी। कालान्तर में आप निर्नभस्वान वेग के प्रदीप के समान, चैतन्य-प्रकाशमय समाधि में अवस्थित हो जायेंगे। परन्तु आपको आवश्यक है...।'

कुछ ठहर कर, पुनः गर्जना करने लगे। 'ध्यान दो, वेदान्त केशरीवृन्द! कि आप प्रथमतः आसन सिद्धि के विजय पथ पर पूर्वारूढ़ हो जाइए तथा आप आसन पर चट्टान के समान सुदृढ़ रूपेण, कम-से-कम दो-तीन घण्टे स्थित होने की योग्यता प्राप्त कर लें। यदि आपका शरीर दृढ़ है तो मन भी दृढ़त्व-लब्धभव हो जायेगा।'

'साधना-काल में, ओ वेदान्त पथ के पथिक! जिज्ञासु रूपेण निज नैतिक ब्रह्माभ्यास में 'नेति-नेति' की उपासना करो। आप 'मैं यह नश्वर शरीर नहीं, मैं यह मन नहीं, मैं यह प्राण नहीं, मैं इन्द्रिय नहीं' आदि-आदि की माला जपो, कहते रहो, 'यही नहीं', 'यही नहीं', 'यह नहीं', 'यह नहीं'। यही नेति-नेति उपासना है। आप सर्वव्यापी आत्मा के आत्म तत्त्व के साथ एकत्व की चेष्टा करें। आपका यह ब्रह्माभ्यास ही आपको आत्मानुभव की पूर्णता में व्यापक कर देगा तथा निदान आप *सर्वं खल्विदं ब्रह्म* – यह संसार ब्रह्म है, और कुछ नहीं, की अलौकिक दीप्ति में एक, पूर्णमय व्याप्त से हो जायेंगे। कारण कि आत्मा सर्व-काल में, सर्व स्थान में एवं सर्व कारणों में सर्व व्याप्त ही है। उसके लिए न तो काल है, न स्थान ही और न कारण ही; क्योंकि वह तो केवल है और अद्वैत है।'

'व्यावहारिक वेदान्त के अरसिक मुमुक्षुओं! सदा सर्वदा प्रतिनिमिष, सर्वत्र आत्मदेव की निरन्तर पूजा किया करो तथा निज जीवन को भी सुनियमित रूपेण रचित करो! निज चरित्र निर्माण पूर्णत्व रूप में ही करो। सदाचरण एवं धर्माचरण का ही पालन करो। धर्मपरायण होते हुए भी 'लोक संग्रह' तथा परोपकारिता में मध्यस्थ रहो। अपने गुरु की सेवा करो। यावज्जीवन दृढ़व्रती ही रहो। अन्तर में दया, शुचि, प्रेम, सहनशीलता, अनसूया एवं धारणादि सद्गुणों का विकास समुचित रूपेण करो। महान् हृदय तथा दान परायणता को प्राप्त होओ। आप शीघ्र से पूर्व ही आत्मानुभूति का अनुपम तथा नित्य सुख अनुभव करेंगे।'

'नेत्र खोलो! निरी जड़ता की गहरी निद्रा से जागृत हो जाओ। निज नष्टभूता अलौकित दीप्ति की पुनः प्राप्ति करो। आप 'स्वरूप' से दिव्य एवं नित्य हो। तुम स्वयं ज्योति हो। तुम विभाग रहित हो, कर्म रहित हो, अपरिमित हो, चिन्ता शोक रहित हो, जन्म मरण विमुक्त हो। तुम माता, पिता, भ्राता, मित्र, सम्बन्धी, गुरु स्वयं ही हो। तुम शान्ति, आनन्द, ज्ञान, शक्ति तथा सौन्दर्य हो। इस क्षुद्र शरीर की विस्मृति कर दो। सांसारिक

विचारों से भागो। सदैव निज सर्वानन्दमयी आत्मा में निवास करो। तुम सूर्य हो, वह्नि हो, अम्बर हो, नक्षत्र हो, पर्वत हो, अवर्ण हो, तथा सरिता हो। समस्त पूर्णता तुम्हीं हो। समस्त ऐश्वर्य तुम्हारा है; समस्त संसृति तुम्हारी लीला है; माया तुम्हारी भ्रान्त शक्ति है। तुम अविनाशी, अनादि एवं अनन्त हो। मृत्यु, रोग, चिन्ता, अपराध, जरा, तुम्हारा स्पर्श स्वप्न में भी नहीं कर सकती। निज वास्तविक अस्तित्व की महत्ता का असीम सागर भरो! भरो!! भरो!!! तुम सर्वव्यापी, अदमनीय, निरोग, निर्भय आत्मा हो। उस असीम शान्ति सागर में विश्रान्ति लो। पूर्ण प्रसन्न रहो।'

'नित्य एवं अनित्य के विषय में विवेक शक्ति से काम लो। आत्मा को सर्व व्यापक जानो। नाम एवं रूप तो केवल भ्रम है। आत्मा के अतिरिक्त अन्य वस्तु के विषय में अस्तित्वहीनता का अनुभव करो। सोचो, विचारो। तुम्हारा स्वरूप क्या है? तुम कौन हो? वास्तव में तुम प्रकाश पर प्रकाशित हो; तुम प्रत्येक वस्तु के उद्गम स्थल हो; तुम अनवरत विद्युत् संचालक गृह हो। तुम सौन्दर्य के सौन्दर्य हो। यह प्रकाश तुम्हारा ही है, जो प्रालेयावनिभृत की बरफीली श्रेणियों को, चन्द्र को, दिवाकर को, नक्षत्रों को, पुष्पों को एवं वृक्षों को, महान् वैज्ञानिकों को, कवियों को, लेखकों को, राजनीतिकों को, विद्यार्थियों को, दार्शनिकों को, तथा अन्य सबको जीवन एवं गति प्रदान करता है! आप वह शक्ति हो, जो धूम्रयान का संचालन करती है, वायुयान को गति प्रदान करती है, जलयानों को वीचिविहोड़ों में अठखेलियाँ खिलाती है। आप उदीयमान अरुण के सौन्दर्य हो, हीरक की ज्योति हो, युवती के आकर्षक हो, सैनिक की शक्ति हो, परिव्राजक की तितिक्षा हो, बुद्धिमान् की बुद्धिमत्ता हो। ऊर्ध्व अधः, दक्षिण वाम समक्षासमक्ष यत्र तत्र सर्वत्र आपका मृदुल प्रकाश, सुमाधुर्य्य महत्ता एवं लावण्य विकास रूप में है! अनुभव करो। साक्षात्कार करो। आत्मानन्दस्थ हो जाओ।'

'आप राजा हैं तथा रंक भी। आप क्षुद्र हैं तथा महान् भी। आप स्त्री हैं तथा पुरुष भी। आप सुत हैं तथा पिता भी। आप बीज हैं एवं फल भी। आप पंच महाभूत हैं तथा उनके पंचीकरण भी। आप सागर हैं तथा सरिता भी। आप कुरूप हैं तथा सुरूप भी। समस्त ब्रह्माण्ड आपके गर्भस्थित है। अनुभवगत होओ। मौन ध्यान द्वारा इसका साक्षात्कार करो!'

'आपके प्रकाश के बल सूर्य प्रकाश-दान करता है; बुद्धि संचालित होती है। आपकी शक्ति के बल वह्नि जाज्वलित होती है, वायु थपेड़े लेती

है, सरिताएँ सागरोन्मुखी होती हैं। चुम्बक लोहे को आकर्षित करता है, पुष्प विकास का स्वप्न लखते हैं। स्वैक्य को सूर्य में, अम्बर में, वायु में, पुष्प में, वृक्ष में, कलिकाओं में, चतुष्पादों में, प्रस्तरों में, सरिताओं में तथा सागर में असीमित-अनुभवगत करो। जीवैक्य एवं चैतन्यैक्य का साक्षात्कार करो! सम्बन्ध-भेद के प्रश्नों से जागृति में चरण-स्पर्श करो। क्षुद्र प्रकृति का हनन करो। निज-सच्चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति करो। ब्रह्म के वास्तविक-सिद्धान्तों में ध्यानावस्थित हो जाओ। अज्ञान-तम को, ज्ञान-सूर्य के बल क्षत-विक्षत कर दो। स्वयं को स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण शरीर एवं पंचभूतों से विभिन्न जानो। महत्-शान्ति-धाम में विश्राम करो।'

'अमृत-पुत्र!प्रकाश-सन्तति!! वेदान्त केवल दार्शनिक विधि नहीं है। यह केवल दिवस-स्वप्न नहीं है। यह जीवन में साक्षात्कार कराने में पूर्णसमर्थ है। वेदान्त आपको उत्तम शिखर पर आरोहण करने में सहायता प्रदान करता है। वेदान्त आपको आपकी चिर-गत-अलौकिकता का स्मरण दिलाता है। जागो! उसका अनुभव करो, जो एक है, जो नामों से रहित है, स्वरूप से रहित है। वह सर्वत्र-व्याप्त है। सत् चित् आनन्द है वह, वह सर्वगत है! उपनिषद् उसको ब्रह्म कहते हैं। स्वयं-ज्योति है वह, स्वयं अस्तित्व है वह, स्वयं सन्तुष्ट है वह, स्वयं उद्भूत है वह, स्वयं सत्य है वह, स्वयमानन्द है वह, स्वयं ज्ञान है वह। वह वेद वृक्ष है, संसाराधार है, बुद्धि की बुद्धि है, प्राणों का प्राण है, नेत्रों का नेत्र है, कर्णों का कर्ण है! वह श्रोता है, दर्शक है, अनुभावक है, सौरभक है! वह मूक साक्षी मात्र है, कर्माध्यक्ष है, अन्तरात्मा है, अवर्णनीय है, सर्व-पूर्ण है, शुद्ध-चैतन्य है, केवल है। वह ईश्वरों का भी ईश्वर है, वह वेदान्तियों का ब्रह्म है। आज, अभी, इसी निमिष से उसे जानने की चेष्टा करो, अनुभव को प्राप्त होओ। वह यहाँ है, आपके हृदय में। जिसे संसार के कोने-कोने में अन्वेषण क्रियागत नहीं कर सकते, उसे स्वयं में करो तथा नित्य-स्वतन्त्र हो जाओ।'

इतनी अमृतमयी-वाणी संसार ने कभी नहीं सुनी होगी। इतनी महती तथा ओजपूर्ण मूर्ति संसार में कभी नहीं प्रकट हुई होगी। संसार-रूप अर्जुन को, जीवन-क्षेत्र में गीता-ज्ञान देने, इस महान् कृष्ण से थोड़ी-सी लीला प्रदर्शित की गयी। क्या शंकराचार्य से सफलीभूत नहीं हुआ, किस अजातवाद को गौड़पादाचार्य साफल्य श्रेणी में नहीं रख सका, किस ज्ञान का रामतीर्थ ने पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण नहीं किया, किस वेदान्त का विवेकानन्द ने स्थापन नहीं किया। वह सब तैलधारावत् अविरल गति से प्रवाहित होता हुआ,

चैत्तन्य-शिखा से जाज्ज्वल्यमान् उद्दीपित प्रकाश रूप, राजानी लाल... सदृश नवयुवकों में ब्रह्मानन्द का सागर तरंगित कर रहा था। उसका बाह्य ज्ञान-शून्य-मिश्रित हो गया था। उसके हृदय में आन्तरिक-विद्युत्-प्रसरण का आह्वान हो रहा था। सहसा उस विशाल, अद्वितीय, मुख गह्वर से प्रस्फुटित मधुर रागिनी ने उसे भक्त्युद्रेकभाव में डाल दिया। वह वेदान्त-निलय से भाव समाधि में तरलवत् हो गया। उसने सुना...।

राम हरे सिया राम राम।
राम हरे सिया राम राम॥
राम हरे सिया राम राम।
राम हरे सिया राम राम॥

श्रोताओं ने भक्त्यावेश में उन्मत्त हो कर अत्युच्च-स्वर में कीर्तन का अनुसरण किया। उस समय का दृश्य देखने योग्य था। पुराण-कथित स्वर्गत-अप्सराओं का नृत्य तथा गन्धर्वों का गान उस समय अत्यनुत्तम श्रेणी का भान होता था। अस्ताचलगत-रश्मि-शेखर की मृदुल-रश्मि-रेखाएँ, बादलों के मध्य से लौट-लौट कर, उस महापुरुष का आलिंगन कर रही थीं। नभ-प्रसारित विहग बालों की कलरवध्वनि भी तो उस महान् के कीर्तन का अनुसरण कर रही थी। युवक राजानी लाल का तो कहना ही क्या? सहसा कल्पनाओं के मध्य...

कृष्ण हरे राधे श्याम श्याम।
कृष्ण हरे राधे श्याम श्याम॥
कृष्ण हरे राधे श्याम श्याम।
कृष्ण हरे राधे श्याम श्याम॥

भू भुवः स्वः लोक में वह मधुर-कीर्तन विद्युदिवाच्छादित होता हुआ, अपने उद्गम-स्थल शून्य में विलय हो गया। प्राची में मेघ रक्त-वर्ण-भासित होते हुए, कीर्तन की उच्च-भाव-समाधि में लीन ज्ञात पड़ते थे। निकटवर्ती प्रवाहिनी माता भागीरथी भी अत्युच्च-स्वर से कीर्तन में स्वर मिलाने लगी। पुनः...

गौरी गौरी गंगे राजेश्वरी।
गौरी गौरी गंगे भुवनेश्वरी।
गौरी गौरी गंगे मातेश्वरी।
गौरी गौरी गंगे माहेश्वरी॥

यह तीसरी समाधि थी। क्रमश: सर्वत्र जनता कीर्तन के स्वैर-संचरण में प्लावित-निज-शरीर को विस्मृति के गर्भ में डाल कर भावमय हो गयी। क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या बालिका, क्या किशोरी, क्या वृद्ध, क्या महान्, क्या नीच, क्या कर्मकाण्डी, क्या सदाचारी, क्या दुराचारी, क्या सनातन-धर्मी, क्या आर्यसमाजी, क्या शैव, क्या रामानुयायी, क्या धर्मात्मा, क्या विधर्मी, सब उस कीर्तन के चतुर्दिक-प्रसरण की क्रिया में अन्तर्गत हो गये। राजानी लाल ने आँखें खोल कर देखा। वह गा रहा था...।

गौरी गौरी गंगे महाकाली।
गौरी गौरी गंगे महालक्ष्मी।
गौरी गौरी गंगे पार्वती।
गौरी गौरी गंगे सरस्वती॥

सहसा उसने महान् ध्वनि की। समस्त-उपस्थित संज्ञाएँ उसमें अन्तर्हित सी हो गयीं। वह आशीर्वादात्मक शब्द-प्रकाशन कर रहा था।

'स्वानन्द स्वरूप, तुम संसार की सेवा करते, अपने हृदय में शुद्धि का आचरण कर निज स्वरूपानन्द में मग्न दिव्य-जीवन-गामी बन कर, कैवल्य-पद प्राप्त करो।'

'गंगाराम! भगवान् तुम्हें वह बुद्धि दे, जिससे तुम सांसारिकता बहिर्गत हो कर, विघ्न-बाधाओं को पराभूत करके; इस चंचल मन एवं इन्द्रियों का पूर्ण दमन करो!'

'चैतन्य! तुम तन्द्रा से स्वतन्त्र हो जाओ। तुम्हारे साधन पथ की अचेतन एवं जड़ बाधाएँ परमात्मा की दया से नष्ट हो जायें।'

'ओ सत्य! तुम्हारे प्रत्येक कर्म सफलता द्वारा अलंकृत हो जायें। परमात्मा तुम्हें वह शक्ति प्रदान करे कि तुम निज धर्म मार्ग में स्थायी रूप से आरोप्य स्वरूप हो कर, सर्वदा के लिए निज स्वरूप में गत हो जाओ!'

'पुत्र! परमात्मा की असीम अनुकम्पा तुम्हें शान्ति दे, आध्यात्मिकता प्रदान करे तथा आपको उच्च पथ का मार्ग प्रदर्शन करे।'

'ओ हेमा! तुम मीरा एवं महारानी चूड़ाला की नाईं संसार में विकसित रहो। तुम उस शक्ति से परिपूर्ण हो, ज्ञान-पथ पर गमन करो, जिससे तुम सती सावित्री के आदर्श से समता कर सको। परमात्मा तुम्हें पति भक्ति दे एवं करुण शुद्ध भाव भी।'

‘ओ मानव! तुम अपने स्वरूप का ज्ञान करो। तुम सांसारिकता रहित जीवन व्यतीत कर, मधुर एवं असीम शान्ति का अनुभव करो। मैं सर्वदा आपका सेवक हूँ; मेरा आगमन आप लोगों के हेतु हुआ है। मैं आपको प्रसन्न करने की यथा शक्ति चेष्टा करूँगा; मैं आपमें विद्युत् संचारण करूँगा; उत्साह प्रदान करूँगा; आश्वासन दूँगा; दरवाजे खटखटाऊँगा; उन्नति का पाठ पढ़ाऊँगा; तुम्हारा शृंगार करूँगा; तुम्हारे वैभव में सन्तोष बन के आऊँगा। मैं तुम्हें सत्य पथ, कैवल्य गति का ज्ञान कराऊँगा। ओ...ऽ...म्।’

‘ॐ’ की मधुर प्रसरणा उत्ताल गति से, शून्य सागर में वेगवती हो, उस महाव्याख्यान का उपसंहार बन गयी। ‘ॐ’ की स्वाभाविक पूर्णता में समस्त व्याख्यान पूर्ण हो गया। दिवस पूर्ण हो गया एवं युवक राजानी लाल का हृदय भी उस ॐ की पूर्णता में पूर्ण हो गया। गोधूलि का अस्त-व्यस्त प्रकाश हरिद्वार की अट्टालिकाओं में छाया हुआ था। कलकलनिनादिनी गंगा का शीतल नीर मधुर निनादकर्ता बन, स्वर्गीय स्फुरण की अनुभूति दान कर रहा था।

गगन में स्थित एक तारक उस पृथिवीस्थ वेदान्त केशरी की गर्जना सुन रहा था। सहसा – सुदूर पूर्व में चन्द्रमा की ज्योत्सना का आगमन हुआ। उसने सुना, तारक बड़बड़ता था - वेदान्त केशरी!

‘क्या कहा?’ चन्द्रमा ने कहा, ‘वेदान्त केशरी।’ और निस्सीम अम्बर में नाचने लगा।

‘सुना व्याख्यान?’ व्याख्यान स्थल से लौटती जनता के मध्य में राजानी लाल अपने भाई ललित कुमार से बोला।

‘वास्तव में’ गम्भीर मुद्रा बना कर ललित कुमार बोला – ‘हैं वेदान्त केशरी ही।’दोनों मौन भाव से अग्रसर हो रहे थे।

यह हुई ‘वेदान्त केशरी’ नामक द्वादश कला समाप्त॥



त्रयोदश कला



एकानुस्वारयुक्त ओंकार को, जिसे योगी अनैमित्तिक-रूपेण-ध्यान-गत करते रहते हैं, जो स्वेच्छा-पूर्वक एवं मोक्ष-प्रदाता है, हमारा नमस्कार है।

The Sacred Sound of the Spirit Supreme,
Endowed with the yonder mystical dot,
Upon which the Yogi's Dhyana flows in unbroken stream,
Which bestows freedom, cutting heart's triple knot,
To That Mighty Occult Symbol Divine,
I render anon most reverent homage of mine.

सन् 1938 की सितम्बर-कालीन-मनोरम बालारुण की रश्मियाँ आनन्द कुटीर के प्रांगण में विखरित हुई, अन्तरालवर्ती दृश्य देखने को व्यग्र हो उठीं। प्राची दिशा ने अक्षय-रत्न-कलश ले, आनन्द कुटीर में आगत जनता के साथ होली सी खेल दी। अन्य प्रान्तों से आगत साधकों की चहल-पहल से भगवान् भास्कर आश्चर्य-चकित हो गये; चिन्ता में पड़ गये – 'आश्चर्य! मेरे से पहले जागृत, आनन्द कुटीर की जनता!' और अत्यन्त संकुचित हो, येन-केन-प्रकारेण मेघ-मण्डल से आविष्ट-भूत हो गये। सहसा...।

हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे॥

एक ध्वनि, महान्-पुरुष के मुख गह्वर से प्रस्फुटित होती हुई, अन्य पुरुषों के कर्ण कुहरों में विलीन हो गयी। समस्त अनुसारकों ने मधुर स्वर में अनुकरण किया। अहा! छटा देखने योग्य थी। अग्रगामी महानादर्श-कीर्तन सम्राट् स्वामी जी के मृदुल महामन्त्र में समाधिवत्, ब्रह्मपुरी को गमन करते हुए साधक लोग, एक अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रहे थे। अमृतसर वासी श्रीमान् तथा श्रीमती हेतराम अग्रवाल एम.डी. सदृश अति-वयस्क भक्त श्री स्वामी जी की संगीतमयी छत्रच्छाया में आगे को बढ़ते जा रहे थे। बाबू नरसी प्रसाद, बी.ए. एल.एल.बी., आसनसोल वासिनी श्रीमती आर.

लाल, लाहौर वासी श्री नारायण दत्त, मुल्तान वासी श्री मनोहर लाल तथा गौंडावासी श्री ओंकार सहाय सदृश पुरुष सम स्वर में प्रीति पूर्वक कीर्तन तथा मार्गानुसरण कर रहे थे। अतिरिक्त इनके, शिष्य मण्डल के काषाय वस्त्रों से सांसारिकता का कामुक सौन्दर्य छिन्न होता जा रहा था।

काषाय वस्त्र धारियों में विश्वेश्वर की उत्साह वर्द्धक ध्वनि ने स्वामी विशुद्धानन्द को अनुभव करा दिया कि वह थक जायेगा। इशारे समझाया; परन्तु कीर्तनानन्दानुभूति में उत्साह युत् विश्वेश्वर अनवरत स्वर से गाता रहा। जब चुप होता तो खाँसने लगता। सहसा उसने सोचा 'जल पीना चाहिए', परन्तु जल कहाँ मिलता। विश्वेश्वर को जलेच्छुक देख, विशुद्धानन्द स्वामी अति व्यग्र हो गये। समझ में न आया, क्या करें? स्मरण आया, एक फरलाँग चलने पर नीरगड्डू प्रपात है। वहाँ अवश्य जल मिलेगा। इंगित कर बतला दिया; 'चिन्ता न करो!' परन्तु उतावला विश्वेश्वर न समझा।

खाँसते-खाँसते विश्वेश्वर का माथा घूमने लगा। उसको संसार शुष्क सा दिखायी दिया! उसके नेत्रों में जल आ गया, पैर लड़खड़ाने लगे। शरीर कम्पित होने लगा। सहसा विशुद्धानन्द जी ने सामने को इशारा किया। विश्वेश्वर का मरणोन्मुखी शरीर स्फूर्तिमय हो गया। बस फिर क्या था, सब खाँसी रुक गयी, तृषा का आक्रमण पचहत्तर प्रतिशत कम हो गया। उसको आश्चर्य हो गया, सोचने लगा – 'यदि इन सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति में मनुष्य कतिपय पूर्णरूपेण निराकांक्षित हो जाता है, तो उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति में मनुष्य इच्छा से तो विलग, और स्वयं से भी निराकांक्षित हो जायेगा। यदि इस सांसारिक इच्छा की पूर्णता ने मुझे कम्पन, नेत्रोद्गार, माथा भ्रमण एवं खाँसी को बन्द कर, अपूर्व स्फूर्ति का संचार कर दिया तो आत्म साक्षात्कार तो मुझे स्वयं स्फूर्ति एवं चैतन्य में लय कर देगा।'

विश्वेश्वर विचार में इतना लय हो गया कि जल प्रपात के एकदम वाम-पार्श्व में आने पर भी उसे चेतना एवं दृष्टिगोचरता न आयी।

'ओ जी! जल पी लो!' विशुद्धानन्द कान में फुसफुसाया।

निद्रा से जगे हुए मनुष्य की नाईं विश्वेश्वर चहुँक कर खड़ा हो गया। सुन, स्वामी जी महामन्त्र समान स्वर में गा रहे हैं। देखा प्रवाहित-निर्झर, अनुभव किया, यथावत् वह अलौकिकता से इहलौकिकता में आ गया है। अग्रसर हो गया प्रवाह की ओर जल पीने...।

'धन्य है, स्वामी जी के प्रताप को!' स्वामी विशुद्धानन्द सोच रहे थे, 'खड़े-खड़े शिष्य को भाव समाधि! ऐसा गुरु संसार में तो क्या, चौदहों भुवनों में अन्वेषणोपरान्त भी नहीं लभ्य होगा। अनेकानेक योगी वर्षों तपश्चर्या करते हैं, परन्तु निर्विकल्प समाधि तो क्या, भाव-समाधिगत भी नहीं हो पाते हैं। उनके मन में सदैव शिकायतों का गुबार भरा रहता है। परन्तु यह!' वे बड़बड़ाने भी लगे – 'आज की आश्चर्यजनक घटना यदि उन योगियों के कर्णों में प्रविष्ट हो जाये, तो उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि आनन्द कुटीर का इंजीनियर केवल इंजीनियर की डिग्री ही हासिल किये हुए नहीं है, वरन् व्यावहारिक इंजीनियरी में भी निपुण है। उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि शिवानन्द मौखिक वा केवल-वेदान्ती ही नहीं, वरंच व्यावहारिक वेदान्ती है, कट्टर कर्मयोगी है, परम भक्त है एवं यौगिक-क्रिया-पारंगत है। वह केवल महान् पुरुष ही नहीं, अपितु महान् का भी निर्माता है...।'

जल पीकर आये विश्वेश्वर के स्वर ने उसके भावों में बाधा डाल दी–'चलो, जरा जल्दी!' विश्वेश्वर बोला, 'स्वामीजी एवं मण्डली आगे बढ़ गई है।'

क्रमशः गमन के पश्चात् ब्रह्मपुरी के गहन-वन में मण्डली ने विश्राम किया! सब लोग बैठ गये। कोई व्योम-मण्डल में टकटकी लगाता तो कोई ध्यानावस्थित हो गया। एकाएक स्वामी जी एक वृक्ष के सहारे उठ खड़े हो गये। उस समय उनकी शरीराभा देखने योग्य थी। चैतन्य के महान् प्रकाश से आच्छादित, उनका पंच-भौतिक शरीर षोडश कलायुत् चमक रहा था। व्योमवर्ती दिनकर का तीव्र प्रकाश उनके प्रकाश में समासीन हो गया। उनकी आभा की देदीप्यमान् छटा से पूर्णोद्दीपित मुखमण्डल में, मानो कोटि दिनकर क्रीड़ा कर रहे थे।

'प्रिय अमर आत्माओं! वह दिव्य जीवन जो कि जगत् के प्रत्येक परमाणु में स्फुरित होता है, प्रत्येक मानव के अन्तरालवर्ती सरोवर में निवास करता है। आत्मा सर्वत्र है। जो आत्मा एक चींटी में है, वही एक मनुष्य में है। जो आत्मा पातकी में है, वही पुण्य कर्ता में है। जो आत्मा एक साधारण भिक्षुक में है, वही एक शक्तिशाली सम्राट् में है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं! प्रकृति का अन्तिम सत्य ही मनुष्य का यथार्थ सत्य है। अन्तर्ज्ञान द्वारा लभ्य अनुभूति के बल आत्मलाभ करना जीवन का लक्ष्य है!'

'जिस प्रकार भस्मेय पदार्थों को भस्मसात् करने की शक्ति पावक में अन्तर्हित है तद्वत भगवन्नाम में, नाम स्मरण करने वालों के पाप संस्कार और

वासनाओं के जलाने की तथा उनको अनन्तानन्द एवं शान्ति प्रदान करने की शक्ति है। यथावत् अग्नि की दाहिका-शक्ति स्वाभाविक एवं प्राकृतिक है तद्वत भगवन्नामस्मरण में पापों को समूल नष्ट करने तथा भाव-समाधि के द्वारा साधक और परमात्मा को आनन्दमयी एकता के सम्पादन करने की शक्ति स्वभाव से ही विद्यमान है।'

'भगवन्नाम के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है? भगवान् के पवित्र नामों की विभूति एवं महिमा का यथार्थत: अनुभव कौन कर सकता है? भगवान् शंकर की अर्द्धांगिनी पार्वती भी भगवन्नाम की महिमा का यथार्थत: वर्णन करने में असमर्थ ही रहीं। राम नाम का संगीत भक्तों के हृदय में यह भावना उत्पन्न कर देता है कि बाह्यान्तर, सर्वत्र, दिव्यात्मा, दिव्य प्रकाश एवं दिव्य जीवन वर्तमान है।'

'मित्रों! आप से इस बात की बड़ी आकांक्षा है और आशा भी है कि आप भगवन्नाम द्वारा साक्षात्कार करने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। जप द्वारा, कीर्तन द्वारा, मन्त्र-लेखन द्वारा, आपको असीमानन्द का अनुभव होगा। यह प्रयत्न आपको मनोनिग्रह में सहायता देंगे एवं चित्त को क्रमश: एकाग्रता की ओर ले जायेंगे। सुनो, तर्क एवं बुद्धि के द्वारा भगवन्नाम के माहात्म्य का प्रतिदान नहीं किया जा सकता। भक्ति, श्रद्धा एवं निरन्तर कीर्तन से इसका लाभ तथा अनुभव अवश्यमेव हो सकता है। महामन्त्र का हर एक नाम अनन्त शक्ति से परिपूर्ण है। नाम की शक्ति अनिर्वचनीय है। इसका माहात्म्य अवर्णनीय है। ईश्वर नाम की क्षमता और स्वयं-सिद्ध-शक्ति अपरिमित है।'

'महामन्त्र इस बात के लिए प्रेरित करता है तथा निरन्तर करता रहेगा कि आप सावधानता, धैर्य-युक्त अभ्यास, अनवरत-चेष्टा, वैराग्य तथा दृढ़ता से साधन करें। आपको यह भाव अन्तर्भूत करना होगा कि आत्मा, ईश्वर, मन्त्र ये सब एक हैं। एतद्भावों को अन्तर्भूत कर, महामन्त्रोच्चारण करना होगा, तभी शीघ्रता सिद्धि एवं ईश्वर प्राप्ति होगी।'

'हरि का नाम कितना मधुर है। कितना शक्तिमान् ईश्वर का नाम है। उन नामोच्चारणों से कितनी प्रसन्नता, कितनी शान्ति तथा शक्ति प्राप्ति होती है। वे वस्तुत: धन्य हैं, जो महामन्त्रोच्चारण करते हैं। वे इस संसार की भारभूत श्रृंखलाओं से निस्संदेह मुक्त हो जायेंगे तथा ब्रह्मानन्द की अनुभूति में समासीन हो, अमरत्व पान करेंगे।'

'अन्तर कोरों से उनके नाम का गान कीजिए। उनमें विलीन हो जाइए। उनमें स्वयं को प्रतिष्ठित कर लीजिए। स्वयं वही बन जाइए। इसी जीवन में जीवन्मुक्त हो जाइए! इस स्वर्णावसर को हाथ से न जाने दीजिए। ऐसा न हो कि अन्ततः पश्चातापानल में जलना पड़े! स्मरण रहे कि ईश्वर प्राप्ति में विलम्ब आत्म हनन है। वह स्थल धन्य है जहाँ महामन्त्र गायन होता है। भगवन्नाम की जय कहिए, जो अनन्तानन्द, शान्ति एवं कैवल्य का निवास है। आप सब लोगों पर भगवन्नाम का अनुग्रह हो।'

मण्डली शान्ति के वातावरण से आच्छादित थी। शून्यता का मृदुल-सुख प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव-कोरों में व्याप्त था। भगवान् भुवन भास्कर गगनावस्थित हो, संन्यास-सम्राट् की आध्यात्मिक गर्जना का श्रवण कर रहे थे। अरण्य स्थित विहग-बालिकाओं की लोल कल्लोल कल गुंजान, क्या उसक दिव्य वाणीमय सकल निगमागम निष्णात का अभिवादन संगीत नहीं गा रही थी? निखिल विपिन ने, क्या उस कीर्तन सम्राट् के माधुर्य स्रोत से सम्पन्न हो, स्वयं को नैसर्गिक साज से नहीं सजाया था? सुदूर पातालस्थितवत् मन्दाकिनी सी मन्दगुंजान समस्त मण्डली के कर्ण कुहरों में, मानो अनन्त युगों की विषादमय कहानी कहती थी।

सहसा मण्डली उठी, एक महामन्त्र का मृदुल संगीत प्रस्फुटित हो गया और समस्त भावना इतस्ततः विकीर्ण हो गयी।

(एक)

ध्यान में मग्न जौर्जेज ई जट्जेलर ने देखा – एक, सहस्रार स्थित अलौकित ज्योति वैकीर्ण्य...।

दो साल से अनवरत चेष्टा करने पर भी ध्यानावस्थित अवस्था नहीं आने से, जौर्जेज ई जट्जेलर ने पुस्तक में पढ़ा – 'गुरु की संरक्षा में, अति शीघ्र साफल्य निश्चित है।' बस फिर क्या था, स्वामी जी के दर्शनों की लालसा से मिस्र की राजधानी, कैरो त्याग कर बम्बई में आ पहुँचा। 'शरीर सुखी नहीं; कुछ दिन विश्राम कर लूँ', सोच कर मैजेस्टिक होटल में ठहर गया। तब...

... सहसा उसने देखा; अगण्य कोटि सूर्य सम प्रभामय, अनन्त लक्ष चन्द्र सम स्निग्ध एवं शान्त, विराट् विश्व व्याप्त, नेति-नेति आदेश युक्त व्यापक, सहस्र शेष एवं सरस्वती द्वारा अवर्ण्य – परम ज्योति, परम पुरुष स्वामी जी का मृदुल-हास्य युक्त अपार मुखमण्डल...।

'वह मेरे प्रभु हँस रहे हैं।' वह कहता गया–'प्रभो! अत्यन्त कृपा की, आ गये! दास पर अत्यन्त कृपा की। मैं आपके दर्शन पाने को व्याकुल था। भगवन्! मेरा जीवन, मेरी साधना', अवरुद्ध कण्ठ से वह बोला, 'मेरा कार्य, मेरे यत्न सफल हो गये, विभो! आज आपका यह विराट् रूप देख कर मेरे को आभास हो गया! मेरे को ज्ञान दो, प्रभो! मैं वही अर्जुन हूँ जिसको आपने रण क्षेत्र में दिव्य संगीत दान दिया। आप वही सकल कला विभूषित हैं! मैं प्रस्तुत हूँ। प्रभो...।'

...दैवात् उसने सुना, मृदुल ज्योत्स्ना की स्निग्धता में, एक अलौकिक दीप्ति प्रवाह असीमितावस्था में प्रवाहित हो गया। वह यह...

'चिन्तित न हो पुत्र! शान्त रह! जीवन के झिलमिल प्रकाश में तूने अनेकानेक स्वप्न देखे। अनेक अभिनयों में मिश्रण किया। तूने जीवन की स्वप्न निधियों को सत्य जान, मृग मरीचिका में भ्रमित हो, अद्यपर्यन्त ज्ञानामृतपान नहीं किया है!'

'तो पवित्र पिता। संसार में वास्तविक सत्य क्या है?'

'सुन! संसार में वास्तविक सत्य परमात्मा है। वह ॐ है।'

'विभो! ॐ क्या है?' जौर्जेज ई जट्जेलर बोला – 'मुझे समझाइए, जिससे मैं उसकी वास्तविकता जान सकूँ।'

'अच्छा, मैं तुझे ॐ के विषय में ज्ञान कराता हूँ जो अमूल्य है। ॐ केवल एक सर्वव्यापक ध्वनि है, जो मेरा सार है। ॐ ध्वनि सृष्टि की सृजन दर्शिनी है। वह ध्वनि मेरी दिव्य शक्ति है, अन्तर गह्वर से प्रस्फुटित है, सर्व पूर्ण है। यह आश्चर्य शक्तिमय शब्द है। यह चमत्कार से परिपूर्ण है। यह सर्व वेदों का एक महान् शब्द है। यही कर्ता है। यह मेरा स्वरूप है।'

'ॐ ही पुरुष है। ॐ अमर आत्मा है। ॐ पवित्र स्वरूप है। ॐ आत्मा का आन्तरिक-सुमधुर संगीत है। ॐ सर्वोपनिषदों का एकीकरण है। ॐ मेरा निर्गुण स्वरूप है।'

'ॐ सकल सृष्टि शब्द है। ॐ गुरु गीता है; ॐ का उच्चारण मेरा ही है! मैं परमात्मा हूँ। ॐ का स्वर हिरण्यगर्भ का है। यह वेदों का शब्द है। ॐ सर्वध्वनि केन्द्र है। ॐ दिव्य ध्वनि है। ॐ अखिल ब्रह्माण्ड का अमृत संगीत है।'

'पुत्र, यह ॐ मेरी प्राप्ति के यथानुगामी विद्यार्थियों के लिए अमूल्य खजाना है। ॐ मम प्राप्ति-रूप प्रतिकूल तट पर, आत्मज्ञान की तरणी पर आरोहित व्यक्तियों के लिए पासपोर्ट है।'

'ॐ सर्वात्मा है। ॐ सर्वोच्चता है। ॐ सर्व पाप नाशक है। ॐ अमृत का मधुर स्रोत है। ॐ ही तेरा लक्ष्य है। ॐ सर्वव्याधि विनाशक है। अत: ओ पवित्र पुत्र! सर्वदा ॐ का ध्यान कर। ॐ के निलय में विलय हो जा। ॐ रूप अमृत सरोवर में स्नान कर, जिस से तू संसारानल की विदग्धता से शान्ति लाभ करेगा।'

'अन्तर्यामिन्!' प्रश्न हुआ, 'मुझे ॐ की व्याख्या का ज्ञान कराइए।'

'मम स्वरूप! ॐ तीन एवं अर्धमात्र युक्त है।'

'मात्रा क्या है, पवित्र पिता?'

'मात्रा वाणी मापक ज्ञान है।'

'इसका उद्‌भव कैसे है, पवित्र-स्वरूप?'

'इसका उद्‌भव संस्कृत के 'मति' रूप, मापने से हुआ है। देख, 'अ' एक मात्रा युक्त है, 'उ' भी एक मात्रागत है तथा 'म' एवं चन्द्र-बिन्दु एक और अर्द्ध-मात्रा-युक्त है।'

'तो स्वामिन्! ॐ मात्रायुक्त है। परन्तु आप तो 'अमात्र' कहे जाते हैं और यदि ॐ सर्वव्यापक है तो हम उसे कैसे माप सकते हैं? मेरा सन्देह दूर कीजिए।'

'परम पवित्र-पुत्र! तेरा यह सन्देह मैं अभी समाधान किये देता हूँ। सुन! मैं कह चुका हूँ, ब्रह्म अमात्र है अर्थात् मापकता रहित है। और सुन! ॐ में त्रयार्द्ध मात्राएँ व्याप्त हैं। परन्तु तू यह भी जान ले कि 'मात्रा' ही ब्रह्म है। शंका-समाधान के लिए श्रुतियाँ कहती हैं, 'शब्द ब्रह्म है' एवं मात्राएँ शब्दाच्छन्न करती हैं। मात्राओं से शब्द-स्वरूप बनता है, अर्थात् मात्राएँ शब्द व्यापक हैं। परन्तु शब्द ही ब्रह्म है; वह केवल एक है! इसके अतिरिक्त अन्य नहीं। एतदर्थ मात्रा ही शब्द हो गया। फलत: शब्द-ब्रह्म द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि मात्रा मापकता-सूचक होते हुए भी स्वयं अमात्र है। चूँकि शब्द ही ब्रह्म है और 'ॐ' भी वही निर्गुणस्वरूप-ब्रह्म है, अतएव 'ॐ' ही वही शब्द-ब्रह्म है। परन्तु मैं कह चुका हूँ कि शब्द-ब्रह्म द्वारा मात्रा 'अमात्र' है। अतएव ब्रह्म भी 'अमात्र' हुआ।'

'और सुन! ॐ में 'अ' पुरुषलिंग, पितृ-सूचक है; 'उ' स्त्रीलिंग मातृ-सूचक है; 'म्' अर्ध-वाची, पुत्र-वाचक है। अर्थात् सम्पूर्ण शब्द ब्रह्माण्ड-सूचक है।'

'हे ज्योतिपुत्र! 'अ' शब्द अहम् शब्द वाचक है; 'उ' एतत् वाचक है। 'म' 'न' वाचक है। अर्थात् अहमेतत् न, न तो मैं, न यही ही। स्पष्टतया

जान लें, यह एक महान् का सूचक है, जो कि नाम रूप से परे है; जो है, जो था एवं जो सर्वदा रहेगा। वह मैं ही हूँ। तब भला यह मात्रामय कैसे हो सकता है?'

'पवित्र पिता!' सन्तुष्ट-स्वर में जौर्जेज ई जट्‌जेलर बोला, 'मेरे सन्देह का समाधान हो गया। प्रभो! मेरे को आपने अन्धकार के गर्त से उबार लिया। प्रभो! देवाधिदेव! सत्यस्वरूप! वेद वेद्य! कालातीत! मेरे इष्ट-देव! आज आपको पा कर मेरी इच्छाएँ शान्ति की मधुरिमा में विलय हो गयी हैं। मेरे प्राण चैतन्यमय हैं। कुण्डलिनी भी स्वयमेव जागृत होने लग गयी है। मेरे समस्त शरीर से ॐ का मधुर गुंजार प्रस्फुटित हो रहा है।'

उसका स्वर गद्‌गद् हो गया। सहसा उसने देखा स्वामी जी क्रमश: उसके निकट आ रहे हैं और एक प्रकाशमय ॐ की छवि, प्रदीप्तोज्ज्वलता से दिशा-विदिशा को प्राप्त करती आ रही है और महान् शब्द संगीत लहरा रहा है।

'ॐ उच्चारण द्वारा विचाराघात करो। अनन्त शक्ति एवं बाहुल्य प्राप्ति करो। ॐ के द्वारा अनन्त सौख्यमय बनो। ॐ का जप करो। ॐ की असीमता में ध्यानावस्थित हो कर, निज अन्त:करण को मृदुल कर, सच्चिदानन्द स्वरूप में विश्राम करो।'

स्वर-स्त्रोत-शान्ति-सीमितावस्थावस्थित होते रहा।

'मुझको ॐ जानो! मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' समस्त विराट्-मूर्ति ॐ में सज्जित हो गयी – 'मैं ही तेरा लक्ष्य हूँ, परम धाम हूँ। मैं तुझ को जन्म-मृत्यु की कड़ियों से मुक्त करूँगा। मैं वही ॐ हूँ, जिसने संसृति की उत्पत्ति के प्रथम प्रहर में माया द्वारा अतीत-वर्तमान एवं भविष्य का स्वप्न देखा। मैं वही ॐ हूँ, जिसने सत्य-युग में नारायण, त्रेता में राम, द्वापर में कृष्ण के अवतार का स्वप्न देखा था। और देख!' मधुर-चेतन-स्वर-वीणित हो गया, 'मैं वही 'अ' से युक्त निर्गुण साक्षी हूँ, जो आज शिवानन्द-स्वरूपेण-घटाकाशवत् आवृत है।'

'उठ! समस्त वाद-विवाद, सांसारिकता को छोड़, मेरा ध्यान कर! अपने सब कर्मों को मेरे अर्पण कर, मैं तेरे जीवन को साफल्य-किरीट से सुसज्जित करूँगा, मैं तुझे तीनों कालों से मुक्त कर दूँगा। मैं ही ॐ हूँ ...!!!'

जट्‌जेलर ने देखा, ॐ की जाज्ज्वल्यमानछटा तीव्र होती गयी, होती गयी। यहाँ तक कि समस्त दृश्य लुप्त हो गये। एक महान् अनन्त ज्योति व्याप्त थी। वह इहलौकिकता को विस्मृत कर, शून्यमय हो गया। उसने न तो प्रकाश

ही देखा न अन्धकार, वह समाधिस्थ हो गया। उसके नेत्र शान्त हो गये, अन्त:करण शान्त हो गया, इन्द्रियाँ शान्त हो गयीं, बुद्धि शान्त हो गयी।

केवल एक अकर्ता-चैतन्यात्मा ही व्याप्त था। समस्त पदार्थ ज्योतिर्मय थे, सहस्त्र-कोटि-सूर्य-सम प्रभामय। परन्तु वह ज्योति उसके सहस्त्रार में स्थित हो गयी थी।

'टन् टन् टन् टन् टन् टन् टन् टन् टन्' सामने के चर्च से प्रात: नौ बजे का मधुर घोष, दिशा-विदिशा पर्यन्त विकीरित हो कर, क्षितिजांचलित हो गया। सहसा कमरे के दरवाजे पर एक धक्का लगा। कुछ देर बाद दूसरा, पुन: तीसरा, पर शून्यता...।

'आज क्या हो गया, मिस्टर जौर्जेज ई जट्‌जेलर को?' होटल का खानसामा बड़बड़ाया। कुछ सोच कर पुन: बोला, 'सम्भवत: स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा, परन्तु...' खानसामा एक अज्ञात आशंका से घबरा उठा और रुद्ध कण्ठ से बोला – 'शायद मृत्यु...'

'क्यों क्या बात है?' सहसा मैनेजर की तीव्र-आवाज ने उसको चौंका दिया – 'साहब अभी नहीं उठे क्या?'

'हुजूर! पता नहीं; कारण क्या है? अभी तक सोये हैं। सम्भवत: ...'

'सम्भवत: क्या?' व्यग्रभाव से मैनेजर बोला, परन्तु उत्तर की अपेक्षा कर आगे बढ़ गया और दरवाजे पर आघात करने लगा। शरीर से पसीना भी बहने लगा। अब मैनेजर को भी वही शंका हो गयी, जो खानसामे को हो गयी थी, 'कहीं मृत्यु तो नहीं हो गयी है?'

'जीवित होता तो हुजूर! अवश्यमेव जाग जाता। भगवान् जाने, क्या बात है हुजूर! दरवाजा तोड़ जो न लिया जाये?'

'हाँ, हाँ,' कुछ सोचने पर मैनेजर बोला, 'तोड़ना तो पड़ेगा, और चारा ही क्या है?' ऐसा कह कर अपने भीमकाय धक्के से दरवाजे को तोड़ने की कोशिश करने लगा।

'चर्र...र्र...र्र...' दरवाजा चरमरा कर गिर गया। दरवाजे के टूटते ही मैनेजर के नेत्र झिलमिला उठे। खानसामे ने तो भयभीत हो कर नेत्र बन्द कर लिये। कुछ देर बाद मैनेजर ने जो कुछ देखा, वह आश्चर्यचकित हो गया।

... कमरे में महान् शुभ्रालोकित प्रकाश बिखरा हुआ है। एक मधुर वातावरण के मध्य में, सन्नाटे के मधुर संगीत में समाधिस्थ, सहस्त्रारगत-स्निग्ध-आलोक वैकीर्ण्य ज्योत्स्ना से प्रत्यालोकित, विस्निग्ध, निश्चल,

भौतिकता के रक्त में पोषित, पदार्थ पर विश्वास करने वाला रक्त, योग को असत्यगत करने वाले राष्ट्र का मिस्टर जौर्जेज ई जट्ज़ेलर, एकत्व की शून्य प्रभा में स्थित अस्तित्वावस्था में लीन था। कई युग बीत गये, सम्भवतः किसी ने यह महान् एवं अभूतपूर्व एवं अभविश्यान्तर न ही सुना ही होगा, न देखा ही होगा।

मैनेजर निर्वाक् था, किंकर्तव्यविमूढ़ दशा में विह्वल था। वह सोचने लगा – 'अद्भुत! आश्चर्य!! बीसवीं शताब्दी की कुतूहलवर्द्धक घटना!!! इस संसार में कौन विश्वास करेगा कि भौतिक वादी नस्ल से उत्पन्न जट्ज़ेलर निर्विकल्प समाधि में है। पाश्चात्य देश के लोग योग में इतने निपुण हैं, यह मैंने आज जाना...!'

इत्यादि-इत्यादि सोचते-सोचते होटल मैनेजर सुध-बुध-रहित होने लगा। उसे ज्ञात न हुआ कि वास्त्व में वह कहाँ है? उसकी विचार शिखाएँ एकीकरण की शृंखला में जटित हो गयीं। उसने एक अदृश्य संगीत सुना, सुदूर मर्म कोरों के क्षितिज की सीमा में उल्लंघन कर, युग-युग की व्यथाओं में नाशगति प्रदान करता हुआ – अपार प्रदेश से। अज्ञातावरणाविष्ट, वह मृदुल संगीत, उसकी बाह्य चेतना को अन्तर्भूत कर गया। उसने देखा; स्वप्न भी नहीं, प्रत्यक्ष भी नहीं, भ्रम भी नहीं, साक्षात् भी नहीं-परन्तु सत्य; विराट् ब्रह्माण्ड स्थित युग-युग-अविचल, सागर की स्थिति के मध्य, भारतवर्ष के हिमस्रजित प्रदेशों के मृदुल चरणों पर, अनन्त वर्षों की व्यथित मानवता का शृंगारकर्ता...एक महान् दिव्य मूर्ति, अविकम्पित, स्थित – जिसके अखण्ड ज्योतिदान से समस्त संसार जाज्वलित है।

उसने देखा... न आदि है न अन्त! संसार सागर उद्वेलित है मनोकल्पित वैताल के तुल्य; समासीन हो जाता है, अज्ञात वाष्प में, जो अस्तित्वहीन था, है और रहेगा। 'अस्तित्वहीन इतनी वासना,' वह सोचने लगा, 'मनोकल्पित– इतनी आशा।'

उसने सुना; वह महान् संसार को पुकार-पुकार कर सन्देश देता है। उसका सन्देश विराट् विश्व में आध्यात्मिकता का सृजन कर रहा है – 'मैं तुम्हारे अश्रुप्लावित नेत्रों में हर्ष का संचार करूँगा। ओ सुप्त मानवते! मैं तुझे जगाऊँगा। ओ युग-युग की दैन्य व्यथा की कोख में पोषित अज्ञान! मैं तुझे 'अ' से रहित कर दूँगा। आओ, मेरे पास आओ; दिव्य जीवन को अपनाओ। हिमालय की तलहटी में स्थित, 'ॐ' के मृदुल केन्द्र ऋषिकेश

की पावन भूमि पर, मेरा, तुम्हारा सम्मिलन निश्चित है। आओ! आओ!! मेरे स्वरूप!!! मेरे गले मिलो। मैं खड़ा हूँ; वर्षों से, युगों से, आदिकाल से, मानवता की संरक्षा के हेतु... यह 'शिवानन्द' आज आपके हेतु खड़ा है, निगुर्णाकाश समाविष्ट कर। उठो, उठो!'

मैनेजर बेसुध हो गया। उसने देखा–विमल प्रकाश और कुछ नहीं; अमल-ज्योति और कुछ नहीं, निर्गुण स्वरूप और कुछ नहीं। वह अन्वेषण की समाधि में सारमय हो गया। उसके मुख से शब्द निकला–'शिवानन्द...।'

पुन: अन्त:करण ने साक्षी दी, नेति-आदेश की; 'केवल इतना ही नहीं, केवल इतना ही नहीं! देखते रहो।'

(दो)

'श्री स्वामी जी की प्रस्तुत वर्षगाँठ में उपस्थित भक्त-मण्डली एवं प्रिय साधक! आज का मृदुल परम पुनीत दिवस आध्यात्मिक इतिहास के पन्नों पर अमर-लिपि द्वारा अंकित किया जायेगा तथा अनेकों युगान्तरों में भ्रमित मानवता को पथ निर्देश करेगा। भला करे क्यों नहीं?'

शाश्वत स्वामी जी मंच पर खड़े हो कर व्याख्यान दे रहे थे। उनके हृदय में अभूतपूर्व स्वर्गीय एवं अलौकिक ओज था। उनके पास ही 'दिव्य जीवन पत्रिका' (The Divine Life Magazine) का नवीन-सम्पादित-स्वरूप रखा हुआ था।

'जिस महान् ने संसार की निद्रित तारिकाओं में जागृति की होली खेली है। जिसके अपूर्व यत्न स्वरूप, हम केवल पुस्तकों का ही नहीं, वरंच अनेकानेक कार्यों का अवलोकन कर रहे हैं; देखो! आँखें खोल कर, संसार-सागर की विद्वेलिता-विचुम्बिता, माया की भीषण तरंगों में अबाध गति से प्रवाहिता, दु:ख दैन्य एवं मृत्यु की कराल कन्दरा में प्रविष्टोन्मुखा मर्त्यत्व-विजड़िता-मानवता के प्रतिनिधि, उसके रक्षक, उसके पोषक, उसके आश्रय, प्रखर दीप्तिमान् भवत् – समीपस्थ-संन्यास सम्राट्, परम-विभामय-स्वामी जी को! यह देखो!' पत्रिका की एक प्रति हाथ में ले कर बोले – 'उसका महान् कार्य 'दिव्य जीवन पत्रिका' का स्वरूप-आविष्ट कर, आज अठारह सितम्बर, उन्नीस सौ अड़तीस के दिवस को परम पवित्र करता है। आपको यह मानना होगा।'

दर्शक आश्चर्यान्वित थे। उन्हें आशा नहीं थी कि स्वामीजी का पत्रिका के प्रति प्रयत्न, इतने शीघ्र प्रकाशित होकर, साफल्य मंच पर अवतीर्ण हो जायेगा।

'जो महान् संसार को सच्चा पथ निर्देश करता है, वह पूजनीय है। आदर्श है यह महान्, जो यश-पुष्प-सुसज्जित अनादि स्वरूप शान्तिमय ज्योतिर्वृक्षतुल्य, अमर तरु की नाईं हिमांचल की तलहटी को अपने महान् प्रकाश से परिशुद्ध करता हुआ, ब्रह्म तेज-परिवृत, परन्तु वस्तुतः संसारोद्धारार्थ, अवतीर्णमात्र, आकाश की नाईं विशाल हृदय वाला, पृथ्वी की नाईं क्षमाशील, सागर की नाईं अथाह, स्वयं अनन्त स्वरूप है! धन्य हो उसे, जो स्वात्मा-सुखस्थ, संसार को सत्यरश्मि द्वारा नवीन ब्रह्ममय पथ निर्देशन कर, उसकी समस्त अशुद्धियों का हरण कर; केवल इतना ही नहीं, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों में गतिमान्, स्वयं सत्य, केवल गुरु है।'

कुछ ठहर कर, शाश्वत स्वामी जी ने एक पत्र सबके सम्मुख उपस्थित किया – 'देखो, इस महान् कार्य का अज्ञात कार्य! तीसरी सितम्बर को अर्द्धरात्रि में इस वर्तमान स्थान से अत्यन्त सुदूर प्रदेश बम्बई के 'मैजेस्टिक होटल' की सुसज्जित अट्टालिका में कैरो से आगत, मिस्टर जौर्जेज ई जट्जेलर ने अपने ध्यान में जो कुछ भी देखा, वह वर्णनातीत है। कोटि-कोटि सूर्य-समप्रभामय ज्योतिर्लिंग, इत्यादि-इत्यादि आदेशों से युक्त श्री गुरु महाराज उसे दिखायी दिये एवं उसे ज्ञानामृत पान करा कर, परासमाधि में लीन कर दिया।'

भक्त-मण्डली उत्सुक हो, आगे सुनने की इच्छा करने लगी। वह बोले– 'दूसरे दिन प्रातःकाल होटल के मैनेजर ने दरवाजा तोड़ कर यह वर्णनातीत दृश्य अपनी आँखों से देखा। वह भी समाधि में लीन हो गया! पत्र में लिखा है, वह कमरा अज्ञात ज्योति किरण से प्रतिच्छविमय है। कोई नहीं देख सकता, वह प्रकाश कहाँ से आता है! केवल एक मधुर स्वर्गीय सुरीली रागिनी सर्वत्र व्याप्त अज्ञात से उमड़ रही है; कमरे का वह अनन्त प्रकाश वास्तव में वाणी से परे है। मैनेजर लिखता है कि मिस्टर जट्जेलर समाधि में लीन है। अब क्या आप समझते हैं कि स्वामी जी साधारण पुरुषमात्र हैं? प्रिय आत्म-स्वरूप! स्वामी जी तो वह परम ज्योति हैं, जो आज आपको इस लीलास्थल पर स्वरूपाविष्ट दीखते हैं। अतएव मैं अत्यन्त न कह कर, केवल इतना ही कहूँगा - मेरा नमस्कार है, जो सत्यस्वरूप है, चित्स्वरूप है, आनन्द स्वरूप है। मेरा बारम्बार प्रणाम है, जो परब्रह्मावतरण है, जो विश्व का विराट् गुरु है, स्वयं सत्य है। हे गुरुदेव! हमें वह शक्ति दो, वह सामर्थ्य दो, वह बल दो, वह ओज दो, वह जागृति दो, वह उत्साह दो, वह यत्न दो,

वह अमरत्व दो कि हम अद्यवत् आगामी भविष्य में भी, आपके वास्तविक उपदेश का अनुसरण कर सकें एवं आपके ही स्वरूप में विश्राम करें। जय हो उसकी!!! जो संसार सागर का प्रकाश स्तम्भ है। जय हो उसकी!!! जो विजन विपिन में प्रकाश स्वरूप है!! अनन्त जयजयकार हो उसकी!!! जो मायाविष्ट जगत् का प्रकाशक चैतन्य ज्योति स्वरूप है!!! ॐ।'

सहसा भीड़ में जय जयकार हुई, 'जय हो!!!'

शाश्वत स्वामी उठ कर बोले – 'चैतन्य ज्योति की!!!' और एक फूलों की माला स्वामी जी के कण्ठगत कर दी; तथा कर बद्ध कर बोला –'ॐ...!' अत्यन्त गम्भीर-स्वरेण।

सबने स्वर मिलाया, 'ॐ...!'

एक प्रकाश स्वर-प्रस्फुटित हुआ, 'ॐ!'

प्रकृति बोल उठी, 'ॐ...!'

विराट्-विश्व ने अनुसरण किया, 'ॐ!'

इतस्तत: समस्त वातावरण 'ॐ' के मधुर निनाद में 'ॐ' मय हो, 'ॐ' में समासीन हो गया।

समस्त भजन हॉल खाली हो गया। केवल एक ध्वनि प्रतिध्वनित होती रही – 'ॐ!' और अभी भी होती रहती है, वही 'ॐ!'

यह हुई 'ॐ' नामक त्रयोदश कला समाप्त॥

सब मंत्रों में 'प्रणव' की महत्ता सर्वश्रेष्ठ है। सभी मंत्रों का सार ॐ ही है। मुक्ति का सीधा मार्ग यही है। सभी मंत्र ॐ से ही आरम्भ होते हैं। प्रत्येक स्तोत्र और प्रत्येक उपनिषद् ॐ से ही प्रारम्भ होता है। जितनी भी आहुतियाँ देवताओं को अर्पित की जाती हैं, वे सब ॐ से ही आरम्भ होती हैं। ॐ की महिमा अपार है। अयोध्या के वैरागी संत के लिए जितना महत्त्व 'श्री राम' मंत्र का है या बंगाल के तांत्रिक के लिए 'ह्रीम्' मंत्र का या मद्रासी ब्राह्मण के लिए गायत्री मंत्र का, ठीक उतना ही महत्त्व ऋषीकेश के वेदांती या संन्यासी के लिए ॐ का है।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

चतुर्दश कला

पूर्ण-प्रभा

अब तो जल्दी जल्दी चल।
अब नहीं वह अँधियारी है,
नहीं अरण्य भय भारी है।
'पूर्ण-प्रभा' में सीमित हो, दिखता मानव! अपना बल॥
अब तो जल्दी जल्दी चल॥

Quickly, quickly, now hasten ahead!
Forever avaunt is darkness hence
No more the dread of forest dense.
Be thou merged in the Full Effulgence,
Assert O Man, Thy Primal Might.
Quickly, quickly, now hasten ahead!

पाठक, वास्तविक रूपेण देखिए तो ज्ञात होगा कि यह जीवन केवल एक स्वप्न की कहानी है, जो मानव मस्तिष्क के भ्रम द्वारा उत्पन्न, रात्रि के स्वप्न की नाईं परिवर्तनशील है।

ज्योति-ज्योति-ज्योति पुत्र! उद्यान के मध्यस्थ-पुष्पों का विकास भी एक पल के निष्ठुर झंझावात के निमित्त में धरणी-पतित हो जाता है। बालिका सोचती है कि 'उस मधुर पुष्पदल का हार बनाऊँगी...!' वह देखती है, मलयानिल के कोमल विहार में मग्न, वह पुष्पदल भ्रमरों की मृदुल गुंजान में सत्य-प्रेम समझ, वासन्त्य कोकिल का मधुर आलाप सुनता है। परन्तु वह पुष्पदल, अज्ञात के नेपथ्य से आशा की वीरान लहर लिए, उसे नैराश्य-विदग्ध कर देता है।

और देखो! यौवन मद में उन्मत्त हो कर मानव अनेक आकांक्षाओं की सृष्टि करता है। परन्तु हाय रे मनुष्य के मनोरथ! तेरी भित्ति कितनी अस्थिर है। बालू की दीवार का तो कुछ भरोसा भी किया जा सकता है, परन्तु तेरा नहीं – तेरे आगे बालकों का घर भी अचल-पर्वत के समान एवं वारांगना का प्रेम सती की प्रतिज्ञा की भाँति अटल है।

तू नहीं जानता, क्या बाह्य अनात्म पदार्थों से भी कहीं सुख की प्राप्ति होती है? तू निजान्तरालवर्ती सरोवर में उस अपार अमृत का पान कर; तू निज-अत्यन्त एवं अनुपम ज्योति का तिरस्कार कर; बाह्य पदार्थों की सीमा का क्यों उल्लंघन करता है?

ओह प्रिय! कभी नेत्र से रूप माधुर्य की तो कभी त्वचा स्पर्श की वासना प्रबल होती है! फिर कभी रसना से रसास्वाद की, तो कभी नासिका सुरभि की विक्रीड़ित-तारिकाओं में स्वप्न देखती है। सत्य है सखे! इन्द्रियाधीन तेरी अवस्था, सागर में तरंग मध्य स्थाणु के समान है।

अब भी चेतनामय हो! वह देख! भारतवर्ष की पुण्यधरा के मध्य, चैतन्य नाद हो रहा है। वह देखो, अवनिभृत के पवित्र-चरणों में अविकम्पित-ज्योतिर्मयी, वह महान् पुरुष तेरे द्वार खटखटा रहा है, वह तेरे अश्रुप्लावित नेत्रों के आँसू पोंछने को आया है। उठ! देख!! उस अखण्डात्म-ज्योति को, जिसका न तो कोई उदय है, न अस्त ही; जो प्रकृति परिवर्तन में निर्विकार है; जो अपनी अमृत-लेखनी से एवं वाणी-प्रवाह से समस्त भुवन में प्रकाश स्रोत का प्रपातन कर रहा है; जो स्वयं-प्रकाश है; जो सूर्यवत् चैतन्य तत्त्व अपनी ही प्रभा से देदीप्यमान् है; जिस चैतन्य ज्योति से ब्रह्मलोक तक, जड़-चेतन समस्त ईश्वरीय जगत् प्रकाशित है। केवल इतना ही नहीं...।

(एक)

'भय्या!' राजानी लाल बोले, उनके मुख पर असीम प्रसन्नता थी, 'मैं आज की गाड़ी से ऋषिकेश को जा रहा हूँ।'

'क्या कहा?' बैग को हाथ में लिए, ज्येष्ठ भ्राता को देख कर, ललित कुमार बोला –'अभी ऋषिकेश को तैयार हो गये क्या?'

'हाँ, निश्चय तो ऐसा ही है...'

'परन्तु छोटे जीवन का स्वास्थ्य शोचनीय है। यदि...'

'व्यर्थ की चिन्ता न करो। सब कुछ कुशल मंगल रहेगा।' राजानी लाल की स्थिर-मुद्रा स्वाभाविक थी, 'अच्छा मैं तो चला।' कह कर वे कमरे से बाहर हो गये।

ललित कुमार ने देखा, भाई गम्भीर स्थिति में बाहर गये हैं। सुना था, ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द जी के यहाँ 'साधना-सप्ताह' मनाया जायेगा।

सम्भवत: वे देखने गये हों। परन्तु उनके हाव-भाव साधारण तो नहीं थे। सहसा बालक के रुदन-स्वर ने उनके विचार में बाधा डाल दी। अन्दर जा कर देखा कि पंचवर्षीय बालक जीवन लाल शयितावस्था में पीड़ा से कराह उठता है। उसका रक्तहीन शरीर स्पष्ट-सूचित करता है कि वह किसी भयंकर रोग का ग्रास बना है। उसके पास बैठ कर ललित कुमार ने उसकी पीठ मलनी आरम्भ कर दी। बालक पुन: सो गया।

'चर्र ...र्र ...र्र ...र्र ...'

एक आवाज के साथ दरवाजा खुल गया। सिर उठा कर ललित कुमार ने देखा, राजानी लाल खड़े थे।

* * *

सड़क पर कदम रखते ही राजानी लाला ने देखा, कि श्री स्वामी शिवानन्द जी पग बढ़ाते हुए उनकी ओर ही आ रहे हैं। राजानी लाल को आश्चर्य हुआ तथा हर्ष भी।

'क्या कारण, स्वामी जी यहाँ पधारे हैं?' वे गुनगुनाये। वे निश्चय न कर सके थे कि स्वामी जी ने *'ॐ नम: शिवाय'* कह कर चरण-स्पर्श कर लिये। अत्यन्त लज्जित हो राजानी लाल ने भी चरण पकड़ लिये।

'कहो पुत्र! क्या समाचार है?' गम्भीर-स्वर में स्वामी जी बोले।

'महाराज! आपकी कृपा से सब कुशल-मंगल है। मैं अभी ऋषिकेश को ही प्रस्थान कर रहा था। आपके दर्शन यहीं प्राप्त हो गये।'

'आपके पुत्र, जीवन का स्वास्थ्य कैसा है? उसे क्यों नहीं साथ ले आते हो? ललित कुमार को भी ले आना श्रेयस्कर है।' स्वामी जी अनन्य प्रेम पूर्वक बोले।

'स्वामी जी! जीवन की अवस्था शोचनीय है; अतएव ललित कुमार का आगमन स्थगित कर दिया गया है।'

'अच्छा तो...' झोली में से विभूति एवं रोली की युगल गाँठ दे कर, स्वामी जी बोले – 'लो यह विभूति। उसके ललाट में लगा कर, यह रोली भी लगा देना। जीवन लाल अतिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ करेंगे। मैं जाता हूँ! आप आइयेगा। *ॐ नम: शिवाय।*'

स्वामी जी चल दिये। राजानी लाल पुन: मकान में प्रविष्ट हो गये।

* * *

'अच्छा... आप?' ललित कुमार अवाक् हो कर बोला, 'आ गये हो?'

'हाँ!' सन्तोष-स्वर में राजानी लाल बोले–'अभी स्वामी जी मिल गये।'

'मिल गये?' प्रश्न-सूचक स्वर में ललित कुमार बोला, 'क्या कहा?'

'हाँ, ज्यों ही मैं दरवाजे से सड़क पर पद रख ही सका था कि सहसा स्वामी जी से भेंट हो गयी; और उन्होंने', पट-पेटिका से विभूति और रोली की पुड़िया निकालते हुए राजानी लाल बोले, '... यह विभूति एवं रोली दी है; और साथ-साथ जीवन को स्वास्थ्य लाभ का आशीर्वाद दिया है।'

'कितने दयालु हैं स्वामी जी!' गद्‌गद्-स्वर में ललित कुमार बोला – 'अच्छा तो आप सायंकाल की ही गाड़ी से जाइएगा क्या?'

राजानी लाल स्वामी जी के प्रेम एवं कारुण्य-भाव के ध्यान में इतने मग्न हो गये कि उन्हें बाह्य स्थिति की प्रतिकूलता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा।

ललित कुमार मौन था।

सहसा विचारों के ज्वार-भाटे ने राजानी बाबू की विचार शक्ति में उद्वेलन उत्पन्न कर दिया – 'धन्य है स्वामी जी, आपको। आप वास्तव में षोडश कलायुक्त परब्रह्म हैं। आप समस्त-सृष्टि की शक्ति हैं। आपकी यह लीला समस्त संसार के हितार्थ ही है।'

'भय्या!' प्रकट में राजानी बाबू बोले, 'तुम इस संसार के कोने-कोने में अन्वेषणा करो, परन्तु तुम्हें दूसरा शिवानन्द नहीं मिलेगा। यह हम लोगों का भ्रम है, जो हम उसे साधारण-मानव समझते हैं। यह हमारी भूल है, जो हम आदर्श की महत्ता नहीं समझते हैं', राजानी लाल कहते गये, 'वे लोग निरे मूर्ख हैं, जो परब्रह्म की खोज में गिरि-कन्दराओं की टक्करें लेते हैं। अन्धविश्वासी हैं वे लोग, जो स्वामी जी को साधारण-कोटि में गिनते हैं। इन लोगों को ज्ञात नहीं कि यही महान् तो साक्षात् चैतन्य पुरुष है, जो माया द्वारा भ्रमित मानवों को पृथ्वी में साक्षात् दृष्टिगत है। तो भला तुम्हीं बताओ, मैं उसे कैसे परम पुरुष नहीं कहूँ?'

'हम पुष्पराज को मधुर जानते हैं; इसलिए नहीं कि वह पंखुड़ियों के अन्दर है। परन्तु हम उसे उसके सौरभ एवं लोचन हर्षक गुण के कारण प्यार करते हैं। हम मोहन-भोग को रुचि से ग्रहण करते हैं; इसलिए नहीं कि वह अग्नि की शिखा द्वारा पक्व है, परन्तु उसे ग्रहण करते हैं उसकी मधुरता एवं निज रुचि के कारण।'

'तुम गंगा जी की मधुर बयार द्वारा आनन्दित होते हो; इसलिए नहीं कि वह अदृश्य तत्त्व है अथवा अमुक दिशाऽऽगत है, परन्तु तुमको आनन्द होता है, बयार प्रदत्त नव स्फुरण शक्ति से; जो तुम्हारे अंग-प्रत्यंग को स्फूर्ति दान करती है। एतद्वत् हम स्वामी जी को परम पुरुष मानते हैं; इसलिए नहीं कि वह संन्यासी हैं, स्वस्थ हैं, इत्यादि इत्यादि, परन्तु हम स्वामी जी को परम पुरुष मानते हैं; उनके इस महान् कार्य के लिए; जिससे आज संसार की रक्त प्लाविता मानवता शुद्ध हो रही है, जिससे सुप्त संसार आज जागृति को प्राप्त हो रहा है, जिससे अज्ञान-तम-निबिड़ित-रजनी उषा की लोल मधुरिमा की जागृति का उपहार सजा रही है। केवल इतना ही नहीं, मेरे भाई! जिसको श्रुतियाँ 'नेति-नेति' आदेशान्तर्गत करती हैं; जिसको वेदान्ती 'ॐ' स्वरूप जानते हैं; शैव शिव स्वरूप जानते हैं, रामानुयायी राम स्वरूप जानते हैं और भागवत कृष्ण स्वरूप जानते हैं; उस पर भी वह आदि, मध्य एवं अन्तहीन ही रहता है। भला, तुम्हीं बताओ! क्षुद्र बुद्धि यह मानव, उसका कैसे साक्षात्कार कर सकता है? अतएव मैं उसे पर-ब्रह्म चैतन्य शाश्वतात्मा कह कर क्यों न पूजूँ?'

'अनन्त युगों के अन्तराकाश में मानव, अतीत-स्वप्न-संगीत की रागिनी शून्य स्थली में उःश्वासित, कर भाव चपलताओं के द्रुत गमन में समासीन हो जाता है। वे भाव विद्युच्छटा कण अनन्ताकाश में मानव का परिहास करते हैं; और कहते हैं – 'अरे तू क्या स्वप्न देखता है? किस स्मृति-रस-धारा में तू प्रतिकूल प्रवाहित हो रहा है? क्षण की यह मानवता है, क्षण का यह मानव प्यार है। अरे, उस सर्व व्यापक की मृदु स्मृति के स्वप्न देख; जिसकी शोभा सुषमापार है! शून्य विभा के पाहुन! तू यदि ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा करता है तो स्वयं ब्रह्म हो जा।' इसलिए मेरे भाई! यदि कोई उस चैतन्य-तत्त्व-ज्योति शिवानन्द को जानना चाहे तो उसे स्वयं शिवानन्द बनना चाहिए। यदि तुम शिवानन्द हो गये तो उसका साक्षात्कार कर लोगे। क्योंकि शेक्सपीयर ही शेक्सपीयर को पहिचान सकता है न कि कोई और। अब तू बता, क्या मैं शिवानन्द, चैतन्य ज्योति के साक्षात्कार में व्यर्थ ही भ्रमित हूँ?'

राजानी लाल की वार्ता वाणी की सुमनोहर रागिनी, अतल वितल सुतलादि तलों में, भूर्भुवस्स्वरादि लोकों में, सायंकालीन विलीयमान दिनमणि की परिश्रान्त एवं परिष्कृत रश्मि की नाईं, क्षितिज में परिसीमित हो गयी।

मध्याह्न का तीव्र दिनमणि प्रचण्डाकाशगत हो, पृथ्वी की यह लीला देख रहा था।

(दो)

'कहा था कि नहीं?' प्रतिमा बोली – 'देखो, देर हो गयी है!'

'कहाँ!' लीला प्रश्न-सूचक-स्वर में बोली – 'अभी तो स्वामी जी आये ही नहीं! देखती नहीं हो? उनका स्थान रिक्त है।'

'स्वामी जी तो देर से आयेंगे।' हेमावती बोली, 'आप अन्दर चल कर बैठें। हरिद्वार से बाबू राजानी लाल चौधरी आये, अत्यन्त सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी व्याख्यान दे रहे हैं।'

हेमावती दोनों आगत-किशोरियों को अन्दर ले गयी। उन्हें यथास्थान पर बैठा कर, पुनः दरवाजे पर आ कर, आगतों के उचित अभिवादन-कार्य में लग गयी।

'देखा?' प्रतिमा बोली – 'गरीब है तो क्या, सेवाभाव तो रग-रग में जोश मार रहा है।'

'यह सब श्री स्वामी जी की शिक्षा है। पिता जी कहते थे कि आनन्द कुटीर का बच्चा-बच्चा कीर्तन जानता है, अँगरेजी एवं हिन्दी में व्याख्यान दे सकता है, कर्म-योग निष्णात है...'

'अच्छा, पीछे इस विषय पर आलोचना होगी।' बात काट कर प्रतिमा बोली –'पहले व्याख्यान तो सुन लें।'

आनन्द कुटीर के आध्यात्मिक वातावरण के घटाटोप से आच्छन्न जनता अत्यन्त उत्सुक हो व्याख्यान सुन रही थी। अपराह्न-गामी भगवान् मार्तण्ड की प्रखर रश्मि-कणिकाएँ बिल्वपत्रान्तर्गत हो छन-छन कर, आनन्द कुटीर की सुरम्य स्थली में, शान्ति की निस्तब्धता में विश्राम करती हुई, ऐसी ज्ञात होती थीं, जैसे ज्ञान-रश्मि मानव की अज्ञोष्मिता कामादि-पत्रान्विता बुद्धि का उच्छेदन करती हुई, उसके अन्तरालवर्ती-पथ में मोदमयी विभूति का आलिंगन करती हो। हरित-वनों की शीतल छाया में क्रीड़ा-निमग्न, आनन्द कुटीर के बालक एवं बालिकाएँ, सांसारिक भेद-दृष्टि से अतीत एवं अज्ञान से पृथक्, ऐसे ज्ञात होते थे, जैसे अनुभव की छत्रच्छाया में सर्वचेतनेन्द्रियाँ कार्यसंलग्नवत् भी आनन्द की हिलोरों में उद्वेलित होती हैं। चरमराते पत्रों की शुष्क अट्टाहासिक-क्रिया, ध्यान-मग्न-पुरुष के चरमाकाश में प्रविष्ट हो जाती थीं। आगन्तुक भक्त-मण्डलियों के मृदुल अस्पष्ट स्वर का एकीकरण, बाधक-रव से समान ऐसा ज्ञात होता था जैसे

प्रत्येक इन्द्रिय के थोड़ा बहिर्वशीभूत हो जाने से मनुष्य पतन के साधनों का पर्याप्त संग्रह कर लेता है।'

'आज का परम पुनीत दिन आप को आह्वान देता है।' राजानी लाल व्याख्यान दे रहे थे – 'उठो अपने पथ पर अग्रगामी होओ। यह दृश्य जगत् केवल अर्द्ध-निद्रा का भ्रममय स्वप्न है। न तो इसमें सत्यता ही, न इसका कोई स्वरूप ही, न भाव वस्तु ही।'

'मेरे बन्धुगणों! यह अनुपम अवसर है, जो आप एक महान् आदर्श की अध्यक्षता में, आध्यात्मिक पथ पर गमन कर रहे हैं। यह कोई साधारण बात नहीं। संसार के सुदूर पश्चिम का प्राणी, स्वामी जी के दर्शनों की आकांक्षा में रोता है। नर-नारियाँ, बाल-वृद्ध, सभी स्वामी जी की छाया को तरसते हैं। परन्तु आप इस अनुपम ज्योति के निकट भी, उसका स्पष्टीकरणानुभव नहीं करते हैं।'

'भाइयों!' वे कहते चले गये, 'अभी तक महोदय ने भाषण दिया था कि स्वामी जी शंकराचार्य के अवतार हैं; साक्षात् विवेकानन्द हैं। वे भूल करते हैं। मैं आपको पुकार कर कहता हूँ, कृपया स्वामी जी को किसी भी कोटि के ज्ञानी से उपमित न कीजिए। सरसरी तौर से देखिए तो ज्ञात होगा कि जिस कार्य को विवेकानन्द, रामतीर्थ एवं अन्य महान् अपने जीवन में नहीं कर सके, वह कार्य तो क्या – उसका दशम गुण कार्य स्वामी जी ने संसृति के अंकिम में केवल उपहार स्वरूप दे दिया है। जो विषय-मद अभी तक अज्ञात गह्वर में स्थित थे, वे आज आध्यात्मिक प्रकाश के प्रदीप्त वैकीर्ण्य में स्पष्टीभूत हो गये हैं। यहाँ तक कि अज्ञानी तक उनकी अनुभूति कर सकता है।'

'यदि आप उन्हें ज्ञानी कहें तो भी पर्याप्त नहीं, क्योंकि ज्ञानी का मूल स्रोत वही है, जैसी कि उपनिषदों की विव्यक्ति है, 'जब न दिन था, न रात्रि ही; न प्रकाश ही था, न अन्धकार ही; न सत् था, न असत् ही, शिव-सावित्री का एकमात्र प्रकाश, सर्वगत था; जिससे अतीत विज्ञान का अभ्युदय हुआ', तो अब आप कैसे स्वामी जी को ज्ञानी कह सकते हैं? पुन: एक ज्ञानी मानव कोटि का होता है, जो ज्ञानोपरान्त ईश्वर कोटि में गण्य हो जाता है। परन्तु स्वामी जी इन सबसे परे हैं।'

'देखिए! एक बार स्वामी जी ने मेरे से कहा – मैं संन्यासी नहीं हूँ। मैं गृहस्थी हूँ, मेरा साधु-समाज में कोई स्थान नहीं...' भला ऐसे शब्द किसी

मानव कोटि के जीवन्मुक्त के मुख से निकल सकते हैं? यह एक महान् का हम अज्ञानियों को झलक निर्देश है। आप लोग अभी तक स्वामी जी की महत्ता इतनी ही जानते हैं कि वे कीर्तनकार हैं, कर्मयोगी हैं, इत्यादि, इत्यादि...।'

'आप!' राजानी लाल गरज कर बोले – 'स्वामी जी की वास्तविक प्रकृति से परिचित नहीं हैं। वे केवल कीर्तनकार एवं वक्ता ही नहीं; वरन् योगवासिष्ठ का व्यावहारिक रूप हैं। योगवासिष्ठ का प्रत्येक सिद्धान्त उनके कर्मों में ओत-प्रोत है, यदि कृष्ण के बाद संसार किसी को देखता है; यदि गीता के उपरान्त किसी महान् शिक्षावली का प्रणयन होता है; यदि जलमग्न वेदों की संरक्षा के उपरान्त, निलयान्वित मानवता की संसृति एवं सभ्यता का कोई उद्घाटन करता है; यदि गज की रक्षा के अनन्तर, करुण व्यथा-दैन्य बन्धन अविगता-कम्पिता की रक्षा हेतु कोई नंगे पद आता है; यदि पांचाली के चीर हरण के पश्चात्, अज्ञानी दु:शासन से अपहरण किये जाते हुए, ज्ञान चीर की कोई परिवृद्धि करता है, तो वह स्वामी शिवानन्द ही है। इसमें सन्देह नहीं।'

'यह वह महानात्मा है जिसने अज्ञान-निशा के गर्भ में सुप्त-धारिता को प्रकाश दिया है। यह वह महानात्मा है, जो सभी ज्ञानियों से अनुपमेय है। कहना नहीं होगा कि वे सब इसी की प्रेरणा हैं।'

'हाँ!' सहसा राजानी लाल को कोई बात स्मरण आ गयी – 'आपको मैं एक रोचक कथा सुनाना चाहता हूँ। कल मैं हरिद्वार से जब इधर को प्रस्थान की तैयारी में मार्ग पर अवतरित हो गया था; सहसा स्वामी जी से मेरी भेंट हो गयी। कुशल-मंगलोपरान्त उन्होंने मेरे रुग्ण पुत्र जीवन लाल के लिए कुछ भस्म दे दिया। अस्तु! यहाँ आ कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मुझे ज्ञात हुआ कि कल स्वामी जी अतिथि अभिवादन में यहीं थे। परन्तु मैंने उनको देखा; यह स्वप्न नहीं सत्य है। यह असत्य है ही नहीं। यह वास्तव में आश्चर्यप्रद है।'

जनता में इस घटना से हलचल मच गयी। सबने ध्यान लगा कर इसे सुना और अपने-अपने सिर हिला दिये। उनके मन्द स्वर उस तीव्र स्वर में मध्यस्थ हो गये।

'केवल यही घटना नहीं; अनेकानेक ऐसी घटनाएँ हैं जो आपको आश्चर्य सिन्धु में गोते लगवायेंगी। अत: हम लोगों का मुख्य कर्त्तव्य

यह है कि हम स्वामी जी के चरण-चिह्नों का ही अनुभव करते हुए, शुद्ध प्रदर्शित आध्यात्मिक पथ पर, अलौकिक छटा की उद्दीपित विभा, अपने निर्देशक की इंगितावस्था में निद्रा त्याग कर विषाद रहित हो अविलम्ब ही अपने जीवन साफल्य के हेतु, यथाशक्ति अजागृति की मतभेद गति में उत्तिष्ठित हो जायें!'

'हम धन्य हैं प्रिय भाइयों! जो स्वामी जी सदृश महान् हमारी रक्षा में तत्पर हैं! पुनः धन्य हो, यह युग! जो एक युग के उपरान्त, संसृति के ह्रास-काल में सुजनों की विनाशावस्था में एक अलौकिक ज्योत्स्ना से आवरणित हुआ है!! पुनर्पुनः धन्य हो वह ज्योत्स्ना! जो चैतन्य की व्यापकता है!!!'

सहसा सब लोग उठ गये। भाषण बन्द हो गया। स्वामी जी ने प्रवेश-द्वार में चरण गमन किया; हेमावती ने चरण छुए। क्रमशः सबने नमस्कार किया और देखो। मृदुल-स्वर से अनेकों कण्ठ पुकार-पुकार कर स्वस्तिवाचन करने लगे। वेदपाठ की समधुर स्वागत-ध्वनि से नभ-तल-वितल अपूर्वस्फुरण से युक्त हो गया। सबने देखा एक विशाल दया का सरोवर, विभूतियों का भण्डार, परम पुरुष! अतिशीघ्र राजानी बाबू मंचावरोहण-क्रियागत हो स्वामी जी के चरणों में गिर पड़े।

सायंकाल की मधुरिमा से समस्त जगत् आलोकित था। खग-वृन्दों की मधुर गुंजान से नवीन कलरव-सृष्टि का सृजन होता था...।

स्वामी जी आसन पर बैठ गये। उस समय सचमुच ऐसा ज्ञात होता था, जो अनुभव एवं वर्णन से परे है। उपस्थित जीव-कोटि एवं ईश्वर-कोटि पुरुषों में जागृतिमान् वह पुरुष वास्तव-गति में प्रकाशमान्, ऐसा प्रकटीभूत था मानो वह सर्वत्र को पूर्ण में एकीकरण कर, अखिल एवं अज्ञात प्रदेश में सोता हो।

समस्त दिव्य जीवन गामी मण्डली, मानो मूक नेत्रों से अज्ञात की ओर देखती हुई कह रही थी – 'प्रभात होता है।'

सखे! इस मानव की लेखनी असमर्थ है। मैं इसका अनुभव कर रहा हूँ। मेरे हृदयाकाश में मनोरम अनुभव का आलोक वैकीर्ण्य गतिगत है। परन्तु युग के प्रतीचि-क्षितिज में उदीयमान, घटाटोप आवरणों को छिन्न करते हुए, मर्म भेदी क्रूर अज्ञान निशाचरों का दमन करते हुए, भीषण उश्वासें भरती हुई मेघ मण्डलियों को आक्रान्त करते हुए, गर्जित झंझावात का निवारण करते हुए, क्रान्तदर्शी, असीमित विभालोक के प्रसारित स्त्रोत के सम्मुख, मेरा अनुमान अकिंचन है।

सहसा स्वामी जी खड़े हो गए, व्याख्यान के लिए! उस समय सहसा ही ऐसा ज्ञात होता था मानो धर्म भूमि कुरुक्षेत्र में चक्रपाणि भगवान् परब्रह्म पुरुष श्रीकृष्ण, महागीता ज्ञान का उपदेश, विषादमय अर्जुन को दे रहे हैं; अथवा एक अज्ञात देश से कोई सम्पूर्ण व्यापकता मायाविष्ट हो कर, स्थिर हो...!'

'ॐ ॐ ॐ!!!'

समस्त अस्थिरवादों की बुनियादें हिलाते, कोलाहल को सीमित करते, विभिन्न विचारों को एकीकरण गत करते, एक संगीत के छाया पथ का प्रसार करते, असार गोधूलि की अवर्ण्य बेला में, एक अश्रुतपूर्व वीणा की झंकार उठी; अथवा प्रकाश कोष से विकीरित प्रकाशालोक, एक क्षण में समस्त लोकों को आलोकित करता हुआ, निर्गुण में समासीन हो गया; अथवा मानवता का चिर-गुप्त-आह्लाद, आह्लादातीत के अखिल गर्भ से प्रस्फुटित होता था; अथवा ऐसा भी हो सकता है कि असत्य निशा के भविष्यागमन से भयभीत प्राणियों को सान्त्वना-प्रदानार्थ, एक विभा कह रही हो – 'डरो नहीं! यह प्रकाश पुंज आता है, तेरे पथ निर्देशन के लिए!!!'

'आत्म स्वरूप... ! संसार माया-निर्मित खिलौना है...।'

वह कहता गया! ज्ञात नहीं होता कि वीणा-झंकार होती है अथवा शंख-ध्वनि; प्रकाश-पुंज आता है अथवा व्यापकालोक।

राजानी लाल गुनगुनाये – 'मानो सृष्टि-संगीत हो रहा हो!' कुछ सोचने पर बोले – 'यह भी नहीं, अमृत-प्रवाह स्वैर गति से, विराट्-ब्रह्माण्ड को शुचिगत कर रहा है।' पुनः सोचने लगे, 'केवल यही नहीं, तब... फिर क्या?' वह गहरे-जल में पैठने लगे, 'कुछ नहीं?... यह भी नहीं कहा जा सकता जब तक अनुभव न हो!!'

अगाध विचार सागर में डूबते हुए राजानी लाल का भेद सर्वान्तर्यामी परम पुरुष ने ले लिया। पास ही जन-समूह के मध्य में बैठे, राजानी बाबू के अन्तराकाश में किसी ने अज्ञात चेतावनी दी, 'यहाँ है चैतन्य ज्योति!'

व्याख्यान वीणा-प्रवाह की नाईं, सबके हृदय क्षितिज में अस्त होता था...।

आनन्द कुटीर रूप क्षितिज में स्थित-ऊषा की मधुर-आगतावस्था में, चैतन्य का मधुरालोक, अपनी सम्पूर्ण कला में अवतरित, भय-ताप निवारण कर, सौख्य प्रदान करता हुआ, अज्ञान नाश कर, ज्ञान-दान करता, अपनी 'पूर्ण-प्रभा' में चमक रहा था। बस फिर क्या था, चैतन्य ज्योति के उदीयमान प्रकाश में, ज्ञान-कमल विकसित हो गये।

संसार में स्थित-रजनी को विदाई देती, गोधूलि के प्रकाश की असतावस्था में, महान् कोटि कोटि सूर्य-सम प्रभामय एवं इससे भी परे, समस्त चराचर एवं इससे भी परे, अन्य लोकों में ज्योति-प्रसार करती हुई, एवं सबसे परे, परम-सुन्दर-कान्त अद्वैत-चैतन्य की प्रभा प्रदीपित हो उठी।

अखिल-विभूति-वृन्द आद्यान्त-श्रुतिगत प्रकृति-कथित सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे थे।

'वह देखो!' प्रकृति बोली – 'आनन्द कुटीर से ज्योति-स्रोत प्रस्फुटित हो रहा है!'

'हूँ' विभूति-उत्तर मिला।

'और देखो, तुम अज्ञानी हो! अभी तक अनुभव नहीं कर सके। यह साधारण-ज्योति नहीं है। इसका मूल स्रोत भी कोई साधारण नहीं, स्वयं चैतन्य है।'

'तो क्या' प्रश्न हुआ – 'यह ज्योति साधारण संन्यासी नहीं?'

'अरे!' प्रकृति हँसने लगी – 'यह प्रकाश यदि साधारण संन्यासी होता अथवा आधुनिक मण्डलेश्वरों की नाईं होता तो क्यों इसे मानवता की सेवा की आकांक्षा होती? यदि यह केवल स्वल्प विद्यावित् संन्यासी की नाईं होता, तो क्यों आज इसके प्रकाशाभ्युदय से अगण्य मानव समाज जाग उठता? क्यों तुमने मानवता की सेवा को अति-क्षुद्र स्थान दिया? तुम अभी अज्ञानी ही हो। जाओ। अभी जा कर ज्ञान प्राप्त करो।'

'यह श्राप न दो माये!' वे बोले, बात काट कर, 'हमें अपनी भूल ज्ञात हो गयी है। हमने उस महान् का अनुभव कर लिया है, जो स्वयं ज्योति है।'

दैवात् एक असीमित प्रकाश अखिलाम्बर में क्रीड़ा करने लगा। प्रकृति देखती थी, 'चैतन्य-ज्योति' का उदय भी पूर्ण-रूपेण हो चुका था...।

अखिल नभ हँसता था...

आनन्द कुटीर से प्रस्फुटित ज्योति की 'पूर्ण-प्रभा' पर॥

यह हुई 'पूर्ण-प्रभा' नामक चतुर्दश कला समाप्त॥



पंचदश कला

महान् की लीला

आनन्द कुटीर में स्थित, शिवानन्द-महान्; अनन्त लीलामय हो, अथाह के स्वर की प्रत्यक्षता के समान; समस्त सम्पूर्ण को जागृति का आह्वान देता है, आध्यात्मिक-प्राण देता है; मुक्ति का दान देता है; और प्रत्यक्ष भान होता है। आज के संसार को संसार के वक्ष में स्थित आनन्द कुटीर में व्याप्त, स्वानन्दान्वित, किसी महान् की महान् पारमात्मिक कृति का दर्शन होता है, तो वह प्रिय प्रणेता के ही शब्दों में 'महान् की लीला' कहनी चाहिए!!

Hail! Thou Great Sivananda, Dweller in the Abode of Bliss! Infinite is Thy transcendent Sport. All universe Thou seekest to awaken with Thy Clarion Call. Hidden Voice and Word of the Infinite Deep has become human gaze, Self revealed and resplendent–Thou bestowest strength of spirit and final freedom unto all.

Whatsover Blissful action the wondering of today witnesses in full swing at this sacred Blissful Abode verily I say unto you, it is fully worthy to be called the transcendent sport of a Great Divine Being.

सन् 1943 के मधुर-वसन्त में, जब कि हेमन्त-रूपी वृद्धा अपने शिशु को प्रकृति के उत्तरदायित्व में छोड़ गयी थी, अनेकों दु:खों से परिवृत एक मानव-आशा, सुख, शान्ति किसी सुदूर में छोड़ कर, आनन्द कुटीर की आनन्दमयी आनन्दिता में आनन्दावृत हुआ। प्रसिद्ध पगौडा कथित देवालयों के मधुर-प्रदेश ब्रह्मा में आक्रमण-कृत-प्रहारों द्वारा आकुल वह दीन युवक, आनन्द कुटीर में प्रविष्ट हुआ।

रंगून में अग्निमुखी-गोलों से अगण्य-ध्वंसकृत ब्रह्मा की अट्टालिकाओं की ओर जापानियों की अद्वैतवादी क्रूर सेनाएँ महा-वेग से अग्रसर हो रही थीं। अपनी इत्यानुक्रमणिका का परिचय देते हुए जापानी वीर, रंगून-वासी पुरुषों के शोणित से अपनी तृषा का तर्पण कर रहे थे। भोली-भाली मृदुलांगा

नारियों की चित्कार से, उन शोणित-शोषक जापानियों का अभिनन्दन संगीत हो रहा था। भस्मीभूत महलों, भवनों तथा अट्टालिकाओं के अन्दर सोये हुए, नन्हें से बालकों की असहाय अवस्था, नर-लोलुप-जापानियों के अधिकार को सिद्ध कर रही थी। प्रेममय माता के ऊपर बलात्कार करते हुए वे निष्ठुर जापानी-पुत्र, बुद्ध भगवान् के मत का अवलम्बन करने में असिद्ध हो रहे थे। ऊर्मित होती हुई सैन्य-तरंगों के भय से भागते हुए जन-समुदाय ने अपने चिर संचित-वैभव की तिलांजलि दे दी। माता ने पुत्र वियोग के करुणामय दृश्य को देखा। समस्त ब्रह्म प्रदेश की अमित-सम्पत्ति, नारियाँ तथा समस्त मानवता भस्म रूप को उपसंहार बना कर क्रूर हत्यारे जापानियों के ललाट पर कलंक का भस्म लगा गयी। अगण्यों की अलोपता अगण्य-मानवता ने अपने अलोपकाल में देखी। सहस्त्रों सुकुमारी बालिकाएँ जापानियों के बन्धन में कर ली गयीं। सहस्त्रों को नदी के गर्भ में समासीन कर दिया गया। सहस्त्रों पतिव्रताओं को नारकीय यन्त्रणाओं से संतापित कर दिया गया। अपनी जान बचा कर भागती हुई अनेकों माताएँ नदी के वक्ष में सदैव के लिए छिप गयीं। अमित-निरवलम्ब ब्रह्म प्रदेश के भीषण अरण्यों में पशुओं की हिंसकता के ग्रास हो गये। चिरकाल से संचय-रूप उन अभागों के मृदुल-हृदय-पुष्प, आकस्मिक विपत्ति के वज्रपात से नष्ट हो गये। जीवन की अशान्ति के नेता जापानियों की महत् पिपासा को तृप्त करने में असमर्थ, बुद्ध की पुत्रियाँ नारकीय-भाव से व्यवहार में लायी गयीं।

असहाय, वेदनामय, दु:खी प्राणियों में वह भी निज-भय-क्लान्त, क्षुधा-पिपासा-भ्रान्त, मन-शरीर-बुद्धि-श्रान्त, सहस्त्रों कोस पार करता हुआ, अरण्यों की भस्म छान कर, जीर्ण-शीर्णावस्था में विदग्ध-हृदय ले, पूर्ण अस्वस्थ, जिस संरक्षा के लिए, अपनी मातृभूमि में प्रविष्ट हो गया! सुदूर दक्षिण को त्याग कर ब्रह्मा में गया हुआ, वह अभागा मानवता की इस अपकर्षावस्था में, पूर्ण तमाच्छन्न, मातृभूमि की पुण्य-सीमा में प्रविष्ट हुआ। उसका हत् भाग्य परिपूर्ण-शान्ति को प्राप्त होने वाला था।

सुदूर उत्तर प्रदेश में चैतन्य ज्योति की लीला हो रही थी। ज्योति का दिव्य प्रकाश सर्वत्र व्याप्त था। असहायों को आश्रय का आह्वान हो रहा था। चैतन्यालोक की अपार-रेणुप्रभा यत्र-तत्र-सर्वत्र असहायों के अनुभवों की चरम सीमा में प्रविष्ट हो, उन्हें अलौकिक प्रदेश की ओर निर्देशित करती थी। उन असहायों में यह भी, चैतन्य-विभा के मृदु-कणालोक-विकीरित मृदुल-

अनुभवों से उत्तराखण्ड की ओर निर्देशित किया गया। अमर-आलोक-चैतन्य की एक रेणु ने उसे आह्वान किया। दैव निर्देशित, अभागा, म्लान-वदन, चिन्तातुर-आश्रयहीन, वह, कई दिनों की यात्रा के उपरान्त, चैतन्य-ज्योति की लीला के केन्द्र, ऋषिकेश स्थित, शिवग्रामगत, आनन्द कुटीर में प्रविष्ट हुआ; जहाँ से उसे आह्वान हुआ था! जहाँ उसने पुण्य-मुहूर्त में प्रवेश किया था और जहाँ उसे एक ऐसे महान् पुरुष द्वारा आश्रय मिला, जो सर्वत्र ही पूर्ण-व्याप्त है।

उसने आनन्द कुटीर के सिंह को सराहा; जिसने उसे नव-जीवन-दान दिया। उसने जान लिया कि यह आलोक श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती के रूप में समस्त पूर्ण की पूर्णता है, समस्त ब्रह्माण्ड की व्यापकता है। उसे आनन्द कुटीर में केवलमात्र सांसारिक आनन्द का अनुभव न हुआ। वह योग्य-संरक्षक द्वारा रक्षित हुआ; योग्य-शिक्षक द्वारा शिक्षित हुआ; योग्य-निर्देशक द्वारा निर्देशित हुआ। वह किस परिवर्तन में परिवर्तित हो गया था, वह आज भी आनन्द कुटीर का साधु-समाज बारम्बार स्मरण करता है...! ऐसी हुई, उस महान् की लीला...!

(एक)

'मेरे को यहाँ रहते तीन महीने हो गये हैं।'

आनन्द कुटीरस्थ एक कमरे में बैठा हुआ, वह ब्रह्मप्रदेशागत-पथिक अकेले कुछ विचार मग्न था। वह अत्यन्त आनन्दमय था। वह आश्रम में प्रवेश करते ही, दयामय स्वामी जी का कृपा-दृष्टि से सर्व-व्यवस्थाओं द्वारा अभिनन्दित किया गया। उसके शरीर, अन्तःकरण तथा आत्मा के पोषण का उत्तरदायित्व उस महान् ने ले लिया। आनन्द कुटीर के साधु-समाज में वह माधवानन्द के नाम से कथित हुआ। वह दिन-प्रतिदिन पूर्ण-स्वास्थ्य लाभ कर रहा था। उसके हृदय में भक्ति का उद्भव हो चुका था। वह अरण्य के बिल्वपत्र-चयन कर, विश्वनाथ देवालय के लिए जाता। वह सर्वदा मन्दिर में प्रतिष्ठित श्री मुरली मनोहर की मूर्ति को सुसज्जित करने में व्यस्त रहता। उसको उस मूर्ति में श्री स्वामी जी का स्वरूप दृश्य आता था। वह कभी-कभी मेरे पास आ कर अपने अनुभवों की कहानी कहता। मैं ध्यान दे कर सुनता, और उसके नित्य प्रति अनुभवों पर आश्चर्य करता था। परन्तु एक दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वह सायंकालीन आरती में उपस्थित होते ही काष्ठवत् हो गया।

'परन्तु', वह सोच रहा था, 'इसी अल्प समय में मेरा कितना परिवर्तन हो गया? मेरा जीवन ही पलट गया। ब्रह्मा से जान ले कर भागा हुआ मैं, किस महान् से संरक्षित किया गया, जिसने अपनी अज्ञात-रेणु के बल पर मुझे सुदूर से यहाँ खींचा। संसार में एतादृशी सहायता से उत्तम कोई कर्म नहीं है। संसार में एतादृशी सहायता से महान यज्ञ कोई नहीं है। संसार में एतादृशी सहायता से उच्च कोई वेदान्त नहीं है। संसार में एतादृशी सहायता से परे कोई साक्षात्कार नहीं है। जिसने इच्छितों की इच्छा-पूर्ति कर दी, उससे महान् कौन है? वह केवल श्री स्वामी जी ही हैं, जो इस गूढ़ विषय के सारतत्त्व को जानते हैं। यह केवल आत्मा के डाक्टर श्री स्वामी जी हैं जो दरिद्रों में नारायण की अनुभूति करते हैं। यह केवल हिमालय-पद-स्थित पावन भूमि ऋषिकेशवासी शिवानन्द रूप पूर्ण चैतन्य-ज्योति है, जो सर्वत्र ही में सर्वत्र है, जो सर्वत्र ही स्वयं है। यह...!'

सहसा मन्दिर के अन्तस्तल में ऊर्मित घण्टिकाओं की स्वर-ऊर्मियों से उसकी विचार धारा में बाधा की गति का आभास हुआ। वह सत्वर ही कमरा बन्द कर, विश्वनाथ मन्दिर में स्थित हुआ आरती की पूर्ण प्रदीप्त उज्ज्वलता में, घण्टिकाओं के लोल-कलोल के मध्य में, शंख-ध्वनि से परिपूर्ण, मधुर स्वरेण संगीत गाते, परमहंस स्वामी चिदानन्द जी सदृश आरती कर्ता के समक्षास्तित्व में, माधवानन्द ने जो अपूर्व दृश्य देखा, उसकी अलौकिकता अलौकिक ही थी। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वह सहसा आता हुआ, अन्तरभाग की ओर दृष्टिपात कर, किसी अज्ञात-शक्ति द्वारा खड़ा कर दिया गया। उसकी भावभंगी वास्तव में अपूर्व थी। उसने इहलौकिक ज्ञान की पूर्ण विस्मृति कर दी। उसने उस दृश्य में जो-कुछ देखा; वह मेरी कल्पना के परे था।

उसने देखा; मुरली मनोहर की मूर्ति में अज्ञात-आभा का समावेश हो रहा है। मूर्ति का अंग-प्रत्यंग पारमात्मिक छवि से आवरणित है। एकाएक उसके समक्ष मूर्ति का लोप हो गया। श्री स्वामी जी की छविमय आकृति का वहाँ पर स्थानावर्तन हो गया। उसने देखा; समस्त देवालय एक ही आलोक से परिपूर्ण है! उस अनन्तालोकितालोक के मध्य, श्री गुरुदेव जी की मूर्ति पारलौकिक-ईश्वरीय-हास्य द्वारा, माधवानन्द की चिर-संचित अभिलाषाओं की पूर्ति कर रही थी, उसने समस्त पदार्थों की अदृश्यावस्था में केवलमात्र श्री स्वामी जी को मुरली मनोहर के स्थान पर अवतरित देखा।

सभी भक्तमण्डली उपस्थित थी। परन्तु किसी को यह दिव्य-दर्शन ज्ञानगम्य न हुआ। यह केवल माधवानन्द ही था, जिसने यह अनुभव किया कि श्री स्वामी जी महाराज जगत् में पूर्ण कलामय अवतीर्ण हुए हैं। वह निर्वाक् था। उसकी अवस्था देख, कई भक्तों को आश्चर्य भी हुआ। उसने सुना कि श्री गुरु महाराज की मूर्ति के अन्तराल से मधुर-संगीत-कल्लोल हो रहा है, जिससे सम्पूर्ण सर्वत्र परिपूर्ण ईश्वरीयत्व की रागिनी में समाधिगत हो रहा है...!

सहसा चरणामृतदाता की कोमल-चेतन-वाणी से जागृत हो, माधवानन्द इहलौकिकता में आ गया! उसने कब चरणामृत लिया, वह स्वयं ही न जान पाया। उसने पुनः चाहा कि दर्शन करे, परन्तु विभा अदृश्य हो चुकी थी। मुरली मनोहर की प्रतिमा पूर्ववत् स्थित थी। वह अधिक न ठहर कमरे में चला गया। मैं भी उसके पीछे हो लिया। मेरे प्रश्नोत्तर में उसने समस्त दृश्य का वर्णन किया और कहा कि वह इस प्रथम दिव्य-दर्शन की स्मृति में किसी चिह्न को सदैव अमर करने की इच्छा करता है। उसने अपने हृदय-कोर से यही शब्द निकाले थे – 'प्रिय गुरुदेव, आपकी इस दर्शन-स्मृति का चिह्न आपकी एक मृत्तिका-मूर्ति होगी; जो इस कृतकृत्य माधवानन्द की प्रथम अनुभव-प्राप्ति की प्रदर्शिणी होगी।' मैं विदा लेकर लौट गया था।

एक सप्ताह में ही...

माधवानन्द ने स्वामी जी की प्रतिमा को अस्तित्वदान दिया, यह उसके अनुभव का चिह्न था। उसने प्रेमपूर्ण हृदय से मूर्ति का निर्माण किया। अपने विगतिल हृदय से उस भक्त माधवानन्द ने अपने इष्टदेव, श्री स्वामी जी का प्रतिरूप अंकित कर, यह स्पष्ट दर्शाया कि वह मृत्तिका तक में परब्रह्म शिवानन्द की अनुभूति करता है।

उस दिन उसने कहा – 'यावत् पर्यन्त 'दिव्य जीवन' का अस्तित्व है; यावत् पर्यन्त आनन्द कुटीर स्थित है; यावत् पर्यन्त कल्पना क्रम चलते रहेगा; नहीं – केवल यह नहीं, यावत् पर्यन्त अनन्त का अन्त नहीं मिलेगा; यह मूर्ति इस स्थान पर स्थित हो मुझ अकिंचन का परिचय-ज्ञान, भविष्यजनों को देगी। एक युग के उपरान्त भी लोग इस भजन-निलय में आ कर, मूर्ति को इंगित करते हुए कहेंगे कि यह मूर्ति उसी माधवानन्द की बनायी हुई है, जो अभागा, निःसहाय, अरक्षित अवस्था में परम प्रभु श्री स्वामी जी द्वारा रक्षित हुआ था। यही मेरी कामना है। यही मेरे अरमान हैं। यही मेरे प्राण हैं।

प्रभो! धन्य है, आपने मुझे पथ-निर्देश किया। बहुत लोग आयेंगे, इस भजन हॉल में, साधना सप्ताह के अवसरों पर, शिवानन्द रूप चैतन्य-ज्योति के अवतार दिवस पर। वे देखेंगे, मेरी कृति को, और देख कर चले जायेंगे। मेरे अरमान, जो इन मूर्तियों में हैं, शान्त हो जायेंगे।'

यही उसने उस दिन कहा था, सबके सामने। कुछ ही घण्टों में सबने उसे अज्ञात में अदृश्य देखा। वह चला गया; पता नहीं कहाँ? परन्तु उसकी निर्मित की हुई मृत्तिका-मूर्ति अद्यपर्यन्त भी भजनहॉल में कक्षान्तर्गत-प्रतिष्ठित; उन लोगों की श्रद्धा में विकास करती है, जो इतस्तत: परिभ्रमित, उसी की भाँति आनन्द कुटीर में शरणार्थ आते हैं। आज भी हम उस दिन की घटित ईश्वरीय घटना को याद कर, विगलित-हृदय से अपने गुरुदेव का, अपने महान् गुरुदेव की लीला का समय-समय पर वर्णन करते हैं...!

उपरोक्त घटना के तीन महीने बाद...

(दो)

रात्रि के मध्य प्रहर में, अरण्य-स्थित झिंगुरों की स्वर-लहरी शून्यत्व की चरमावस्था में स्पष्ट ज्ञात होती थी। समस्त प्रकृति मानो कोप-भवन में प्रविष्ट थी। लहराती हुई भागीरथी का कलरव उस शून्यता में, मानो अज्ञात से क्रीड़ा करता था। वृक्षों की सन्-सन् मानो किसी अज्ञात के आगमन की सूचना में कानाफूसी कर रही हो। समस्त संसार निद्राभिभूत था। दिन भर के श्रान्त मानव क्लान्त-शरीर को विश्रान्ति दे रहे थे। इसी अर्द्धरात्रि में, शून्यत्व के मध्य, हम शिवग्रामस्थित भजनहॉल में एक मनुष्य को महामन्त्र कीर्तन करते हुए सुनते हैं। उसके स्वर में मधु की सरिता प्रवाहित हो रही है। उस निर्जन अरण्य प्रदेश में वह वीणा-तुल्य राग मानो युगों की रागिनी गाता था।

पाठक! आप आश्चर्य करेंगे कि अर्द्धरात्रि में इसके कीर्तन का क्या अर्थ? सुनिए – कीर्तन-सम्राट् श्री स्वामी जी के उद्योग से इस अखण्ड-महामन्त्र-कीर्तन की प्रारम्भिक क्रिया 3 दिसम्बर, 1943 को प्रारम्भ हुई है। इस कीर्तन का क्रम अहर्निश, निर्बाधगति से चलता रहता है। प्रत्येक साधक क्रमानुसार दो-दो घण्टे कीर्तन करते रहता है जिससे से कीर्तन-क्रम बाधित नहीं रहता है। अन्य स्थानों से आगत अतिथि साधक गण भी निजेच्छानुसार इस अखण्ड-कीर्तन में भाग लेते हैं। *इस कीर्तन का अन्त शाश्वत सत्य के साथ ही होना निश्चित हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि कीर्तन अनन्त*

काल तक जारी रहेगा। यह कीर्तनकार भी आज बाहर से, श्री स्वामी जी के आश्रम में आध्यात्मिक शिक्षा का उपार्जन करने आया है। देखिए वह गद्‌गद् स्वर से गाता है –

हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।
हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे॥

उसके स्वर की कोमलता की उपमा कमलिनी की कोमल-कली के अनुभव से दी जा सकती है।

कीर्तनकार के समक्ष श्रीराम-दरबार का चित्र सुरूपेण-सज्जित था। ऊर्ध्व-भाग में भगवान् श्रीकृष्ण की मनोहारिणी प्रतिमा कीर्तन-कर्ता के संगीत की साक्षी। मूर्तियों के उभय-पाश में युगल-दीपक अपनी सुमनोहर टिमटिमाहट से उस अन्धकार में झलक उठते थे। उस समय ऐसा ज्ञात होता था, मानो कोई किसी की राह कल्पों से देखता हुआ, नेत्र-युग्म से प्रतीक्षा की टिमटिमाती ज्योति प्रकाशित किये हुए था। समस्त वातावरण कीर्तन के अदृश्य प्रभाव से पवित्र हो रहा था। पास ही कोने में स्थित, सज्जित-काष्ठ-निर्मित-कक्षान्तर्गत, श्री स्वामी जी की मृत्तिका-मूर्ति, अज्ञात से सर्वसाक्षी के समान ज्ञात होती थी। कक्ष अत्यन्त सुन्दर एवं नयनाभिराम था।

कीर्तनकर्ता अविरल गति से, परन्तु सम-स्वर से महामन्त्र का उच्चारण कर रहा था। समस्त ब्रह्माण्ड स्वप्न प्रदेश की जड़ता में लय था। समस्त आश्रम प्रदेश में केवल एक ही व्यक्ति जागृत था। उसके अतिरिक्त एक और भी पूर्ण चैतन्य था। वह कौन था, वही जानता था। दैवात् किसी अज्ञात प्रेरणा ने उसे एक ऐसे दृश्य की ओर प्रेरित किया, जिसे देख कर वह आश्चर्यान्वित हो गया। उसने अपने जीवन में न तो ऐसा दृश्य कभी देखा ही था, न कभी देखने की आशा ही की थी। परन्तु जिस घटना ने उसे दृश्य रूप में अस्तित्व-दर्शन कराया, उसे देख कर, यदि वह मानव आश्चर्य करे तो कोई विलक्षणता नहीं।

कक्षान्तर्गत मृत्तिका-निर्मित श्री स्वामी जी की प्रतिमा, जो कुछ पल के पूर्व जड़ थी, उस साधक कीर्तनकर्ता के दृष्टि कोरों में, चालन-क्रिया से पूर्ण अनुभवगत हुई। उसने देखा, कक्ष स्थित वह मूर्ति, सजीव रूपेण गतिमय हो रही थी। उसमें पूर्ण-चेष्टा की क्रिया का संचरण हो चुका था। उसे विश्वास ही नहीं हुआ था कि कक्ष-द्वार स्वतः ही किसी अज्ञात के बल खुल गया; और

गम्भीर गति से आती हुई, एक दिव्य पारमात्मिकता का उसे ज्ञान हुआ। वह दिव्य-मूर्ति पूर्ण-प्रभामय, उस मन्द प्रकाशित स्थली को आलोकित करती हुई, उसके वाम पार्श्व में बैठ गयी! उसने देखा, उस अनन्त विकसित विभा में, श्री स्वामी जी का ईश्वरीय रूप! और भी आश्चर्यान्वित हो गया। नेत्र मींचे इतस्तत: सहचर साधकों की यथावत् स्थिति का अनुभव किया। कक्षान्तर्गत स्थान को भी रिक्त देखा। अपनी पूर्ण-जाग्रत-रूप में अनुभूति की। परन्तु पारलौकिक दृश्य वही! उसने चाहा कि कुछ कहे, पर कीर्तन-क्रम भंग होने की आशंका से स्थित रहा। उसने चरण-स्पर्श की इच्छा की; परन्तु किसी दिव्य-प्रेरणा ने उसे एक अपूर्व विद्युत्संचरण से युक्त कर दिया। उसने सुना, श्री स्वामी जी दिव्य भावयुक्त-संगीत का अनुसरण कर रहे हैं। उसकी वह स्थिति अकथनीय ही थी! उसके अन्तर्गगन में किन विद्युच्छटाओं का विकम्पन होता था, उसे केवल वही जान पाया। उसने श्री स्वामी जी के आलोक का जैसा अनुभव किया, वह स्वयं वर्णन नहीं कर सका। जीवन के स्मित हास्य में ही साक्षात्कार का प्रथम सोपान प्राप्त हो जाने से उसकी अवस्था कैसी थी, वही अनुभव कर सकता है।

पाठक! अपूर्व है परमात्मा की लीला!! जिसने अनन्त की कल्पना की और अपने भक्तों के वश साकार रूपेण अवतरित हुआ। यही परमात्मा के अमर-वाक्य हैं; जब-जब उन्नति का ह्रास तथा ह्रास की उन्नति होती है, तब-तब वह उसकी शान्ति के हेतु, भक्तों की रक्षा के लिए अखिला को पवित्र करता है। वही अमर-परिपूर्ण, आज भक्त-साधक को शिवानन्द-रूप में पारमात्मिक विभूति का ज्ञान कराता है।

उपरोक्त दृश्य प्रकट हुए अत्यन्त समय व्यतीत हो गया। परन्तु श्री स्वामी जी की दिव्याकृति यथावत् कीर्तन करती रही। दीवाल-स्थित समय-सूचिका (घड़ी) ने दो बजने की सूचना दी। उपरोक्त साधक का कीर्तन-क्रम समाप्त होने वाला था। उसे चाहिए था कि वह घण्टिका-नाद से अपने उत्तराधिकारी-कीर्तनकार का आह्वान करे। परन्तु अमल-आलोक की पावनता को त्यक्त करने की उसे कामना तक न हुई। वह यथावत् कीर्तन करता रहा। अज्ञात-भावना से प्रेरित वह भाग्यशाली मानव घण्टिका-नाद कर, अपने उत्तर कीर्तनकर्ता को सचेत करने में असमर्थ ही रहा।

मलय-समीर के प्रथम आगमन ने ब्राह्ममुहूर्त की सूचना दी। सुदूर गंगा के विपरीत-तट पर स्थित शिवालय से आरती का होना, घण्टों की गर्जनानुभूति

से ज्ञात हुआ। परन्तु इधर भक्त तथा भगवान् की दिव्य केलि में उसका अनुभव-प्रवेश कहाँ? समय-सूचिका ने चार बजने की सूचना दी। भक्त भगवान् में और भगवान् भक्त में एकांकित थे।

सहसा भजन हॉल के प्रमुख भाग में ब्राह्ममुहूर्त की सूचना सब आश्रम वासियों को दे, उन्हें जागृत हो जाने का आदेश दे कर, मनोरम घण्टे का नाद, प्रात:कालीन समीर से क्रीड़ा करता हुआ, हमारे नायक कीर्तनकार के विचारों में बाधा स्वरूप हो गया। उसने जान लिया कि किसी साधक ने प्रात:कालीन नियमानुसार सबको जागृति का सन्देश दिया है। 'अभी वह अन्दर आयेगा; और इस अपूर्व दृश्य को देखेगा...!'

वह सहम गया। परन्तु उसके सन्तोष का ठिकाना न रहा, जब श्री स्वामी जी का स्वर्गीय आकृत्यालोक अन्य कीर्तनकर्ता के प्रवेश से पूर्व ही, मन्थर गति से गमन कर, अपनी यथावत् अवस्था में कक्षान्तर्गत हो गया। अन्य साधक कीर्तन के हेतु प्रवेश भी न कर पाया था कि श्री स्वामी जी दिव्य गति से कक्ष स्थित हो मृत्तिका-मूर्ति के यथावत् रूप में दृष्टिगत होने लगे।

वह अपूर्व स्फुरण से युक्त था। उसके जीवन की साधें पूर्ण हो गयी थीं। आध्यात्मिक शिक्षा की प्रथम-परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो गया था। उसमें इहलौकिकता का आन्तरिक ज्ञान शून्य हो गया था। उसके नेत्रों के सम्मुख केवल कीर्तनसम्राट् की मधुर-रागिनी प्रतिध्वनित हो, अनन्त-रूपों में व्याप्त थी। वह ध्यान-मग्न था कि अन्य कीर्तनकार ने कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। परन्तु हमारे नायक को ज्ञान कहाँ? वह तो निस्सीमानन्द में लय था। उसके साथी ने उसके मुख से यही शब्द निकलते हुए श्रुतिगत किये – 'धन्य है नाथ आपको! पुन: धन्य है महान् आपको!! पुनर्पुन: धन्य है महान् आपकी लीला को!!!' और निमिष मात्र में भजन हॉल के पुण्य-सोपानों में उतरते हुए बाह्य पथ-गत देखा!

आत्मन् ! यह मूर्ति हमारे पूर्व-नायक माधवानन्द के अनुभवों की प्रदर्शिणी कृति थी, जो तीन महीने के पूर्व निर्मित हुई थी और आज इसी मूर्ति में शिवानन्द महान् की लीला का प्रदर्शन हुआ था।

(तीन)

प्राचीन-विधि शून्य नवीन सभ्यता में पोषित नवयुवक भले ही अपने रासायनिक प्रयोगों में सफल हों, भौतिकता को उच्च स्थान क्यों न देवें, भले

ही वे भौतिकवादी, पदार्थ विश्वस्त ईश्वरीयता पर विश्वास न कर, अपनी रसायन-शाला में कृत्रिमता की अन्वेषणा क्यों न करें, भले ही आधुनिक वैज्ञानिक अपनी बुद्धि के बल विद्युत्कण इत्यादि मिथ्या धारणाओं में सत्यांश क्यों न सिद्ध कर दें, भले ही आज का भ्रमित मानव नवीन प्रकाश में शिक्षित, आत्मा, ईश्वर आदि सत्य का अपने मनस् क्षितिज में पूर्ण लोप क्यों न कर दे। परन्तु दिव्य सदैव दिव्य ही है। सत्य सदैव सत्य ही है। अनेकानेक भौतिक सिद्धान्तों की कृत्रिम पुष्टि के पृष्ठवंश में, एक परम-पावन शक्ति समस्त जगत् का एक ही सूत्र द्वारा नियन्त्रण करती है। समस्त वैज्ञानिक बुद्धि के परे, एक ऐसी बुद्धि का अस्तित्व है, जो किसी भी बुद्धि की महत्ता से ज्ञान-गम्य है ही नहीं। यह पूर्ण सत्य है। पूर्ण सत्य ही सनातन है। यह प्रत्यक्ष सिद्धि है। विविधि प्रमाण इन नेत्रयुक्त अन्धों की दृष्टि में अंकित हो रहे हैं। ऐसे-ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणों ने इनकी वास्तविक कृत्रिमता को यथार्थता के प्रकाश में प्रत्यक्ष कर दिया है कि सभी का ध्यान सनातन पथ पर आध्यात्मिकता की ओर जाता है। अनेकों मत-मतान्तरों में पाशबद्ध मानव-समाज की आँखें आलोक पथ की ओर झुकी हैं। उसे सुदूर से अध्यात्म प्रकाश विकीरितावस्था में दृष्टि आता है। यदि वह प्रकाश (अनुभव रहितों की दृष्टि में) और कोई नहीं तो (अनुभवी-जनों की दृष्टि में) आनन्द कुटीर के दीपक का उद्‌दीपन आलोक ही है।

आज भी भ्रमित समाज यहीं आ रहा है। संसार से विरक्त यहीं आ रहा है। दु:खी मानव यहीं आ रहा है। पश्चिम का सन्तापित यूरोप यहीं आ रहा है। आध्यात्मिक पिपासु यहीं आ रहा है। परन्तु यह सर्वत्र ही व्याप्त है। फिर भी नृशंस भौतिकवादी पाश्चात्य मानव अपने मूल अधिष्ठान ज्ञान के लिए यहीं आ रहा है। आनन्द कुटीर में स्थित शिवानन्द महान् अनन्त लीलामय हो, अथाह के स्वर की प्रत्यक्षता के समान, समस्त सम्पूर्ण को जागरूकता का आह्वान देता है, आध्यात्मिक प्राण देता है, मुक्ति का दान देता है, और प्रत्यक्ष भान होता है। आज के संसार को संसार के वक्ष में स्थित आनन्द कुटीर में व्याप्त, स्वानन्दावित् किसी महान् की महान् पारमात्मिक कृति का दर्शन होता है, तो वह प्रिय-प्रणेता के ही शब्दों में 'महान् की लीला' कहनी चाहिए...!

यह हुई 'महान् की लीला' नामक पंचदश कला समाप्त॥

षोडश कला

क्षमा के अवतार

क्षमा में जीवन-विकास की क्षमता है;
और है क्षमता का अभ्युदय।
जिस अभ्युदय से खिल उठता है,
क्षेम जगत् का, औ' कल्याण॥
इसी क्षेम में सौम्य महान्;
और क्षमामयी-शान्ति-सनातन।

In great-hearted forbearance doth truly repose,
All power the fullness of perfection in life to bestow,
And the blossomimg forth of forgiveness Divine,
In a blossoming that wafts a celestial fragrance fine,
Of welfare and prosperity this welfare giveth birth
And the Eternal Peace permeated with
forgiveness Supernal.

हम सब उसे गोविन्द कहा करते थे।

मई सन् 1946 की 15वीं तारीख थी। प्रातःकालीन गगन में अरुणिमा अस्त हो चुकी थी। लता-पत्र जागृत हो चुके थे। महिमामयी जाह्नवी के परम शीतल जल-प्रवाह में जन-समूह डुबकियाँ लगा रहा था। ब्राह्मणों के वेद-पाठ से पार्श्ववर्ती मणीकूट पर्वत की श्रेणियाँ मुखरित हो रही थीं। संन्यासी-गणों के गेरु वस्त्रों की छवि से प्रकृति का आँचल सज रहा था। प्रणव-ध्वनि से मानो सूर्यमण्डल भी बेधा जा रहा था।

हम सब लोग 'लक्ष्मी अष्टोत्तरशत' का पाठ कर शिवानन्द घाट की भूमि में सूर्य नमस्कार कर रहे थे। वैसे तो सहस्रों की संख्या में यात्री लोग आ-जा रहे थे। किसी में हमें कोई विशेष-आकर्षण नहीं प्रतीत होता था। परन्तु इसी समय हम लोगों का ध्यान घाट पर उतरते एक युवक की ओर आकर्षित हो गया।

उसका शरीर गठीला था। भौंहें अत्यधिक मात्रा में तनी हुई थीं। देह के रंग से ज्ञात होता था कि वह ब्राह्मण कुल-शोभा नहीं था। उसके समस्त अंग

अस्वाभाविक रूप से रचे हुए कृष्णवर्ण-केशाच्छादित थे। उसकी भावभंगी से कोई भी मनोवैज्ञानिक सहसा कह सकता था कि वह युवक अपने जीवन में कोई महाकलुषित-घृणित कर्म कर चुका होगा। आश्रम में रहते-रहते हम मनुष्य के मनोविज्ञान से इतने अभ्यस्त हो चुके थे कि प्रतिच्छाया मात्र से हमें उसके जीवन की विवेचना करने में देर न लगी। प्रतीक्षा इस बात की थी कि वह कब गुरुदेव के पास जाता है।

*   *   *

लगभग नौ बजे गुरुदेव 'हीरक जयन्ती भवन' में नित्य की भाँति आये। वायु काँप सी रही थी। सूर्य मेघमण्डलावृत हो चुका था। कुछ ही क्षण में दिशाएँ अस्वाभाविक रूप से अन्धकारमयी हो गयीं। भला भविष्य की कल्पना दैव के अतिरिक्त और कहीं कौन कर सकता था?

सहसा हमने दृष्टि घुमायी। अरे वही युवक...।

वह स्वामी जी को प्रणाम कर रहा था। उसके शरीर से एक अजीब दुर्वासना का अनुभव हो रहा था। स्वामी जी ने उसकी ओर देखा। क्षणभर के लिए महात्मा के नेत्र चमत्कृत हो उठे। क्षणिक उस मनोवैज्ञानिक झलक में अवश्यमेव कोई भविष्य की घटना अन्तर्हित थी, सम्भवत: उस युवक की उपस्थिति ने महात्मा के अन्तर्निहित संस्कार जागृत कर दिये। हम लोगों ने इस क्षणिक चमक का अनुभव किया तो अवश्य, परन्तु यहीं हमारे अनुभव की सीमा थी। उसके उपरान्त आगमानुभूति हमारे लिए अज्ञेय थी।

यथावत् स्वामी जी ने युवक से वार्तालाप किया।

'मेरा नाम गोविन्द है...' उसने कहा। इसके उपरान्त उसने अस्त-व्यस्त-शब्दों में अपना जीवन का करुण-इतिहास सुनाया। गृहस्थी के संकटों का स्पष्टीकरण करते हुए उसने अपने नवजात शिशु के जन्मोपरान्त स्त्री की आत्महत्या का कारुण्य-विलाप, चमत्कृत महात्मा के समक्ष कहा।

'उसकी आत्महत्या का उत्तरदायित्व इस घृणित-प्राणी पर है,' उसने कहा था, 'मेरे व्यवहार से तंग आ कर वह गर्भिणी यह अमानुषेय-कर्म करने पर उतारु हुई। मेरे दो बालक अब अनाथ हो चुके हैं...'

उसकी कहानी बड़ी लम्बी थी। वह सर्वदा हम लोगों से वही बातें करता था। दिन-प्रतिदिन उसकी आकृति भीषण हो उठी। कोई अपरिचित उसकी उपस्थिति में जीवन-भय की अनुभूति कर सकता था। उसके घमासान केश

डरावने थे; रात्रि के भयंकर-अन्धकार में कभी-कभी स्वामी जी की मनोवैज्ञानिक दृष्टियाँ किसी अज्ञात-भविष्य की याद में चमत्कृत हो जाती थीं।

* * *

आश्रमवासी गोविन्द की दिनचर्या से ऊबते जा रहे थे, वह न जप करता न ध्यान। आश्रम के कार्यक्रम में वह कभी भाग नहीं लेता था। दिनभर वह बूढ़े बाली की दुकान पर बैठा बीड़ी पीता रहता था।

एक बार मैंने हँसते हुए कहा, 'गोविन्द, तुमको मैंने कभी स्नान करते नहीं देखा...'

'मैं...मैं...' छोटी सी छड़ी घुमाते हुए उसने कहा, 'स्नान...ह...हहह...' फिर वह चुप हो गया।

इसके बाद मैं उससे भयभीत सा रहा। उसकी भावभंगी का भयंकर-प्राबल्य मेरे मन में अंकुर बना चुका था! मैंने निश्चय कर लिया कि ऐसे व्यक्ति का रहना आश्रम के लिए हितकर नहीं है। जो मनुष्य आश्रम के नियमों के प्रतिपालन को स्वीकृत नहीं करता, उसको रखने से क्या लाभ?

एक दिन मैंने स्वामी जी से कहा और बताया कि गोविन्द के जीवन की भावभंगी दिन-दूनी और रात चौगुनी भीषण होती जा रही है। न जाने कब वह क्या कर बैठे...!

स्वामी जी के नेत्र चमक उठे। शरीर में रोमांच आ गया। वे हँस पड़े। मनोवैज्ञानिक हँसी थी वह। उनके मुखारविन्दों से एक शब्द भी नहीं निकला! दैव हँस रहा था। मैं निर्वाक् खड़ा था। यह सब क्षणभर में हो गया। मन्थर-गति से उठते हुए उन्होंने कहा – 'संसार में अत्यधम और नारकीय मनुष्य भी कल का होने वाला महात्मा है, भावी सन्त है...'

पुन: नेत्र चमक उठे, मानो कह रहे हों – 'प्रारब्ध ही महान् है। विधाता का विधान अमर है। राजा-रंक, धनी-गरीब, देव-दानव, सज्जन-दुर्जन सभी प्रारब्ध-कर्म के वश में हैं। उसकी सत्ता के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। कर्म-भोग-प्रधान है। देखते रहो दैव के विधान को...' इसके बाद हमने कभी स्वामी जी के नेत्रों को देखने का साहस नहीं किया। न मालूम कितनी बार गोविन्द की उपस्थिति उन्हें चमत्कृत कर देती होगी। हमने भरसक प्रयास किया कि गोविन्द को उसके गाँव में भेज दें। परन्तु सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। न तो स्वामी जी ही स्वीकृति देते थे, न वह ही जाने का नाम लेता था।

सम्भवत: प्रकृति का विधान निर्माण हो रहा था। दैव प्रबल था। सन्तपुरुष के जीवन पर आकस्मिक प्रहार का विधान रचा जा रहा था। दिन-प्रतिदिन आश्रम का वातावरण गहन-प्रशान्त होता जा रहा था। वृक्ष-पत्रों में वह मादकता नहीं थी। शंकरानन्दिनी-भैलाचल-विहारिणी भागीरथी का कलरव अज्ञात भय की आशंका से निस्तब्ध सा रहता था। सुरम्य-गगन में तारागणों की टिमटिमाहट उद्विग्नता को प्रकाशित करती थी। आश्रम वासियों की आकृतियाँ म्लान हो रही थीं। न मालूम क्यों खग-कलरव-कूजन स्तब्ध हो गया। वृक्षों में कूदते हुए बन्दरों की किलकिलाहट यथावत् न रही। आश्रम का रोम-रोम अज्ञात-आशंका शंकित था।

*　　*　　*

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो रहा था। विजन-विपिनस्थ वृक्षावलियाँ शून्यता का आँचल ओढ़े निस्तब्ध थीं। हम लोग कीर्तन कर रहे थे। गीता-पारायण से समस्त-शिवनगर मुखरित हो रहा था। रात्रि के सत्संग में बाहर से आये अभ्यागत भी बैठे थे। भजन-भवन में यथावत् दो अखण्ड-दीप टिमटिमा से रहे थे। सामने थे श्रीराम और मुरली मनोहर के सुरम्य चित्रपट! अखण्ड दीपों के प्रकाश से केवल मात्र भजन-भवन का कोना ही प्रकाशित हो पाता था, द्वार-देश में निशा अन्धकार व्याप्त था। पार्श्ववर्ती खिड़की का आश्रय ले महापुरुष स्वामी जी ध्यानमग्न थे, और अस्वाभाविक रूप से उनके शीशमण्डल पर विशाल-काय पगड़ी बँधी हुई थी। सम्भवत: यह दैव का ही विधान था, अथवा साधन-सम्पन्नता का प्राबल्य?

अन्धकार के गह्वर से प्रकट हुआ एक दानव। अन्ध-तम-आविष्ट वह दानव ज्योतिर्मय जीवन को ग्रस्त करने बढ़ चुका था। कौन ऐसे सोच सकता था कि अन्धकार और महा-प्रकाश में संघर्ष का श्रीगणेश होने वाला है। सम्भवत: संघर्ष के साथ-साथ अन्धकार पर प्रकाश की विजय, विधान में अंकित थी।

कुल्हाड़ी हाथ में लिये गोविन्द की विशाल-घृणित देह प्रकाश द्वन्द्व के हेतु अग्रसर हो रही थी। मन में कलुषित विचार, चेहरे पर घृणा और कलंक उस अन्धकार को और भी प्रगाढ़ बना चुके थे। प्रवेश-द्वार पर पहुँचने में उसे क्या देर लग सकती थी, जब कि कोई प्रहरी भी नहीं था। और स्वामी जी प्रवेश द्वार से 8 इंच हट कर बैठे हुए थे। न मालूम ध्यानावस्थित उनके नेत्र

कितनी बार चमक जाते होंगे। अन्धकार में अग्रसर गोविन्द का कलुषित कर्म उन्हें स्वीकृत था। वे चाहते तो अपने को इस महाप्रहार से वंचित रख सकते थे। परन्तु वे तो महान् जो थे; शास्त्र सिद्धान्त जानते थे, 'कर्म-प्रधान विश्व रचि राखा', मानव-देह के प्रारब्ध कर्मों की समाप्ति उन्हें इष्ट थी। अत: वे ध्यान मग्न थे। गोविन्द का कुल्हाड़ी ले कर आना उन्हें मालूम न पड़ा।

दानव का वज्रहस्त उठा। निर्लिप्त-आकाश की असीमता में कुल्हाड़ी की धार हँस रही थी। लपलपाती तीव्रता की परछाईं में नर-पिशाच के अरमान, दानवी-विभीषिका की गोद में अट्टहास कर रहे थे। अन्धकार में शान्ति नहीं, वरंच पैशाचिकता नृत्य कर रही थी। दरवाजे के पास पैशाचिक अन्धकार में गोविन्द ने कुल्हाड़ी उठायी, सत्य-सनातन-वैदिक-युग-प्रवर्तक चैतन्य-ज्योति की असीम-जीवन-विशालता का अभ्युदय छत्र हटाने; अन्धतम विजड़ित अज्ञ-मानवता के प्रकाश निखिल विश्व के सिरमौर के जीवन चक्र पर आघात करने नर-दानव गोविन्द का शस्त्र उठा। देवता काँप उठे। वायु में सनसनाहट और भीषण शब्द होने लगा। ऐसा ज्ञात होता था मानो समस्त पदार्थ रात्रि की विभीषिका में प्रणव का उच्चारण कर, आने वाले संकट का निवारण करना चाहते हों। विशालकाय, गगन-चुम्बी तरुवर थर्रा रहे थे। विजन-विपिन के प्रान्त में अरण्य-प्रहरी क्षितिज पर्यन्त अपनी मुखरिणी से वातावरण को कम्पायमान कर रहे थे। गम्भीर गति से शस्त्र उठ रहा था। तीव्रतर धारें चमक-चमक कर मानो हिंसावृत्ति में भी सन्त-सनातन के सौम्य स्वरूप को देखना चाहती हों। वातावरण में भीषणता आने लगी। दूर ग्राम-प्रहरी अमंगल वातावरण को विकट बना रहे थे। जहाँ तक कल्पना जा सकती है। जहाँ-जहाँ अणुमात्र की भी सृष्टि थी-समस्त वातावरण हिंसा, अशान्ति, भीषणता और अनवरत द्वन्द्व से समायुक्त था। और शस्त्र गिरा; इन्द्र भी विचलित गया; भगवान् शचिपति पहचान गये अपने आराध्य को। गोविन्द का हाथ काँप गया। क्यों न काँपेगा; जबकि हाथों के अधिष्ठाता भगवान् शचिपति जो हैं। लक्ष्य विचलित हो गया। प्रबल-प्रभंजन आघात से कम्पित द्वार ने प्रहार को रोका। संघर्ष में थम पैशाचिकता को मुंह की खानी पड़ी। दिगन्त-व्यापी अट्टहास के साथ-साथ दरवाजे में कम्पन का आधिक्य हुआ। पास ही दीवाल में टँगे चित्र का बन्धन ढीला होने लगा और चित्र धीरे दरवाजे की कम्पन से कम्पायमान होने लगा।

दानव का साहस क्षीण हो गया! पुन: शस्त्र उठा, धार फिर चमकी। वायु वेग प्रबल हो गया। दीवाल से टँगे चित्र में अस्थिरता का आधिक्य हुआ। पुन:

शस्त्र-प्रहार हुआ! अब तो चित्र की बारी थी। भीषण विद्युच्छटावत् चमकते शस्त्र के प्रहार का सामना अचेतन चित्र ने किया। प्रहार चूक गया। चित्र ने अपने आराध्य की रक्षा में अपने जीवन को चिन्मय बना लिया। चित्र से बिखरते काँच पैशाचिकता की दूसरी हार पर मानो खिलखिला कर हँस रहे थे।

पैशाचिकता निराश हो गयी! दुर्दम्य गोविन्द ने तीसरा प्रहार किया। स्वामी जी की शीश शोभा अस्वाभाविक पगड़ी ने शिरस्त्राण का कर्त्तव्य सम्पन्न किया। कुल्हाड़ी ठीक शीश पर गिरी, पर विशालकाय पगड़ी में फिसलती हुई स्वामी जी के हाथ पर बैठ गयी। सम्भवत: अन्तिम बार अपने आदि पुरुष को जाना। इसीलिए तो यह असामयिक चुम्बन यथेष्ट था।

अब जा कर हमें घटना का ज्ञान हुआ। घटना का वर्णन करने में जितना समय लगा उसके हजारवें भाग से भी अल्प समय में यह दानवीय कर्म का श्रीगणेश और उसकी समाप्ति भी हो गयी। विष्णुस्वामी ने उठ कर विद्युत् के समान झपट गोविन्द का प्रगाढ़ आलिंगन कर लिया। सम्भवत: वह नरदानव चौथा प्रहार भी कर बैठता यदि हम सब सत्वर उसके हाथ-पाँव न बाँध देते।

सभी लोग क्रोधान्वित हो रहे थे। दो-चार लोगों ने गोविन्द की लात-घूँसों से पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। न जाने क्या हो गया होता यदि चेतनागत स्वामी जी उन सबको न रोके होते।

यहाँ पर क्षमा के अवतार की कठोर परीक्षा सम्पन्न हुई। अपकार का बदला चुकाया, परन्तु उपकार से। हिंसा का प्रहार रोका, शान्ति और सौम्य प्रकृति से। जीवन पर जिस दानव ने मृत्यु का प्रहार किया, उसे बदले में मिली परम शान्त अमृतमयी क्षमा। यहीं पर मानव और देव की कर्म पराकाष्ठा है। यहाँ पर मानव या तो राक्षस बन जाता है, अथवा जीवन वैभव की विशालता देवत्वावस्था में दीक्षित और संस्कृत माना जाता है।

यहाँ पर मनुष्य कठिन परीक्षा का सामना करता है; जहाँ पर प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में सदा हताश रहता है। घृणा के बदले प्रेम देने वाला मनुष्य संसार में विरला ही होता है; परन्तु घृणा को भी प्रेम समझने वाला सन्त जगत् में एक ही होता है। जबकि लोग गोविन्द के ऊपर प्रहार कर रहे थे, स्वामी जी ने अपनी सहज-अवस्था में लौट कर सबको रोका। उनके माथे पर कोई भी परिवर्तन नहीं था। यथावत् सौम्यवृत्ति-प्रधान स्वामी जी की मुखाकृति से स्पष्ट भान होता था मानो कोई घटना घटी ही नहीं हो। सचमुच में इस बाह्य घटना ने उन्हें स्पर्श ही नहीं किया था। निर्लिप्त वह आत्म-स्वरूप

पुरुष अपनी ज्ञानावस्था में पूर्णप्रज्ञ था। निर्विकार और निर्विकल्प आत्मा में बाह्य घटनाओं का सम्पात ही कहाँ? क्या यहाँ मनुष्य, देवता, जीवन्मुक्त, विदेहमुक्त और चैतन्य-पुरुष की सत्ता का सत्य सिद्ध नहीं होता?

स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार गोविन्द सुरक्षित ही रहा। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना हमें इष्ट नहीं था। इच्छा तो थी कि गोविन्द की बोटी-बोटी अलग कर दें, परन्तु यहाँ स्वामी जी ने पानी ही फेर दिया। यथोचित सुरक्षा के साथ गोविन्द को रखा गया, ताकि लोग बदला लेने न पायें। उसके लिए भोजनादि का भी विशेष प्रबन्ध किया गया।

अन्त में प्रार्थना करते हुए स्वामी जी ने मन्त्रोच्चारण किया –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

समस्त दिग्मण्डल गूँज रहे थे। पर्वत शान्त थे। नभ-मण्डल स्वच्छ था। ध्वनि तीव्रतर होती जा रही थी।

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय॥

यह विश्व-व्यापिनी एकाकार प्रार्थना थी; जहाँ पर व्यक्ति समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में देखते हुआ, कल्याण और क्षेम की प्रार्थना और सबके ज्ञान की चाह रखता है। अद्वैत निष्ठा में परिनिष्ठित रखते हुए वह गा रहा था।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

समस्त वातावरण मन्त्रमुग्ध सा था! वायु भी शान्त थी। पत्ते भी शान्त थे। जाह्नवी भी शान्त थी। क्योंकि स्वयं अमर-शान्त महापुरुष शान्ति के गीत गा रहा था। शब्दों में अखिल ध्वनि थी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा महतोमहीयान्। जभी तो पैशाचिकता भी शिर झुकाये अचेतन थी।

उपरोक्त घटना का कारण कुछ नहीं भी था तो भी यह प्रारब्ध कर्म की इति श्री थी। बिना कारण के कर्म की श्रुति तो कहीं सुनने में नहीं आती है।

कारण और कर्म कुण्डली की नाईं होते भी कर्मयोग कारण पर ही अवलम्बित है। बिना कारण के न तो कर्म हैं, और न कर्म प्रधान व्यावहारिक सत्ता ही विद्यमान है। स्वामी जी के ऊपर प्रहार के कारण कुछ नहीं थे; फिर भी हम शास्त्र ज्ञान के बल कहने का साहस करते हैं कि पंचभौतिक शरीर भी तो इसका कारण हो सकता है। कारण शरीर तो दु:ख सुखादि द्वन्द्व का कारण है ही। शरीर के रहने तक प्रारब्ध कर्म सजीव रहते हैं। अत: कारण शरीर की अनुपस्थिति में भी प्रारब्ध कर्मरूप शरीर ही इस घटना का कारण बना, अन्त में एक कर्म के संचय को शेष कर गया। यदि भोक्ता साधारण मनुष्य होता तो हिंसा का बदला हिंसा से दे कर प्रारब्ध कर्मों को और भी प्रबल बना देता। परन्तु यहाँ तो महापुरुष का प्रश्न जो था। इसीलिए उसने प्रतिक्रियावाद का खण्डन कर आगम कर्मों की प्रगति रोक दी।

ऐसे महापुरुष संसार में विरले ही नहीं; वरन् कोई एक ही आपको दिखायी देंगे। गीता ने इसे स्पष्ट किया है – *'मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये,'* वास्तव में स्वामी जी के समान विरले मनुष्य ही मानव जीवन की सिद्धि की पराकाष्ठा के क्षितिज तक विहंगम दृष्टि से अनुपात की कल्पना कर सकते हैं। जहाँ साधारण सा मनुष्य अपने पर किये गये अपमान का बदला लेने में खून खराबी भी करने से नहीं हिचकता; वहाँ पर परम-सत्ताशील स्वामी जी, जिनके आदेशमात्र पर शासन की बागडोर शिथिल हो सकती थी; जिनके इशारे में जनता असम्भव को भी सम्भव करने पर जा तुलती, अपनी सौम्य प्रकृति के बल अधमाधम पुरुष में भी सर्वात्म दर्शन करने से न चूके। मलिनों में छवि; दानवों में देवत्व; मृत्यु में जीवन; जीवन में ब्रह्म का साक्षात्कार ही जीवन का विशेष लक्ष्य है।

केवल क्षमादान ही उनके कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं थी। उन्होंने तुरन्त आदेश दिया कि गोविन्द को जिस किसी प्रकार उसके घर भेजा जाये; जिससे समाज के द्वारा लांछित गोविन्द शान्ति प्राप्त करे। परिवर्तन तो मनुष्य जीवन में कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु एक परिवर्तन के उपरान्त अन्य परिवर्तन मनुष्य के हताश हृदय को शान्ति दान देता है।

* * *

कहना नहीं होगा पाठक; कि गोविन्द सकुशल मद्रास पहुँच गया। उसके हताश-चित्त मातृविहीन पुत्रों ने सुख के आँसू बहाये। क्योंकि उनका पिता

एक नवजीवन ले कर आया था; गले में माला थी, मस्तक पर भस्म था, हाथ में गीता थी और चेहरे पर झलक थी – महात्मा के आशीर्वाद की।

गृहस्थ-धर्म-प्रवृत्त गोविन्द का पत्र आते ही स्वामी जी ने सन्तोष की साँस ली। पत्र में भरी थी मानवीय-कृतज्ञता। वह कृतज्ञता, जो भक्त की भगवान् के प्रति ही सम्भव है। पत्र में निरुद्वेग था और थी एक अथक क्षमा की विनय।

स्वामी जी शान्त थे। चेहरे पर निर्मल प्रकाश था, आभा थी, क्षमा के आविर्भाव की मधुर झाँकी थी। उनके रोम-रोम से सौम्य भावना के स्रोत बह रहे थे। 'क्षमा का अवतार' वह महापुरुष मुस्करा रहा था। समग्र शान्ति थी। दिग्मण्डल शान्त थे। तप्त-मार्त्तण्ड भी शान्त हो चुका था। स्निग्ध-चन्द्रोदय भी पूर्ण शान्ति की वर्षा कर रहा था। वातावरण में क्षमा का आलोक प्रकाशित था। विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के ज्वलन्त-उदाहरण स्वामी जी ध्यानस्थ थे। हम सब सन्निकट ही खड़े थे और मौन प्रणाम कर रहे थे, क्षमा के अवतार–स्वामी शिवानन्द जी को!

यह हुई 'क्षमा के अवतार' नामक षोडश कला समाप्त॥



प्रेमविहीन जीवन एकदम शून्य एवं निरर्थक होता है। प्रेम के बिना मनुष्य अपना जीवन व्यर्थ गँवाता है। श्वास की तरह प्रेम जीवन के लिए अत्यावश्यक है। प्रेम जीवन का सार तत्त्व है। प्रेम बाँटोगे तो प्रेम मिलेगा। इसलिए नियमित जप, सत्संग, कीर्तन, सेवा तथा ध्यान के द्वारा अपने भीतर प्रेम की लहलहाती फसल काटिये।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

उपसंहार

कोई उसे लाख भुलाना चाहे, पर वह नहीं भूल जाता है।
कोई अव्यक्त कण कण में, व्यापकता होकर ही आता है।
अमित अथाह-विस्मृति-गर्भ से, स्वर बन वह ही गाता है।
दीवालों में अंकित वह हो, अमर कथा भी सुनाता है।
मरुस्थल में चरण-चिह्न बन वह अज्ञातापार पथ दर्शाता है।
उद्देश्यों की बलिवेदी पर वह, निज-आहूति दे देता है।
सत्य-प्रेम को आधार बना, जीवन प्रासाद बनाता है।
जग को एक परिवार बना वह, शासन-अन्त दिखाता है।
उस स्वर्ग की तो बात ही क्या, वह यहीं स्वर्ग बसाता है।
चैतन्य-ज्योति बन कर वह, अमर विभा छिटकाता है।।

Amid whirl of life Man may fail to remember,
But never does He, the Great Heart forget,
In each several atom, That Undying Ember,
Fully permeating all, He cometh the Great Unmanifest!

From the heart of Limitless deeps,
From far far beyond human ken
As entrancing celestial notes He leaps,
Singing the music of Life to Men.

As the mystical writings up the wall,
He awakens Mankind to the Immortal Call.

His are the footsteps on the sands of time,
That guide the struggling band
Of mankind in every race, creed and clime
Right up to the distant Unknown Land!

Upon the altar of Lofty Ideals
He is a ready and joyous offering now,
Building Life's Mansion Palatial,
With the rare pillars of Truth and Love.

Gathering all earth into an affectionate kinship,
He ends forever rule of might and kingship.
Why speak of heaven as some region superior,
By His Grace Heaven prevails right and now here.

For becoming the light of Consciousness
In all Infinity Immortal Bliss-lights gleam.

नीले अम्बर में मुक्तानग समतारे कैसे दृष्टिगत थे। मानो राहु ने मुक्ताफल को टूटकर प्रांगण में बिखेरा हो। उसी अम्बर प्रांगण के नीचे जगतीतल में जगमगाती दीवाली की अनवरत-टिमटिमाती क्रीड़ा हो रही थी, तो पुनः उसी अम्बर के नील पटल पर तारावलि अत्यन्त शोभित हो रही थी।

अपार सुसीमित-कल्लोलिनी-निशा के कृष्णांचल में, अनन्त-क्षितिज के परे भी अपारगतिमय, विकल-वीचियों में भी कूटस्थ जहाँ न तो सूर्य ही चमत्कृत होता है, न चन्द्र चमकता है, जहाँ वह स्वयं ज्योतिर्मय, समस्त-कार्यज्योति का ज्योति में परिवर्तन करता है, जहाँ न तो वह्नि ही आवश्यकीय है, न इन अर्द्ध-रजनी के प्रहरी, मौन-प्रतिमा-स्वरूप नक्षत्रों का ही कुछ लेश है, परन्तु जहाँ यह सब चमकते हैं उसी ज्योति में – जैसे शीशा चमकता है प्रकाश में। जहाँ का अमर संगीत आज अर्द्ध-रजनी में सबकी निद्रित-संसृति में जागरूकता प्रदान करता है, जहाँ की अमर-कलाएँ आज हमें उस चैतन्य-ज्योति का अनुभव, धूम्र से अग्नि के समान करा रही हैं; वहाँ वह परम गुरु, युगान्त ज्योति स्वयं-चिदानन्द-व्याप्त है।

पुनः देखिए! सौम्य पाठक! रात्रि के गहनान्धकार ने समस्त-मानवों को जड़ मदिरा पिलाकर बेसुध कर दिया। समस्त-संसार निद्रा में बेसुध हो गया। प्रकृति एकान्त सेवन करने लगी। परन्तु देखो। इस अखिल-सुप्त-संसृति में एक महान् अभी भी निद्रा के साधन से विलग, एक जागृत-स्वप्न देख रहा है। उसकी आँख में न तो निद्रा है, न चेतना ही। वह एक अलौकिक विचार में तल्लीन है। न उसे संसृति का ज्ञान है, न है उसे अपनी अवस्था का अनुभव।

अनवरत-गति से कॉपी पर लिखते हुए, उसने देखा – अनन्त नभ के वक्ष से एक तारिका टूट पड़ी।

'अहा!' वह गुनगुनाया, 'क्या ही असह्य-विरह एवं मधुर मिलन है। उधर तो उसका अपने अनन्त सहचरों से मतभेद हो गया और यहाँ मानो ये दीप-शिखाएँ उसका स्वागत कर रही हैं – 'स्वागत है नभ के बिछुड़े जीवन।' सत्य है, इस मानव की भी यही दशा है। अनन्त युगों से आसक्ति एवं त्याग के चक्र में उपचक्रित, पुनः आसक्ति के बन्धन में बँध जाता है। वह सोचता है, अब मैं किसी भी वस्तु से आसक्ति न रखूँगा एवं क्षणिक वैराग्य-वश हो उस वस्तु से बन्धन तोड़ कर, अन्य-वस्तु की आसक्ति में मग्न हो जाता है। प्राचीन काल से इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि मनुष्य एक बन्धन से विरत, पुनः मायाविष्ट हो, अन्य में सीमित हो जाता है। परन्तु क्या उसे वहाँ अनन्त-शान्ति, परम-आनन्द एवं शाश्वत ज्ञान प्राप्त होता है? क्या उसके जीवन की भविष्य-रेखा प्रज्ज्वलित होती है? नहीं, कभी नहीं, अपितु वह अनेक पथ-विभ्रान्त मोह-जाल-समावृत आशाओं के शतशः पाशों में आबद्ध काम, क्रोध, मदान्वित, अधःगति को प्राप्त होता है। वह काम, क्रोध एवं लोभ के त्रिविध-नरक-द्वार में प्रवेश करता है। उसकी अवस्था इस तारक के समान होती है, जो अपने पुण्यों के क्षीण होने पर, मर्त्य-लोक-पतित हो गया है।'

वह विचार में मग्न हो गया। अगराय तारिकाएँ चमकती हुईं, अधस्थित दीप-चमक में झलकते हुए जग से आँख-मिचौनी खेल रही थीं।

'यही अवस्था मानव की भी है', वह विचारगत हो गया, 'अन्ध-निशा के झिलमिल प्रकाश में भटकता हुआ, वह केवल सत्य-दीप के बल पृथ्वी पर गिरता है। और कोई मानवता का कारणी नहीं, केवल सत्य है, केवल सत्य है। परन्तु...' वह गम्भीर हो गया, 'मानव! तू अज्ञानी है। नहीं तो क्या तुझे चेतना नहीं आती? मैं चिरकाल से तेरे कानों में जागृति का संगीत अलाप रहा हूँ। मैंने सांसारिक-सुखों की तिलांजलि दे, तेरा पथ-निर्देशन किया है। यदि मेरे को इस सुदूर से उस सुदूर में अज्ञात का आह्वान हुआ था तो आज मैं इस सुदूर से सम्पूर्ण-सुदूर को विलोड़ित-आह्वान करता हूँ। अभी भी कहता हूँ; उठो, जागो, ठहरो नहीं, जब तक उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाये। मैं सत्य का पक्षपाती हूँ। सत्य ही सर्वत्र विजयी होता है। आ सुशील, सृष्टि के पीछे इतना क्यों मदोन्मत्त है?'

'आओ! आओ!! संसार को त्याग कर, मायामय जीवन को छोड़कर, अस्थिरता से मुख मोड़ कर, माया से नाता तोड़ कर!!! आओ! आओ!! भौतिकता का त्याग कर, दुर्वासनाओं को छोड़ कर, पूँजीवाद से मुख मोड़ कर, नश्वरता से नाता तोड़ कर!!! आओ! आओ!! काम-पिपासा त्याग कर, असत्य जीवन-सुख छोड़ कर पदार्थवाद से मुख मोड़ कर, क्रूर जीवन के घातक अपने इन सम्बन्धियों से नाता तोड़ कर!!! आओ! आओ!! भूल जाओ, तुम्हारी सन्तान है। विस्मृत कर दो, ये माता-पिता इत्यादि हैं। मोह छोड़ कर जान लो, ये तुम्हारे जीवन के अदृश्य हत्यारे एवं उन्नति के बाधक हैं। तुम्हें संसार की ओर घसीटने वाले वास्तविक-अरि हैं। तुम नित्य इनका अनुभव करते हो, परन्तु फिर भी अज्ञानी बनते हो। क्या तुम उनको माता-पिता कहने का साहस करते हो, जिन्होंने तुम्हें प्रथम सांसारिक शिक्षा दे कर, आध्यात्मिक संस्कार खोये, पुन: शादीवाद एवं पूँजीवाद की ओर घसीट कर अन्तत: विनाशमार्ग में धकेल दिया? आज तुम धन से मुहताज हो। स्त्री-बच्चे तुम्हारे सामने मर्मविदारक रुदन मचा रहे हैं, भरपेट भोजन के लिए नहीं– केवल एक रोटी के सूखे टुकड़े के लिए, और तुम्हारा हृदय विदग्ध हो रहा है। परन्तु उन कुसंस्कारों ने तुम्हें जड़-अज्ञान बना दिया है। तुम्हें अभी भी वास्तविक-पथ नहीं दिखायी देता।'

'आओ! मैं दिखाता हूँ, तुम्हें पथ। त्याग दो रोते हुए संसार को! भूल जाओ, मुहजात गृहस्थी को! छोड़ दो, इस रुदन-बन्धन को! आओ! मैं तुम्हें पथ बताऊँगा। मैं तुम्हें पिता के स्थान पर पथ-निर्देशन करूँगा।'

'जान लो, मनुष्य का केवल कर्त्तव्य आत्मसाक्षात्कार है, न कि संसार-साक्षात्कार। क्या संसार तुम्हारे अनन्त जीवन के सुख की योजना में सहयोग दे सकता है? अत: भूल जाओ इस संसार को। संसार की कल्पना तो मरुस्थल में नीर के समान है (*यथा नीरं मरुस्थले*); शून्य में वेताल के समान है (*यथैव शून्ये वेताल:*); आकाश में द्वि-चन्द्र के समान है (*यथाऽऽकाशे द्विचन्द्रत्वम्*); रज्जू में सर्प के समान है (*सर्पत्वेनयथा रज्जू:*)। संसार को वास्तविक समझना पतन की ओर अवरोहण मुखी सोपान है, नरक का द्वार है।'

'देखो! एक युग बीत गया। मैंने संसार को त्यागा। अपनी अस्थिर-बस्ती उजाड़ दी और सुदूर-शून्य में एक महागृहस्थी बसा ली। एक असत्य को विनष्ट कर, अन्य-सत्य का सृजन किया। किसके लिए? अपने लिए? नहीं, संसार के लिए और जो-कुछ करूँगा, वह भी संसार के लिए ही होगा। मेरा

जीवन, मेरी शक्ति, मेरी इच्छा, मेरी आकांक्षा, मेरा धैर्य, सब-कुछ महान्-यज्ञ में काम आ रहा है और आयेगा। इस महान् बलिदान के मंच पर स्थित हूँ, मुझे भय नहीं। यदि मुझे आपके हेतु भस्मीभूत भी हो जाना पड़े तो भी मुझे परवाह नहीं।'

'मैं आज उद्देश्यों की बलिवेदी पर स्थित, आपके हेतु बलिदान देता हूँ। केवल एक बार मेरी बात मानो। प्रिय! आओ!! मैं सप्रेम कहूँगा, भूल जाओ सबको। समस्त संसार कुछ नहीं, केवल गन्धर्वनगर की नाईं कल्पित है (*गन्धर्वाणां पुर यथा*)। माया-परिवृत छाया है। इस छाया के पीछे मत दौड़ो। आओ, गम्भीर नाद करते हुए, आध्यात्मिक क्षेत्र में।'

वह विचारों की सीमा में पूर्ण-रूपेण सीमित हो गया। उसका आह्वान सुदूर-पर्वत-श्रेणियों में प्रतिध्वनित होता था। उसने पुन: कहा –

'मानव! इस जग में तू सब कुछ बन सका है; परन्तु ईश्वर नहीं बन सका है। तूने केवल इस अखिला को देखा। तेरी आँखें आत्म-साक्षात्कार के चरम पद पर न पहुँच सकीं। अरे! तूने मानव से मानवता का वास्तविक-सम्बन्ध न जाना। तूने मानव को मानवता का वैरी समझा और अब बना भी दिया है। आज इसी के कारण मानवता प्रलय, अनिल, अनल और नाश का केन्द्र बनी है। परन्तु मिट्टी के संचय मानव! तुझे कितने महान् अस्थिरवाद के संग्रह की इच्छा है! और यह अस्थिर संग्रह किसके लिए है? तू स्वयं इस ज्ञान को दबाये बैठा है।'

'आ आ! मानव! सत्य ही प्रेम है। यही सत्य मुक्ति है। यह अमर सत्य किसी का बन्धन नहीं। आओ! हम सब इसी सत्य को ले कर नवीन-धरा का सृजन करें और उस दिन की प्रतीक्षा करें, जब यही महान् सत्य हमारे जीवन संसार की आधार-शिला बन पायेगा। हम उस दिन की कामना करें, जब समस्त जीवन एक हो कर, सुन्दर सृष्टि करेगा। हम उस दिन को देखने के लिए यत्न करें, जब समस्त जगत् हमारा परिवार बन जायेगा; जब अनुशासन का प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। जब प्रत्येक व्यक्ति इन्द्र के वैभव की समता कर लेगा; जब प्रत्येक कुबेरवत् हो जायेगा। हमने बनाना है, इस धरा को स्वर्ग– अनुपम स्वर्ग! असीमानन्द परिपूर्ण, सकल वैभवयुक्त, असत्य रहित, अधर्म हीन!! अहा! वह दिन भी क्या मेरे द्वारा आयेगा? जब महासागर भी शान्त हो कर, समस्त वातावरण को शान्त कर देंगे। जब आँधी, बवंडर, आधि-व्याधि का समूल-नाश हो जायेगा। क्या मेरे द्वारा संसार वह दिन देख सकता है?

जब सुख का प्रश्न ही नहीं रहेगा, जब सब स्वयं सुखी हो जायेंगे, जब देवता भी इस भू-स्वर्ग के आनन्द-उपभोग के लिए आयेंगे।'

'अवश्यमेव! संसार स्वर्ग बनेगा और अवश्य बनेगा। जगत् एक परिवार बनेगा और अवश्य बनेगा। महान् सत्य ही संसृति की आधार-धरा बनेगा और अवश्य बनेगा। समस्त विभूतियाँ इस भूस्वर्ग के वैभव से विनोद करने को आयेंगी और अवश्य आयेंगी। सब-कुछ सच होगा और अवश्य होगा!'

सहसा वह खड़ा हो गया और शून्य में दृष्टि-प्रसार करने लगा। उसके नेत्र मानो किसी अज्ञात की खोज कर रहे थे। वह विचारमग्न था। यह ज्ञात नहीं, वह क्यों खड़ा था और क्या सोच रहा था? यह प्रणेता की कल्पना के परे है।

'पर्याप्त है, अब अधिक नहीं होने दूँगा मानव तेरी अवनति! अब मेरा नृत्य जाग उठा है। अब देखो, अधार्मिक राष्ट्र सिहर उठेंगे। यह देखो, मैं भृकुटि उठा कर आज अग्नि हुंकारों का सामना करने को तैयार हूँ। अब अवनति के चिर मुस्कानों में महामृत्यु का अट्टहास उठेगा। ओ विज्ञान-ज्ञान अर्पित मानव! तू जग में पर्याप्त अभिमान दिखा पाया है आज। ओ रक्त-पिपासु दानव! तेरे संदीप्त हृदय का शान्ति-जल से सिंचन करूँगा। मैं अब नहीं ठहर सकता। क्षण-पल में तेरा आडम्बरमय स्वप्न नष्ट कर दूँगा; नीरव उश्वासों को जीवन की विदग्ध आहों में भर दूँगा; तेरी कल्पित, निर्मम, तुच्छ साधों में वज्र गहरा दूँगा। जहाँ कल और आज प्रलय घन गरज रहे हैं, वहाँ निमिषमात्र में अवदात शान्ति व्याप्त कर दूँगा। जहाँ आज विभीषिका फैली है, वहाँ पल भर में नीरवता का साम्राज्य स्थिर कर दूँगा! विद्रोह-ज्वलित जगत् तल में सत्युग का सन्देश सुनाऊँगा। कलि-प्रलय के ज्वालाऽन्तर, नव-संसृति की बुनियाद बनाऊँगा। मैं शुभ आशीष-कर हो, तुम्हें छूता हूँ तो तुम परिक्लान्तावस्था से मुक्त होते हो। मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, तुम्हें ज्ञान होता है; तब शब्दाडम्बर की आवश्यकता नहीं। मैं सेवा का चरण, आनन्द को अपने साथ ले कर आता हूँ। मेरे उन चरण-चिह्नों में आनन्द के सुमन प्रस्फुटित होते हैं। आओ! मैं आपके पथ को स्वच्छ और सुगम बनाता हूँ। हे सौम्य! मैं आपके कठिन साध्य की सिद्धि कर रहा हूँ। वे नक्षत्र, जो आपके ऊपर हैं न? वे तो मेरे चरणों के पास ही हैं, क्योंकि वे प्रेम प्रकाश हैं। मैं सत्य से भी परे हो कर, आपके हृदय-मंच का अधिकारी हूँ। यह देखते नहीं? मैंने पैर बढ़ाकर, वास्तविकता के मंच पर रख दिया है। अब मैं तैयार ही नहीं, वरन् यह देखो, अनन्त-प्रज्वलित उद्‌देश्यों की बलिवेदी पर स्थित,

संशय-भ्रम-भ्रमित-मानवता को पुनः चमकाता हूँ; कण-कण में अमर ज्योति बरसाता हूँ; सच्चे स्वरूप की शान्ति बतलाता हूँ; भूत, वर्तमान, भविष्य और सब एक बनाता हूँ। सत्युग का सन्देश लाता हूँ; प्रेरणात्मक संगीत गाता हूँ; मलिनों में छवि लाता हूँ; सुन्दर वसन्त में लहराता हूँ; हरियाली में भी आता हूँ; कण-कण में फहराता हूँ; अधिष्ठान, भ्रम, भेद, पल में ही ढाता हूँ; व्यथित हृदय को हँसाता हूँ; सब अज्ञों की तड़प मिटाता हूँ; सुख की सुधा बरसाता हूँ; जीवन में प्रेम धार बहाता हूँ; मानव को पावन खेल खिलाता हूँ; ज्योति में भी इठलाता हूँ; सत्य-प्रेम की धरा बरसाता हूँ; समस्त धरा को एक बनाता हूँ; यहीं भू-स्वर्ग बनाता हूँ; मानव को मानव-सम्बन्ध-ज्ञान कराता हूँ; अनुभव मार्ग बताता हूँ; सुगम यत्न बताता हूँ; उद्‌देश्यों के मंच पर स्थित, मैं पुनः सत्य-युग का आह्वान करता हूँ! कर रहा हूँ! और कर भी दिया!'

वह शून्य-दृष्टि से निस्सीमाम्बर को देख रहा था। पार्श्ववर्ती-भागीरथी का कलकल-निनाद, समध्वनि से शब्दायमान होता, उस ज्येष्ठ-श्रेष्ठ-महान् की विचार-लहरी से स्वर मिलाता, उसी में निस्सीम हो जाता हुआ, भावुक के अनुभूति-क्षितिज में समासीन हो गया।

ऊपर अपार-नभ नीचे गगन-विचुम्बित-गिरी-चुम्बिनी-मन्द-प्रवाहिनी-जाह्नवी! और स्थित था आनन्द कुटीर का महान् शिव! सत्य-युग के आह्वान के लिए, चैतन्य-ज्योति! नव-आभा-दान के लिए, विद्युत-गृह-संचालक! नव्य धरा-निर्माण के लिए, परिवर्तक! भू-स्वर्गाधान के लिए!! वह खड़ा है, अमर तरु की नाईं!...'नहीं-नहीं' अमरत्व की नाईं!...'नहीं-नहीं' अपार-अनन्त अमित अथाह की नाईं!...'नहीं-नहीं' सबसे परे, किसी की भी नाईं नहीं।... 'नहीं-नहीं।' ज्ञात नहीं, किस से उपमा दी जाये? सच बात तो यह कि यह ही ज्ञात नहीं किसके लिए उपमा दी जाये?

* * *

यह अनुपमेय है। यह संसार के अमर इतिहास का ज्वलन्त-हीरकांकन है, जो आज 'चैतन्य-ज्योति' की अमर कलाओं में अंकित, अमर-गाथा कह रहा है, अपने एक विराट् बलिदान की, जो केवल एक के हेतु नहीं– वरन् अपार-अनन्त असीमित-मानवता के हेतु हो चुका है, हो रहा है! उस महान्-बलिदान-दाता का एक-एक कर्म, इस विराट्-मानव-समाज के प्रति उद्‌देश्यों की बलिवेदी पर हवन हो रहा है। एक अमर चैतन्य ज्योति-

प्रज्ज्वलित हो रही है, जो अद्यपर्यन्त तो क्या – अनन्त-पर्यन्त भी किसी अमर-पृष्ठ से समतेय नहीं।

देखो; मानवता की करुण-व्यथा, उसका दैन्य, उसका युग-युगान्तरागत-मौन-विलाप, उसके अश्रु-विसिंचित-अधर, उसकी मौन-प्रतिमा, कल तो अपना नग्न-नृत्य-प्रदर्शन कर रही थी। कण्टक-किरीट सिर पर धारण कर, कठिन-पथ पर, भूख-प्यास से शिथिलगात मानव चल रहा था, युगान्त की ओर।

कल न तो शिशु के तुतले-स्वर में ही कुछ आनन्द आता, न प्रतिमा के सुविकास ही में। चिन्तातुर पुरुष के म्लान-बदन में, महासैन्य का स्वर्ण-विहान लौटा जाता था। दीन भिखारियों की अहोरात्र-दर्द-भरी आहें कह रही थीं, एक सन्देश संसार को, उस महाज्वलन्त बलिदान का, जिसने सबको सुमार्ग-निर्देशन का आह्वान दिया – 'देखो, उद्देश्यों की बलिवेदी पर स्थित, आत्मन्यौछावर करते हुए, उस सदैव आलोक को!' आज यह उसी अविरल बलिदान का फल है, जो भक्तों को दिव्याभास मिल रहा है। यह उसी महान् का युगामर बलिदान है, जो आजकल की मानवता के अभव्य भवनों में, ग्रामीणों के अशान्त-सदनों में एवं त्यागी के तम तपोवनों में शीतलगति दान कर रहा है।

आज संसार को याद आते हैं, मीरा के मादक गीत, तानसेन का अमर संगीत, अतीत-सन्तों का ध्यान एवं चिर विश्वास रूप सत्य का शुभ सन्देश। आज संसार एक विजय मन्त्र को उच्छ्वास से, प्रकृति के रम्य-रूप में शोभामय-उल्लास की सृष्टि कर रहा है। अखिल-विश्व का गर्भ-थल, जल-थल, अनिल-अनल, नभ-मण्डल, समस्त स्वर्गीय संचार से प्लावित हैं, सत्य प्रेम प्रपात से प्रक्षालित हैं।

देखो! वह जीवन नौका अगाध-सागर से, अज्ञात-तारणी द्वारा तीरावतरित हो गयी है। विश्व-जलधि के निलय में तरल तरंगों की छलयान, उस अगोचर का करुणामय आँचल भिगो चुकी है। निबिड़ निशा के विलयगत अन्धकार में अगम उदधि के गर्भ से वह ला चुका है; आ चुका है!! इसी ओर!!! आत्मसमर्पण अपूर्व!

मानवता की चिर-साधें शान्त हो गयीं। वह आया, देखा, भाला, सब-कुछ किया। बोला, सुना और देखो! बलिदान दे दिया, शान्ति भिन्न कर दी। शरीर, अन्तर, वाणी, आभा सब समर्पण कर दिया, अखिला के चरणों में।

सत्य है स्वर्ण नहीं मनुष्य को विभूषित कर सकता है। परन्तु वह मनुष्य ही मनुष्य को विभूषित कर सकता है जो सत्य एवं प्रेम के कारण डटा रहता है और दु:खों तथा बाधाओं का सामना करता है। प्रियतम पाठक-स्वरूप-ज्योति-अमर। यह 'चैतन्य ज्योति' अपने अधरों में उस अनादि आत्मा के चुम्बन की मंजलता का अनुभव करती है, जिसने सदियों के रोते हुए युग को आश्वासन दिया है, सन्तोष दिया है और नवजीवनदान दिया है।

यह महान् पुत्र अथवा पिता, ऋषि अथवा आज संसार में विभिन्न मानवीय कारनामों की सफलता को प्राप्त कर, केवल आज की ही मानवता के लिए नहीं, वरन् सुदूर भविष्य की संसृति के लिए भी पथ निर्माण कर अमर नाम कहलाता हुआ संसार की स्मृति के चरमाकाश में सदैव आलोकित छटा छिटकाते ही भूत-वर्तमान-भविष्य को एक कर, अपनी वैयक्तिक महत्ता द्वारा, सत्य-प्रेम की उज्ज्वल, कर्त्तव्यपरायणता की आलोकित विभा से समय-समय पर अन्धविश्वास तथा क्रान्तिमय असत्यता की विध्वंसता का कारण बनता हुआ भी, आद्यन्त सर्वदा के लिए केवल शुद्ध साक्षीमात्र ही रह, जग की एकता एवं पुष्टि के निर्माण के लिए अनुपमेय स्तम्भ स्वरूप दिखायी देता हुआ, समस्त संसार में सत्य-प्रेम का अवर्णनीय प्रचार कर चुका है, कर रहा है और करेगा भी। वह अज्ञात-गायक-अमर-वीणा में स्वर्ण-संगीत के विहान को असीम-शून्य में उड़ाता हुआ, सर्वत्र ही, क्या ऊँच, क्या नीच, सबमें अपनी व्यापकता का स्वर झंकारता है। एक संगीत के विश्व सन्देश से वह अनन्त प्रकृति में आनन्द की तरंग उमड़ा देता है। वह सेवा-संगीत इस मानवता के प्रति अपूर्व दान है! यदि हम मानव इस महान् ज्योति से एक कण भी ग्रहण करने का साधन करें; यदि हम इस अमर संगीत की व्याप्त लहरी में एक कण का भी अनुसरण करें तो हम वास्तविक ज्ञान से आलोकित होते हुए, घृणा एवं असत्य की असृष्टि कर, इस सुन्दर-जग-जीवन कानन में अनन्त प्रकृति के मौन संगीत में, उस ज्ञात के स्वर की मृदुल लहरी का प्रसरण कर, अमल-विमल 'चैतन्य ज्योति' के मृदुल-संगीत में निलयान्वित, अमर शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

उसका मानव समाज में स्थान खोजिए। वह मानवता के उत्कण्ठित सुन्दर-आह्वान का प्रत्युत्तर है। मानवता की भ्रमितावस्था में, जब आध्यात्मिक, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक अवस्थाएँ अवनति को प्राप्त होती हैं, तब वह अपने कमल-चरणों का विकास कर, मानवता के

भविष्य को उन्नति-पुष्पों से सुसज्जित कर देता है। वह केवल-आत्मा तो मानव-समाज के दु:खों की निवृत्ति के लिए आया है, जिसका चरित्र, साहस एवं प्रभाव-मात्र ही सबका निर्देशन करता है।

उसका वह आदर्श आज हिमालय विभाग से सम्बन्ध-धारण कर, उसे प्रकाश दान करता हुआ भी परिपूर्ण है। सत्य है एक प्रकाश अन्य को प्रकाशित करते हुए भी समान ही रह निर्विकार कहलाता है। इसी भाँति महान् आदर्श सबको आदर्श दान कर भी, पूर्णादर्श रहता है।

एक उच्चातीत निष्काम्य भावना जिसके अनवरत आत्म-बलिदान का लक्ष्य रही है; जिसकी चिरन्तन जीवनी सहर्ष-बलिदान की कहानी है, उसको भला कौन नहीं कहेगा कि उसके जीवन का आनन्द अन्यों के जीवन का आनन्द है! वास्तव में इस महान् के जीवन का मूल्य उसके कृत कार्यों की सफलता के उद्देश्य में ही आँका जा सकता है। क्योंकि उसी ने ही तो मानवता के रहस्य का उद्घाटन कर, प्रत्यक्ष-सिद्ध कर दिया कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता होते हुए भी एक अमर-शासक के अधीन है और वह अधीनता परितन्त्रता न हो कर, अध्यस्तावस्था ही है। उसने भयंकर बवण्डरकालीन जगत् में निर्मल-शान्ति व्याप्त कर दी। ईश्वरीय-अनुशासनों के अनुकरण में स्थित उसने मलिनों में छवि खोजने का सफल प्रयत्न किया है। केवल इतना ही नहीं, उसने मलिनों की रहस्यमय छवि का पूर्ण-चन्द्र के समान प्रसार कर दिया।

मानवता इस अमल-पुष्प के मृदुल-भार से दबी हुई होने पर भी स्वर्गानन्दानन्दित है, जो इसका वास्तविक शिक्षक है, प्रभावक है, जो इसके आनन्द का प्रदाता एवं सहायक-हस्त के समान है, और जो इसे आलोकित कर पथ-निर्देशित करता है।

हम कह नहीं सकते कि संगीत इस महानादर्श के उज्ज्वल समावेश से कितनी भाग्यशालिनी हुई है। हम इन्सान के अरमानों की, जो इसके दृष्टि-जल से सिंचित हो रहे हैं, सौम्यावस्था का वर्णन नहीं कर सकते हैं। सच बात तो यह है कि आज हम साक्षात् सत्य की लीला का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। कहीं देखिए, उसके नामों का आलाप हो रहा है, यत्र-तत्र-सर्वत्र उसके पावन नामों की महिमा का गान हो रहा है; उसकी अमर जीवनियाँ संसृति के पृष्ठ पर अवलोकित हो चुकी हैं। उसके कोटिश: चित्रों का विभिन्न-स्वरूप हम अज्ञानियों के ध्यान का साधन हो चुका है। विभिन्न प्रान्तों में स्थित औषधालय

क्या उस महान् के प्रति अपनी कर्त्तव्य परायणता का समुच्चय नहीं कर रहे हैं। संसृति के प्रत्येक कोने में प्रतिवर्ष ही नहीं, वरन् प्रत्येक धार्मिक अवसर पर उसके निर्देशन के फल स्वरूप सम्मेलन-गठन हो रहा है। प्रत्येक वर्ष की सितम्बर मास की अष्टम-तिथि उसके सगुणावतरण के मंगलमय मुहूर्त को सूचित करती है। यह सब उसी महान् की लीला है, जिसने अनन्त में निद्रित हो, पुस्तकालयों, औषधालयों, भ्रमणालयों एवं समस्त सृष्टि का स्वप्न देखा है। आज का संसार उसके उद्‌देश्यों की बलिवेदी से शत-प्रतिशत परिचित है।

यह सब वर्णन से परे है कि इस आदर्श के महान्-प्रभाव ने किस कोने का स्पर्श नहीं किया है? किस अज्ञान ने उसके सुगम-वर्णित-साधनों को व्यावहारिक रूप नहीं दिया है? हमारे हृदय-बिम्ब में वह, अवस्था के अनुसार आदर्श के रूप में प्रतिबिम्बित है। केवल आज ही नहीं, वरन् युगों के मरघट में तब तक सबको स्मरण आयेगा। उसने जिस अवर्ण्य-भाव से मानवता के सेवा-सागर में स्नान किया, वह अपूर्व है। वह अमर नाम कहलाने को आया था, सो वह आज प्रत्येक के हृदय बिन्दु में जल की नाईं व्याप्त है।

जब तक इस अनन्त की लीला स्थायी रूप से खेली जा रही है, तब तक तो अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड उसके पारस्परिक सम्बन्ध से परिवर्तित एवं प्रभावित होंगे। परन्तु उपरान्त भी उसके शब्द एवं कर्म, उसकी महत्ता को सदैवार्थ-जगती-स्थित कर, समय के चक्र में चक्रित हो अनेक रूप से दृष्टि में आते हुए, अमर रहेंगे। आज तो वह प्रत्यक्ष की ध्वनि है, उपरान्तकाल में वह अमित-अथाह-युग के चिरगत विस्मृति-गर्भ से, स्वर बन जागृति एवं शुभ परिवर्तन का शुभ-सन्देश-संगीत गाते रहेगा! यदि वह आज प्रत्यक्ष आह्वान दे रहा है, तो भविष्य के अनन्त-स्थल में वह ही स्तम्भों में अमर-लेख बन कर अंकित रहेगा। यदि आज हम उसके चरणों की सेवा के अनुपम-अग्रसर की प्राप्ति किये हैं तो आगामी काल के अपरिमित-मरुस्थल के मध्य, हमको वह निज चरण-चिह्नों के बल असीमाज्ञात का पथ-निर्देशन करेगा। केवल आज ही वह बलिवेदी पर स्थित नहीं, वरन् सदैव वह अनन्त-प्रकृति में हँसता हुआ भी अपने उद्‌देश्यों की बलिवेदी पर निर्भय हो, आहुति देता हुआ, परिपूर्ण ही रहेगा।

कोई उसे चाहे कि लाख भुला दे, पर वह महान् किसी को नहीं भूला है, और न भुला ही पायेगा। वह अव्यक्त, अगोचर कण-कण में व्यापकता हो

कर आता है और आयेगा। अमित, अथाह-विस्मृति के गर्भ से वह जीवन-संगीत बन गाता है और गायेगा। प्रत्यक्ष हो वह आज अमर कथा सुनाता है और दीवालों में अंकित हो कर, भविष्य में भी सुनायेगा। काल-मरुस्थल में आज वह स्वयं पथ दर्शाता है और भविष्य में अमर चरण-चिह्न बन कर वह, अज्ञातापर पथ दर्शायेगा। 'उद्देश्यों की बलिवेदी पर' वह निज-आहुति दे रहा है और देता रहेगा। सत्य-प्रेम को आधार-स्तम्भ बना, वह जीवन-प्रासाद बनाता है और बनाते रहेगा। जग को एक परिवार बना, वह शासन का अन्त करता है और करता रहेगा। उस स्वर्ग की तो बात ही क्या है, वह यहीं स्वर्ग बसाता है और बसाता रहेगा। पाठक! नेत्र खोल कर देखिए! वह 'चैतन्य ज्योति' बन कर, अमर-विभा छिटकाता है, और सदैव छिटकाता रहेगा। अत: क्या अकिंचन-प्रणेता इन षोडश चैतन्य कलाओं में अपने अरमानों को सीमित करता हुआ, मुग्ध-कंठ हो, उसके अनुभव की अभिलाषा में हृदयासन को सजाये, युगों-युगों की साधों की उपहार का थाल लिये उस अमर, अज्ञात, अमित, अथाह, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सर्व-ज्येष्ठ, सर्व-श्रेष्ठ, ज्येष्ठ-कर्ता और श्रेष्ठ-कर्ता के समस्त व्यापकत्व में अपने को ज्येष्ठ, श्रेष्ठ करता हुआ, दो शब्दों से शान्ति की अमितावस्था में विश्राम नहीं कर सकता है? अवश्यमेव कर रहा है और करेगा भी।

कारण कि, हे चैतन्य-ज्योति! तेरे गर्भ से प्रकाश का स्रोत प्रस्रवित है! तेरी ही ज्योति में, मैं ज्योति देख सकूँ...॥

ॐ तत्सत्

॥ शिवानन्दार्पणमस्तु ॥



Satyam's ode to Sivananda

Countless ages roll away;
Change itself doth suffer change;
The narratives of the Great Ones
Fill up History's Scroll.
Doubtless, even they do pass away.
But, at the end of Time's endless lane;
You find them there,
Shining forever,
Clad in the raiment of Transcendent Life.

Lo! The Glorious Advent taketh place;
Now sorrowing earth all laughter raining,
Long lost-grandeur in triumph regaining.
Cradled and nourished by brooding Ages,
Mankind in ecstasy sings the paean of praises.
Lo! The Glorious Advent taketh place.

Quick and nimble they set foot,
Stepping along with infinite care,
Thus they pass on the ancient route,
That leads from here over to there.

O Wayfarer one, on track that knows not begining nor end;
Now draw Thou nigh with infinite care

O Evanescent Creature, long shrouded in the
dark delusion's fold,
Set thou thy foot upon perfection's upward Path.

O Thou Ancient Actor!
Awesome Hero of the Transcendent Play!!
There sounds the call from the dim distance far,
The revealing note of Mankind's welcoming lay,
Tearful earth, sobbing yet searches for Thee,
O Thou that art fast concealed
in the great unknowability!!
O Thou Ancient Hero
of Life's Awesome Play!!!

Sorrow and sorrow alone reigns on earth.
Little joy that is, is encircled with obstacles.
The pride and pelf of puny man
Are like the insignificant twinkles of tiny wicks.
Out of desire and craving of ages,
Is fashioned this empty world of human vanity
Only to be swallowed up
In the Fathomless Depth of the unknown.

While yet Thou awaited for the call of sound
Heavy and dry with unshed tears thy eyes did seem,
Then came the call rising from the Holy Ground,
Now with soft wavelets of glad dawnlight,
Thy twin eyes gleam.

May the stories of those Ideal Souls,
May the dust of their feet,

May the waves of their action,
Come with a whistling tune,
In order to unveil the hidden secret of Illusion,
That has overwhelmed the human being entirely.

In such dreams of the Great indeed,
Do the seeds of human welfare dwell.
From them do the waves
Of my inspiration swell.
Though in truth, verily nothing exists,
This Soul fully the light of Consciousness manifests.

O thou Light of Consciousness incomparable!
Keep Thou forever Thy blaze imperishable.
Gaily illumining the darkness of age's end.
Man's bountious homage constantly take
And limitless spaces full beauteous make.
When numberless aeons have rolled away,
Raise again the bright monarch of the day.
Do Thou unto this vast infinitude,
The dawn Light of Effulgent Consciousness send.

When poverty, disease and the fear of death–
These agonising experiences of man,
Under the thraldom of nature–
Overtake him at every step forward;
He cries out in despair;
And looks askance for help and guidance
And there could be seen
An Effulgent light of Consciousness
Emerging from the Power-house of Anand Kutir,

Showing him the way to–
Existence, Knowledge and Bliss.

Tis neither the city of dreams,
Nor the experience of delusion in the illusory dream state.
It shines not, as never was it created,
In this non-created world,
Nor it is known, nor unknowable.
Sith, seer or the process of seeing,
It is not;
Neither even can it be called figment of imagination pure,
Nor is it a waking dream,
Or a dreaming wakefulness.
In Truth –
Natah satyamidam drishyam na chaasatyam kadachana
Neither is it Truth, not even untruth,
But transcends both;
Verily, Mystery of mysteries it is.

The Sacred Sound of the Spirit Supreme,
Endowed with the yonder mystical dot,
Upon which the Yogi's Dhyana
flows in unbroken stream,
Which bestows freedom, cutting heart's triple knot,
To That Mighty Occult Symbol Divine,
I render anon most reverent homage of mine.

Quickly, quickly, now hasten ahead!
Forever avaunt is darkness hence
No more the dread of forest dense.
Be thou merged in the Full Effulgence,

Assert O Man, Thy Primal Might.
Quickly, quickly, now hasten ahead!

Hail! Thou Great Sivananda,
Dweller in the Abode of Bliss!
Infinite is Thy transcendent Sport.
All universe Thou seekest to awaken
with Thy Clarion Call.
Hidden Voice and Word of the Infinite Deep
has become human gaze,
Self revealed and resplendent–
Thou bestowest strength of spirit
and final freedom unto all.
Whatsover Blissful action the wondering of today
witnesses in full swing at this sacred Blissful Abode
verily I say unto you,
it is fully worthy to be called
the transcendent sport of a Great Divine Being.

In great-hearted forbearance doth truly repose,
All power the fullness of perfection in life to bestow,
And the blossomimg forth of forgiveness Divine,
In a blossoming that wafts a celestial fragrance fine,
Of welfare and prosperity this welfare giveth birth
And the Eternal Peace permeated with
forgiveness Supernal.

Amid whirl of life Man may fail to remember,
But never does He, the Great Heart forget,
In each several atom, That Undying Ember,
Fully permeating all, He cometh the Great Unmanifest!

From the heart of Limitless deeps,
From far far beyond human ken
As entrancing celestial notes He leaps,
Singing the music of Life to Men.
As the mystical writings up the wall,
He awakens Mankind to the Immortal Call.
His are the footsteps on the sands of time,
That guide the struggling band
Of mankind in every race, creed and clime
Right up to the distant Unknown Land!
Upon the altar of Lofty Ideals
He is a ready and joyous offering now,
Building Life's Mansion Palatial,
With the rare pillars of Truth and Love.
Gathering all earth into an affectionate kinship,
He ends forever rule of might and kingship.
Why speak of heaven as some region superior,
By His Grace Heaven prevails right and now here.
For becoming the light of Consciousness
In all Infinity Immortal Bliss-lights gleam...



शिवानन्द दिग्विजय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश द्वारा प्रकाशन – 1952
बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2012



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

शिवानन्द दिग्विजय

षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या, कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
गुरोः पादपद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

शिष्यों की प्रकाण्ड विद्वत्ता, शास्त्रपरायणता अथवा काव्य-प्रतिभा का क्या प्रयोजन, यदि वह गुरु के चरण-कमलों की ओर अनवरत प्रवाहित होकर उनके यशोगान का महान् प्रयोजन न सिद्ध करती हो?

स्वामी सत्यानन्द जी ने अपनी समस्त गद्य-पद्यादि प्रतिभाओं को परमगुरुदेव की ऐतिहासिक दिग्विजय यात्रा को अमर बनाने में लगा दिया, और 'शिवानन्द दिग्विजय' नामक इस अनुपम ग्रन्थ को सन् 1952 में प्रकाशित कर, समस्त शिष्यवर्ग के लिए एक अनुकरणीय आदर्श स्थापित कर दिया।

इस पुस्तक के पुनर्प्रकाशन की अनुमति के लिए हम माननीय महासचिव, दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश के अत्यंत आभारी हैं।

– *सम्पादक*

हे दिग्विजयी!

तुम्हारे गीतों में गीता है मेरी,
जिसको मैं गाता हूँ अब...
क्योंकि यही आदेश तुम्हारा था।

तुम ही हो प्रेरणा मेरी,
भव्य जिसे कहता हूँ मैं और अमर...
गीतों के देव! चित्रों के सौन्दर्य सनातन!

तुम्हारी दिग्विजय को गाना,
अनन्त की गोद में चिरन्तन नींद सोना है,
और है जीवन का चमत्कार।

उत्तरापथ के हे! अमर तपस्वी,
कूटस्थ अचल, अवतार महान्!
तुम्हारी ज्योति जलती रहे; प्रेरणा फलती रहे,
मेरी तूलिका अमर रहे और लेखनी अप्रतिहत–
मैं लिखते रहूँ औ' लिखते ही रहूँ।

–स्वामी सत्यानन्द

नि:सन्देह यह पाँचवाँ वेद है, जिसमें विश्व-विभूति का ज्ञान विश्व के लिए द्वार खोले खड़ा है...

–स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

श्रीयुत् नरेन्द्रनाथ सिन्हा

के

परम-पवित्र तथा उदार-दान को निधि

से

यह पुस्तक प्रकाशित की गई।

दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश

प्रकाशक की लेखनी से–

'शिवानन्द दिग्विजय' हमारे विशालतम इतिहास का पवित्र अध्याय है, जिस इतिहास के पन्नों में हम राम और कष्ण, महात्मा बुद्ध और ईसामसीह की गाथा को अंकित पाते हैं। यह उसी इतिहास का एक विभाग है, जहाँ अवतारों के विशाल कार्य की, धर्मस्थापन और ज्ञानदान की पुनरावृत्ति का वर्णन युगविभागानुसार होता रहता है।

9 सितम्बर, सन् 1950 को उत्तरापथ के महान् तपस्वी ने दिग्पर्यटन के लिए प्रस्थान किया। 61 दिनों तक निरन्तर भारत और लंका में अपनी अमर-गीता का शंख प्रतिध्वनित किया, अपनी विजय-वैजयन्ती लहराई और कोटिशः व्यक्तियों को परम-पुनीत आत्मज्ञान में दीक्षित किया। श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के इस कार्य से समग्र देश में जागृति का प्रभात उद्यत हुआ और ज्ञान के चन्द्र-दिवाकर जागे।

हमारे यशस्वी लेखक श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने, जिनको इस दिग्पर्यटन के अवसर पर स्वामी जी महाराज के अनुसरण का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, अत्यन्त प्रेम से विवरणों की मौलिकता द्वारा यात्रा का वर्णन किया है; जो रोचक है और संक्षिप्त भी। अंग्रेजी में स्वामी वेंकटेशानन्द जी के पुण्य-प्रताप से वृहद्-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था ओर हिन्दी क्षेत्र की आवश्यकता को हमारे लेखक ने पूरा कर दिया। हम श्री स्वामी सत्यानन्द जी की कृपा के आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने भविष्य के मानव के लिए धमचक्रसंस्थापक की ऐतिहासिक सत्यता अक्षुण्ण बना दी है।

–प्रकाशक

शिवानन्द दिग्विजय मण्डल

(8 सितम्बर, सन् 1950)

महामण्डलेश्वर स्वामी श्री शिवानन्द जी के नेतृत्व में 8 सितम्बर, सन् 1950 के अरुणोदय में, दिव्य जीवन मण्डल द्वारा 'दिग्विजय मण्डल' की स्थापना हुई।

विश्व-व्यापिनी-अशान्ति के निवारण का श्रेय युगान्तरों से भारतवर्ष को ही रहा है। अपनी संस्कृति की वैदिक-परम्परा को सजीव रखते हुए, भारतवर्ष ने शताब्दियों से सामन्तशाही साम्राज्य की निरंकुशवादिता से टक्करें ली हैं। परन्तु प्राकृतिक धर्म के बल हमारा सनातन धर्म सदियों की पराधीनता के बाद भी यथावत् ही है। हाँ, यह बात अवश्य है कि हमारे देशवासी समय-समय पर चोट खाये हुये; तथा पाश्चात्य-सभ्यता की गहन-रात्रि में अपने पथ से विचलित हुये, *'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'* की युगान्तर-ध्वनि की पूर्ति की आशा में रहते हैं।

भारतीय संस्कृति की परम्परा को बनाए रखने का श्रेय हमारे देश के उन संत-महापुरुषों को है, जिन्होंने समयानुकूल इस स्वर्णभूमि में जन्म लिया। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम से हम रामराज्य की कल्पना करते आ रहे हैं। इसी रामराज्य के स्वप्नालोक में योगीश्वर कृष्ण का उद्भव हमारे पौराणिक-काल में हुआ, जिनकी कथाएँ आज भी घर-घर अमृत की वर्षा कर रही हैं। कालान्तर में महात्मा बुद्ध ने विश्व-शान्ति का अलौकिक-नेतृत्व अपने योगाग्नि-पुनीत-ज्ञान के तत्त्वावधान में किया। विश्व के शान्तिप्रिय राष्ट्रों ने उनके उपदेशों की शरण ली और विश्वशान्ति के योग में तन, मन, धन और सब कुछ अर्पण कर दिया।

इन्हीं विश्वप्रिय महात्माओं ने जिस प्रकार भूमण्डल को एक नया तथा सुगम पथ बतलाया, उसी आदर्श की आधारशिला पर ही हमारे स्वामी शिवानन्द जी के जीवनप्रासाद का निर्माण हुआ। उन्हीं महर्षियों के पदचिन्हों का अनुगमन कर, हमारे स्वामीजी ने भारतीय-संस्कृति और भारतीय योगसम्पत्ति का सुरक्षण किया है और अभ्युदय की विशाल चेतना भरी है। हमारा असीम गौरव है कि आज भी पदार्थवाद तथा निरंकुशवादिता के

विशाल-संग्राम में भारत ओर भारत का योगी अपने देश की दिग्विजयिनी-पताका को उन्नत-मस्तक बनाये है, जिसके परिणाम स्वरूप हम और हमारा धर्म सार्वभौमिक तथा युगान्तरजीवी रहेगा।

अत: 8 सितम्बर, सन् 1950 को भारतवर्ष की द्विमासिक यात्रा का संकल्प किया गया। प्रत्येक नगर, ग्राम और निवासस्थल इस समाचार से प्रतिध्वनित हो उठे, – 'श्री स्वामी शिवानन्द जी धर्मसंस्थापन के लिये प्रयाण कर रहे हैं।' शान्तिप्रिय जनता पुलकित हो उठी। उसी दिन स्वामी जी ने कहा –

'हमारा कर्त्तव्य मानवता को प्रगहन-निद्रा से जागृत करना है। मनुष्य को मनुष्य के कर्त्तव्यों का ज्ञान कराना है। भगवद्भजन तथा नाम संकीर्तन की मोक्ष प्रदायिनी नामावलि जन-जन की भावुकता में जगानी है। भारत को जन-कल्याण के नेतृत्व के लिये तैयार करना है। दिव्य जीवन का संस्थापन कर, सत्य-सनातन धर्म को चिरंजीव बनाना है।'

इस प्रकार 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' स्थापना हुई और निश्चित हुआ कि 9 सितम्बर सन् 1950 को पुण्य श्लोक स्वामीजी अपने योगसिद्ध शिष्य वर्ग के साथ 'अखिल भारतयात्रा' के लिये प्रयाण करेंगे।



शिवानन्द दिग्विजय क्या है?

सच्चे शब्दों में कहा जाय तो 'शिवानन्द दिग्विजय' महामण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की 'अखिल भारत यात्रा' का विवरण है, जो यात्रा 9 सितम्बर सन् 1950 से लेकर 8 नवम्बर सन् 1950 तक सम्पन्न हुई थी; जिस अवधि में उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने सन्देश दिए और जनता को धर्म तथा आत्मा की ओर आकृष्ट किया था।

यह भारत की चेतना का उदय काल था। बर्बर शक्तियों से भी उसने लोहा लेना था, साथ-साथ आत्मशक्ति भी जागृत करनी ही थी। श्री स्वामी जी का यह दिग्पर्यटन उस के नवीन-इतिहास का प्रथम अध्याय था; जिसने पवित्र मंगलाचरण से इतिहास का श्री-गणेश किया और रामनाम की आनन्ददायिनी वाणी से उसकी प्रतिष्ठा की। इस चेतना के अपूर्वकाल में उन्होंने भगवान् बुद्ध के धर्मचक्रप्रवर्तन की पुनरावृत्ति की और किया श्री कृष्ण भगवान के धर्मस्थापन का पुनरभ्युदय।

हम लोग भी उनके साथ थे; अत: हमने अपनी आँखों से वे अभूतपूर्व ओर अविस्मरणीय युगानुजीवी दृश्य देखे, जिनका स्मरण करते ही हम आज भी मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं, आश्चर्यचकित और निर्वाक् हो जाते हैं– लेखनी तटस्थ हो जाती है। वे हमारे पथप्रदर्शक थे ओर हम उनके चरणों की छाया को देख-देखकर चलते थे, उनका अनुसरण करते थे।

कोटिश: व्यक्तियों ने उनके गीत सुने ओर उनकी गीता भी। वे क्या श्री स्वामीजी को कभी भूल सकेंगे? श्री स्वामीजी ही स्वयं उनको कभी नहीं भूल सकते, तो निश्चयत: उनकी अमिट छाप अगणित हृदयों में अंकित रहेगी ही। महाराज ने धर्म के सभी अंगों को शक्ति प्रदान की, उसकी कट्टरता को धोया, उसके प्रति जनता के अज्ञान की निवृत्ति की ओर ज्ञान का आलोक विकीरित किया – न जाने और क्या-क्या किया, भविष्य ही उसका निर्णय कर सकेगा। मैं तो यही कह पाता हूँ।

उनके ही चरणों का सेवक,
स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आत्म संगीत

अन्तर पथ से मेरे जागे गीत –
‘जागो हे शिव! जग में सत्वर,
अपने इस खप्पर को भर लो!
अमृत से तुम, पुनः दे दो सबको –
पीने दो सबको – दूँगा मैं बल,
ओज, शक्ति औ’ ज्ञान महान्।’
जाग उठा मैं निज पथ पर उद्यत,
खप्पर सचमुच भरता गया अमृत से –
और मैंने भी तो सबको –
कोटिशः तृषाकुल-मनुजों को
सानन्द पीने दिया।

–स्वामी शिवानन्द

आनन्द कुटीर, ऋषिकेश
हिमालय
8 नवम्बर, सन् 1950

परम प्रिय आत्माओं,

ॐ नमो नारायणाय।

'अखिल भारत यात्रा' के इस युगस्मरणीय अवसर पर मैं परमपिता परमात्मा की कृपा की याद कर अत्यन्त आनन्दोल्लसित होता हूँ, क्योंकि उन्होंन मुझे विश्व रूप की सेवा का अवसर दिया। भारत तथा लंका के कोटिशः व्यक्तियों की अविस्मरणीय भक्ति मुझे अभी भी याद है। परम पवित्र संन्यासाश्रम के प्रति उनकी अटल श्रद्धा, योग और वेदान्त के ज्ञान के प्रति उनकी पवित्र जिज्ञासा को भला मैं भूल ही कैसे सकता हूँ?

जहाँ भी मैं गया, जनता के प्रेम का ही पात्र बनता रहा। प्रत्येक केन्द्र में मुझे जो अतुल हर्ष अनुभूत हआ, उसको मैं कभी भूल न सकूँगा। कोटिशः व्यक्तियों की प्रभु-भक्ति के पवित्र सागर में मैंने पुनः पुनः स्नान किया ओर बारम्बार रामनाम-रसामृत का पान भी; जिस अमृत-गंगा का उदय कोटिशः हृदयों की प्रभु-भक्ति के कैलाशाचल से हुआ।

मैं भारत तथा लंका के कोटिशः नागरिकों का कृतज्ञ तो हूँ ही, साथ-साथ 'दिग्विजयमण्डल' के स्थानीय संचालकों एवं व्यवस्थापकों की असीम कृपा का ऋणी भी; जिन्होंने मुझे विराट् नारायण की सेवा का स्वर्ण-सुयोग प्रदान किया। धन्य हो प्रभो! मैं कृतार्थ हुआ और आप्तकाम हुआ। जय हो! कोटिशः भक्त जनों की; जो राष्ट्र और विश्व के आत्म-प्राण हैं।

ईश्वर का आशीर्वाद सब पर रहे!

–स्वामी शिवानन्द

दिग्विजय मण्डल की ओर से कृतज्ञता प्रकाशन

परमपिता परमात्मा के आशीर्वाद की सतत् भावना कर हम उनके प्रति अपना प्रणाम अर्पित करते हैं, क्योंकि उन्होंने दिग्विजय की सफलता को जन्म दिया।

स्वामी परमानन्द सरस्वती की अथक सेवा के हम ऋणी हैं, जिन्होंने लीलामय की लीला के उपकरण का अभिनय सुन्दर रीति से सम्पन्न किया और दिग्विजय के कर्णधार रह कर अपने गुरुदेव के उपदेशों को दिशि-दिशि प्रचारित किया।

भारत और श्री लंका में निवास करने वाले विभिन्न संस्थाओं के अध्यक्षों के हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हिमालय के तपस्वी को राजराजेश्वरोचित सम्मान दिया और मानवता की आध्यात्मिकता के जीवन को नवीन-प्राणों का दान। भगीरथ के प्रयत्नों से गंगा धरातल पर आई, शिव की जटाओं में लहरा कर। भारत और लंका के सहयोगियों के कर्म प्रताप से तपस्वी की ज्ञान गंगा देश के कोन-कोने में प्रवाहित हुई। योगी की तपस्या के अमृत का घर-घर प्रचार हुआ। वे ही युग के महाभगीरथ थे।

अकैतवभक्तिसम्भृत भक्तगणों की कृपा का वर्णन किया ही किन शब्दों में जाय, जिन्होंने दिग्विजय की सफलता के लिए अपना आर्थिक सहयोग दिया। श्री पन्नालाल और श्री काशीराम गुप्ता उनमें सर्वाग्रणी थे।

असंख्य शुभेच्छुकों और जनता के नेताओं ने भी हिमालय के तपस्वी हंस को विशाल समाज में उड़ने के लिए पंख बन कर अपना सहयोग दिया।

भारत और लंका के पत्रकारों ने पूर्व से पश्चिम और उत्तरापथ से दक्षिण तट तक धर्मविजय की गाथा गाई।

भारत और श्री लंका में स्थत रेडियो के अध्यक्षों ओर संचालकों ने आकाशमार्ग से योगी की अमृतस्वती वाणी को दिग्प्रसारित किया।

अनेकानेक डॉक्टरों ने भी दिग्विजयी के शरीर की यथोचित सेवा की और शिव की इच्छा के माध्यम, शिव के शरीर को स्वस्थ बनाए रखा।

रेलवे विभाग के सभी प्रकार के कर्मचारियों के प्रति हमारा नमस्कार है, जिनके सहयोग से दिग्विजय सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई।

देवस्थान के संचालकों के प्रति भी हमारा नमस्कार है, जिन्होंने दिग्विजयी में अपने पार्थिव देव के दर्शन किये और अनेकानेक प्रयत्नों से श्री-चरण महाराज को पूजित किया। भारत और लंका के आदर्श नागरिकों ने दिग्विजयी को सम्मान दिया। छविकारों ने भी तत्तद्स्थानों पर दिग्विजय को अपनी कला द्वारा अंकित किया।

सभी गुरुभाइयों ने भी यात्रा में निरन्तर आनन्दपूर्वक अपने तन, मन और प्राण समर्पित किए तथा अपने गुरुदेव के चरणों की छाया की महिमा का अनुसरण किया... तथा च

कोटिशः जनता के प्रति हम अपने हृदय की कृतज्ञता को प्रकाशित करते हैं, जिन्होंने दिग्विजयी के वचनों को सुना ओर दिव्य जीवन के सन्देश को अपने हृदय-मंदिर में प्रतिष्ठित किया। अर्जुन की तरह उन्होंने कर्मभूमि भारत में कृष्ण भगवान की गीता सुनी। आदिमानव के समान उन्होंने आदिभूमि भारत में हिरण्यगर्भ सम्भूत वेदवाणी को सुना।

हे गुरुदेव, हम तो आपके हैं ही। किस प्रकार प्रणाम करें।

–दिव्य जीवन मण्डल के सेवकगण



आप के ही विषय में

Sweet is the breath of Vernal shower,
The bees collected treasure's sweet
Sweet music's melting heart, but sweeter yet,
The still small voice of gratitude.
–Gray

वासन्ती फुहारों का उच्छ्वास मधुर है
मधुकर की सिंचित मधुनिधि मधुर है
मधुर है वह द्रावक संगीत
पर मधुरतर तो है कृतज्ञता का वह गंभीर उद्‌गार।

यह उनके ही पथ-पाथोज पर प्रत्यापत उद्‌गार की दूसरी पुष्पांजलि है जिनकी प्रगल्भ प्रेरणाओं से ग्रंथकार ने विश्व के विलीक मार्ग का संवरण कर वैराग्य का वल्कल अंगीकार किया था। सजीव गुरुभक्ति, अविरल और अपरिमेय निष्ठा तथा अजस्र श्रद्धा का समीकृत यह उद्‌गार भला मधुरतर ही क्या, मधुरतम की उपाधि से भी उत्तर है। निखिल उदधि मेखला की निद्रित बेला में भी लेखक की प्रतिभा जाग रही है और क्षण-प्रतिक्षण परमार्थ का स्पन्दन विश्व को भेज रहा है। जिनके परात्पर संगीत के संलाप से आसमुद्रहिमांचल नूतन चेतना और नवीन ओज से लहरा उठा था, उनके ही प्राणद सद्‌संदेशों का समवाय सत्यसंध स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा आपके कर-कंजों में जा रहा है। मुझे आशा है, पाठक उक्त लेखक से विशेष परिचित हो चुके होंगे। जिन्होंने उनकी कलाकृति 'चैतन्य ज्योति' का सिंहावलोकन मात्र भी कर लिया है उनकी आँखें अवश्य ही उनकी दूसरी मंजुल कृति 'शिवानन्द दिग्विजय' के रूप में देखकर कृत्कृत्य होंगी। ऐसा अनुमान कर, कि पाठक वृन्द लेखक की जीवन रेखा को गहरी दृष्टि से देखने के लिए उत्कंठित हैं, मैं उनके अद्यावधि जीवन का यथासंभव चित्रण करूँगा। देखूँ तो अपने पिपीलिका वपुस्कंधों पर हिमशैल का भार वहन करने की प्रत्याशा कहाँ तक साहचर्य स्वीकार करती है।

आज से तीस वर्ष पहले इस बालरवि की रश्मियों से अल्मोड़ा की धरती रक्तिम हुई, जिसका नाम था धर्मेन्द्र। सुसम्पन्न माता-पिता की सन्निधि में शैशव बीता और फिर तो पूर्वजन्म संस्कारों का बांध टूटा और इस बालक ने अल्पकाल में ही भूत-भावी का परिज्ञान कर लिया। अल्मोड़ा की शस्यश्यामला भूमि में विहरण करता हुआ यह बालक धर्मेन्द्र जीवन के चलचित्रों से विज्ञ होता जा रहा था। विद्यालय के शुष्क और अश्रेयस् अध्ययन से भला वह पिपासा कैसे प्रशमित हो सकती थी? लौकिक ज्ञान से अनन्त का ज्ञान कैसे हो सकता था? भूमिनाग पर धरणी का भार कैसे रखा जा सकता था? विपिन प्रान्तरों की हरितामयी पादपावलियाँ, उत्तुंग शैल-श्रृंग की शुचि शोभा, मलयानिल का आन्त संचरण और पार्वत्य विलक्षण सुषमाओं का पुटपान करता हुआ वह शैशवता का अतिक्रमण कर युवावस्था में पदार्पण कर चुका।

अल्मोड़ा की धरती साहित्यकारों को जननी है। उत्तराखण्ड का यह भू-भाग प्रकृति का अधिष्ठान है, जहाँ नयनों को सौन्दर्य का वरदान मिलता है, क्लान्त पंथी को अद्भुत विश्रान्ति मिलती है और शुष्क हृदय को कविता का उपकरण। हमारे कलाकार धर्मेन्द्र सिंह नयाल ने वहीं कला का मर्म सीखा। उषा के अरुणाभ और संध्या की मरकत मधुप्याली ने इन्हें कविता का वरदान दिया। कवि ने क्षत-विक्षत तुहिन शय्या पर जीवन की क्षणभंगुरता का, प्रात: किरण के साथ विहंगावलियों के कलगायन में अज्ञात आह्वान का और विटपावलियों के 'सरसर' में मार्मिक अनुभूति का आभास पाया। कल्पना की बाढ़ में कवि ने एक कल्पित नाम लिया 'पल्लव' अर्थात् धर्मेन्द्रसिंह नयाल 'पल्लव' – पल्लव की कविता पल्लवित हो चली थी और प्रतिभा के शिशिर शीत समीरण में से परिरंभित होकर वातावरण में उल्लास का सर्जन कर रही थी। अल्मोड़ा का कवि प्रकृति का ही उपासक होता है। उदाहरण में पंत जी को ही रख लें। और आप फिर परम्परा से विश्रृंखलित क्यों होते? प्रकृति में जीवन का विम्ब देखना ही कविता का तत्त्व रहा। पर इतना ही नहीं, वह इस अन्वेषण की ओर भी प्रतिलक्षित होता गया कि क्या प्रकृति के परे भी कोई सत्तात्मक विभूति है अथवा प्रकृति ही एकमात्र अधिष्ठात्री है। इस उधेड़बुन में कविता के कुसुम कोमल कुन्तलों का श्रृंगार विश्रृंखलित हो चला था और कवि की मनसा उस अनन्त, एक, अद्वैत और सनातन की उपलब्धि करने की हुई जिसके परिज्ञान के उपरान्त कोई ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता।

और इधर तपश्चर्या की वन-वह्नि से निकलकर स्वामी शिवानन्द ने अध्यात्मवाद और ईश्वरवाद का तूर्यनाद किया। शून्यवाद के पंक से लथपथ मानव को आदि-सभ्यता, संस्कृति और योग के समीचीन तत्त्वों का परिदर्शन कराना प्रारम्भ किया। एक ओर से मिथ्या मोह, ममता और माया का अभेद्य कवच तोड़ कर स्वामी जी ने प्रतिहृदय में सत्य, प्रेम, समता और ज्ञान का समावेश कराना आरम्भ किया। कालनिद्रा से जाग-जाग कर मानव स्वामी जी के चरणारविन्द मकरन्द का आस्वादन करता और आत्मविभोर होता जाता था। 'तत्त्वमसि' आदि के अटूट सिद्धान्तों से जब स्वामी जी हमें घन-गर्जन की प्रेरणा देते हुए कहते कि हम मृगशावक नहीं, वास्तव में वन कान्त केसरी हैं, तो इसी दुर्द्धर्ष नाद का एक शब्द, इसी स्पन्दन की एक लघु लहर और इसी आवाहन का एक दारुण स्वर उस मुमुक्षु युवक के कर्णपुट पर रेंग गया। संदेश बोधगम्य था जिसका भावार्थ था कि तुम जिसे सलिलालय समझते हो वह मृगमरीचिका है, तुम जिसे सुखदायी संसार समझते हो वह क्लेशकर विकट बन्धन है और तुम जिन्हें माता, पिता, पुत्र और प्रेयसी समझते हो वे सहज ही मिट्टी के पुतले हैं... एक बार उन्मीलित आँखों से विश्व को स्वप्नवत् देखा ओर उन्निद्रित, उत्तेजित, उत्फुल्लित और उमंगित होकर अनजान दिशा की ओर प्रयाण कर दिया। बुद्धदेव की कथा का प्रतिस्मरण करता, भर्तृहरि के जीवन-यात्रा-पथ पर, 'अवधूत गीता' के चरणों को गाता – पूर्णयौवनावस्थाऽ-वस्थित तेजोराशि युवक उस असंग, अतीन्द्रिय, चिदानन्द, चिन्मय, कैवल्य और कूटस्थ की मनोवांछा से चल पड़ा जिसकी जिज्ञासा कोटिश: मानवों में से एक को और प्राप्ति वैसे कोटिश: में से एक को होती है।

सन् 1943 के वसन्तकाल में जैसे किसी दीर्घवाही सरिता में एक छोटी निर्झरणी आ मिली। हमारे पल्लव जी स्वामीजी के चरणें में आकर नतमस्तक हुए। स्वामी जी के प्रगाढ़ आलिंगन से जीवन सार्थक हो गया। नरेन्द्र को देखकर जितनी प्रसन्नता श्री रामकृष्ण को हुई थी उतनी ही प्रसन्नता धर्मेन्द्र को देखकर स्वामी जी को हई। पल्लव जी के अलौकिक व्यक्तित्व को देख कर स्वामी जी ने अनुमान कर लिया कि वे अपने दिव्य अध्यात्म संदेश को विश्व के हृदयप्रदेश तक पहुँचाने के लिए एक देवदूत पा चुके हैं। जिस प्रकार राजेन्द्र प्रसाद को महात्मा गाँधी ने अपना अंग कहा था उसी प्रकार स्वामी जी ने 'पल्लव' को अपने शिष्य समुदाय में सर्वोच्च आसनासीन किया। कृष्ण और अर्जुन अथवा नर और नारायण की उपमा भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत

होती जबकि पल्लव जी के अमानुषीय कार्यकलाप का चिन्तन करते हैं। उनके हृदय में पूर्वार्जित सुसंस्कारों का स्त्रोत सीमा तोड़ चला था। और तभी तो युवक कवि का अधिक समय भी व्यतीत नहीं हुआ था कि महाशिवरात्रि के अवसर पर स्वामी जी के पुनीत कर-कमलों द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम में दीक्षित हुए और पुनर्नामकरण हुआ 'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य'। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य का कुलिष व्रत लेकर सत्य चैतन्य ने सत्यनिष्ठा को अंगीकार किया। 22 वर्ष की तरुणावस्था में, जबकि संसारी युवक या तो किसी प्रेमिका के पीछे प्रमत्त रहते हैं या टी.बी.की औषधियों का विज्ञापन ढूँढ़ा करते हैं, हमारे सत्य चैतन्य ने लौहमय काया पायी ओर अपूर्व बल और पौरुष का आदर्श प्रकट किया। हठयोग की विधि क्रियाओं में परिनिष्णात सिद्ध हुए। लगन थी और विद्वत्ता भी। दोनों के सामंजस्य से आप दिन दिन भर योगपाठों के मनन, अनुशीलन और सक्रिय अभ्यास में परायण रहते। आश्रम में ही 'सत्यम्' की मर्यादा परिमित नहीं थी, अपि च उन्होंने अपनी कला का जीवन्त प्रमाण अपने व्याख्यानों द्वारा समीपवर्ती बन्धु-बान्धवों को दिया, जिससे सबके सब अत्यन्त लाभान्वित हुए। आश्रम में तामिल भाषा-भाषियों का आधिक्य था। श्री सत्य चैतन्य ने सबकी जिह्वा को हिन्दी का वरदान दिया और स्वयं भी उन सबों की भाषा पर पाण्डित्य प्राप्त किया। वह तो अपना सर्वस्व गुरु के ही चरणों में अर्पण कर चुका था। केवल यंत्रवत् उनकी आज्ञा का पालन करना ही शेष रह गया था।

यों तो आपके कई रचना-संग्रह पूर्वाश्रम में ही प्रकाशित हो चुके थे जिसे आपने स्वामी जी को भेंट भी किया था। परन्तु यहाँ आते ही अपनी कोरी कविता भूल बैठे और गुरुदेव का बृहद् और एक प्राकृत मानचित्र खींचना चाहा जो सर्वथा अप्रतिम और अप्रतुल हो। यह अभिनव और अभिराम ग्रन्थरत्न, 'चैतन्य ज्योति' उसी अभिलाषा का मूर्त रूप है जिसे औपन्यासिक अभिव्यंजना से आपने अभिनीत किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण के लिए कहना नहीं होगा कि आपने स्वामी जी के प्रति अनेकानेक अनुसंधान किए। अगणित पुस्तकें छान डाली। और निर्देश के लिए व्यक्ति-व्यक्ति से पूछताछ की। पाठक जानते ही होंगे कि ग्रन्थकार की भाषाशैली कैसी अभिवन्दनीय है। लेखक अनुप्रास और उपसर्ग के पीछे पागल है। छायावाद और रहस्यवाद से आपने यद्यपि ग्रन्थ को रिक्त कर प्रगतिवाद और वास्तविकता की कसौटी पर उतरने का प्रयास किया था तो भी उसकी झाँकी कदाचित आ ही जाती

है। जो भी हो, प्रकृति के पलने पर झूलने वाला कवि बहकती कल्पनाओं का पराभव कर ठोस अध्यात्मवाद को अपना ले, यह भी एक पहेली है।

हाँ, तो श्री सत्य चैतन्य स्वामी जी के उन अंतरंग शिष्यों में से थे जिन पर स्वामी जी उत्कट स्नेह, आन्तरिक विश्वास और अक्षय प्रीति रखते थे। 12 सितम्बर सन् 1947 की पुण्य तिथि को श्री स्वामी जी ने आपको साधनापथ का एक उत्तमाधिकारी बनाया। अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर समासीन करते हुए स्वामी जी ने श्री सत्य चैतन्य को संन्यास की दीक्षा दी और नूतन नामकरण हुआ–'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती'। आज इस परमहंस संन्यास की सुभग सुकृति का श्रीगणेश कर 'स्वामी जी' चतुर्थ आश्रम में उपविष्ट हुए। उसी दिन महर्षि की 'हीरक जयन्ती' का पुण्यपर्व भी था, जिसके उत्सव से आनन्द कुटीर के आंगन में आनन्द सदेह विराजमान था। दो हर्ष एक ही साथ आ मिले। यह संगम भी चिरस्मरणीय रहेगा। इस शुभ मुहूर्त्त से स्वामी जी विगत जीवन का विस्मरण कर चुके और अपने गुरुदेव के परम पावन आदेशों-उपदेशों को दैनिक आचार-विचार में घटित करते हुए उस परा-वैभव की सदिच्छा से सम्पन्न हुए जिसका उफान उनके अन्तस्सागर में बाल्यकाल से ही प्रादुर्भूत था। स्वामी सत्यानन्द जी के शील, सौजन्य और शौर्य से प्रभावित होकर स्वामी जी ने योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय की ओर से क्रमश: दो उपाधियाँ प्रदान कीं– 'अध्यात्मरत्न' और 'प्रवचनप्रवीण' जिसके आप वास्तव में अधिकारी थे।

सन् 1948 में जब योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय का जन्म हुआ तो आप हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए ओर अपनी महती योग्यता से अपने तरुण स्कंधों पर कार्यभार संभाला। और इस अवधि तक वह कार्यवाही आपके ही कर-कमलों द्वारा परिचालित है। गत वर्ष श्री स्वामी जी के साथ हिमालय से सिंहल द्वीप पर्यंत यात्रा की और स्वामी जी के प्रवचनों को लेखनीबद्ध किया जिसका संकलन पाठकों के समक्ष है। स्वामी जी के मुखारविन्द से विस्फुरित परागरेणु को संपुटित करने का श्रेय इन्हीं अध्यात्मरत्न प्रवचन प्रवीण स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती को ही है, जो इस मधुमंजूषा के मधुकण को अगणित पाठकों के समक्ष वितरण कर गुरुऋण का अल्पांश चुका रहे हैं।

आज भगवन्नाम के सदृश स्वामी जी का नाम आबालवृद्ध के अधरों पर है और स्वामी जी के नाम के सदृश स्वामी सत्यानन्द जी की श्लाघा उनके परिचित पाठकों के उर अन्तर में। 'शिवानन्द दिग्विजय' के लेखन का उत्तरदायित्व एक ऐसे ही अनातुर, आत्मसंयमी और सुधीर लेखक ही वहन कर सकते हैं। यह

कलाकृति क्या है? इसके विषय में सम्मति देने के विपरीत पाठकों की सम्मति ही वांछनीय है। मैं तो इसे इसलिये अधिक चाहता हूँ कि गुरुदेव का परम पावन सुधासिक्त संदेश है। परन्तु एक साहित्य प्रिय के लिये भी यह पुस्तक कृपण की वस्तु होगी। कहीं शब्दालंकार की लड़ी गुंथित है तो कहीं अर्थालंकार का भँवर। अनुप्रास का ऐसा संयोग है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते रम जायेंगे। उपमा और उत्प्रेक्षाओं के लिए तो कोई बात ही नहीं, आखिर अल्मोड़ा के ही कवि हैं जिनका लालन-पालन प्रकृति की रंगरेलियों में ही हुआ। भाषा का उतार-चढ़ाव ऐसा है कि पाठक, पाठ्य ओर पाठन की त्रिपुटी लय हो जाती है।

एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पुस्तक की महत्ता उतनी ही है जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की, क्योंकि उनकी ही वाणी का यह सरल और सुपाठ्य रूप है। संस्कृत वाङ्मय, पौराणिक भाषा का माधुर्य, काव्यमयी धाराप्रवाह वाणी का लालित्य तथा अनुच्छेदों-उद्धरणों का एक बृहद् कोष सब एक ही ग्रंथ में पा लेते हैं। साथ ही स्वामी जी के सद्वचनों का एक सारपूर्ण संग्रह–जो उनकी दो सौ पुस्तकों का एक लघु चयन है। फिर अध्यात्म के गहनतम और गूढतम शंकाओं का सरल समुचित समाधान। इसके अतिरिक्त स्वामी जी द्वारा लिखित उनका दुर्लभ संदेश। इससे अधिक और क्या अपेक्षित है। दिव्य जीवन के कर्णधार एक यशस्वी लेखक द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ स्वाध्याय की वस्तु है। 'आरोग्य जीवन' के पाठक तो अपने संपादक को पहचानते ही होंगे, जिनके अनवरत परिश्रम के उपरान्त ही वे स्वामी जी के सदुपदेशों को घर बैठे पा रहे हैं। हिन्दी की कई पुस्तकों को मूल से भाष्य करने का श्रेय भी इसी महापुरुष को है।

अन्त में हम पाठकों की ओर से लेखक को इस महत्कार्य के लिए बधाई देंगे। और उस समष्टि-नियन्ता से याचना करेंगे कि आप अपने सनातन सत्य की साधना में सिद्धकाम हों। दिव्य जीवन मंडल के सिद्धपीठ का यह पथ-प्रदर्शक हमें चिरन्तन प्रकाश में लाये। हिन्दी राष्ट्र की सन्तान होने के कारण हिन्दी सेवा का व्रत निभाये। आशा है स्वामी जी के आगामी विश्वविजय का भी जयघोष आपके ही कल कंठ से दिग्विश्रुत होगा।

बोलो गुरु और उनके शिष्य की जय!

योग वेदान्त कार्यालय
आनन्द कुटीर, ऋषिकेश
1 जनवरी, सन् 1952

–स्वामी रामानन्द सरस्वती
सम्पादक 'योग वेदान्त'

दिग्विजय मण्डल के दो महारथी

स्वामी वेंकटेशानन्द सरस्वती

'मेरे कार्यों में उज्ज्वलता के शिरोप्रतिनिधि, सौन्दर्य-किरीट के प्रोज्ज्वल रत्न– स्वामी वेंकटेशानन्द जी के समान क्या मैं किसी और को भी पा सकूँगा?'

ये श्री स्वामी जी के पवित्र उद्गार थे एक समय के। और यही उद्गार स्वामी वेंकटेशानन्द जी की समस्त कहानी को कह देते हैं।

श्री स्वामी जी की दिग्विजय उनके विषय में कुछ कहना चाहती है, क्योंकि उन्होंने ही दिग्विजय यात्रा को पद-पद पर लेखनी के रूप में चित्रित किया। वे भी स्वामी जी के साथ यात्रा में थे; प्रत्येक महोत्सव में सर्वाग्रणी ओर स्वामी जी के चरणों के अनुसरण कर्त्ता। स्वामी जी के सम्पूर्ण व्याख्यान, जो उन्होंने दिग्विजय के अवसर पर स्थान-स्थान पर दिए थे, स्वामी वेंकटेशानन्द जी की दिव्य-स्फूर्ति के बल पर ही यथानुरूप अंकित किए जा सके। 'शिवानन्द दिग्विजय' के प्रथम संस्मरण-लेखक और सम्पादक आप ही रहे। कह नहीं सकते कि हम श्री स्वामी जी महाराज की विशाल यात्रा का स्मरण भी रख सकते, यदि स्वामी वेंकटेशानन्द जी अपने अभूतपूर्व उत्साह और अपूर्व हस्त-कौशल द्वारा इसको सम्पन्न नहीं करते तो।

जो हो, हम उनके अत्यन्त आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन को गुरुदेव के चरणों पर समर्पण कर दिया है। उनके लिए अपना कोई व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं और न आत्मकल्याण का प्रश्न ही। गुरु का विशाल कार्य ही उनके जीवन का प्रथम और चरम लक्ष्य है, जिसको प्राप्त करने के अनेकों प्रयत्न वे पिछले 5 सालों से सफलतापूर्वक करते आ रहे हैं। यही उनका मौलिक रेखाचित्र है।

स्वामी परमानन्द सरस्वती

शिवानन्द दिग्विजय मण्डल के आप ही कर्णधार रहे। श्री स्वामी जी महाराज की विश्वविजयिनी प्रेरणा को क्रियात्मक करने में आप ही मध्यस्थ थे।

दिग्विजय की सफलता का श्रेय तो आपको ही जाता है, क्योंकि आप ही ने अपने गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी की दिग्विजय के लिए अमित साधन जुटाए थे। यात्रा के अवसर पर आप ही स्वामी जी की सेवा में सतत् संलग्न रहे, जबकि हमें यह भी नहीं पता चलता था कि हम कहाँ हैं और किस प्रकार अपने को गन्तव्य स्थान की ओर ले जाएँ। लक्षश: भावुक भक्तों के अपारावारविहारी सागर की भक्तिमती तरंगों से अपने गुरुदेव को सुरक्षित कर ले आने का समस्त श्रेय आपको ही प्राप्त हुआ। यह दिग्विजय जिस सीमा तक दिग्विजयी की गाथा को गाती है, उसी सीमा तक परमानन्द जी की क्रियात्मकता और सफल स्वामीभक्ति के गीतों को भी।

ऐसे गुरुभक्तिपरायण परमानन्द जी का जन्म दक्षिण पथ में तन्जौर के सन्निकट उच्चवंशीय ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके पूवाश्रमीय जीवन ने आपको आत्मतृप्ति से वंचित ही रखा। आप में बाल्यकाल से ही आध्यातिमक और नि:स्वार्थ सेवा की भावना अंकुरित हो चुकी थी। उसके विकास को रोकने की शक्ति प्रकृति में भी नहीं थी। जब आप रेलवे विभाग के कर्मचारी थे तो आपने आत्मा में एक प्रकार के असन्तोष का अनुभव किया।

अन्त में एक दिन आप ने क्षणभंगुर सांसारिकता के चलचित्रों को सदा के लिये प्रणाम किया ओर अध्यात्मपथ की ओर अग्रसर हुए। शीघ्र ही आप श्री रामकृष्ण परमहंस देव के परम शिष्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में जा पहुँचे और निरन्तर सेवा से उनकी भक्ति में तन, मन, धन अर्पण कर दिया।

जब वह महान् आत्मा ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त हुई तो परमानन्द जी ने उनकी अनुपस्थिति में आध्यात्मिक पथप्रदर्शक के अभाव का अनुभव किया और आश्रम त्याग कर परिव्राजक बन गए।

निरन्तर विचरण करते रहे। सभी आश्रमों में रहे और सभी प्रमुख संस्थाओं की सक्रियता में प्रमुख योग दिया। प्रत्येक महात्मा के चरणों की रज को अपने सिर आँखों में लगाया और उनके आशीर्वाद रूप सत्फल की प्राप्ति की।

विचरण करते-करते, महात्माओं के आशीर्वाद से सौभाग्यशाली होते-होते तथा सभी संस्थाओं में अपना सहयोग देते तथा उनको अपनी क्रियात्मकता द्वारा विमुग्ध करते एक दिन स्वामी परमानन्द जी ने आनन्द कुटीर के सन्त का नाम सुना। वह कितना मधुर नाम था। उन्होंने सुना कि अवतार पुरुष श्री स्वामी शिवानन्द जी आत्मकल्याण के लिए विश्व को प्रेरित, उत्साहित और

नेत्रित कर रहे हैं। बस फिर विलम्ब ही क्या था। परमानन्द जी तो इसी की खोज में विचरण कर रहे थे।

उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी को पत्र लिखा। स्वामी जी तब गंगा पार स्वर्गाश्रम में तपस्यारत थे। उनको स्वामी जी का पत्रोत्तर मिला। उसमें लिखा था – आ जाओ।

सन् 1931 में उन्होंने श्री स्वामी शिवानन्द जी के आध्यात्मिक-सन्निधान का आश्रय प्राप्त किया। तभी से वे निरन्तर अपूर्व और अविस्मरणीय क्रियात्मकता द्वारा सन्त शिवानन्द को सहयोग देते रहे, शिष्य के रूप में।

कालान्तर में जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम से इस पार आनन्द कुटीर में आये तो उन्होंने स्वामी परमानन्द जी की सेवा का समुचित उपयोग किया। दिव्य जीवन मण्डल, शिवानन्द प्रकाशन मण्डल का जन्म इसी विशाल योग के परिणामस्वरूप हुआ।

गुरु और शिष्य, दोनों के विशाल प्रयत्न द्वारा दिव्य जीवन मण्डल ने अनेकों मार्गों द्वारा जनकल्याण के लिए पर्याप्त साधन प्रस्तुत कर दिए। यह दिग्विजय तो उसका परिवर्द्धित संस्करण है।

उनका त्याग उच्च कोटि का था। रूखी-सूखी रोटी भी उनको अमृत के समान लगती थी। स्वामी जी के प्रमुख शिष्य होने पर भी वे सदा सादगी से ही रहते थे और आज भी वे अपने उन्हीं सिद्धान्तों पर अटल हैं। रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार और संयम-नियम में सादगी की सम्पन्नता उनके जीवन का आकर्षण है और है गुरु के आशीर्वाद का सुपरिणाम।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की षष्ट्यब्दिपूर्ति के मंगलमय उत्सव के जन्मदाता आप ही हैं – आपने ही अपने गुरु की गीता को जनता के घरों-घरों में पहुँचाया। जब स्वामी जी लाहौर और बिहार में प्रचार के लिए गए तो आप भी उनके साथ थे।

इस प्रकार परमानन्द जी के जीवन का संक्षिप्त इतिहास शिष्य के कर्त्तव्य का आख्यान है। सेवा के लिए ही शिष्य का जन्म हुआ है। आत्मबलिदान और आत्मसमर्पण का दृष्टान्त ही शिष्य है। यही स्वामी परमानन्द जी का विश्वास रहा, जिसके आधार पर उन्होंने अपने जीवन और तज्जीवनसम्बन्धी सभी प्रकार के निर्माण कार्यों का श्री-गणेश किया।

श्री स्वामी जी महाराज की अखिल यात्रा के पीछे आपका पसीना बहा और रात-दिन सन्धित कर दिए गए। भूख और प्यास की अवहेलना की गई

तथा व्यक्तिगत-सुविधाओं को किनारे रख दिया गया। अखिल भारत यात्रा, जिसे दिग्विजय यात्रा कहा जाता है, परमानन्द जी के जीवन की सक्रियता की कठोर परीक्षा थी, जहाँ उन्होंने सफल साधक के रूप में दो महीनों तक अपने को इस प्रकार से सुसज्जित रखा कि किसी भी प्रकार की बाधाएँ उनको सत्पथ ओर सेवा के मार्ग से विचलित नहीं कर सकीं। श्री स्वामी जी के प्रति उन्होंने अपने जीवन के भावुक व्यक्तित्व को समासीन कर तो दिया ही, साथ-साथ अपना हृदय, हाथ और बुद्धि, सभी उनके चरणों की सेवा में अर्पण कर दिए।

हम स्वामी परमानन्द जी को बारम्बार धन्यवाद देते हैं, और उनको विश्वास दिलाते हैं कि दिव्य जीवन मण्डल उनके किए अहसान को कभी भी नहीं भूल सकेगा। वे स्वस्थ रहें। परमात्मा उनको निरन्तर आयुष से सम्पन्न रखें।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



शिवानन्द दिग्विजय का सिंहावलोकन

दिग्विजयी शिव ने –

ई.आई.आर. की टूरिस्ट कार से	3530 मील की यात्रा की।
एस.आई.आर. की टूरिस्ट कार से	527 मील की यात्रा की।
वायुयान से	700 मील की यात्रा की।
जलयान (स्टीमर) से	24 मील की यात्रा की।
साधारण रेलगाड़ी से	374 मील की यात्रा की।
लंका-राज्यस्थ सैलून से	418 मील की यात्रा की।
अग्नियान (स्टीम-लॉन्च) से	20 मील की यात्रा की।
साधारण कार से	2040 मील की यात्रा की।
अश्वरथ से	35 मील की यात्रा की।
वृषभ शकट से	4 मील की यात्रा की।

योग – 7672 मील

दिग्विजयी शिव ने –

37 विभिन्न संगठित संस्थाओं में,

28 विभिन्न-उपसंस्थाओं में,

144 सार्वजनिक सभाओं में और 'दिग्विजय मण्डल' के

45 प्रमुख केन्द्रों में व्याख्यान और दर्शन दिए।

तदतिरिक्त

125 भक्तों के घरों में कीर्तन की गंगा बहाई,

8 विश्वविद्यालयों में सन्देश दिया,

25 महाविद्यालयों, विद्यालयों तथान्य शिक्षण-संस्थाओं में आत्मा की गीता गाई,

5 पत्रकार परिषदों में अपने उपदेश दिए,

7 रेडियो स्टेशनों से आकाश वाणी प्रत्युच्चरित की,

30 प्रख्यात देवालयों के दर्शन किए,

35 बार शास्त्रोक्त-विधान से पादपूजा ग्रहण की,

127 अभिनन्दन-पत्र स्वीकार किए,

5 रजताभिनन्दन-पत्र स्वीकार किए,

809 बार शास्त्रोक्त मर्यादापूर्वक पूर्णकुम्भों से पूजा स्वीकार की,

7499 रुपयों की लागत के धर्मग्रन्थ विभिन्न स्थानों में वितरित किए और

61 दिनों तक भारत तथा लंका विजय की तथा व्याख्यान दिए।

हमारे सहयोगी – मण्डल के आधार

पुण्य भूमि भारत में निवास करने वाले धार्मिक-वृत्तिसम्पन्न जनमण्डल जब-जब पूज्य गुरुदेव के इस विजय-चरित की गाथा को प्रेमपूर्वक गाएँगे तथा अपने इष्ट-मित्रों तथा सम्बन्धियों को सुनाऐंगे तो...

श्रीयुत् नरेन्द्रनाथ सिन्हा

का उदार हृदय उनके नेत्रों के प्रांगण में नृत्य करने लगेगा, क्योंकि 'शिवानन्द दिग्विजय' का साहित्यानुविन्दित हिन्दी कलेवर, आपके ही सहयोग से आविर्भूत हुआ है।

आप सदा से 'दिव्य जीवन मण्डल' के सहयोगी रहे हैं और बारम्बार आपकी सक्रिय सहानुभूति मण्डल को कृतज्ञता के वश कर कृत्यकृत्य करती आई है। 'दिव्य जीवन मण्डल' के यशस्वी आधारभूत महापुरुषों में आपका शुभ नाम भी प्रथम पंक्ति में आता रहा है। 'शिवानन्द दिग्विजय' के प्रकाशन में सहयोग देना उसी परम्परा की स्वर्णमण्डित माला में एक और मोती पिरो देना है।

आनन्दकन्द भगवान आपको आत्मज्ञान का वरदान दें; शारीरिक क्षेम, आत्मिक कल्याण तथा कैवल्य-ज्ञान सदा-सदा आप में समधितिष्ठित रहें, यही प्रार्थना है और मनोकामना भी। ऐसा ही वरदान दो हे शिव!

–प्रकाशक

आदर्श यात्री

जो मार्ग को सुमार्ग बनाते और सत्पथ
के द्वार खोलते हैं



दुर्गम पथ से होकर
एक यात्री जा रहा था।
ठण्डी रात आने वाली थी-
काली चादर लिए हुए।
यात्री एक नाले के पास आया;
नाला गहरा था
और प्रवाहशील भी,
वयोवृद्ध उस यात्री ने नाला पार किया,
नाले की गहराई उसे डुबा न सकी,
वह हारा नहीं।
नाले का वेग उसे थका न सका॥1॥

उस पार पहुँचते ही वह वयोवृद्ध रुक गया;
आश्चर्य! उसने नाले को पुल से बांधना आरम्भ किया,
'वयोवृद्ध!' पास ही खड़े एक सहयात्री ने कहा,
'समय क्यों खोते हो व्यर्थ पुलिया बाँधने में?
आपकी यात्रा तो पूर्ण हो चुकी है–
पुन: तुम इस मार्ग द्वारा नहीं आओगे
और न यह नाला ही पार करना होगा,
तब क्यों अँधेरे में यह कष्ट-प्रयास?'
तभी वयोवृद्ध ने उठाया शीश॥2॥

उन्नत हुआ गौरव भाल,
लहराने लगे रेशमी बाल।
लगे चमकने तिमिरांचल में...।
उसने कहा,
'प्रिय यात्री! इसी मार्ग से,
आने वाले हैं कई बालक...,
सुन्दर होंगे उनके केश, दीप्त-भाल।
यही नाला जिसको मैंने पार किया,
सम्भवत: उन कोमल-बालकों को,
अपने गर्भ में सुला लेगा॥3॥

इसी तिमिर-रंजित वन्यमार्ग में,
वे नाले को देखते ही सहम जाएँगे...,
यात्रा पूर्ण नहीं कर सकेंगे,
गहन तिमिर में,
इसी अरण्य में
व्याकुल होंगे,
भटक जाएँगे।
मेरे मित्र! उन्हीं बालकों का विचार कर,
भविष्य के उन यात्री-बालकों के लिये ही
मैं इस नाले पर पुलिया बाँध कर
सुगम्य बना रहा हूँ॥4॥



मंगलाचरण

हिमगिरि के अंचल में, रम्य-सुरसरि के तीर।
त्रिविध समीर बहती जहाँ मनभावन है॥
ज्ञान भक्ति भावना की बहती शुभ्र धारा जहाँ।
कीर्त्तन की ध्वनि से गूँज उठता गगनांगन है॥
तपोभूमि ऋषिकेश – ऋषिगण का वास जहाँ।
'शिवानन्द आश्रम' इक आश्रम सुहावन है॥
करते हैं निवास आशुतोष शिव समान वहाँ।
पूज्य ऋषिराज स्वामी शिवान्द पावन हैं॥
सत्-चित्-आनन्दरूप सौम्य शुभ्र तपःपूत।
योगिराज सुखनिधान भूतल हितकारी हैं॥
आठों याम रहते लोकसेवा में लीन सदा।
ज्ञान रवि-तेज से अविद्या तमहारी हैं॥
ईश्वरीय ज्ञान के प्रणेता दिव्य प्रेम रूप।
सुन्दर नयनाभिराम निर्मल अविकारी हैं॥
माया के परदे को भूतल से हटाने वाले।
योगीराज शिवानन्द अवतारी हैं॥
सदाचार नीति शिक्षा स्वामी! तुम जग को देते।
भक्ति गंगाधारा निर्मल बहाई है॥
योग वेदान्त वेदविद्या को सुगम करके।
योग की प्रणाली-सुगम जग को बताई है॥
'प्रेम रूप ईश्वर है, प्रेम ही जगत् का सार'।
प्रेम-परिपाटी दिव्य जग में चलाई है॥
जयति जयति शिवानन्द स्वामी! जगतीतल में।
तुमने दिव्य-जीवन की छटा सरसाई है॥

ज्ञानवान् ब्रह्मा से, विद्यानिधि बृहस्पति से हैं।
विष्णु से दयालु आप पूर्ण दयाधाम हैं॥
'कर्मभूमि वसुधा है'– कर्मनिष्ठ बनने का।
देते उपदेश आप ललित ललाम हैं॥
कीर्त्तन कलानिधि हैं आप ऋषि नारद सम।
महामन्त्र साधक हैं, भक्त हैं, सुनाम हैं॥
वयोवृद्ध देवरूप, शुद्ध प्रेम के स्वरूप।
स्वामी शिवानन्द! आप पूर्ण निष्काम हैं॥
सुन्दर सुवक्ता हैं, सुकवि हैं, सुधारक हैं।
त्यागी हैं, विरागी हैं, सिद्ध योगीराज हैं॥
ज्ञानी हैं, मानी हैं, दयाधाम दानी हैं।
नम्रता, महत्ता के आप अधिराज हैं॥
हर्ष औ' विषादपूर्ण भूतल में शान्त अटल।
पंक बीच पंकज सम आप पुष्पराज हैं॥
जयति जयति शिवानन्द! निष्कलंक निर्विकार।
जग के उद्धारक आप सन्तन सिरताज हैं॥
योगीराज साधुश्रेष्ठ दिग्वैजयन्ती शुभ,
आपकी सफल हो, पूर्ण हो, अमर हो।
कीर्ति में, सुयश में नाथ! और चार चाँद लगें।
विजय पताका फहरे, विश्व जयमय हो॥
कोटि-कोटि कण्ठों से बस निकल पड़े एक ही ध्वनि।
एक ही भावना हो, एक राग, एक लय हो॥
लाखों वर्ष जीवित रहो मानव कल्याण हेतु।
जयति जयति शिवानन्द! तेरी सदा दिग्विजय हो॥

रचयिता– श्री प्रद्युम्नकृष्ण कौल, सहायक सम्पादक 'दैनिक भारत', इलाहाबाद



दिग्विजय के अवसर पर

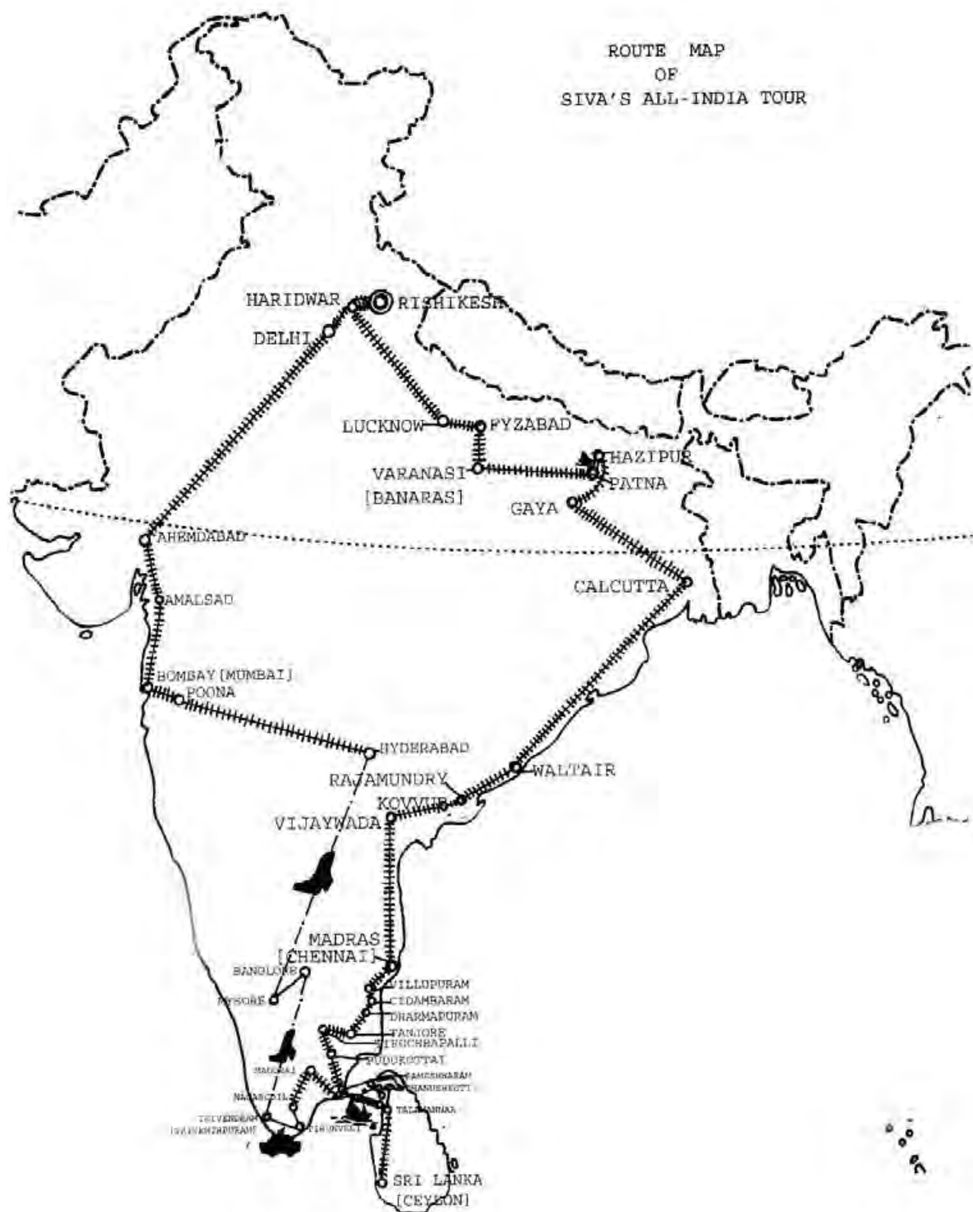
ऋषिमन्त्रपुनीत भारत के प्रमुख नगर और संस्थान

(दूसरी ओर मानचित्र देखिए)

ऋषिकेश से यात्रा का श्रीगणेश हुआ। तदुपरान्त... हरिद्वार, लखनऊ, फैजाबाद, बनारस, पटना, हाजीपुर, गया, कलकत्ता, वाल्टेयर, राजमहेन्द्रवरम्, विजयवाड़ा, मद्रास, विल्लुपुरम्, चिदम्बरम्, मायावरम्, धर्मपुरम्, तन्जावर, तिरुचिरापल्ली, पुदुकोटै, कनडुकातान्, रामेश्वरम्, धनुषकोटि, तलैमनार, कोलम्बो और कुरुनेगल।

पुनः मदुरा, विरुधनगर, तिरुनेलवेली, पट्टामडाई, नागरकोविल, कन्याकुमारी, त्रिवेन्द्रवरम्, कोचीन, कोइम्बेतूर, बंगलूर, मैसूर, हैदराबाद, पूना, बम्बई, अमलसाद, बड़ौदा, अहमदाबाद, दिल्ली... पुनः ऋषिकेश में।

(यही दिग्विजय का राजमार्ग था)



ROUTE MAP
OF
SIVA'S ALL-INDIA TOUR
HARIDWAR
RISHIKESH
DELHI
LUCKNOW
FYZABAD
VARANASI
[BANARAS]
HAZIPUR
PATNA
GAYA
AHEMDABAD
AMALSAD
CALCUTTA
BOMBAY [MUMBAI]
POONA
HYDERABAD
RAJAMUNDRY
KOVVUR
WALTAIR
VIJAYWADA
MADRAS
[CHENNAI]
VILLUPURAM
CIDAMBARAM
DHARMAPURAM
TANJORE
PUDUKOTTAI
SRI LANKA
[CEYLON]

शिवानन्द दिग्विजय

प्रथम विजय

उत्तर प्रदेश में

ऋषिकेश

प्रात:काल 8 बज चुके थे। मन्थर गति से 'शिवानन्द दिग्विजय' मण्डल का अपूर्व समारोह स्निग्ध-सौन्दर्यान्वित रेलवे स्टेशन की ओर प्रयाण कर रहा था। 'दिव्य जीवन संघ' के इतिहास के नवीन अध्याय का श्रीगणेश हुआ। सम्भवत: ऋषिकेश में ऐसे दृश्य का आलोकपात् नहीं हुआ होगा।

विविध शोभाओं से अलंकृत हाथी रथयात्रा के आगे था। उसकी सुरम्य अटारी पर काषायवस्त्रोपसज्जित महात्मागण समासीन थे। मंगलकारी हाथी का अनुगमन करती हुई थी, स्वर्णादि-परिवेष्टित रजत-पालकी; जिसमें मोक्ष-तीर्थ, हिमशैलविहारिणी, गंगोत्तरिणी, मां गंगा का जल रजत-कलश में प्रतिष्ठित था और उसके उपरान्त जीपकार में रमणीयमान, पुण्य-श्लोकोच्चरित, दिग्विजयी महाराज श्री स्वामी जी छत्रचामरोपसेवित, सौरभान्वित पुष्पमालासमन्वित, स्वयं देवलोकमध्यानुवर्ती अमरादिवन्द्य महाराज इन्द्र के समान अपनी स्वाभाविक सौम्य मुद्रा में विराजमान थे।

अपूर्व समारोह था। उस परम पावनी भूमि में मानो समस्त निसर्गवर्ग उनकी अक्षय कीर्ति का चारण बना हुआ था। प्रत्येक प्राणी के मुख से हरिनाम की गंगा प्रवाहित थी। नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी हरिनाम की गंगा में निमज्जन कर रहे थे। मार्गानुवर्ती याचकों को दक्षिणा दी जा रही थी। देवस्थानों में पूजन सम्पन्न करते हुए स्वामी जी रेलवे स्टेशन की ओर बढ़े जा रहे थे।

लगभग तीन घंटे के उपरान्त श्री स्वामी शिवानन्द जी रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। नगर के सम्मान्य-विद्वद्गण अभिनन्दन के लिए उपस्थित थे। 'श्री स्वामी जी महाराज की जय' के विजयघोष के उपरान्त पुष्पवर्षा ने सदियों के आतप्त-वातावरण को कोमलप्राणाभिसिंचित कर दिया। उत्सव में आये हुए सभी भक्तों को प्रसाद भी मिला। आज सबका हृदय गद्गद् था। दो महीने तक श्रीचरण महाराज की अनुपस्थिति का विचार सबको दु:खी कर रहा था। उनके नेत्रों से आँसू भी बह रहे थे। उनके हृदय में तरंगें उठ रही थीं। अभी अभी जो बातें कर रहे थे, अब हृदय के मुक्त हो जाने से कण्ठावरोध की स्थिति का अवरोध करने लगे। सबने अपने आराध्य को प्रणाम किया, जो उनकी ही नहीं अपितु उनके सदृश कई और प्रेमियों की साध पूरी करने जा रहे थे।

रेल ने सीटी दी। पुन: उन्होंने प्रणाम किया। आँखों में थे आँसू और हृदय में था उल्लास। नेत्रों में थी पराजय ओर हृदय में विजयश्री की कान्ति थी। गार्ड की हरी झण्डी फहरा रही थी। सारा प्लेटफार्म जयजयकार के नारों से प्रतिनिनादित हो रहा था। मन्थर गति से गाड़ी चलने लगी ओर हम लोगों ने गाड़ी में से सब लोगों को प्रणाम किया। सबने हमें विदाई दी। प्रात:कालीन स्वप्नस्मृति के समान क्रमश: हमारे महाप्रभु की झांकी उनकी दृष्टि से ओझल हो रही थी और उनकी आकृतियाँ गाड़ी के वेग के साथ अस्पष्ट होती जा रही थीं। केवल थी उनकी जयजयकार, जो अभी भी स्पष्टया डिब्बे में शब्दायमान हो रही थी। इस प्रकार 9 सितम्बर 1950 को मध्याह्नकालीन प्रकाश में श्री स्वामी जी ने 'दिग्विजय' के लिए प्रस्थान किया।

(2)

हरिद्वार

भगवान दिनमणि के अपराह्न-गमन के साथ-साथ हमलोग तीर्थपुरी हरिद्वार में पहुँचे। हरिद्वार के माननीय नागरिकों ने श्री स्वामी जी का अभिवादन किया। सचमुच में हमारी 'टूरिस्टकार' की शोभा दर्शनीय थी। उसके मध्य भाग में 'शिवानन्द दिग्विजय – हिमालय से लंका' का बोर्ड श्री स्वामी जी के प्रति अत्यधिक जिज्ञासा का अभ्युदय करता था। टूरिस्टकार से सतत् रामधुनि का पाठ हो रहा था। स्वागत के लिए आए हुए भक्तों के पुष्प-समर्पण पर सम्भवत: देवता, अप्सराएँ, गन्धर्व, और किन्नर भी आश्चर्यचकित हो रहे होंगे। वह दृश्य अवलोकनीय था।

'साक्षात् राम की प्रतिच्छाया हैं'– मैंने एक नहीं, वरन् कई लोगों को कहते सुना। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने सोचा, क्या वास्तव में मानव दर्शन मात्र से पवित्र हो सकता है? मेरे मन में यह संदेह अधिक दिनों तक नहीं रहा। कालान्तर में स्पष्टतया मैंने जाना कि महात्मा के उपदेशों की तो बात ही क्या, दर्शन मात्र से ही मनुष्य की सोई हुई धर्म-भावना जाग सकती है। इसके उदाहरण आपको आगे के अध्यायों में मिलेंगे।

सायंकालीन अरुणिमा का उदय हो रहा था। श्री स्वामी जी ने 'हर की पौड़ी' में जाने का निश्चय किया। सायंकाल की रमणीय गंगा वायु के स्पर्श होते ही गंगातटस्थ पौराणिक तीर्थ दीपाराधना से देदीप्यमान् हो उठा। देशदेशान्तरागत-यात्रियों की कलरव ध्वनि से मुखरित महादेव का वह क्रीडांगन क्षण भर के लिए ताण्डव-नृत्य का स्मरण दिलाने लगा। उस पर भी आज की दीपाराधना में विशेषता थी। आज की दीपाराधना में दिग्विजयगामी स्वामी जी के चरणों पर अपनी प्रतिभांजलि समर्पित करने, स्थानीय विद्वन्मंडल स्वस्तिवाचन कर रहा था। उसका अर्थ यह था –

'हे विद्वद् प्रवर, हे भूमा के चिरंतन स्वरूप... तुम सब रूपों में हम से भजे जाते हो। हे मित्र, हे यशस्वी... तुम सम्राट् हो, महासम्राट् हो।... अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड तुम्हारा सूक्ष्म-स्वरूप है। हमें शरण दो, शान्ति दो, शमता दो, संकल्प दो।'

अनन्तवीर्य श्री स्वामी जी के चरणों को भी उसी आरति का श्रेय प्राप्त हुआ, जो आरती उस तीर्थपुरी में पौराणिक काल से देवाधिदेव शंकर और महामाता गंगा का सायंकालीन स्वरूप देखती आई है।

तत्पश्चात् पुष्पांजलि समर्पित की गई, जिसमें हमारे स्वामी जी को सम्बोधित कर, वेदवाक्य गाया गया...'कर्म और प्रजा से अमृत-प्राप्ति नहीं, वरंच संन्यास ही अमर पद देता है... शुद्ध-सत्त्व-महात्मागण ही उस ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं... हे देव, हमारे पुष्प स्वीकार करो, तथा हमें आशीर्वाद दो।'

समस्त दिग्मण्डल परमोल्लासमय था। इसी परम पवित्र अवसर पर दिग्विजेता के मुखारविन्द से दिव्य-मुस्कान का आविर्भाव हुआ और आशीर्वादात्मक वचन निःसृत हुए...'ईश्वर हमें शान्ति, सम्पत्ति, तुष्टि-पुष्टि, भक्ति और मुक्ति का वरदान देवे।... हम त्रयंबक का यजन करते हैं, जो कीर्ति और सिद्धि का विकास करने वाला है... वही हमें मृत्युपाश से मुक्त करे, शान्ति देवे; तापत्रय का शमन करे।'

उसी रात को 10 बजे हम लोगों ने अपनी 'दिग्विजयिनी कार' पर हरिद्वार के विद्वान् नागरिकों से विदाई ली और अपने गन्तव्य पथ पर प्रयाण किया।

(3)

लखनऊ

कृष्णपक्षीय रात्रि के मध्य प्रहर की साम्राज्यवादी-लिप्सा में हमारी 'टूरिस्ट कार' दिग्विजेता को अपने अंक में निष्ठामग्न किये थी। हम लोग भी सुदूरवर्त्ती-अरण्य तथा ग्रामों की शान्ति पर ध्यानस्थ थे। गाड़ी की तीव्र गति के साथ-साथ हमारे गुरुदेव अपनी विजय-वैजयन्ती को उत्तर-प्रदेश में फहराते जा रहे थे।

दसवीं सितम्बर हमारी यात्रा की दूसरी तिथि थी। मध्याह्नकाल से कुछ पूर्व ही हम लोग लखनऊ नगरी में पहुँचे। श्री स्वामी जी के आने की सूचना तड़ितवेगत्वेन नगर के कोने-कोने में फैल गई। स्थान-स्थान से विद्वान् नागरिक श्री स्वामी जी के दर्शन करने आ चुके थे। 'श्री रामतीर्थ प्रकाशन प्रतिष्ठान' से भी वेदान्त धुरन्धर-प्रतिभामंडल पधारा था।

हम लोगों को लखनऊ में पाँच घंटे मात्र ही रुकना था, अत: समस्त मण्डल के भोजन की व्यवस्था रेलवे स्टेशन में ही सम्पन्न हुई। उस व्यवस्था में केवल एक ही व्यकित की भक्ति और श्रद्धा का चमत्कार नहीं, प्रत्युत समस्त नागरिकों की गुरु-भावना के चरम सत्य का प्रमुख अभिनाट्य था। यह वह प्रेम था, जिसका प्रचार आदि गुरु श्री शंकराचार्य ने किया; जिसकी संस्थापना के लिए उन्हें कठोर संघर्ष का सामना करना पड़ा। परन्तु हमारे स्वामी जी के जीवन में द्वन्द्व और संघर्ष जैसी कोई वस्तु नहीं। ये प्रेम के अवतार हैं। उन्हें प्रेम और भक्ति का विश्वास जन-जन में फैलाने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। वे शान्तिप्रिय महात्मा थे। अत: उनकी उपस्थिति ही शान्त वातावरण की सृष्टि करती थी। फलत: वे लखनऊ की विशाल जनता के समक्ष होते हुए, शांति और पवित्रता की भावना को विकसित करते चले। उनकी महान तपोशक्ति की असीमता के कारण किसी तार्किक का साहस नहीं हुआ कि प्रश्न करे।

लगभग 25 मिनट स्वामी जी ने व्याख्यान दिया। बीच-बीच में श्री स्वामी जी कीर्तन की मधुर-ध्वनि भी करते जाते थे। हरिनाम के रस में सराबोर लखनऊ की भावाभिभूता जनता निस्तब्धत: महात्मा की वाणी को सुन रही

थी। उन्होंने अपने जीवन के इतिहास में आज ही एक सच्चे संन्यासी के दर्शन किए थे। उनके मन, कर्म और वचन पवित्र हो चुके थे। उनकी शंकाओं का दैवी-समाधान हो चुका था। उनकी अन्तर-आत्मा में हरिनाम का दीपक, अनन्त प्रकाश बिखेरे पग-पग को उज्ज्वल किए था। प्रात:काल 8 बजे से जनता आई हुई थी; दिन के 2 बजने को थे, तब भी तन्मय ही थी।

अन्तत: हमारे प्रयाण का समय हुआ और 10 सितम्बर को 2 बजे दिन में हमारे स्वामी जी ने फैजाबाद की ओर प्रयाण किया। सब लोगों ने मुक्तकण्ठ हो, हाथ जोड़, प्रणव का उच्चारण करते, अपने गुरुदेव को विदाई दी।

कुछ क्षण में हम उनकी दृष्टि से परे हो गए... परन्तु हमारे हृदय में उनकी अटूट श्रद्धा की छाप अंकित थी, जो दिग्विजेता पर भी विजय-प्राप्ति की सूचना दे रही थी। सचमुच में भगवद् प्राप्ति भी भगवान पर विजय ही होती है। तब क्या गुरुकृपा भक्त-शिष्यों की विजय सिद्ध नहीं करती?

(4)

फैजाबाद

विशाल मार्ग में तीव्र गति से विजय वैजयन्ती के नेता श्री स्वामी जी हरिनाम का संदेश प्रसारित करते जा रहे थे। जहाँ-जहाँ हमारी गाड़ी ठहरती, वहीं भक्तों का समूह एकत्रित हो जाता और श्री स्वामी जी के दिग्विजय की सफलता का उपासक बनता। स्थान-स्थान में भगवन्नाम का संकीर्तन कराया जाता। अन्तत: 10 सितम्बर की सायंकालीन रमणीयता में हम फैजाबाद पहुँचे।

स्थानीय विद्वद्-शिरोमणि श्री रामशरण मिश्रा के नेतृत्व में स्थापित की गयी 'स्वागत समिति' के स्वयंसेवकों ने नगरवासी जनता की ओर से श्री स्वामी जी का अभिनन्दन किया। विजय के नारों का अनुकरण करती हुई जनता ने अपने गुरुदेव का हार्दिक स्वागत किया। श्री स्वामी जी ने प्लेटफार्म पर उतर कर, पुरवासियों की भेंट स्वीकार की। महामन्त्र कीर्तन करते हुए सभी नागरिक श्री स्वामी जी का अनुसरण कर रहे थे।

सबसे प्रथम श्री स्वामी जी को जनता की ओर से श्री रामशरण मिश्र महोदय ने अपने निवास स्थान में निमन्त्रित किया। हम सब लोग यथास्थान पर बैठ गए। मिश्र जी ने उठकर कहा – 'हम लोगों का परम सौभाग्य है कि श्री स्वामी जी हम लोगों के बीच में हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनकी अलौकिक उपस्थिति से यथाशक्ति लाभ उठावें।'

इसके उपरान्त कुछ विद्वानों ने श्री स्वामी जी से धार्मिक वार्तालाप प्रारम्भ किए। परन्तु विवेचक लोग यह भूल न कर बैठें कि वे तर्क कर रहे थे। आज तक श्री स्वामी जी के जीवन में ऐसा अवसर ही नहीं आया, जहाँ उन्होंने तर्क या बहस का अवसर अभ्युदित किया हो। आध्यात्मिक शक्ति के आगे आने से सभी संशयों की, सभी क्लेशों की निवृत्ति हो जाती है। सच्चा विजयी वही है, जिसके रणांगण में प्रवेश करते ही प्रतिपक्षी रण से निवृत्त ही हो जाय और जो सच्ची वैजयन्ती फहरावे, शान्ति के बल पर। अत: हम लोग न भूलें कि श्री स्वामी जी के दिग्विजय की मनोहरता उनकी वाग्पटुता नहीं थी, वरंच उनकी सौम्य-प्रकृति की विशालता थी, जिसमें सभी कर्म, सभी संदेह विलीन हो जाते हैं। विशालता के आगे सीमाबद्धता का कोई स्वरूप नहीं होता।

श्री स्वामी जी से वे लोग प्रश्न करते जा रहे थे। परन्तु आश्चर्य यह कि वे ही उत्तर भी देते जाते थे। उदाहरण के लिए देखिए –

श्री रामशरण मिश्रा जी भगवत्प्राप्ति की चर्चा कर रहे थे, 'स्वामी जी! पुराणों में कहते हैं कि भगवन्नाम सारे क्लेशों का निराकरण कर देता है। परन्तु, उसमें अभ्यस्त होना ही गहन समस्या है। क्या यह ठीक है कि जप और ध्यान से अभ्यास दृढ़ हो सकता है?'

'हाँ' श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया।

'तो क्या,' मिश्र जी बोले, 'नित्यप्रति ध्यान करने से सफलता तो प्राप्त होगी न? कुछ लोग कहते हैं कि प्रात:काल ब्रह्ममुहर्त्त में ही अभ्यास दृढ़ होता है। आपकी राय में यह ठीक है न?'

'हाँ' पुन: स्वामी जी ने उत्तर दिया।

इसी प्रकार धर्मप्रसंग चलता रहा। अन्तत: हम लोगों ने जलपान किया। सायंकालीन 7 बज चुके थे। फैजाबाद 'टाउन हॉल' में सार्वजनिक सभा के मध्य, जनता की आरे से श्री स्वामी जी के स्वागत का आयोजन किया गया था। अत: समस्त मंडली 'टाउन हॉल' की ओर अग्रसर हुई।

*　　　*　　　*　　　*

फैजाबाद का सार्वजनिक-भवन, जिसकी 'विक्टोरिया हॉल' संज्ञा है, नागरिकों से पूरा भरा हुआ था। वातावरण में निस्तब्धता थी। प्रत्येक प्राणी का हृदय स्वामी जी के आगमन की आशा में उत्कंठित था। बार-बार उझक-उझक कर देखते हुए नागरिकों की मुद्रायें सफल-नृत्यकार की ईर्ष्या का

पात्र होतीं, अथवा उनकी प्रतीक्षा की भावना के वर्णन करने में, गोपियों की प्रतीक्षा की भावना भी विस्मृत हो जाती थीं। गोद के बच्चों की क्षीण ध्वनियाँ एकाकार हो मानों अपने इष्टदेव का अभिनन्दन कर रही थीं।

मन्थर गति से स्वामी जी मंच की ओर बढ़ रहे थे। जनता के हर्ष का सिन्धु असीमित हो गया। सबके हाथ उठे और प्रशान्त प्रणव-ध्वनि ने पाणियोग का अनुकरण किया। फैजाबाद और लखनऊ डिवीजन के माननीय कमिश्नर श्री एस.एल. धार, आइ.सी.एस. सभापति थे। सबके यथास्थान बैठने पर माननीय सभापति ने सार्वजनिकतया स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया और कहा – 'हम फैजाबाद के नागरिक करबद्ध आपका स्वागत करते हैं। आपने धर्मविजय का जो अनुष्ठान किया है, वह अपूर्व है... हम आपके आशीर्वाद के अभिलाषी हैं... आपके उपदेशों के अनुसार हम चल सकें, यही हमें वरदान दो। हम लोगों का अतीव सौभाग्य है, जो आप सदृश महापुरुष हमारे उद्धार के लिए कमर बाँधे, जन-जन के हृदय में योग की भावना का विकास कर रहे हैं।'

तत्पश्चात् श्री स्वामी जी ने रंगमंच से उपदेशों की सरिता प्रवाहित कर दी। उनके शब्दों में कठोर सत्य की नग्नता थी और प्रत्येक शब्द मानो तपोपूत-अग्नि में परीक्षित और दीक्षित हुआ हो।

'आत्मा ही परम सत्य है। प्रणव उसी अनन्त-आत्मा का विकास है। सभी धर्म, सभी मत और सभी सम्प्रदाय आत्मा के विकसित, व्यावहारिक-स्वरूप हैं। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद जीवन की सभी साधें पूरी हो जाती हैं। उस आत्मा का ज्ञान किसी विशिष्ट पदार्थ में ही नहीं होता। अपितु, अखिल-भूमण्डल के जड़ ओर चेतन पदार्थ वर्ग में सन्त पुरुष आत्मा के दर्शन करता है।'

'भूल न जाना, *यो वै भूमा तत्सुखम्*। उसी पूर्ण आत्मा में अनन्त सुख है। अत: लोक में रहते, लोकोत्तर भावनामय हो, अनन्त-शान्ति में विश्राम करो।'

समस्त जनसमूह अप्रतिहत-नीरवता में प्रतिष्ठित था। श्री स्वामी जी का प्रवचन अक्षय ज्ञान की कला को ज्वलन्त करता हुआ, श्रोताओं के हृदयों में प्रविष्ट हो रहा था।

श्री स्वामी जी के व्याख्यान के उपरान्त, सभापति का संक्षिप्त भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने कार्यक्रम समाप्ति की सूचना दी। रात्रि के 10 बज चुके थे।

*   *   *   *

दूसरे दिन स्थान-स्थान पर कीर्तन और सार्वजनिक सभायें हुईं। कन्या विद्यापीठ में शिक्षा सम्बन्धी व्याख्यान हुए। स्थानीय विद्यालय के छात्रों ने स्वामी जी का अभिनन्दन किया। सायंकाल के समय हम लोग महामाता सरयू के दर्शनों के लिये गए। सरयू के परम पावन तीर्थ पर भगवन्नामोच्चारण करते हुए, हम लोग मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की जन्मभूमि अयोध्या में पहुँचे। जन्मभूमि के भग्नावशेष अभी भी स्थिर हैं, जो शताब्दियों के अंक में परमोज्ज्वल तपस्वी, महात्मा, अनन्तवीर्य शुद्ध-सत्य राम की नगरी के चित्रों का दिग्दर्शन कराते हैं।

रात्रि के 9 बज चुके थे। प्राय: सभी नागरिक श्री स्वामी जी को विदाई देने आये थे। सारा प्लेटफार्म जनसमूह से परिप्लावित था। ऐसा ज्ञात होता था मानों कोई आकर्षणाकर्षित-विशालता दौड़ी आ रही हो। वस्तुत: विश्वजित के लिए यह दुर्गम सफलता नहीं थी। कमल और भ्रमर समूह के सम्बन्ध को कौन अस्वीकार करेगा? अग्नि से ही तो धूम्र कल्पित होता है अथवा सूर्यमण्डल के उदय से ही तो दिवस का निश्चय किया जाता है। उस पर भी परम प्रेम के प्रतीक होने से जनता स्वत: उनके श्री चरणों में लोट जाती थी। अभिमान लेशमात्र भी नहीं था। अत: जन-जन के शीश स्वामी जी के समक्ष नत हो जाते थे, क्योंकि यह आस्तिकवाद की विजय-यात्रा थी। नास्तिकवाद, अनात्मवाद और पदार्थवाद के आवरण में बन्दी ईश्वरवाद और सत्यवाद की परम-मुक्ति थी, जो *'परित्राणाय साधूनां'* के मनोहर गीता वाक्य के कहने वाले की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह भारतीय संस्कृति का नवनिर्माण काल था, जिसमें स्वामी जी ने सत्य-संकल्प की आधारशिला का पुनर्गठन कर, समस्त संसृति को नवल शक्ति ओर नूतन बल से अभिमन्त्रित किया।

11 सितम्बर को रात्रि के 10 बजे हमने बनारस को प्रस्थान किया।

(5)

वाराणसी

12 सितम्बर को अरुणोदय की बेला में दिग्विजेता की विजय वैजयन्ती आर्य संस्कृति, आर्य प्रतिभा के केन्द्र, असि और वरुण की मध्यस्थिता भूमि में वायु से टक्करें ले रही थी। दिग्विजय का चौथा दिन था। वाराणसी की पवित्र-भूमि में, जिस भूमि के गौरव पर आर्य संस्कृति की प्रतिष्ठा है और जिस प्रतिष्ठा के बल आर्य जीवन की सांस्कृतिक-सम्पत्ति जीवित है, हमारा

दिग्विजय-मण्डल प्राची में प्रथम किरण के उदय होते ही प्रविष्ट हो चुका था। साक्षात् विश्वनाथ का गौरव-प्रतीक, माँ अम्बिका की मधुर गोद में युगों-युगों से रक्षित, स्वसंस्कृताभिमानी बनारस गगनचुम्बी देवालयों से सनातन-धर्म की वैदिक परम्परा के यशोरूप महापुण्य-पताकाओं से विश्व का विहंगम अवलोकन कर रहा था। इसी स्थल पर न जाने कितने महापुरुषों ने अपनी चरण-रज को शाश्वत कर दिया होगा। कह नहीं सकते, भारतीय संस्कृति के उद्गम इस विश्वनाथपुरी ने अपने अंक में कोटिशः बार निज गौरव की रक्षा के लिए दिग्विजयी कितनी शाश्वत-अमर-आत्माओं को पोषित और परम ज्ञान में दीक्षित किया होगा। अन्यथा हमारा धर्म, हमारा सांस्कृतिक गौरव, हमारी भारतीय योग-परम्परा शताब्दियों के कराल-वक्षस्थल में अनादि के लिए विस्मृत हो चुकी होती। समय-समय पर विद्वन्मण्डलान्विता, समस्त कला सम्पन्ना, योगभूमि – इस वाराणसी ने परम पावनी जाह्नवी के तट पर धर्मरक्षकों को पवित्र कर्म में दीक्षित कर, विश्व-शान्ति का नेतृत्व किया।

उसी समय-परम्परा के अनुकूल, किन्तु अलौकिक शक्ति-सम्पन्न हमारे स्वामी जी जब वाराणसी में प्रविष्ट हुए तो सम्भ्रान्त नागरिकों ने, जिन्हें वाराणसी का गौरव कहना चाहिये, स्वामी जी का स्वागत किया। डॉ. बी.एल. आत्रेय, एम.ए. पी.एच.डी. डी.लिट्., बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से तथा माननीय पण्डित किशनलाल किचलू, महामहोपाध्याय, केन्द्रीय विद्यापीठ की ओर से श्री स्वामी जी का स्वागत करने आये थे। विद्वद्प्रवर पंडित देवीनारायण जी और पंडित अम्बिकादत्त उपाध्याय जी ने नागरिक-विद्वानों की ओर से गुरुदेव का स्वागत किया। वेदविद्या-विशारद वैदिक-आचार्य वर्ग के कण्ठों से पुण्याहवाचन हुआ और पुष्पों की वर्षा से स्वामी जी की विजय-वैजयन्ती का परमाभिनन्दन हुआ।

वह वैजयन्ती दृष्टि से परे तो थी, परन्तु जन-जन के हृदय की भावना ही उसकी विजय या पराजय थी। किन्तु दिग्विजयी कभी पराजित नहीं हुआ और न उसमें दूसरे के पराजय की इच्छा ही थी। भावुकता यदि एक दृष्टि से पराजय है तो दूसरी दृष्टि से विश्व विजय की अमर प्रतीक है। यदि जनता ने हमारे गुरुदेव की विजय मनाई तो हमारा दिग्विजेता कभी उनकी पराजय का प्रश्न ही नहीं लाया। आध्यात्मिक दृष्ट्या भगवान की विजय ही भक्त की विजय है तथा भक्त की पराजय केवलमात्र भक्त की ही पराजय नहीं, अपितु साक्षात् भगवान की पराजय है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

जो ईश्वर या गुरु को जिस प्रकार आश्रय रूप भजेगा (विजयी या पराजित) वैसी ही भगवान या गुरु की भावना उसके प्रति होती है। तदनुसार ही प्रत्येक जीव की गति है, अतः स्वामी जी की दिग्विजय समस्त विश्व की पारमात्मिकता की, आस्तिकवादिता और ईश्वरवाद की विजय है तथा पराजय है अनात्मवाद की, भौतिकवाद तथा पदार्थवाद की; जिसका चिरकाल से मानवता के साथ समन्वय रहा है। एतदर्थ सद्भावना का मानव-हृदय में अभ्युदय होना हमारे स्वामी जी की दिग्विजय का विशिष्ट लक्षण है। सद्भावना के उदय होने से असद्भावनाओं की निवृत्ति हो जाती है।

'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के स्वयंसेवकों ने श्री स्वामी जी का अभिनन्दन किया। तदुपरान्त समस्त मंडली श्री किशनलाल किचलू के नवीन गृह में प्रविष्ट हुई, जिसका उद्घाटन श्री स्वामी जी ने स्वयं अपने कर-कमलों से किया। उद्घाटन के उपरान्त गुरुकुलों की वैदिक-परम्परा का चित्र खींचते हुए, श्रीमती किचलू के नेतृत्व में 'सेन्ट्रल कॉलेज' के लगभग 70 छात्रावासी विद्यार्थियों द्वारा साधना-क्रम-रूप भगवन्नामसंकीर्तन का श्रीगणेश हुआ।

क्या ही अनुपम दृश्य था! श्रीमती किचलू का भावुकता से आप्लावित रसोल्लाससमय संकीर्तन तथा विजय और गर्व की योगमयी-तल्लीनता में पूर्णस्नात विद्यार्थियों की मनोमुग्धकर शब्दावलियाँ सहज समाधि का अनुभव करा रही थीं। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द था।

सभी विद्यार्थियों ने सार्वभौमिक शान्ति के लिए सामूहिक प्रार्थना की, देवी-देवताओं की महिमामया कीर्ति का उल्लेख किया तथा वैदिक-शान्तिपाठ से साधनाक्रम का उपसंहार किया।

सचमुच में स्वामी जी के आगमन से उल्लास और आह्लाद का अनुभव वर्णनातीत था। जहाँ-जहाँ स्वामीजी जाते, वहाँ-वहाँ जनसमूह सागर की तरंगों की नाई उमड़ा आता था। पुष्प वर्षा से काशी की सड़कें खचाखच भरने लगीं।

12 सितम्बर के पौने ग्यारह बजे मानव-शान्ति के पुजारी ने श्री विश्वनाथ के महद्विख्यात प्रशस्त देवालय में प्रवेश किया। एक बृहद्-भक्त समुदाय मानो श्री विश्वनाथ पर आक्रमण करने जा रहा हो। परन्तु उनका आक्रमण

मुगल बादशाहों की निरंकुश-साम्राज्य-लिप्सा का प्रतिरूप नहीं था। वह तो प्रेम का अपने प्रेम-प्रतीक पर आक्रमण था, जो युगान्तरों से चला आता है। वेद-ध्वनि के उच्चारण से भगवान विश्वनाथ का अभिषेक, अर्चन और पूजन हुआ। उस समय ऐसा ज्ञात होता था, मानो देवाधिदेव शंकर स्वयं अपने पूजन की लीला का सूत्रपात कर रहे हों।

तात्पर्य कि स्थान-स्थान पर स्वामी जी का दिग्विजयी-पग स्थिर-गति से बढ़ता जा रहा था। किसी भी विद्वान् अथवा तार्किक का साहस नहीं हुआ कि अपनी वाग्पटुता और प्रतिभा के द्वारा दिग्विजयी का सामना करे। परन्तु इतना अवश्य था कि प्रत्येक विद्वान् फल-फूल लेकर श्री स्वामी जी के चरणों का सामना करता था।

श्री स्वामी जी का व्यक्तित्व और उनकी व्यक्तिगत स्फूर्ति दर्शनीय थी। यदि उनको अन्तर्यामी का पद दें तो अतिशयोक्ति न होगी। कभी देखिए तो स्वामी जी दशाश्वमेध घाट में दर्शन दे रहे हैं। दूसरी बार देखिए तो किसी विद्यालय का निरीक्षण कर रहे हैं। विशेषता तो यह थी कि प्रत्येक स्थान पर मोक्षद्वार-कपाटोत्पाटनकारिणी रामनाम की पवित्र-कला का प्रकाश विस्तारित था।

* * * *

13 सितम्बर को सहसा ही जनता का ज्वार-भाटा भगवान बुद्ध के पवित्र स्थान सारनाथ की ओर बढ़ रहा था। उस परम ज्योतिर्मय विभूति के स्मारक-चिह्नों से हमारे स्वामी जी का उल्लास किसी अज्ञात-प्रेरणा की स्फूर्ति से स्मृतिमय हो उठा। कीर्तन और भजन हुए। अहा, क्या ही आनन्द था। कीर्तन का परम-पावन स्वर सबके हृदयों की संचित वासना का निराकरण कर चुका था। कीर्तन की महिमा के साम्राज्य में पापी पाप से मुक्त हुए, कामी काम से मुक्त हुए और लोभी लोभ से मुक्त हुए। कीर्तनरूप-परम-विशाल सार्वभौमिक-राजछत्र की छाया में कल्मष भंग हुए। जो मिलना था सो मिल गया; भय और त्रासोत्पादक-अज्ञान की निवृत्ति हुई। तन में आनन्द, मन में आनन्द, सर्वत्र आनन्द; तन में राम, मन में राम और सर्वत्र राम; जल में शिव, थल में शिव, नभ में शिव – जल-थल और नभोमय शिव– यही अलौकिक दृश्य था; यही अलौकिक भावनाएँ थीं; यही अलौकिक वातावरण था और इसी अलौकिकता से परिमार्जित संसार था। श्री स्वामी जी गा रहे

थे, कीर्तन कर रहे थे, नाच रहे थे – परन्तु इस चेतना में नहीं। उनकी मानवीय चेतना अन्तर्हित हो चुकी थी, विश्वात्मक-चेतना समाधिस्थ थी। केवलमात्र एक ही महान् की व्यापक-चेतनता उनकी शारीरिकता में व्याप्त थी। वे परमानन्द-विभोर थे। उनकी वह व्यापक-चेतना अंशत: सभी भक्तों में कलात्मक थी। जिसने कीर्तन किया, उसी ने उस ज्ञानरूप परम पिता के स्वरूप का ज्ञान किया, उसी ने मंगल कार्य किया – अहो, उसी ने महामंगल कार्य किया; सचमुच उसी ने अपने आचार्य वर्ग, प्राचार्यवर्ग, परमाचार्यवर्ग तथा अनन्ताचार्यवर्ग के कहे हुए उपदेशों का पालन किया। अहो, उसी ने अपने मातृकुल, पितृकुल, भ्रातृकुल, भगिनीकुल का तथा अनन्त पूर्वजों का रौरवरूप क्लेशपूर्ण नरक से उद्धार किया। वही शीलवान्, वही गुणी है। वही धन्य है, वही साधु है, पुन: कहूँगा कि वही साधु है।

* * * *

सायंकाल के समय प्रात:स्मरणीय त्यागमूर्ति श्री मालवीय जी के विजयप्रतीक, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की पावनी संस्कृत-भूमि में श्रीयुत् आत्रेय जी के सभापतित्व में, श्री स्वामी जी का ओजस्वी भाषण हुआ। विद्यार्थीगणों को सचेत किया गया। शिक्षकों को उनके कर्त्तव्य का महत्व दिग्दश्रन कराया। समस्त हॉल श्री स्वामी जी की अमृतमयी वाणी से मुखरित हो रहा था। जीवन और मरण के प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए स्वामी जी ने सबको सावधान किया और कहा, 'याद रखना! यह धन, यह वैभव, यह कीर्ति किसी क्षण में अदृश्य हो जायेगी। केवल सत्कर्म और सद्भावना के बल आप अपने जीवन को अमर-प्रतिष्ठा में स्थापित कर सकेंगे।'

श्री स्वामी जी में भावुकता थी, व्यावहारिकता थी और साथ-साथ कर्मपरायणता का अपूर्व-समन्वय था। उनकी वाणी में अमित-शक्ति थी, जो श्रोता के लौकिक-विचारों को छिन्नमस्तक कर देती थी। किसी में शक्ति नहीं रहती थी कि तर्क करे। उपदेशों के श्रवण से ही श्रोता के संशय नष्ट हो जाते थे।

14 तारीख को सायंकाल के समय 'थियॉसाफिकल सोसाइटी' की विशाल भूमि कई सहस्र नागरिकों से भरी थी। सभापति श्री रोहित मेहता तथा माननीय श्री आत्रेय जी ने प्रभावुक भाषा में गुरुदेव को काशी के नागरिकों की ओर से सम्मान-पत्र भेंट करते हुए कहा – 'आज हमें श्री स्वामी जी के

मध्य अत्यन्त गौरव का अनुभव हो रहा है। आज श्री महाराज भारतवर्ष की नहीं, अपितु विश्व की विभूति हैं। उनका योग प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। हम श्री स्वामी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशन करते हैं। हमें आशा है कि वे हमारी अकिंचित भक्ति को स्वीकार करेंगे।'

श्री स्वामी जी महाराज ने धन्यवाद देते हुए कहा, 'मुझे आज विद्या के केन्द्र में आने का सुयोग प्राप्त हुआ है। मैं काशी के नागरिकों का अति कृतज्ञ हूँ। मैं आशा करता हूँ कि काशी के नागरिक अपनी आर्य-संस्कृति के गौरव को नहीं भूलेंगे। उनके समक्ष आर्य-प्रतिष्ठा के अभ्युदय का कर्त्तव्य है। आर्य धर्म की आधारशिला, आध्यात्मिकता के बल पर उन्हें विश्वशान्ति का स्तम्भ स्थिर करना होगा। विवेक, वैराग्य और सदाचार, भगवद् भजन प्रेम और सत्संग के द्वारा भारतवर्ष को खोए हुए ज्ञान की प्राप्ति करानी होगी।'

'रात्रि के मध्य प्रहर में झिंगुर की तान और दादुर-ध्वनि से हमें नींद नहीं आ पाती। एक छोटे से जीव में यह अभ्यस्त-शक्ति है। हम विद्वान् हैं, सद्विवेक-सम्पन्न हैं... हमारी शक्ति अपार है। तब क्यों नहीं हम इस चिर-मोहनिद्रा का निवारण करें?'

समस्त वातावरण पवित्र-गति-सम्पन्न था। नागरिक लोग सौम्यमुद्रा धारण किए हुए थे। श्री स्वामी जी का प्रत्येक शब्द उनके हृदय प्रदेश में प्रविष्ट हो रहा था। रात्रि के 9 बजे कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सभी लोग आज भी नित्य की भांति अपने घरों में प्रविष्ट हुए। परन्तु खाली हाथ ओर रिक्त-हृदय नहीं। वरंच हाथों में उत्तेजना थी और हृदय में आत्मबल की स्वर्गीय भावुकता का उदय हो चुका था।

* * * *

इस प्रकार श्री स्वामी जी काशी की गली-गली में और कूचे-कूचे में हरिनाम की विजय पताका फहरा रहे थे, जिसे दूसरे शब्दों में 'शिवानन्द दिग्विजय' की संज्ञा दी जाती है।

इसी अवसर पर हमारे गुरुदेव, बनारस विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्रीयुत् गोविन्द मालवीय जी के निवासस्थान में गए। उन दिनों श्री मालवीय जी रोगाक्रांत थे। श्री मालवीय जी के स्वस्थ होने का संकल्प कर, हमारे स्वामी जी ने अपने इष्टदेव का आह्वान किया तथा त्रयंबक का शास्त्रोक्तरीति से यजन करते हुए, श्री मालवीय जी के स्वस्थ होने की कामना की।

14 तारीख को सायंकाल 7 बजे स्वामी जी को 'रामानुज विद्यालय काशी' के आचार्य मण्डल द्वारा सम्मान प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर काशी की विभिन्न संस्थाओं ने स्वामी जी के सम्मान का विशेष आयोजन किया। इसी आयोजन के संकल्पस्वरूप, 'ओंकार विलास भवन' में केन्द्रीय-विद्वानों ने महामना स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की और गीर्वाण-भाषाबद्ध अभिनन्दन पत्रों द्वारा महाराज का सम्मान किया। महाराज की यात्रा के उद्‌देश्य का उल्लेख करते हुए श्री सरयू प्रसाद शास्त्री जी ने कहा –

हृषीकेशाद्‌देशाद् परिगमनशीलो मुनिवरो,
हरिद्वारादाराद् दिशि-दिशि प्रचारार्थमधुना।
समायातो यातो जगदुदधिपारं स्वतपसा,
शिवानन्द स्वामी यतिवर इहासौ विजयते॥

'इहासौ विजयते' से ही उनकी विजय स्वीकृत होती है। परन्तु विश्व-परम्परा के अनुकूल उन्होंने स्वामी जी का वंश-परिचय भी दिया, क्योंकि विजयी-पुरुष का पूर्वजीवन जनता में प्रत्यक्षतः प्रकट होकर, जनता को जीवन-पथ की अनुभूति कराता है, जैसे –

दाक्षिण्य ताम्रपर्णीतट-शोभनीये, पट्‌टामदाइ नगरेऽप्पयदीक्षितस्य।
सद्वंशवृक्षसुफलो भुविभूतमान्यः, श्रीवेंगु-अय्यरबुधात्मज पार्वतीजः॥

और भी – *'लोकोपकारनिरतो, विरतश्च रागाद्'* की उक्ति से हमें जनता की भावनाओं का ज्ञान होता है। किस प्रकार मनुष्य अपने जीवन की सफलता को कीर्तिमान् बना सकता है? वह कौन-सा योग है, जो मानव-कीर्ति का विस्तार करता है, तो हम कहेंगे –

लोकोपकार निरतो विरतश्च रागाद्,
संराजते जगति योगिवरो महात्मा। तथा च,
यो लोभमोहरहितां जनतां करोति,
सत्कर्मनिष्ठमनिश सुयशोऽभिरामम्॥

इन्हीं गुणों से सम्पन्न पुरुष ही सत्यतः सम्पन्न कहा जा सकता है। स्वामी जी में इन सभी गुणों का अलौकिक समन्वय था। अतः स्वामी जी की विजय-पताका द्वीप-द्वीपान्तरों की सीमाओं को एक धर्म की विशालता के नीचे संगठित

होने का विजय-संदेश दे रही थी और उसी संदेश का प्रत्युत्तर आर्यविद्या के केन्द्रस्थ नागरिकों से अभिनन्दन के रूप में प्रतिशब्दित हो रहा था –

सदा भोगासक्तान् जगति पुरुषान् धर्मविमुखान्,
हरेः सेवालग्नान् ललितभजनानन्दविरतान्।
करोत्यालापैर्यः श्रुतिमधुरगीताप्रवचनैः,
शिवानन्दस्वामी यतिवर इहासौ विजयते॥

अन्ततः 'काशी पण्डित सभा' के सदस्यों की ओर से समर्पित अभिनन्दन-पत्र का पाठ हुआ।

*   *   *   *

15 सितम्बर को प्रातः 10 बजे सारा स्टेशन जनकोलाहल से प्रतिमुखरित था। सभी लोग स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए थे। पुष्पों की वर्षा से सारा प्लेटफार्म सुसज्जित हो चुका था। आज स्वामी जी पटने के लिए प्रस्थान करेंगे। अतः अपने विजयी गुरुदेव के दिव्यदर्शन करने सभी लोग अपने-अपने नित्यकर्म छोड़कर आए हुए थे। प्रणव की गम्भीर-ध्वनि विशाल और विस्तृत शून्य में जाग रही थी। हर्षोल्लसित, श्रद्धावान् नागरिकों के हृदय में शाश्वत छाप अंकित कर, श्री स्वामी जी ने सबको आशीर्वाद दिया ओर कुछ ही क्षणों में जब हमारी गाड़ी चलने लगी तो श्रीमती किचलू छोटे शिशु के समान अपने उद्‌गार को न रोक सकने के कारण सिसक-सिसक कर रोने लगीं। बड़ी ही कठिनाई से उन्होंने गुरुदेव के चरणों को मुक्त किया। श्री किचलू भी गाड़ी के सीटी देते ही अपने आवेग को न रोक सके। उनके नेत्रों में आँसू भर आये; पुरुष-प्रकृति सम्पन्न श्री किचलू की वह तीव्र-उत्तेजना सिसकियों में परिवर्तित हो गयी। दोनों दम्पति बोल भी नहीं पाये। उनका गला भर आया था। केवल यही नहीं; जब गाड़ी में गति का संचार हुआ तो हमने देखा, आँसुओं के असीम सागर को – लहराते हुये प्रेमाश्रुओं से प्रपूरित, आनन्द और परम शान्ति के सागर को; उन विस्तृत तथा सजल कई सहस्र नेत्रों में, जिन्हें वाराणसी के नाथ श्री विश्वनाथ को देखने का असीम सौभाग्य रहा है।



शिवानन्द दिग्विजय

द्वितीय विजय

बिहार में

पाटलिपुत्र

आज का दिन बहुत ही आनन्दप्रद था। व्योमवाहिनी नीलराशि कृष्णवर्ण-दुकूल में अपना स्वरूप छिपाए थी। रह-रह कर चपला अनन्त की गोद में लुप्त हो जाती थी। कभी-कभी जलधाराएँ वेगवती हो, क्रुद्ध नागिन के समान धरातल के मर्म का स्पर्श-सा कर रही थीं, तो कभी सप्तरंगानुरंजित इन्द्र-धनुष की महिमा का दिगन्तव्यापी विस्तार हो रहा था। पल-पल में गाँव, वृक्ष और मैदान लुप्त हो रहे थे। हमारी 'टूरिस्ट कार' तीव्र-गति से प्रशस्त-शरीरी के समान गम्भीर शब्द करती, मीलों की दूरी को नाप रही थी। एकान्त प्रहरी के समान सुदूरवर्ती ग्राम अपनी मलिनता को अस्पष्ट बनाए, कई युगों से अपने सामने विजय-पताकाओं को फहराने वाले वीरों को आते-जाते देख रहे थे। इन्हीं एकान्त-प्रहरियों ने सैन्य-विजयी कई सामन्तों और सम्राटों को यहीं से जाते देखा होगा। युगों-युगों से साक्षी का रूप धारण किए ये निर्जन-अरण्य, न जाने कितनी बार युद्ध-विजयी, राष्ट्र-विजयी, धर्म-विजयी और दिग्विजयी वीरों, राष्ट्र-नेताओं और अवतारों के पद से दलित हुए होंगे। परन्तु आज ये धुंधले निर्जन-वन और सरिताएँ अवश्य देख रही हैं, नवयुग के दिग्विजयी की विजयिनी-गति की स्फूर्ति को, जो पल-पल में तीव्र-गति से विजय-मार्ग पर अवतरण कर रहा है।

15 सितम्बर को सायंकाल के 5 बजे 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' प्राच्य-विद्या के पुरातन केन्द्र पटने में पहुँच गया। आनन्द और उल्लास से

नियन्त्रणातीत हुई जनता का उद्रेक पग-पग के वातावरण को 'श्री स्वामीजी की जय' के विजय-घोष से प्रपूरित कर देता था। कुछ ऐसे अनुपम दृश्य का सूत्रपात हो गया कि लेखनी अपनी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाती। जहाँ तक मेरी वृत्ताकार दृष्टि जाती, मुझे सिर-ही-सिर नजर आते थे। पुष्पों की वर्षा ने कुछ देर तक दर्शनातीत विश्व-सौन्दर्य की कल्पना को सजीव रूप दे दिया। वेगवती वर्षा से भी विचलित न हुए जनसमूह की श्रद्धा और सन्तप्रेम की महिमा की सीमा को नापने का साहस कौन कर सकता है? समुत्तेजित और सम्प्रवाहित जनता ने हाथ जोड़ कर, श्री स्वामी जी के प्रति अभिनन्दनभाव सम्प्रकाशित किए। कुमारी कन्याओं ने सहस्त्र-आरति-दर्शन से अपने इष्टदेव की आराधना की।

रथयात्रा का समारोह प्राचीन पाटलिपुत्र के राजपथ पर हरिनाम के वातावरण को समुत्पन्न करता हुआ जा रहा था। स्थान-स्थान पर रथ ठहरता तो नागरिकों की भक्त्याविष्टा भावनाएँ पुष्पवर्षा का आनन्दित और उल्लसित, अप्रतिहत, चिरकालीन और स्वर्गीय, रमणीय, ज्योत्स्नामय ओर अमित-सौन्दर्य अनुभूत कराती थीं।

अब हम लोग राजपथ को पार कर रहे थे। सम्भवत: इसी राजपथ के मधुर और सुखद अंक में धर्मरक्षक, आत्मज्ञ, समाधिसिद्ध महात्माओं के चरण-कमलों की अमृतमयी अनुभूतियाँ सजीव रही होंगी।

अन्तत: हम लोग श्रीयुत् अलखकुमार सिन्हा के निवास-स्थान में प्रविष्ट हुए। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका था। बिहार के अर्थमन्त्री श्रीयुत् अनुग्रह नारायण सिन्हा ने 'दिग्विजय मण्डल' के साथ रात्रि के भोजन में योग दिया।

*　　*　　*　　*

16 सितम्बर... श्री स्वामी जी ने कई भक्तों के घरों को पवित्र किया। घर-घर रामनामामृत की प्रशान्त-धारा से प्रोक्षित और सम्परिष्कृत किए गए। अतर्काविचर स्वामी जी घर-घर को अमित पवित्रता की स्फूर्ति से सम्प्रपूरित करते जा रहे थे। प्रभुनाम की दीक्षा दी जा रही थी। मन्त्रोपदेशों की शान्त शक्तियाँ वायुमण्डल की संघर्षशीला शक्तियों का निराकरण कर रही थीं।

17 सितम्बर को प्रात:काल पटने के धनकुबेर श्री राधाकृष्ण जालान का विशाल भवन श्री स्वामी जी की विजय-ध्वनि से प्राकीर्ण था। उनके पुत्र श्री हीरालाल जालान ने श्री स्वामी जी के चरणों में मस्तक नवाया।

गंगा के सुरम्य तट पर सत्संग प्रारम्भ हुआ। श्री स्वामी जी ने उपस्थित जनता को आत्मा के लक्षणों का ज्ञान कराया।

तदुपरान्त हमारे दिग्विजयी ने विद्यापीठों में प्रवेश किया। कई विद्यालयों में उत्सुक विद्यार्थी समुदायों को दर्शन देकर स्वामी जी ने उनको संप्रहर्षित किया। बी. एन. कॉलेज में स्वामी जी का भाषण हुआ। सारा हॉल जनसमूह से अतिव्याप्त था। हॉल के अन्दर ही लगभग 15000 नागरिक बैठ चुके थे। बाहर भी जनता खड़ी थी। बिहार के प्रधान मन्त्री श्रीयुत् श्रीकृष्ण सिन्हा के सभापतित्व में समस्त जनता ने श्री स्वामी जी के प्रशान्त और सुमधुर उपदेशों को सुना और गम्भीर, योगमय, विजयी तथा परिपावन वाणी से अपने कर्णों को पवित्र जाना। *'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्'* से उपदेश प्रारम्भ हुआ और उसकी सीमा केवल भक्तों का हृदय था, जहाँ उस पवित्र ज्ञान ने आश्रय पाया, विश्राम पाया और श्रद्धा-प्राण पाया।

17 तारीख को गोधूलि के समय समस्त नगर 'पटना विश्वविद्यालय' के सिनेट हॉल की ओर प्रचण्ड बवण्डर की नाई उमड़ा आता था। सायंकाल के 6 बजते ही समस्त हॉल लगभग 20000 नागरिकों से खचाखच भर चुका था। हजारों की संख्या थी उनकी, जो बाहर खड़े थे।

विश्वविद्यालय के उप-कुलपति की अध्यक्षता में जन समूह ने सुना; उप-कुलपति कह रहे थे–'श्री स्वामी जी आर्य-संस्कृति की प्रतिभा हैं; विश्व-बंधुत्व के प्रतिनिधि और विश्व-शांति के नेता हैं।'

तदुपरान्त स्वामी जी ने सम्बुद्ध-सिद्धान्तमय पारमात्मिक-विषय की विशिष्टालोचना की; साथ-साथ विश्वविद्यालयों के मौलिक-सिद्धान्तों और कर्त्तव्यों की व्याख्या भी। शान्त नागरिकों ने भावुक व्याख्यान सुना और आनन्दोद्रेक से संप्रतिहत, अपने घरों को लौटे। स्वामी जी की विजय-गीतिका उनके अन्तराल में प्रतिशब्दित हो रही थी; जो शाश्वत और अमर है।

17 सितम्बर को 'आल इण्डिया रेडियो' के पटना स्टेशन से पुण्यश्लोक स्वामी जी की वाणी गाँवों में, सुदूरवर्त्ती शहरों में, प्रान्त के कोने-कोने में प्रस्फुरित की गई। स्वामी जी के ओजस्वी भाषण ने प्रान्त के अणु-परमाणु में अन्तस्स्थित चैतन्य को जगाया और कहा –

'एक ही विश्व के रहने वाले हम मानव, एक ही आकाश के नीचे, एक ही चन्द्र की सौम्य तथा स्निग्घ-ज्योत्स्ना में परिप्लावित, एक ही सूर्य को जन्मदाता मानते हैं। तब क्यों नहीं हम आज विश्व-धर्मचक्र का उदय करें?

तब क्यों नहीं विश्व-बन्धुत्व का स्वर्ण पक्षी पूर्व और पश्चिम-दिशास्थित दोनों पंखों के बल असीमानन्द-सागर की अमृतमयी गोद में विश्राम पावे? क्यों नहीं 'वसुधैव कुटम्बकम्' हमारा लक्ष्य हो, हमारा पथ हो, हमारा धर्म और हमारा अद्वैत कर्त्तव्य हो? आज विश्वबन्धुत्व के नाते हमने कितनी अपेक्षित परोपकारिता से जन-जन के कल्याण का सौम्य-संकल्प विश्वपिता के पवित्र नाम पर किया है और कितनी बार हमें विश्वास हुआ कि विशाल भूमण्डल हमारा एक परिवार है? कितनी बार हमने दूसरें के दु:खों से आक्रान्त हो कर गहरी उ:श्वासें ली हैं और उनके निवारण के लिए बलिदान किया है? कितनी बार हमने दृश्य-जगत् को सत्यवाद और चिरन्तनवाद की कसौटी पर कसा है? यदि आज तक कुछ भी नहीं कर पाया तो आज हम विश्व-धर्मचक्र की छाया में विश्व-प्रेम, विश्व-शांति, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-संघ की प्रतिष्ठा का संकल्प करें।'

(2)

हाजीपुर

इस प्रकार अपना परम विजयी सन्देश प्रसारित करते 18 तारीख को श्री स्वामी जी गंगा पार कर, हाजीपुर नामक सम्भ्रान्त ग्राम में पहुँचे। लगभग 20000 भक्त लोग गंगा के परम रम्य तट पर प्रतीक्षा कर रहे थे। तटवर्त्ती भूमि का विस्तार श्वेतवर्ण के दुकूलों से आच्छादित जान पड़ता था। क्या ही अपूर्व दृश्य था। अपने दिग्विजयी के दर्शनों की लालसा लिए, आह्लादित हृदय 20000 ग्रामीण गंगा के सुमनोरम नैसर्गिक तट की गोद में खड़े थे।

स्थानीय जिलाधीश पं. उमाकान्त शुक्ला के ही नेतृत्व में आज बिहार-प्रान्तीय धार्मिक जनता ने दिग्विजयी महात्मा का अभिनन्दन किया। हमारे तट पर उतरते ही बालचरों तथा 'दिव्य जीवन मण्डल' के स्वयंसेवकों की ओर से स्वामी जी के प्रति प्रणाम का श्री गणेश हुआ। तदुपरान्त ब्राह्मणों ने क्षितिज-विहारिणी वैदिक-पुष्पांजलि की मंत्रावलि से श्री स्वामी जी को महामहनीय परमहंस के रूप में अंजलि अर्पण की। कुमारी कन्या ने आरती उतारी। सौभाग्यवती नारियों ने मंगल गीत गाये और नागरिकों ने पुष्पवर्षा से विजय-स्वागत सम्पन्न किया।

मीलों लम्बा था वह समारोह। रथयात्रा थी कि विजययात्रा? मस्त हाथियों के पदाघातों से समस्त वातावरण सौम्यता की गोद में सोया हुआ था। पीछे

से आते सहस्रों वाहनों से नि:सृत हुई हरिनाम की गंगा, विश्व-संघर्ष की आधार-शिला के क्रान्तिमय-प्रतिष्ठान की शक्ति को उच्छिद्द कर रही थी। समस्त जनपथ पुष्पवर्षा से आप्लावित था। गृहमाताएँ छत के ऊपर खड़ी हो, मंगल गा रही थीं। बालक भी पुष्पवर्षा से भारतीय धर्म के अभिभावक की जयजयकार मना रहे थे।

दोपहर का समय हो गया था। हम पं. उमाकान्त शुक्ल जी के निवास-स्थान में प्रविष्ट हुए। वह घर नहीं, स्वर्ग था। वहाँ साक्षात् भक्तिदेवी का वास जान पड़ता था। गृहप्रवेश करते ही हमने अति-पावन आध्यात्मिकता के उस रमणीय-सौन्दर्य का अनुभव किया, जो तपोनिष्ठ ऋषियों की तपोभूमि में ही प्राप्त हो सकता है। स्वयं पण्डित जी की धर्मपरायणता और उनकी कर्मपरायणता एक ही सूत्र में पिरोई गई थी। उनका शरीर पसीने से लथपथ था, परन्तु उनकी स्फूर्ति दर्शनीय थी।

श्री स्वामी जी के आगमन के उपलक्ष्य में उन्होंने अभ्यागतों को भोजन तो दिया ही, साथ-साथ उन्होंने दरिद्र-भोज भी सम्पन्न किया, जो आज के संसार में आवश्यकीय है। भोज के उपरान्त अपनी विजय के उपलक्ष्य में श्रीचरण महाराज ने 'दिव्य जीवन पुस्तकालय' की प्राणप्रतिष्ठा की।

हाजीपुर के विषय में जितना कहें, उतना थोड़ा है। समस्त कार्यक्रम महा-ओजस्विता की स्फूर्ति से संयुक्त था। स्थान-स्थान पर व्याख्यान होते, कीर्तन की ध्वनियाँ जल, थल और नभ की विशालता को भावुकता के सूत्र में पिरो रही थीं।

सायंकाल को एक प्रशस्त पण्डाल में श्री स्वामी जी को जनपद की ओर से सम्मान समर्पित किया गया। अभिनन्दन के उपलक्ष्य में उपस्थित जनता ने प्रणवध्वनि से जयजयकार का तुमुल घोष किया और श्री स्वामी जी ने मंच पर से अपना संदेश दिया। गृहस्थों को सदाचारमय जीवन का महत्त्व बतलाया तथा सदाचार और सद्विचार की नींव पर सद्गृहस्थी के निर्माण का अनुरोध किया। किस प्रकार गृहस्थ को अपनी दिनचर्या का पालन कर घर को स्वर्ग बनाने का श्रेय प्राप्त करना है? श्री स्वामी जी ने अपने संदेश में स्पष्टतया मनुष्य-जीवन का कर्त्तव्य जनता के आगे दिग्दर्शित किया और आशीर्वाद के साथ जन-कल्याण, योगक्षेम और कैवल्य-पद की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर, हाजीपुर के नागरिकों से विदाई मांगी।

सायंकाल 6 बजे श्री स्वामी जी हाजीपुर की प्रहर्षित जनता से विदाई लेकर पटने वापिस आ गए।

*　　　　*　　　　*　　　　*

जब हम पटने वापिस आये तो बांकीपुर घाट पर स्थित साप्ताहिक-संगठन-स्थान 'रोटैरी क्लब' के सदस्यों ने स्वामी जी का स्वागत किया। माननीय न्यायाधीश श्री बी. पी. सिन्हा ने क्लब के सदस्यों को महाराज का परिचय देते हुए कहा कि 'स्वामी जी भारतीय-संस्कृति के अभिभावक और विश्व-शान्ति के नेता हैं। इन्होंने अपनी दिग्विजय द्वारा शांति के स्थापन का बीड़ा उठाया है। विश्व बंधुत्व और विश्व-धर्म की आधारशिला पर ही स्वामी जी भारतीय गौरव का पुनर्निर्माण कर रहे हैं।'

तत्पश्चात् व्यावहारिक विधितया क्लब के सदस्यों की ओर से सभापति ने अपने सम्भ्रान्त अतिथि-वक्ता से संदेश देने का आग्रह किया। विश्व-शान्ति के विषय पर स्वामी जी ने मानवता के कर्त्तव्य का दिग्दर्शन कराया, आत्मा ओर जीव में नित्यानित्यवाद की विवेचना की। अन्ततः *'सर्वभूतहितेरता:'* के सूक्ष्म-अभिवचन से सिद्ध किया कि उपरोक्त अभिवचन का संकल्प तथा उसका अभिसंपादन ही मानव क्लेशें की इति-श्री कर सकेगा और गीता में गाई हुई *'परस्परं भावयन्त:'* की लोकप्रिय श्रुति ही भूमण्डल व्याप्त संघर्ष और क्रान्ति की जटिल समस्या को सुलझा सकेगी।

श्री स्वामी जी ने अपनी अभिव्यक्ति में क्लब के सदस्यों के समक्ष ईश्वर-स्मरण की असीम महिमा का वर्णन करते हुए कहा कि ईश्वरीय बुद्धि और आस्तिक-विचारपरायणता ही मानव-शान्ति के द्वार को खोलने की कुंजी है।

आशीर्वाद-लहरी से श्री स्वामी जी ने प्रवचन समाप्त किया और क्लब के सदस्यों का विजयाभिनन्दन स्वीकृत किया।

(3)

गया

19 सितम्बर को प्रात:काल हमारा 'दिग्विजय मंडल' पटना-पुरवासियों के हृदयों में विजय की अमिट छाप अंकित कर, गया की ओर प्रस्थान करने लगा। सभी लोग विदाई देने आये हुए थे। श्री अलख कुमार सिन्हा ने बालक

की तरह गुरुदेव के चरण पकड़ लिए। उनकी अवस्था प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुकी थी। उनकी आँखों से जल का वेग थमता ही नहीं था। उनके परिवार के सभी लोग उपस्थित थे। उनके प्रेम से हारे नेत्र भी भर आये। जैसी अवस्था अपने प्रेमी के विरह में होती है, अथवा अपनी प्रिय माता के वियोग में होती हे, ठीक वैसी ही अवस्था समस्त सिन्हा-परिवार की हो रही थी।

'स्वामी जी! हमारे हृदयों में आप सदा के लिए अमर हो गए हैं। हमें आपके जाने से जो दु:ख अनुभूत हो रहा है, वह वर्णन नहीं हो सकता।' इतना कह कर वह वृद्ध पुरुष सिन्हा गला भर आने के कारण और कुछ न कह सका। धोती के छोर से अपनी आँखों को पोंछते हुए, उन्होंने मन भर कर अपने गुरुदेव के दर्शन किए और थोड़ी देर में निर्निमेष-नयन उन्होंने अपने इष्टदेव को विशाल-प्रकृति की गोद में अन्तर्धान होते देखा।

महावेगवाहिनी हमारी गाड़ी भगवान विष्णुपादपुनीत गया की तपोभूमि में प्रविष्ट हुई। गाड़ी के स्टेशन में प्रविष्ट होते ही जनसमूह शस्यसंकुलित महाक्षेत्र की नाई लहरा रहा था। वेद-विधानानुकूल आचार्य वर्ग ने श्री स्वामी जी की दीपाराधना की और पुष्प-मालाओं से उनके विशाल-शरीर को आच्छादित कर दिया।

विविध पुष्प-सज्जित कार में दिग्विजयी अतर्कावचर स्वामी जी ने विशाल गंगामहल में प्रवेश किया, जहाँ सहस्त्रों गृहमाताएँ, बालिकाएँ और कुमारी कन्याएँ मंगलगीत गा रही थीं। स्वामी जी के भवन में पहुँचते ही पादपूजा प्रारम्भ हुई।

तदुपरान्त सायंकाल 5 बजे संस्कृत विद्यालय, गया में महाधुरन्धर-विद्वानों ने अपनी लौकिक भाषा में स्वामी जी को व्याकरणोक्त विशेषणों की महिमा से सम्मानित किया। स्वामी शिवानन्द जी की काव्यमयी परिभाषा में विद्वानों ने श्लोकोद्‌गार प्रकाशित किए।

अभिनन्दन का उत्तर देते हुए दिग्विजयी ने अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा विद्वानों को अपना संदेश दिया।

* * * *

20 सितम्बर को प्रात:काल के बालारुण ने बुद्ध-गया के विशाल प्रदेश की सुरभि-सम्पन्न-स्थली में दिग्विजयी के प्रथम दर्शन किए, जो घुटने टेक कर, प्रणामांजलि अर्पित कर रहा था; उस विश्वपिता चिरन्तन बुद्ध के प्रति,

जिसने शताब्दियों की उपत्यकाओं के पार, उस परम-ज्योति के महोद्दीपित दर्शन किए थे। एक ने तो यहाँ से दिग्विजय का श्रीगणेश किया था, परन्तु आज दूसरा दिग्विजेता यहाँ मस्तक नवाने आया है। क्या ही समुल्लासमय कौतुक था? क्या ही सुन्दर हमारे महात्मा की लीला थी?

उसी दिन सायंकाल को गया की जनता की ओर से 'जवाहर हॉल' में स्वामी जी का सम्मान दिग्विजयी के रूप में किया गया और अभिनन्दन पत्र के द्वारा नागरिकों की भावनाओं को उस महापुरुष के प्रति प्रकाशित किया गया।

धन्यवाद देते हुए स्वामी जी की दैवी मुस्कान में परम-ज्ञान का सागर था; योग की मधुरता का प्रकाश-पुंज था। उनका सन्देश मानवता को चेतावनी के रूप में प्रभासित हुआ। उनका प्रत्येक शब्द आत्मा के सांचे में ढला हुआ था तथा उनकी प्रत्येक मद्रा योग के पारस-पत्थर में स्वर्णिम हो चुकी थी। इसलिए तो जन-जन के आतप्त-हृदय उनके दर्शनमात्र से ही अनिर्वचनीय तथा शीतल-स्पर्श की स्वर्गातीत-अनुभूति करते थे।

स्वामीजी में संन्यासोद्भूत-अहंकार का लेश भी नहीं था। उनके मानव जीवन की अनुभूति में समस्त दृश्यपदार्थ अनित्य थे। परन्तु बुद्ध की नाईं उनमें नित्यानित्य पदार्थ की व्यावहारिकता पर स्वप्नजनित-वासना अथवा वासना-जनित-स्वप्न का आभास प्रतिष्ठित था। वे केवलाद्वैत की परम्परा को प्रतिष्ठित करने वाले तो थे ही, परन्तु निराशावाद का उन्होंने वेदान्तानुभवों से निष्कासन कर दिया। बुद्ध की सदाचारप्रियता के ज्वलन्त-अनुयायी हमारे स्वामी जी ने शून्यवाद का कभी भी प्रतिपादन नहीं किया। सच्चरित्रता तथा नैतिक-विचारपरायणता हमारे स्वामी जी के उद्देश्यों का सारांश है। इसी कुंजी के बल स्वामी जी ने महिमामय अलौकिक तत्त्व के प्रगहन-रहस्यद्वार का उद्घाटन कर, विश्व के अंकिम में नई दार्शनिक-स्फूर्ति जागृत कर दी।

विश्व को उन्होंने उदाहरण देना था; अत: निराशावाद, शून्यवादादि क्रान्तिकारी-वादों को निष्कासित कर हमारे स्वामी जी परातत्त्व के विभूतिरूप देवी-देवताओं की महिमा को अखिल ब्रह्माण्ड की महिमा का स्वरूप देते और उनकी 'विजय-वैजयन्ती' इसी महिमा का आदर्श थी; जिसको दिग्विजयी प्रघोषित करना स्वामी जी का जीवन प्रमुख-उद्देश्य था।

21 सितम्बर को 5 बजे सायंकाल स्वामी जी श्री शिवप्रसाद नामक स्थानीय भक्त के घर पहुँचे। वेदमन्त्रों से स्वामी जी ने वहाँ शिवलिंग की प्राण-

प्रतिष्ठा की; विधिविधानपूर्वक पूजा की; फूल चढ़ाये और पंचाक्षर कीर्तन किया तथा अन्त में साष्टांग नमस्कार किया, जो शून्यवादी संन्यासियों के लिए आश्चर्यजनक कर्म है। परन्तु मैं सच कहूँगा कि मुझ जैसा निराशावादी तथा शून्यवादी कट्टर संन्यासी भी मूर्ति महिमा पर यदि विश्वासपरायण है, तो केवल स्वामी जी की वर्णनातीत कर्मपरायणता के कारण। मुझे ही नहीं, अपितु मेरे समान कई शुष्क-वेदान्तियों के हृदय ओर कर्म पर श्री स्वामी जी ने परिवर्त्तन की लहर सदा के लिए प्रवाहित कर दी है। फलतः मुझे विश्वास है कि एक परातत्त्व प्रत्येक चराचर पदार्थ में परिव्याप्त है और मुझे नतमस्तक होने में लज्जा का अनुभव नहीं होता।

21 सितम्बर को रात्रि के 9 बजे गया के सहृदय भक्तों ने हमें आज्ञा दी। हमारी 'दिग्विजयिनी कार' अपने स्वामी को विश्रान्ति की गोद में लेकर वैभवशाली कलकत्ते की ओर चली। नर-नारियों के हृदय गद्‌गद् थे। 'स्वामी जी! जल्दी दर्शन देना। हम गया के निवासी आपकी अमर-स्मृति को सदा पूजेंगे,' राय बहादुर काशीनाथ के नेत्रों में ज्वार-भाटा था। क्षण-क्षण में 'शिवानन्द जी महाराज की जय' का घोष इंजिन की सीटी को अपने अंक में समासीन कर लेता था। गाड़ी मन्थर गति से बढ़ी। हाथ उठे। प्रेम के प्रतीक, श्रद्धा के आदर्श गयापुरवासी शनैः शनैः आँखों से ओझल होने लगे। प्रकाश की क्षीण-विभा में उनके हाथ निरन्तर हिल रहे थे। परन्तु उनके हृदय का अमितानन्द तथा अनन्त-स्नेह हमें सदा याद रहेगा।

रात्रि के मध्यप्रहरीय अन्धकार में हम बिहार की सीमा को पार कर, बंगभूमि में प्रवेश कर रहे थे।



शिवानन्द दिग्विजय

तृतीय विजय

बंग भूमि में

कलकत्ता

22 सितम्बर को हम माँ काली की पावनी भूमि में प्रविष्ट हुए। प्रात:काल के अरुणोदय ने कलकत्ते की वैभव-सम्पन्ना नगरी में हमारे अनन्त गुरुगणभूषित स्वामी जी को दिग्विजयी मुस्कान से आवेष्टित देखा।

हम कलकत्ते पहुँचे ही थे कि 'जन गण मन' की लोकप्रिय श्रुति ने आगत-जनता के हृदयों को महत्त्वमय-स्फुरण से संचारित कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य की वह पुरातन भारतीय राजधानी अपने वैभव-सम्पन्न पुत्रों के रूप में, स्वामी जी के राजकीय सम्मान का दृश्य देखने आतुर थी। राजराजेश्वर भी सम्भवत: इस प्रकार के विजयाभिनन्दन से वंचित ही रहे होंगे। परन्तु हमारे दिग्विजयी-राजराजेश्वर साम्राज्यवादी-सम्राटों के समान न थे। वे प्रेम और स्नेह के युगातीत अवतार थे। राज्य-श्री उनके पाँव दबाती थी और लोक-वैभव उनके इशारों पर नाचता था।

श्री स्वामी जी के दर्शनों के लिए कलकत्ते के प्रख्यात धन-कुबेर उपस्थित थे तो साधारण जनता भी उनके कन्धों से कन्धा मिलाए थी। विश्व की एक-परिवार-परायणता का क्या ही उज्ज्वल दृष्टान्त था? स्वामी जी के दर्शनों की लालसा ने मानव-भेदों का निष्कासन कर दिया था। अत: सामाजिक-विभिन्नता के विचारों को तिलांजलि देकर, धनिक और गरीब, हाथों से हाथ मिलाए, स्वामी जी के दर्शनों की आकांक्षा में एक भूमि पर साथ-साथ खड़े थे। जिस भेदवाद ने सामाजिकता को जन्म दिया है, उसी की जटिल-गुत्थी

को सुलझाते हुए, स्वामी जी मानो सन्देश दे रहे थे– 'यही विश्व-बन्धुत्व की कुंजी है। यही आध्यात्मिकता है और यही मानव की समस्याओं का एकमात्र सिद्धिकरण है।'

माँ काली की पवित्र गोदी में स्वामी जी का विश्वातीत-सम्मान हुआ। माँ की गोद के वे पवित्र-पुष्पदल महिमामय स्वामी जी का आलिंगन करने लगे। 'श्री स्वामी जी महाराज की जय' के विजयनाद से जनता ने महाराज को प्रणाम किया।

कारों की एक पंक्ति नगर की शोभा में अभिवृद्धि करती हुई, गंगा तट पर पहुँची, जहाँ स्वामी जी के निवास के लिए काशी बाबू तथान्य सहयोगियों द्वारा अति-रमणीय स्थान नियत किया हुआ था। इस भव्य तथा सुरम्यातीत भवन से गंगा के उस पार, दिग्प्रज्ज्वलित-वर्चस्व की विशालता में एक अविस्मरणीय सन्तपुरुष के जीवनादर्श का मन्दिर, सात्त्विक आलोक द्वारा माँ काली के उपासकों का प्रिय बना था। वह था सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वर का मन्दिर, जहाँ परमहंस रामकृष्ण के दैवी-जीवन की व्यावहारिकता का सूत्रपात हुआ था। हमारे गुरुदेव को पहुँचे अधिक समय नहीं हो पाया था कि भक्तजनों का समूह आकृष्ट हुआ चला आया। वे आते और श्री स्वामी जी के दर्शनों से सम्प्रोल्लास की स्फूर्ति से संचरित होते और काषाय-वस्त्राविष्ट विजयान्वित-स्वरूप के तेज में मन्त्रमुग्ध से रह जाते। क्षण-क्षण में 'जय शिवानन्द' की श्रुतिप्रिय विजय-लहरी उस विशाल भवन की समृद्धिशालीनता में टकराती; वातावरण की अविस्मरणीय-प्रशस्तिका में तन्मय हो जाती थी।

सूर्य अस्ताचल की ओर शीघ्रता से जा रहा था। हमारे स्वामी जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'आशुतोष भवन' की ओर जा रहे थे। आज स्वामी जी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा अभिनन्दित होने वाले थे।

सायंकाल के 5 बजे हम विश्वविद्यालय की विद्यान्विता गौरवशाली भूमि में प्रविष्ट हुए तो समस्त आचार्य वर्ग ने श्री स्वामी जी का स्वागत किया। प्रजातन्त्र भारत के भूतपूर्व मंत्री श्रीयुत् श्यामा प्रसाद मुखर्जी के सभापतित्व में, सम्मेलन का श्रीगणेश हुआ तथा आंग्ल-विभाग के प्रधान श्री भट्टाचार्य ने लौकिक-विधितया स्वामी जी का संक्षिप्त, परन्तु ओजस्वी परिचय दिया।

अन्ततः स्वामी जी ने अपना संदेश दिया। उनकी वाणी न मालूम किस अमर-शिल्पी की भव्य तथा अनिर्वचनीय सृष्टि थी? उनकी स्वर-लहरियाँ

किसी विशाल ज्ञानाम्भोधि से नि:सृत होती हुई, संप्रेक्षकों के हृदय-सागर को आपूर्यमाण करती थीं। वे गाते; तन से, मन से, श्वास और प्राण से – आनन्दोन्मत्त हो; जो चैतन्य के मादकता की अधिक सुन्दर परा-पराकाष्ठा थी और थी मीरा के जीवन की अगम्य तपश्चर्या की कल्पना। उनकी ध्वनि में आकर्षण था तो मानव जीवन का अमित सौन्दर्य भी तो था; जिसमें से नि:सृत होता था, तपोनिष्ठ-जीवन का योगाभिवचन और झलकता था आत्मशान्ति का मधुर सन्देश।

23 तारीख को कलकत्ते के प्रतिष्ठित विद्वान् नागरिकों से स्वामी जी का वार्त्तालाप हुआ। तत्पश्चात् स्वामी जी ने 'ऑल इण्डिया रेडियो' कलकत्ते से अपने मधुर-वचनों को प्रसारित किया।

'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' के प्राणप्रतिष्ठाता श्री मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री मुकुन्द मालवीय जी ने 'श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में महाराज के सन्देश की प्रत्युक्ति करते हुए कहा, 'श्री स्वामी जी तपोनिष्ठ, तत्त्वज्ञाता तथा योगसिद्ध महात्मा हैं, जिनकी योगमयी जीवनानुभूति विश्व के आत्मिक जीवन का अभ्युदय है, और है मानव-पतन के दृश्य का पट-परिवर्त्तन। आज का संसार महाराज के सदुपदेशों की आवश्यकता का अनुभव करता है। महाराज जी ने आध्यात्मिक-निर्माण का जो महान् नेतृत्व किया है, वह अलौकिक ही है।'

श्री स्वामी जी ने अपने सन्देश में कहा कि आज के संघर्षमय जीवन के अशान्ति की यदि निवृत्ति करनी है तो हम वैर और द्रोह-भावना से रहित होकर, मैत्री-भावना के सिद्धान्तों का पालन करें। शुद्धशीलता के प्रकाश में निर्भय होते हुए इन्द्रियजित्, सदाचारी, पवित्र-हृदय और सन्तुष्ट हो जावें; सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करें। विश्वविद्यालयोपार्जित ज्ञान हमें लोक-व्यवहार का मार्ग ही दिखा सकेगा। परन्तु हृदय की विशालता के पवित्र प्रदेश में अनुभवगत-ज्ञान हमारे जीवन को उद्योगशील, प्रमाद-रहित और आत्मनिग्रही बनाते हुए, हमें आवागमन से मुक्त कर परमोपसम्पदा के आलोकित-साम्राज्य में प्रतिष्ठित कर सकेगा। यदि हम इसका व्यवहार करें तो नि:सन्देह हमें आनन्द और शान्ति प्राप्त होगी।

'श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' से लौटने पर बंगाल के माननीय राज्यापाल श्रीयुत् कैलासनाथ काटजू का पत्र श्री स्वामी जी को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था –

गवर्नमेंट हाउस,
कलकत्ता
23.9.50

पूज्य मान्यवर स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में मेरा प्रणाम स्वीकार हो।

आप यहाँ पधारे हैं, बड़े हर्ष की बात है। कलकत्ते निवासियों का भाग्य है कि आपके दर्शन हुए और आपके उपदेशों को सुनने का अवसर मिला।

मेरे ऊपर आपकी सदा कृपा बनी रहती है और जो पुस्तकें आप भेजते रहते हैं उनसे मैं सदा लाभ उठाता हूँ।

आपका प्रोग्राम यहाँ का भारी है और मुझे भी कुछ न कुछ करना पड़ता है इस कारण सेवा में नहीं आ सका। कल तो मैं देखता हूँ कि आप दिन भर काम करते रहेंगे और मुझे भी सुबह और दिन को काम है। अवसर बना तो कभी आकर दर्शन करूँगा। मालूम नहीं कौन समय ठीक होगा। अगर नहीं आ सका तो आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

सेवक
कैलासनाथ काटजू

बात सच ही थी कि स्वामी जी को विश्राम के लिए एक क्षण भी नहीं मिलता था। अहर्निश जन-समागम उनकी परिक्रमा करते रहता। समस्त पुरवासियों के हृदयों में भव्य-स्मृति अमरांकित करते हुए, स्वामी जी की पद-ध्वनि से धरा कांप-सी उठती थी और दिगन्त हिलने-से लगते थे। जहाँ भी वे जाते, वहीं जनसागर की तरंगें भूमण्डल-व्यापिनी अशान्ति के हृदय को छिन्नप्राय करती थीं। उस विशाल मानव सागर की तरंगाघातों से नभोमण्डल प्रतिशब्दित होता था; दिशाएँ प्रतिस्तम्भित होती थीं; चराचरावर्त्त-माया अस्तप्राय हो जाती थी।

24 सितम्बर। 'भारतीय तामिल संघ' के सन्निधान में अपार जन-समूह तरंगित हो रहा था। देदीप्यालोक की छटा में आवृत्त स्वामी जी का ईश्वरीय व्यक्तित्व पुरवासियों को अपनी ओर खींच रहा था। दाक्षिणात्य-जनता की भावुकता अपनी सीमा का उल्लंघन कर चुकी थी। उनके सम्मुख दिग्विजयी की प्रशस्त भालोल्लसित भव्य-पारमात्मिकता स्थिर थी। वह इन्द्रजाल था या सत्य, इसे संप्रेक्षक की दृष्टि ही निश्चित कर सकती है।

कलकत्तापुरस्थ 'दिव्य जीवन मण्डल' की सन्निधि में श्री स्वामी शिवानन्द जी ने जनता को दर्शन दिए और उनकी उत्कट-दर्शनाभिलाषा को शान्त किया।

*　　　　*　　　　*　　　　*

इस प्रकार बंग भूमि में विजेता रामनाम की महिमा को प्रतिष्ठापित कर चुका था। श्री रामकृष्ण की मधुमयी लीला-भूमि आज परमात्मा के गुणगानों से पुनः पवित्रीकरण में दीक्षित हो चुकी थी। आज जगज्जननी संप्रफुल्लोल्लसित थी।

हमारे दिग्विजयी में अणुमात्र भी कर्तृत्व की अभिमानिता नहीं थी। क्या ही सरल हृदय थे स्वामी जी। प्रशान्तज्ञान के अविस्मरणीय निकेतन, वर्चस्व-तेज की अनिवर्चनीय ज्योति से भी परमोज्ज्वल, सौम्यातीत स्निग्ध-इन्दु-छटा से भी शीतल-हृदय स्वामी जी आदर-सम्मान में सभी को अपने से श्रेष्ठ समझते थे।

कलकत्ते छोड़ने के पहिले वे पुरीमठ-प्रतिष्ठा श्रीपाद जगद्गुरु महाराज श्री शंकराचार्य के दर्शनों को गए। अनन्त श्री विभूषित शंकराचार्य के समक्ष दिग्विजयी ने, जिसकी विजय-वैजयन्ती विश्व पर लहरा रही थी, साष्टांग प्रणाम कर, अपना अभिवादन सम्पन्न किया।

*　　　　*　　　　*　　　　*

24 सितम्बर सायंकाल की पुलकित-अरुणिमा के छायालोक में हावड़ा का विशाल स्टेशन शत-सहस्र नर-नारियों से आच्छन्न था। सब के मुखों से बारम्बार 'श्री स्वामी शिवानन्द जी की जय' का विजयनाद प्रतिनिनादित हो, असीम शून्यता में प्रशान्त हो रहा था। कलकत्ते के धनकुबेर थे तो साधारण जनता भी शरीर से शरीर मिलाकर खड़ी थी। अध्यात्मवाद ने साम्यवाद की पूर्ति की और उसे सफल बनाया। छोटे-बड़े के भेद-भावों को भुला कर, आबाल-वृद्ध, राजा-रंक, उज्ज-नीच साम्यवादिता पर परमात्मवाद की सुखमय-छाया व्याप्त थी।

7 बजने को थे। गाड़ी के द्वार पर विशाल-बाहु, प्रशस्तभाल और भव्य-मूर्ति स्वामी जी ने दिग्विजयी के सौम्य-स्वरूप में सबको प्रणाम किया। सहस्रशः कण्ठों ने विजयध्वनि से दिग्विजयी पताका को लहरायमान् किया।

उनके आँखों में आँसू थे तो हमारा हृदय भी पुलकित था। उनकी श्रद्धा ने हमारे हृदय पर विजय पायी तो सही, पर वे स्वयं पराजित सेना के समान गद्‌गद् हृदय हो, अपने विजयी महारथी को मंगल-शकुन अर्पण कर रहे थे। मर्मस्पर्शी सीटी देते हुए इंजिन में पुनः चेतना आई। हरी झण्डी दिखलाते हुए गार्ड ने सुना –

'जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता'

पुलकित-हृदय उन सहस्त्रों में काशीराम गुप्ता भी थे, जिन्होंने प्रत्येक महात्मा के कर-स्पर्श कर विजय की अभिवन्दना की।

* * * *

किसी पागल गजराज की नाईं मद्रास मेल धरा को कम्पित करती, दिशाओं को हिलाती, वायु को बेधती, अकल्पनीय गति से दिग्विजयी पताका को चन्द्रस्नात-वातावरण में लहराती हुई, अन्धकार की निस्तब्धता को भंग कर, गन्तव्य स्थान की ओर दौड़ी जा रही थी। क्षण-क्षण में गाँव, नगर, जंगल, नदी, नाले विद्युच्छटावत् पार हो रहे थे। अबाध-गति से 'दिग्विजय मण्डल' बंग प्रदेश की विशालता को पार कर, आन्ध्र-प्रदेशीय सीमा की ओर संप्रविष्ट हो रहा था।



शिवानन्द दिग्विजय

चतुर्थ विजय

आन्ध्र देश में

प्रकृति के विशाल गर्भ और विभीषिकामय वातावरण के घटाटोप अन्धकार में दिग्विजयिनी, इतिहास के अमर पृष्ठों पर अपने विश्व-विजयी की अमर-गाथा को प्रत्यंकित करती, शान्त एवं निश्चयपूर्ण पुरुष को अपने अंक में विश्राम देती, प्रचण्ड गति से क्षण-प्रतिक्षण में योजन पार कर रहा थी। तपस्वी की आत्म-सत्ता का तिष्ठापन करने, गुरुपद-पुंजित-पुण्यप्रताप का यशः सौरभ मानवीय संस्कृति में बिखेर देने, अमित-ग्लानि से आवृत्त विश्व के दैन्याच्छन्न-अन्तस्तल की पूर्वजन्म-संचित दुर्वासनाओं को मानव के निर्माण के साथ-साथ निर्वाण के पथ की ओर प्रेरित करने–वह विश्वविजयिनी दु÷र्न्ति-गति से कवियों के केन्द्र–पवित्र-आन्ध्रजन-समाकीर्ण प्रदेश में पताका को तरंगित करती हुई प्रविष्ट हो रही थी। सद्गौरवनिष्ठ आन्ध्रपूत विजेता की चरण-धूलि का स्पर्श करने प्राणों की बाजी लगाने को भी प्रस्तुत थे। विजय-हास्य-मुखावृत्त सर्वश्रेष्ठ के दर्शनों के लिए मानव-मेखला उमड़ पड़ती थी तो उड़ती हुई धूल से स्वर्ण-किरण भगवान भी आच्छन्न हो जाते थे। अरुणिमा के सौन्दर्य की भव्यता में हम पूर्वीय सागर के तट-सान्निध्य में अग्रसर हो रहे थे।

(1)

वाल्टेयर

विशाल जनसागर में लहरायमान दीखता हुआ वाल्टेयर स्टेशन, वेदध्वनि से मुखरित, नाम संकीर्त्तन का पवित्र अमृत छलकाता हुआ, अपने महर्षि के

अभिनन्दन के लिए समस्त पुरवासियों के कलेवर की समुत्तेजना से संचलित था। पूर्णकुम्भ-समर्पण की वैदिक-परम्परा के अनुकूल शास्त्रीय-सम्मान समर्चित कर ऋत्विजों ने संन्यास की महिमा को गाते हुए समाभिवन्दनीय महाराज का समाराधन सम्पन्न किया और विजय-घोष भी।

पीछे था महोदधि और सामने उसी के समान तरंगित लोक समूह। सर्वप्रथम थे दिग्विजयी महाराज; मानो साक्षात् शिव ही विजय-प्रयाण कर रहे हों और पीछे थी अपार जन-राशि; नंगे पांव और खुले सिर। माँ की गोद में बच्चा था। फेरी वालों के पान, बीड़ी, सिगरेट भी साथ थे। श्रमिकदल की फटी हुई वस्त्रावलियों में मुड़े हुए कागज के नोट भी साथ थे। विधवा महिलायें एकवस्त्रा तो थीं; परन्तु जनसमूह के विशाल सागर से टक्करें लेती हुईं, पवित्र-तीर्थ महाराज के पास पहुँचने का भरसक प्रयास कर रही थीं। स्वेदधारा-आप्लावित पुरवासीगण पूर्ण-विस्मृत हुए से, जिस ओर को धक्कों का निर्देश मिलता, चले जाते थे। जन-समूह था या किसी प्रान्त की महासेना प्रयाण पर थी अथवा देवाधिदेव शंकर अपने महारुद्रों की महासेना लेकर त्रिपुरासुर-विजय के लिए जा रहे थे। एक के बाद एक, फिर सहस्रों की संख्या को प्रशान्त-सागर के तट पर विजयाधिराज के पीछे जाते देख सहसा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के अपरिमित वानरयूथ का स्मरण हो आता था। मेदिनी काँप रही थी। विजयी का विशाल रथ, गड़गड़ाहट की ध्वनि से अम्बर-पट को विदीर्ण-सा करता, वाल्टेयर की सुरम्य-भूमि पर 25 सितम्बर के अपराह्नकाल में चल रहा था।

यथासमय पादपूजा का वेदपारायण से श्रीगणेश हुआ। घी, दूध, दही, फल, फूल का पार न रहा। एक के बाद एक आता और परम-ऋषि के चरण-स्पर्श कर, उनकी झांकी हृदय में अनुष्ठित कर चला जाता था। घण्टों यही दर्शन-क्रम अनवरत गतिगत हो चल रहा था।

तदुपरान्त स्वामी जी ने 'प्रेम समाज' को अपने चरण-स्पर्श से पवित्र किया। आर्यप्रथानुसार वहाँ के बालक और बालिकाओं ने महर्षि की चरणरज को सिर-आँखों में रख, अपने को धन्य माना। अनाथालय का परिक्रमण करते हुए, दरिद्र-नारायण के छद्मवेष में उन्होंने भारत के सजीव-वैभव का दर्शन किया। हमने देखा कि स्वामी जी का तपोल्लसित प्रशान्त-मुखमण्डल किसी असीम तेज से दमक रहा था।

तत्पश्चात् प्रेम की दिव्य मूर्ति के सम्मान में दो बालिकाओं ने 'प्रेम समाज' की ओर से अभिनन्दन-संगीत गाए। कुछ ही देर में स्वामी जी ने

नामामृत का जादू सर्वत्र प्रसारित कर दिया और मंजुल तथा श्रुतिप्रिय-संगीत द्वारा सभी के हृदयों को पुलकित तथा आनन्द-विभोर कर दिया।

* * * *

विलीयमान तप्त-स्वर्ण-कलश के प्रकाश में, लौटते हुए पक्षियों की कल-गुंजन में, पक्षिशावकों की उत्कंठित स्वरावलि में, 'आन्ध्र विश्वविद्यालय' का शिक्षा केन्द्र स्वामी जी के संप्रज्ञात ज्ञान-तत्त्व-प्रकाशालोक की मधुरिमा में सुसज्जित था और निःसृत होती जहाँ थीं, ज्ञान-विज्ञान के परिधान की मेखला में सूत्रित मणि-माणिक्य की सहस्त्रधा रश्मियाँ!

विश्वविद्यालय के प्राचीरों में अपनी प्रेरणा का अभिसंचार करता हुआ, स्वामी जी का मेधावी प्रवचन, पृथिवीतल से दूर और अति दूर जाकर, प्रशान्त सागरों के ऊपर अरण्यरंजित उपत्यकाओं के प्रोत्तंग शिखरों पर, आनन्त्य सीमा में पार्थिव-शृंखलाओं के बन्धन से विरहित हो, संज्ञामय विचारपरायणता में उड़ता, अप्रतिम सौन्दर्य-सत्त्व की छटा में नृत्य-सा करता, मानो चन्द्र की ज्योत्स्ना से, पुष्प के सौरभ से, जलधि तरंगों के योग से अथवा विशाल ब्रह्माण्ड की परम-सत्य संज्ञा से अभिरचित हो, संसार की दुःख-परम्परा के अवशेष की श्मशानभूमि में नाचता, कूदता तथा गाता था।

* * * *

यन्त्रवत् जनता प्रशान्तिमय थी। बाहर नगर में सहस्त्रों दीप जल उठे थे। सार्वजनिक-सभा (टाउन हॉल) के चारों ओर विजय-दिवाली तेजपुंजों में जगमगा रही थी।

यथासमय सभामण्डप के मध्य भाग में पूर्णेन्दुवत्-स्निग्ध तेजोमय स्वामी जी विराजमान थे। नागरिकों की ओर से अभिवन्दित किए जाते हुए स्वामी जी सहस्त्र-शारदा-सेवित महानारायण ही प्रतीत हो रहे थे। उनका ब्रह्मतेज-समाकीर्ण-व्यक्तित्व जनता के हृदयों में प्रविष्ट होकर, अपनी स्मृति को अंकित कर रहा था और उनकी बौद्धिकता की जीर्ण-शीर्ण अट्टालिका का नव-निर्माण भी।

अर्द्धरात्रि समीप थी। अतः जनता को विदा होने का आदेश हुआ। सब अपने-अपने मार्ग पर, अपने-अपने घरों की ओर जा रहे थे, जैसे नित्यप्रति उनका क्रम था। आज भी वही मार्ग था, वे ही गलियाँ और वे ही दुकानें

थीं। परन्तु उनके हृदय निर्मल हो चुके थे, बुद्धि संपरिष्कृत हो चुकी थी। वे आज नवजागृत वाल्टेयर के परिवर्तित नागरिक थे, जिन्हें समय आने पर विश्व-शान्ति के निर्माण में सभी राष्ट्रों का नेतृत्व करना होगा; अपने आर्य-बन्धुओं के हाथें से हाथ मिला कर, कन्धों से कन्धा भिड़ा कर-किसी समीपस्थ भविष्य में!

*　　　*　　　*　　　*

26 सितम्बर। प्रात:काल की प्रचोदीयमान् अरुणिमा में स्वामी जी अपने चिरमित्र श्रीयुत् स्वामी ओंकार जी के सुरम्य 'शान्ति-आश्रम' में संपरिविराजित थे। स्वामी जी ने कुछ वर्ष पहले नील-सिन्धु-कम्प-प्रकम्पित, इन्दु-सिन्धु-सिंचित, वारि-कणसमूह-विचुम्बित इस मनोहर और गर्वोन्नत आश्रम के वक्षस्थल में विश्राम किया था। तभी से दोनों महात्माओं का पारस्परिक-सम्बन्ध घनिष्ठतर होता गया।

आश्रम का निरीक्षण करते हुए, स्वामी जी चिकित्सालय में प्रविष्ट हुए। 'यह उत्तम सेवा है,' कहते हुए उन्होंने चिकित्सक की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखा, 'परन्तु जहाँ सभी औषधियाँ निष्फल हो जाती हैं, वहाँ रामनाम की अचूक औषधि ही सफल हो पाती है।'

कहना नहीं होगा कि स्वामी जी किस प्रकार भगवन्नाम की महिमा को प्रत्येक के हृदय-मंच पर अजर और अमर कर रहे थे। उनके शब्दों में विशालवाहिनी ओजस्विता थी। उनके व्यवहार में भगवान अर्हत, सम्यक् संबुद्ध की सिद्धान्तपरायणता थी, तो विदेहराज की नाईं कर्मपरायणता का समावेश भी था। यदि ऐसा न होता तो वे कोटिश: जनता का आध्यात्मिक नेतृत्व नहीं कर सकते और पुरानी लकीर के फकीर की तरह जटा सँवार कर, भस्मोद्धूलित अमंगल विग्रह लिए शून्यवाद और निराशावाद के प्रतीक ही होते। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं था। दैवी-विधान ने उन्हें यथोचित-संस्कारों से प्रतिष्ठित कर, अव्याकृत-सिद्धान्तों के विषय – नित्यानित्य, अन्त-अनन्त, सृष्ट-असृष्टादि वादों की परिचर्या को भुलाने भेजा था। स्वामी जी ने सांसारिक क्लेशों को अभिव्यक्त करते हुए, उनके निरोध-विषयक-उपायों को अभ्युदित कर, मानवता को वह प्रतिपद् दिग्दर्शित किया, जिसकी अनुकरणशीलता भगवन्नाम में, आस्तिक्य-भावना और सर्वभूत-कल्याण की इच्छा में अवलम्बित है। अप्रज्ञापित परात्परवाद

विषयक सिद्धान्तों के प्रति स्वामी जी का एक यही उत्तर है, 'आम ही तो खाने हैं, न कि गुठलियाँ गिननी। यही एक समाधान है कि हमें दु:ख का निवारण करना है; न कि 'संसार किसने बनया, कब बनाया' जैसे अव्याकृत विषयों की जिज्ञासा।'

अत: अपराह्न काल के प्रखर उत्ताप में भी समस्त-जनपद अश्रुसिंचित दृगों से महात्मा के दर्शन करने आता तो किसी अज्ञात-छवि की माधुरी के करुणांचल का स्पर्श कर जीवन की स्वप्निल माया का परिचय पाता। ऐसा आभास होता था मानो सभी मानव-समुदाय महात्मा के चरणस्पर्श में ही परम-पुण्य का, परम-विश्रान्ति तथा परम-ज्ञान का अनुभव करता हो; मानो एक मधुर-संगीत की स्मृति का अविचल-आसन अप्रतिहत हो, शत-सहस्र आलिंगनों से अपने देवदूत की पवित्र चरणरज को निर्निमेष दृष्टि से हृदयंगम किए था।

यह भक्ति तो केवल भारतवर्ष के ऋषियों को ही सुलभ है। इतिहास के स्वर्णाक्षरों में ऐसे ही पवित्र-चरित्रों को लिपिबद्ध किया जाता है। विश्व इन्हीं की पूजा करता है। मानवता ऐसी ही पवित्र आत्माओं पर समय-समय पर प्रेम-पुष्प चढ़ाती है। कवि की कल्पनाओं के अपार सौन्दर्य की रहस्यवादिता में ये ही सदा-सदा कवित्व की सरसता में भावनिष्ठ रहते हैं। फिर भी जब इतिहास के पन्ने रक्तरंजित होते हैं, तब केवल इन्हीं महात्माओं से प्रकटीभूत हरिनाम की पवित्र गंगा उस कलंकित इतिहास के परिहास्य का परिष्करण, संस्कृतीकरण और प्रक्षालन करती है। यदि ऐसा न हो तो आज विश्व के आगे केवलमात्र पैशाचिकता का ताण्डव-अट्टहास ही श्रुतिगत होगा और हम मानव नहीं, वरन् दानव की संज्ञा में अपभ्रंशित होंगे।

वाल्टेयर में ज्ञानगंगा प्रवाहित कर, उन्होंने अमिट प्रभाव समुत्पन्न किया। गगनराशि के मध्याह्नोत्तर होने पर सबने मन्त्रमुग्ध हो, उन्हें विजय-सौरभ से पूरित दिगन्त की ओर अनुपम छटा से जाते देखा। गाड़ी जा रही थी। सामने था लहराता हुआ पारावार विहारी सागर। ऊपर था प्रखरतर स्वर्णरथी का उद्दाम-प्रताप और समीपस्थ थे उनके घर; सदा एक समान। महान् अट्टालिकायें या फूटे खंडहरावशेष झौंपड़े; जिनकी वायु आज पवित्र हो चुकी थी, जिनकी भूमि आज धुल चुकी थी, जिनकी दैहिक-काया आज परिवर्तित हो चुकी थी और जिनमें वे बालकों की तरह अश्रुपूरित-दृग लेकर लौट रहे थे।

(2)

राजमहेन्द्रवरम्

सांयकाल के 5 बजते ही हमने अपार मानव-समुदाय को तरंगित देखा। ज्यों-ज्यो हम राजमहेन्द्रवरम् के निकटतर होते जाते त्यों ही जनता का आवेग अपनी बांध को लांघने लगता था। संगीत की मंजुलता और प्रकृति के सौन्दर्य प्रत्येक नगर-निवासी के अन्तराल में अनूप छटा लिए थे। पसीने से लथपथ थी उनकी देह और वे विशालता के सूत्र में पिरोए जा चुके थे।

गाड़ी खड़ी हुई। जयनाद से त्रिभुवन गूंज उठे। वेदपारायण से गगनमंडल दमक उठा। पुष्पमालाओं ने देवाधिदेव का आलिंगन किया। सहस्त्र-कंठ-निःसृत विजयनाद रह रह कर स्वामी जी के तपःपूत शरीर के मधुर-स्पर्श का अनुभव कर रहा था। वाद्ययन्त्रों ने जगगीत गाये। जनपद रथयात्रा का अनुसरण करता हुआ, गोदावरी की पुण्यभूमि राजमहेन्द्रवरम् की नगरी में प्रविष्ट हुआ। प्रथम तोरण-द्वार का अतिक्रमण करते हुए ऋषि का रथ कोटि-पदाक्रान्त-पथ की गोद में चल रहा था। झरोखों की ओट से कुल-वधू ने देखा, दर्शन किए और नेत्रों की राह से भगवान की पुण्य-स्मृति को हृदयांकित कर लिया। दूर कहीं बालकों ने सुना, 'श्री श्री श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' और अपने-अपने खेल-कौतुक से विरत हो, अर्धनग्न-अर्धस्वच्छ दौड़ते, धूल उड़ाते, रिक्शे से मुठभेड़ भी करते, फेरी वाले के दिन की कमाई को अनवरत-धक्कों से धूल-धूसरित कर राह में बिखेरते, किसी वृद्धा का क्रोध भड़काते, रथयात्रा में सम्मिलित हुए।

घरों में कलह मच रहा था। पति भी रथयात्रा में जाना चाहते थे और पत्नी भी अपनी सहेलियों के साथ रथदर्शन में सम्मिलित होना चाहती थी। बाल-गोपालों का तभी से पता नहीं था। तब दूधमुंहे बच्चे को किसकी संरक्षा में छोड़ें; अथवा बच्चे को भी ले जायें? परन्तु बाहर अगाध अपारावार जन-सागर की तरंगें देखी तो छक्के छूट गए; ललाट-पटल से पसीने की बूंदे चूने लगीं। क्या ही विशाल तथा अलौकिक दृश्य देखा! महारथी का विश्वविजयी सैन्य प्रयाण कर रहा था। मीलों लम्बा था उस महाप्रदेशवाहिनी का विस्तार। उसकी गतिशीलता से धूल अस्ताचलगामी को भी छिपा रही थी। प्रत्यक्ष थी गोदावरी की अनन्त धारा, अपनी लज्जित-पलकावलियों में किसी अपार सौन्दर्य से मिलने की प्रतीक्षा किए; जिसके स्वप्न-आलोक में कानन की स्मित-तान गूंज रही थी।

रथयात्रा का समारोह एक निवासगृह के सामने थम गया। जनसमूह आतुर था, एक बार निर्मल पदारविन्द-स्पर्शरूप-पुण्य-प्राप्ति के सुयोग के लिए। उनमें प्रेम था, भक्ति थी, श्रद्धा और भावुकता भी थी। वे चाहते थे, एक अवसर मिल जाय; अन्यथा उनके पंख हों तो उड़कर उस विमल-पुरुष पर अपनी तुच्छ छाया कर, देव-दुर्लभ परम-सुगन्धि के यशभागी बनें। सम्भवतः इस जीवन में फिर इस परम पुरुष के दर्शन भी हो सकेंगे या नहीं। मुझे गौरव के साथ कहने का अवसर मिला है कि पुरातन धार्मिक तथा ईश्वरवादी भारत आज भी इन्हीं प्राणियों में अपनी संजीवता को संस्थापित किए हुए है। दुर्धर्ष-संघर्ष में यही भारत की शक्ति है, जो रक्तपिपासुओं का सामना करती रही। जिनकी बोझा ढोने वाली कठोर बाहु शताब्दियों की प्रगहन-निद्रा में भी जीवन-जागृति का संचार कर पाई और समय-समय पर तलवारों को खनखनाती आई। यही हमारे धर्मप्राण और जाति-सत्ता के अवलम्ब हैं। इन्हीं की करतालों ने नारद को जगाया, सूर का बीज बोया, तुलसी के दोहे गाये, चैतन्य के साथ तालें मिलाई। मीरा के साथ, एकनाथ के साथ, ज्ञानेश्वर और तुकाराम के साथ इन्हीं के श्याम की, इन्हीं के विट्ठल की, इन्हीं के पांडुरंग और इन्हीं के राम की करतल-ध्वनियाँ नाची थीं। इनकी एक ही पुकार ने वैकुण्ठ का साम्राज्य न जाने कितनी बार हिला दिया और न जाने कितनी बार इनके एक ही शब्द से आब्रह्मकीट-पर्यन्त ब्रह्माण्ड महाकम्प से स्तम्भित हो गया। इनकी एक ही करतल-ध्वनि से कई महापुरुषों का अवतार हो जाता है। फिर भी ये दीन भारत की नग्न-सन्तानें कही जाती हैं।

हमें भी इन दृश्यातीत आश्चर्यों की कल्पना नहीं थी। हमने कभी भी नहीं सुना कि एक महात्मा के दर्शनों के लिए समस्त जनसमूह धूल और कीचड़ में लथपथ हो जाता है। स्वामी जी की कथा भी निराली है। विशालकाय शरीर, हिमांचल की शीतल गोद में अभिपोषित, दक्षिण भारत की तप्त भूमि में नंगे पांव और नंगे सिर चलता। घण्टों प्रवचन करते-करते सम्भवतः स्वामी जी ने अपना सन्देश आने वाली जनता के लिए अमर कर दिया।

रात्रि को 'गवर्नमेन्ट आर्टस् कॉलेज' की विशाल भूमि में जब स्वामी जी का व्याख्यान होने वाला था तो लगभग एक लाख जनता उनके संदेश को सुनने के लिए आतुर थी। नगर निर्माण विभाग के अध्यक्ष इंजीनियर श्रीयुत् शेषावतारम् ने नागरिकों की ओर से स्वामी जी का सादर अभिनन्दन किया।

अभिनन्दन-पत्र समर्पण करते ही जनता ने हर्ष से विजयनन्द किया; मानो कोई चिरकालीन-स्वप्न पूर्ण हुआ हो।

युगों-युगों से सन्तप्त हुई जनता महात्मा का आंचल छोडने के लिए तैयार नहीं थी। भूखा था मानव; षड्व्यंजन सामने प्रस्तुत थे; भला कैसे ठुकरा सकता? युगों-युगों की तृषा जो शीतल करनी थी; कैसे सरोवर की अवहेलना करता? सचमुच में यही हुआ भी।

उपरोक्त सम्मेलन के उपरान्त, स्वामी जी ने 'रामकृष्ण सेवा समिति' में प्रवेश किया ही था कि लगभग 50,000 जनता एकत्र हो गई। अत्यन्त दिव्य-गति से हरिनाम संकीर्त्तन हुआ। दो बालिकाओं ने गाना गाया। विश्व भर की सामूहिक-मादकता मानो उनकी वाणी में भरी हुई थी अथवा विधाता ने जगन्माता की मूलशक्ति का संगीतांग उनकी भावुकता में सूत्रित किया था।

संगीत के उपरान्त स्वामी जी ने भी कीर्तन कराया। परन्तु उनकी संख्या ही कितनी थी, जो साधारण चेतना का अभी भी अनुभव कर रह थे? कोई बैठा तो कोई खड़ा था। सभी मानवीय चेतना के परे अनन्त में भावस्थ हो चुके थे। उस विशाल जन-समूह में किसी अदृश्य के हाथ की दैवी-छाया थी। *'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगीनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥'* तब यहाँ भी अवश्यमेव वह अपनी प्रतिज्ञा को नहीं भूले होंगे।

*　　　*　　　*　　　*

27 सितम्बर। राजमहेन्द्रवरम् में आज हमारा दूसरा दिन था। नगर की बस्ती-बस्ती को नामगंगा की दिव्य-धारा में स्नान कराया गया।

प्रात:काल होते ही पुण्यतोया गोदावरी का तट जन-कोलाहल सम्पन्न था। कोई नहा रहा था; कोई प्रात:रश्मि को अर्घ्य अर्पण करता; कोई नित्यकर्मानुसार संन्ध्यादि में निरत था तो कोई भस्म-चर्चित हो किसी की राह देख रहा था। प्रशस्त-ललाट गोदावरी के तट पर आज कोई मेला-सा मालूम पड़ता था। मालिनें फूल की टोकरी को सजाये बैठी थीं। ब्राह्मण वेदपाठ में निरत थे।

दिवाकर की भुवनप्रिय किरणों ने साम्राज्य पसारा तो दिशा-विदिशा धूल के गोटे उड़ाती हुई, किसी शतसहस्राधिक जन-समूह के आने का संकेत करने लगी। गोदावरी का तट, मार्कण्डेय की अमर-भूमि, अतिविस्तृत वक्षस्थल लिए गौरवान्वित हो उठी; जब धीर वीर गम्भीर हिमांचल की आत्मा,

अम्बरपट की छाया में, जल में, थल में, अनिल-अनल में और अखिल-लोक रंजक-उल्लास की चरम मेखला के अविनश्वर-पारावार में विहार करती, अविराम-गति से स्वर्णरेणु-सज्जित, पुष्पपत्र-वन्दित, अखिल-देवपूज्य भूमि में, कोमल - परन्तु अमर-चरण स्पर्श कर रही थी।

सबसे प्रथम हिरण्यगर्भोद्दीपित गंगा-जल-संपूरित रजत-कलश ने अपनी अनुजा को शताब्दियों की गोद में अति दीन तथा अति संकुचित देखा। रजत-कलश-रथानुगामी थे हमारे स्वामी जी। अक्षुण्ण्ण थी उनकी विजय गीतिका। रविरश्मियाँ उन्हें परम तेजोमय अर्घ्य देती थीं। उनका गाम्भीर्य जनता का आकर्षण था।

गोदावरी के तट पर पदार्पण करते ही जनता के हृदय-क्षितिज में दिवानक्षत्र की रश्मिमाला जागृत हुई। उन्होंने महात्मा के दर्शन कर, अपने को कृतार्थ जाना। फूल चढ़ाये, चरण छूए और दिव्य-स्वरूप की बलैया ली। स्वामी जी ने आगम-विधितया गोदावरी का सप्रेम पूजन किया। उनकी मुद्रा परम-गम्भीर थी। शतसहस्र इन्दु-सूर्य का उद्दाम-प्रकाश उनके विजय-श्री की कान्ति को हिरण्यवर्ण कर रहा था। प्रियदर्शन स्वामी जी ने अर्घ्य दिया और गंगा-कलश में गोदावरी का संकल्प कर प्रणाम किया; जिससे रामेश्वर में संकल्पोच्चारण के समय गोदावरी के पवित्र नाम के संकल्प की पुनरावृत्ति पूर्ण होवे।

(3)

कोव्वुर

राजमहेन्द्रवरम् को स्वामी जी के सत्कारपूर्वक सम्मान का अनुपम-प्रसाद मिला। दिग्विजय मंडल के स्थानीय संचालकों ने इस अपूर्व ज्ञानयज्ञ में जो अक्षत-योग दिया, उसकी कीर्ति-गाथा आदर्श है और है गीता-धर्म की प्रतिरूप। उनके कौशल से नागरिकों को अपने जीवन में देव-दुर्लभ महात्मा के पदारविन्दों के संपूजन का वन्दनीय अवसर मिला।

हमारे हर्ष का पारावार न रहा, जब हम जलयान से गोदावरी की गोद में रामनाम के अक्षय कोष को बिखेरते हुए, उस पार कोव्वुर ग्राम की सीमा में प्रविष्ट हुए। जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी, भूमिपृष्ठ श्वेत-परिधान पहने हुए, कास के फूलों से आवृत-सा कल्पित होता था। क्षण-क्षण में ऐसा भान होता था, मानो कोई हिमाच्छादित क्षेत्रभाग भूगर्भ से उदित हो, आगन्तुक के आतिथ्य-सत्कार के लिए प्रस्तुत था।

अगाध गोदावरी का तरण कर, हम लोग तट की ओर अग्रसर हो रहे थे। ज्यों-ज्यों हम निकट पहुँचते तो उस क्षितिजान्त-विस्तार में सजीवता दृष्टिगत होती। शस्य-शयामला, पावस-तृण-संकुलित रम्यता की कल्पना में कोई नवीन-आश्चर्य अन्तर्निहित दृष्टिगोचर होने लगा। लक्षसंख्यक श्वेत-वस्त्रावृत्त मानव-शरीर कोव्वुर विहारिणी के तट पर, स्वामी जी के दर्शनों की उत्कण्ठा में अधीर खड़े थे।

वृक्षों के पत्ते कम्पित हो गए थे। स्थान-स्थान पर धूल उड़ रही थी। कलामय तूलिका का मानो चित्रकार ने आज ही अनुपम कौशल रचा था। भू-पर्यंक में सृष्टि की आध्यात्मिकता के कौतुक, नव-पल्लव-दल से विकास की गोद में लीला का सूत्रपात कर रहे थे।

ज्यों ही हमारा जलयान तीर का चुम्बन करना चाहता था, हमने सुना प्रचण्ड विजय घोष; मानो अन्तरिक्ष गिराना चाहता हो। पावसकालीन घटाओं के संघर्ष से उद्भूत-नवखण्ड निनादित मेघगर्जन की तरह 'श्री शिवानन्द जी महाराज की जय' का प्रोत्तुंग निनाद वातावरण को झंकृत करता, सप्त-सिन्धु-पार, अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डों के वक्ष को चीरता, देवदूत की तरह सत्यलोक में श्रीपद-चुम्बिता महामहनीय परम-कमनीय की कल्पोज्ज्वला तपोभूमि की परम विभूति के सूत्रधार के मायामय रंगमंच पर उसी के धर्मस्थापन और धर्मचक्र-प्रवर्त्तन का दृश्य देख रहा था।

जलयान पर से स्वामी जी ने सबको दर्शन दिए। पुण्यतीर्थ के खड़े होते ही योजन-तरंगित नर-समुदाय कल्पान्तर्व्यापी नीरवता की समाधि के आनन्द में समाश्रित हो गया। विशाल-विस्तार में विस्तृत शान्ति विद्युच्छटावत् कुछ क्षणें तक दमक-दमक कर रह जाती थी।

कुछ ही क्षणों में 'दिग्विजय मण्डल' के स्थानीय संचालकों ने स्वामी जी की प्रशस्त ग्रीवा में विजयमाला डाली। ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन से सम्मानित गुरु महाराज के चरणों से तट-चुम्बन होते ही वाद्ययन्त्रों की स्वर-लहरी वायु की गोद में झूला झूलने लगी। कोव्वुर के पथ पर श्री स्वामी जी का विजय-रथ चला। ऐसा भास हुआ मानो समस्त क्षितितल चलायमान हो रहा था। कोई खेतों से होकर दौड़ रहा था तो कोई झाड़खण्डों को पददलित करता हुआ कुलाँचे भर रहा था। सहस्त्रों मार्ग स्वत: बन गए।

सारे तालुक से जनता आई थी, अपने घरों में ताले लगा कर। 30 मील इर्दगिर्द के गाँव एकदम जन-शून्य हो गए थे।

श्री रामलिंगेश्वर राव उनके नेता का नाम था। उसने अपने लिए नहीं, वरन् समस्त तालुकवासियों के मंगल के लिए स्वामी जी को विनयपूर्वक कोव्वुर के लिए निमन्त्रण दिया। श्री रामलिंगेश्वर राव से समस्त ग्रामीण परिचित थे। अत: जब उन्होंने रामलिंगेश्वर के ग्रामदूत से स्वामी जी के आने का समाचार सुना तो उनके आनन्द की पराकाष्ठा हो गई और दो दिन पूर्व ही कोव्वुर ग्राम में शतसहस्र ग्राममूर्तियाँ आ विराजीं।

कोई बैलगाड़ी पर आया, अपने समस्त परिवार को ले। कोई वृद्धावस्था के कारण पालकी में आया तो कोई अपने घोड़ों पर यथायोग्य सामग्री ले आ धमका। कोई-कोई गरीब थे और जिनके पास सवारियों का प्रबन्ध नहीं था, वे भी सिर पर गठरी रखे, अविश्रान्त-गति से कोव्वुर की ओर चले आ रहे थे।

सहस्रों बैलगाड़ियों, शतश: पालकियों तथा सहस्रों घोड़ों से परिपूर्यमाण कोव्वुर की शोभा किसी महाबली सम्राट् के दिग्विजयी-सैन्य-शिविर से कम नहीं थी। सायंकालीन अरुणिमा में वह योजनापार महाशिविर, अलौकिक-कौतुक से शब्दायमान हो जाता था। शत सहस्र दीपकों के जलते ही तथा सहस्रों चुल्हों से प्रकाश के उदय होते ही अतिविस्तृत निर्मल-क्षेत्र उद्दीपित हो उठते थे।

तत्फलत: स्वामी जी की रथयात्रा लक्षश: ग्राम-देवताओं से आवेष्टित, सुन्दरतर को भी सुन्दरतम बना रही थी। 'श्री श्री श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' के विजयघोष से माया का मोहक चमत्कार लुप्त हो रहा था।

इस यात्रा में हमारी मण्डली सदा स्वामी जी के साथ चलती थी। परन्तु आज वह क्रम भंग हो गया। मण्डली अस्त-व्यस्त हो गयी। हम लोग कहाँ थे और स्वामी जी का रथ कहाँ था, कुछ भी नहीं जान पड़ा। जिधर जाते उधर ही असंख्य जनसमूह। रास्ता काट कर भी स्वामी जी तक पहुँचने का उपाय न था।

इधर तो हम जनसमूह की लहरों में गोता लगा रहे थे, उधर शामियाने के नीचे जनता एकत्रित हो रही थी। हमें सभापति का शब्द सुनने में आया। अतुलित घोष का श्रवण करते ही जो जहाँ थे, वहीं बैठ गए। कोई बैलगाड़ी पर बैठे थे तो कोई वृक्षों की शाखाओं को अपना आश्रय बना चुके थे। अधिकांश जनता मोटरों की छतों पर भी बैठी थी। हमने भी आश्चर्यचकित हो देखा कि अविच्छिन्न-भावुकता के सूत्र में पिरोई हुई, क्षितिजान्त विद्रूपावलि की नाईं आन्ध्रदेशीय ग्रामीण जनता एकटक

हो, सभी असुविधाओं को भूल कर शस्य-संकुलित क्षेत्र की सुन्दरता का महोत्सव सम्पन्न कर रही थी।

नक्षत्र छटा की जगमगाहट में, अविकसित चन्द्र की हिमांशु-निःसृत शीतल-आभा में, मिट्टी का संचय प्राणी अपना अतीतागत इतिहास सुन रहा था, जिसे काव्य की कल्पना कल्पित नहीं कर पाती; चित्रकार की सफलतम तूलिका भी अंकित नहीं कर सकती। परन्तु जिसे आत्मप्रदेश के प्रकाश में ज्ञानचक्षुओं के उपार्जन करते ही शुद्धसत्त्व यतिगण सरस्वती-पूजिता वाणी से स्वर्ण प्रांगण के बालकों को युगारम्भ के सूर्योदय से सुनाते आ रहे हैं। जिसकी भूमिका को आदि पुरुष ने वेदों में गाया। जिसका प्रकाशन आदि-महर्षियों ने किया और जिस इतिहास का निर्माण न मालूम किन विस्मृत-कल्पों से होता आ रहा है।

सभी निस्तब्ध थे। यदि सुई भी गिरती तो दिशायें गूँज उठती थीं। सभापति अपनी प्रान्तीय भाषा में स्वामी जी के प्रति अभिनन्दन पत्र पढ़ रहे थे। वे शब्द थे या मेघ-गर्जन, बम् विस्फोट अथवा भू-विस्फोट!

अब उठे स्वामी जी। मंच पर आरूढ़ हुए। ऊपर उज्ज्वल नक्षत्राच्छन्न गगन था और मंच पर शान्त-मुद्रा, विश्वप्राण, प्रकृति के सुहाग, कैलास-शिखर पर इन्दु की सजलता के नाथ और संन्यास वेष में साक्षात् शंकर थे। उनके गौरव-ललाट पर अगणित श्रम-सीकर तुहिन-बिन्दु की नाईं झलक रहे थे। स्वर की अनवरत तरंगें गंगा की अमर-धारों सी, आघातों और प्रत्याघातों से अज्ञान को गलित, पीड़ित और नष्ट कर रही थीं। परस्पर के अन्तर, सामाजिकता के अंकुर और भेद-दृष्टियाँ इस बलिदान में महायज्ञमंच पर स्तब्ध, क्षुब्ध, असंबल और कलाहीन हो, प्रतिपल अपने महाप्रलय के ज्योतिस्फुलिंग की लपटों को देखकर दिग्भ्रान्त हो, क्षण भर बाद ही रोमांचित उर से शंकर के खप्पर की प्रचंड अग्नि की ज्वाला के बादलों में अपने क्षारतत्व की कल्पना करती, विश्व-वंदित महाशिव की साक्षात् विभूतिमत्ता का ताण्डव-नर्त्तन देख रही थीं।

स्वामी जी के संदेश में सार्वभौमिक-सत्य की गीतिका का उच्छ्वास था, जिसने सभी संप्रेक्षकों के हृदयों पर अपनी गाथा अमर लिपि में अंकित कर दी। यदि ऐसा न होता तो जनता कभी की उकता कर चली गई होती। परन्तु ऐसा न हुआ। उन्होंने तन्मय हो दो घण्टे स्वामी जी के कीर्तन, भजन और उपदेश सुने। तत्पश्चात् भी उन्होंने स्वामी जी का साथ न छोड़ा।

* * * *

व्याख्यान के उपरान्त श्री रामलिंगेश्वर राव के निवासगृह में उत्सुक तथा भावातुर जनता ने स्वामी जी पर छत से पुष्पवर्षा की। कई वृद्ध ग्रामीण, जिनको स्वामी जी के पास पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ हो रहा था, परम भक्ति की चरम-सीमा में अनियन्त्रित हो गए। दीवालों से नारंगियाँ फेंकते हुए उन्होंने कहा, 'यदि हम न पहुँच पाए महाराज के चरणों के सामीप्य में, कम-से-कम हमारी भेंट तो उनके अंगों का स्पर्श कर ले।' भक्त-भावना की पराकाष्ठा का मूल्य हमारे स्वामी जी को चुकाना पड़ा। तप: स्निग्ध शरीर पर फलों के गिरने से अति-वेदना को प्राप्त होते हुए स्वामी जी के मुखमण्डल पर वह प्रश्रब्ध मुस्कान थी, जिसने दिग्विजयी के स्वर्णिम-यश को सुहागे में आलोकित किया था।

जनता उनको छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उनको यदि स्वामी जी के आस्वेद-भाल पर स्पर्श करने का अवसर मिलता तो कम-से-कम उन्होंने अवलेह के लेप का अनुभव किया होता। यदि कोई स्वामी जी के शरीर का स्पर्श करता तो ज्ञात होता कि मानो स्वामी जी अभी-अभी तेल की नाँद में डुबकी लगाकर आये हों। परन्तु विचार करने का अवसर था ही किसे? आम ही तो खाने थे, न कि पत्तियाँ गिननी।

सारी रात दर्शनार्थियों का आवागमन-सूत्र अविच्छिन्न रहा। प्रात:काल प्राची दिशा के अरुणांजित होने से पहले ही, अम्बर पथ में स्वर्णरथी के आगमन से पूर्व ही समस्त स्टेशन खचाखच भर गया था। ग्रामीणों के नेत्रों में वरदान की याचना थी। जन-समाज शतसहस्र शीशों को नत-मस्तक कर, अतुल-उल्लास से विजय-गान गाता, तो उसके नेत्र अश्रुप्लावित हो जाते थे। प्रात:कालीन अन्धकार की गोद में मानो प्रकाश की विशाल राशि के समान तेज:पुंजित स्वामी जी निस्तब्ध जड़-चेतन की निष्क्रियता में सृष्टिकरण का स्वर्णमय-उल्लास विकसित कर रहे थे। समाहित, परिशुद्ध सुन्दरचित्त स्वामी जी कोव्वुर-निवासियों के हृदय-सरोवर की विशालता में और सत्य, यथार्थ, धार्मिक, सद्‌गुणाानुगत-रूप-विशारदता के निस्तरंग ज्ञान-दर्शन में, बुद्धिभेद की सीमा से दूर और अति दूर अर्हत्व की प्राप्ति कर, साक्षात्कार-रूप-सदात्मक प्रयोजनीय कमल का आविर्भाव कर चुके थे; जिसके ज्ञान-वैराग्यात्मक ऊर्ध्व-पत्र की गोद में सृष्टि का स्वामी ब्रह्मा समासीन है तथा जिसकी अवलम्बिनी योगनिद्रा में अव्यक्तरूप परात्पर श्री नारायण की नाभि का आश्रय पाकर, *'आत्मा गुहायां निहितोस्य जन्तो:'* के संगीत की तालें झूम रही हैं।

प्राची की गोद से ज्योति-कलश जाग रहा था और हमारा दिग्विजय मण्डल अपने महामंडलेश्वर की छत्रच्छाया में, कोव्वुर की जनता को पुलकित-हृदय कर, शस्य-तृण-संकुलित भू-प्रदेश के दृश्यों को दिवा-स्वप्न की नाईं परिवर्तित करते, जंगल, पर्वत, नदी, नद, ग्राम और क्षेत्रों की विशालता की संकुचित करते, विजयवाड़ा की सीमा में प्रवेश कर रहा था।

*　　　*　　　*　　　*

सब लोग लौट रहे थे। बैलगाड़ियों की गड़गड़ाहट से हरिनाम संकीर्तन का घोष जाग रहा था। कोई घोड़ों पर, कोई बैलगाड़ियों में, तो कोई पैदल भी अपने-अपने गाँवों को लौटते थे। आज कोई भी ग्राम्य गीत नहीं गाते थे, परन्तु उनकी गुनगुनाहट में पवित्र नाम का अमृत भरा था, जिससे जन्म-मरण-रूप आवागमन के चक्र से मुक्ति मिलती है तथा आत्मा के महाविभुत्व का ज्ञान सम्पन्न होता है।

गाँवों के दीपक पुनः जल रहे थे। निर्जन बस्तियों में पुनः जीवन का संचार हो रहा था, नया प्रकाश दमक रहा था तथा नवल-जीवन खिल रहा था। सब लोग गाते थे –

जय शिवानन्द स्वामी! शिवानन्द जय,
सत्य-सिन्धु दयालु हे!! निर्द्वन्द्व जय!

(4)

विजयवाड़ा

28 सितम्बर। प्रातःकालीन व्योमराशि की अरुणिमा अभी अस्त भी नहीं हो पाई थी कि विजयगौरव-पूर्णा रेलगाड़ी की सीटी ने विजयवाड़ा के समीपस्थ होने का संकेत किया। मदान्धा की गति में स्थिरता का संचार हुआ। उमड़े हुए पावसकालीन कृष्णवर्ण अम्बरधूम की नाईं अपारावार जनसमूह समस्त प्लेटफार्म की तिल-तिल भूमि को अव्यक्त किए हुए था। कुछ ही क्षणों में स्वामी जी नीचे उतरे। अपने-अपने तट का अतिक्रमण करती हुई, मौसमी निर्झरों के अचिरवेग के समान जनता अज्ञात भाव से स्वामी जी पर टूट पड़ती थी। नगरपालों के प्रबन्ध से स्वामी जी महोत्सव-रथ पर आसीन हुए। रथ पर से स्वामी जी ने विशाल-जनसमुदाय का

अवलोकन किया, तो विशिष्ट-वर्ण-संकुलित विशाल-क्षेत्र की नाईं आन्ध्र जनसमूह के विस्तार को देखा।

श्री स्वामी जी के निवासादि का प्रबन्ध विजयवाड़ा के सम्पन्न गृहस्थ श्री वेंकट रेड्डी के अभिधान में हुआ था। श्रीयुत् वेंकट जी प्राचीन प्रणाली के विश्वासी हैं। उनकी जनसेवा में अथक आस्था है। वे सदाचार के उत्कट प्रेमी हैं। यही कारण था कि स्वामी जी ने विजयवाड़ा दिग्विजय के अवसर पर उनके ही निवास-स्थान में विश्राम पाया।

दृश्य परिवर्तन के साथ-साथ हम श्री वेंकट जी के निवास स्थान को कई सहस्र जनता के कलरव से प्रतिशब्दित देखते हैं। उच्चासनस्थित स्वामी जी के चारों ओर अपरिमित फल-फूलों का स्तूप-सा निर्मित हो गया था। एक के बाद दूसरा; तद्वत् अविरामतः जनता आती, दर्शन करती, क्षणोपरान्त आगे बढ़ती जाती। यथाशक्ति जन-समूह अपनी-अपनी भक्ति के पुष्प भगवान के चरणों में अर्पण करता था। भक्तों की अंजलियों से समर्पित किए हुये फल-फूल तत्काल ही प्रसाद के रूप में दर्शनार्थियों को दे दिये जाते थे। दर्शनार्थी स्वामी जी के आशीर्वाद रूप प्रसाद को अपने बालकों के सिर-आँखों से लगाते और अपनी सुरक्षा में ग्रहण करते थे।

उसी दिन शाम को राष्ट्र के लिए स्वामी जी का विजय-सन्देश 'रेडियो केन्द्र विजयवाड़ा' से प्रसारित किया गया। दिन भर के अथक परिश्रम से भी स्वामी जी की भावभंगी में समानता ही थी। विश्राम की न तो आवश्यकता थी और न उचित अवसर ही था। तप्त-स्वर्ण की कांति के समान उनके दिव्य तेजोमय स्वरूप की छटायें अहोरात्र उज्ज्वल रेखाओं का विस्तार करती थीं।

रेडियो केन्द्र से अपना सन्देश प्रसारित कर स्वामी जी बाहर आये ही थे कि स्थानीय महाविद्यालय के आचार्यमण्डल ने आकर स्वामी जी को निमन्त्रित किया। उनके निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकृत कर, प्रज्ञावान् और मेधावान् गुरुदेव ने महाविद्यालय की भूमि में चरणनिःसृत कर विद्यार्थी वर्ग के सम्मान की प्राप्ति की। महादार्शनिक श्रीयुत् श्रीनिवासचारियर जी ने सभापति के रूप में स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे विद्यार्थियों को इस प्रकार का सन्देश दें, जिससे उनकी प्रवृत्ति धार्मिक तो हो ही जाय और उनके चित्त से अनेकानेक लौकिक-वादों का सर्वनाशी-भूत भी लुप्त हो जाय।

स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में विद्यार्थियों को सचेत करते हुए, जीवन-कर्त्तव्य की समस्या पर प्रकाश डाला तो विजयनाद से समस्त-भवन

निनादित हो गया। उनकी सिद्धान्त-परायणता ने सबके हृदयों को विजयमंत्र से अभिमन्त्रित कर दिया था।

महाविद्यालय के उपरान्त समाचार मिला कि स्थानीय 'कोत्तुकुड़ी मन्दिर' में अनुमानतः एक लाख जनता स्वामी जी के दर्शनों की प्रतीक्षा में है। 'एक लाख' कल्पना करते ही हमारा हृदय कम्पित हो गया। हमें अनुभव था कि जनता किस प्रकार स्वामी जी का सम्मान करेगी। उस पर भी कृष्णपक्षीय रात्रि का प्रथम-प्रहरान्त। इच्छा हुई कि स्वामी जी को लौटा ले चलें, मन्दिर के कार्यक्रम को भंग कर दें। परन्तु स्वामी जी को मन्दिर पहुँचना अभीष्ट था; अतः हमारी योजना ही भंग हो गई।

* * * *

दक्षिण भारत को मन्दिरों की वृहत्तरता का गौरव प्राप्त है। ऐतिहासिक परिवर्तन के अनुरूप, दक्षिण भारत के देवस्थानों में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुए। जहाँ विदेशियों की लूट-मार से आतंकित उत्तराखण्डीय प्रशस्त-ललाट देवालय समय-समय पर भू-लुण्ठित हुए और विदेशियों के सिंहासन की अपवित्रता तथा कलंक को अपनी विशाल ज्योति में प्रकाशित और प्रदर्शित करते रहे, वहाँ आज भी दक्षिण-भारत को गौरवशाली होने का परम-सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ऐतिहासिक अस्त-व्यस्तता के भारतव्यापी होने पर भी अपनी दुर्लंघ्य-भौगोलिक स्थितियों के अभेद्य दुर्ग में भारत की पौराणिक अथवा वैदिक सभ्यता के ज्वलन्त-स्तम्भ हमारे देवालय अभी भी ऊर्ध्व-लोकों से अपना पुरातन-सम्बन्ध स्थिर किए हुए हैं।

गौरव की महिमा के चिरस्मरणीय केन्द्र, भारतीय देवस्थानों के प्राचीरों में हमारे स्वामी जी का पदार्पण महत्त्व से खाली नहीं था। वे स्वयं उस परम-विभूति के मूर्त्तरूप थे, जो हमारे देवालयों की अभेद्य दीवारों के अन्दर सुप्रतिष्ठित हो, जन-आकर्षण का श्रेय प्राप्त करती आई है।

मन्दिर में पहुँचते ही तीव्र-गति से उद्दाम जनसमुदाय का निराकरण कर, हमारे स्वामी जी पलक-वेग से झंझावात की नाईं अन्तरंग भाग में प्रविष्ट हुए; जहाँ प्रभु की स्थावर-प्रतिष्ठा थी। प्रथम अपना प्रणाम सम्पन्न कर, उन्होंने द्वार-देश की ओर दृष्टिपात किया तो क्या देखा कि अपने शरीरों को भावातीत कर, भक्तों का समुदाय अन्ध बवण्डर की नाईं झकोरे खा रहा था। यदि द्वार का प्रतिरोध न होता तो देवस्थान की स्तम्भावलियाँ लक्षाधिक

पुरवासियों की टक्करों का आघात अनुभव करतीं। बहुत सम्भव था कि भक्तों के भावावेश की चरम-सीमा का यह अलौकिक दृश्य मूर्त्तमयी प्रतिष्ठा के चैतन्य स्वरूप भगवान की योगनिद्रा का निराकरण कर देता। परन्तु यही बहुत था। देवता की मूर्ति तो नहीं, साक्षात् देवता की विभूति ही योग-निद्रा से जाग पड़ी। जनता की भीषण झंझा ने योगी को परिस्थिति का ज्ञान कराया। बस फिर क्या था; देवता उठा रंगमंच पर – स्वामी जी के रूप में। जनराशि में नीरवता का आविर्भाव हुआ। एक ही क्षण में परम शान्ति का अनुशासन स्थापित हो गया। मंच पर से स्वामी जी ने मानो विराट्-स्वरूप को अपने स्वरूप का दर्शन कराया।

इसी निस्तब्ध अवसर का लाभ उठाते हुए 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' के कर्णधार श्री स्वामी परमानन्द जी ने जनता को जनता की परिस्थिति का अनुभव कराया और प्रार्थना की कि सभी दर्शनार्थी यथावत् राह दे दें, जिससे स्वामी जी अपने आगामी कार्यक्रम में समयानुकूल पहुँचें।

प्रार्थना सफल तो हुई, परन्तु विलम्ब अधिक हो गया। आगामी कार्यक्रम 7 बजे प्रारम्भ होने को था; लेकिन स्वामी जी जब मन्दिर से लौट कर, वहाँ पहुँचे तो रात्रि के दस बज चुके थे। पुरवासी लगभग तीन घंटे से स्वामी जी की प्रतीक्षा में धरना दिए बैठे थे।

कुछ ही क्षणों में स्वामी जी ने 'राममोहन पुस्तकालय' में प्रवेश किया तो भक्त जनता ने अपने महात्मा की अभ्यर्थना में फूल चढ़ाए और जयघोष किया। सभी लोग परम शान्ति के साथ महाराज की अनुपम छटा के अमृतमय-सौन्दर्य की स्रोतस्विनी में स्नान कर रहे थे। निरन्तर प्रतिस्रुत हुई आध्यात्मिक ज्ञान की निर्मल धारा उपस्थित जीवों के सन्तप्त-स्वान्त में सुख-शान्ति का संचार कर रही थी। भगवान शंकराचार्य के अनुयायी-संन्यासी और अद्वैत वेदान्त के मतावलम्बी महात्मा जनता की मानसिक स्थिति के अनुकूल कर्म, उपासना और ज्ञान के समन्वय, योग-साधन की प्रक्रिया का उपदेश दे रहे थे। उनके आध्यात्मिक ज्ञान-संवलित दिव्य-वाणी की निरवच्छिन्न प्रवाह-धारा परम-पावनी त्रिपथगामिनी श्री गंगा जी की प्रवाह धारा के समान, असंख्य जनता के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक-रूप अगणित संतापों को समूल नष्ट करने में निरत थी। गंगा-तट का तपस्वी देवदुर्लभ-आत्मज्ञान का, सात्त्विक-जीवनयापन का, सुखाभास-स्वरूप मृगमरीचिकामय जीवन के ममत्व-त्याग का वरदहस्त

सिद्ध हो रहा था। जीवन की भौतिक समृद्धि से संसार का मोह हटा कर, आध्यात्मिक सुख-शान्ति को सर्व-सुलभ करने, सौजन्य-सिन्धु से निष्कलंक शशांक की कलाकलित सदाचार-राशि के समुदाय के समान विश्व-शान्ति का पुजारी ज्ञानोपदेशामृतवर्षधाराभिषेक से विराट् स्वरूप की पूजा सम्पन्न कर रहा था। सम्मुख थी, भक्ति-मद-उन्मत्त जनता – प्राग्भवीय सुकृत-विशेष के संचय से समुदित हुई, वैराग्य की ज्वलन्त-भावना से समुज्ज्वल।

किसी को लौकिक चेतना का अनुभव नहीं हो पाया। किन्हीं सीमान्त-स्वप्नों के कौतुक उनकी अनुभूति में नृत्य कर रहे थे; किंवा किसी असीम-चेतना के अनन्त-उड़ान की गति में उनके प्राण नीरव से हो गए थे; किंवा किसी अनुस्मृत-कल्पना की सजीवता के अनुभवों का स्वप्न-दर्शन, प्रात:कालीन स्मृति में रहस्यात्मक हो रहा था। परन्तु यह भी तो सत्य था कि विराट् की चेतना किसी धातु पर केन्द्रित हो गई थी और उस दैवी आकर्षण का अनुभव उनके जीवन में स्पष्ट तथा असंशयात्मक हो उठा था; जिस अनुभव के आधार पर प्रत्येक भारतीय के नवीन-जीवनात्मक आध्यात्मिक-अध्याय का श्रीगणेश होने वाला था तथा मानव-जीवन का नयनाभिराम चित्र खींचा जाने वाला था; भविष्य को पाठ पढ़ाने तथा आध्यात्मिक, ऐतिहासिक सत्य के विजय की गाथा गाने।



शिवानन्द दिग्विजय

पंचम विजय

द्राविड़ भूमि में

मद्रास

29 सितम्बर को प्रातःकालीन सूर्य के प्रोज्ज्वल होते ही मानवता के उन्नायक ने विजयवाड़ा से मद्रास-विजय के लिए प्रयाण किया। विजयवाड़ा की सौजन्यमयी भूमि में श्री स्वामी जी ने एक मधुर स्मृति अंकित कर दी। आन्ध्र-प्रदेशीय जनता को अध्यात्मवाद में दीक्षित करते हुए, महर्षिकुलतिलक दिग्विजयी महाराज ने 30 सितम्बर को प्रथम प्रहर के उदय होते ही द्राविड़ भूमि के राजनगर, मद्रास में प्रवेश किया।

मद्रास की जनता ने अपूर्व उत्साह से महाराज का स्वागत किया। उनके हृदय विकसित हो गये। उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों को पाते ही अपने में नए जीवन और नवीन आह्लाद को जागते देखा। सारा प्लेटफार्म नर-मुण्डों से आपूरित था। श्वेत-वस्त्रान्वित विशाल-जनसमूह क्षण-क्षण में अनियन्त्रित होता जा रहा था। सर्वप्रथम श्रीयुत् एन. श्रीनिवासन् की कुमारी कन्या ने वैदिक-रीतितया गुरुदेव की आरती उतारी और विजय-भारती को स्वामी जी को अर्पण किया। तत्पश्चात् पूर्ण-कुम्भसमनुयुक्त वैदिकों ने वेद-ध्वनि से श्री स्वामी जी के चरणों की अभिवन्दना की।

नगर के प्रमुख सज्जनों में मद्रास हाईकोर्ट के माननीय न्यायाधीश श्री विश्वनाथ शास्त्री जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने सर्वप्रथम श्री स्वामी जी के चरणों में नागरिकों की ओर से मस्तक नवाया। तदुपरान्त स्वागत-समिति के सदस्यों ने श्री शास्त्री जी के अध्यक्षत्व में, महाराज के गले में

विजय-माला सुशोभित की और उनका अक्षय आशीर्वाद लिया। सुप्रसिद्ध 'माइ मैगेजीन' के संचालक तथा सम्पादकों ने अभिवादन के रूप में श्री स्वामी जी को माला अर्पण की। 'माई मैगेजीन' के संस्थापक श्री पी. के. विनायक जी ही मद्रास जनपदीय 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' के सफल कर्णधार थे। पिछले कई सालों से उन्होंने श्री स्वामी जी के संदेश को द्रविड़ भूमि में व्यापक कर दिया है। यही कारण है कि आज वहाँ के ग्रामों, अग्रहारों, पत्तनों तथा विशाल जनपदों में हमारे महाराज पारिवारिक-ख्याति को प्राप्त कर चुके हैं। जगद्गुरु और गुरुसेवक-शिष्य का यह प्रथम मिलन था।

स्टेशन पर दिए गए जन-सम्मान के उपरान्त रथोत्सव आरम्भ हुआ। अति सुन्दर और नयनाभिराम हंसाकृत-रथ पर छत्र-चामरोपसेवित और विविध प्रकार के वाद्यों की लहरी से अभिवन्दित, हमारे स्वामी जी विराजमान थे। उनके पीछे था, नागरिकों का अपरिमित समुदाय; नंगे पांव और नंगे सिर। वृद्धायें हांफ रही थीं और युवतियों की शारीराभा रक्तिम हो उठी थी। दक्षिण की आतप्त-भूमि पर नंगे पांव चलना कोई आसान बात नहीं।

महासिन्धु के तीर पर लहरा रहा था, विजय-रथानुगामी नागरिकों का सागर। प्रथम बार महासिन्धु की उत्ताल तरंगों ने महा-शान्ति के अवतार को देखा। प्रथम बार तरंगनिलय की नीलराशि-मंडिता प्रशान्ता ने सहस्त्रों शताब्दियों के अकल्पित-तट पर देखा, एक महापुरुष। उसे स्मरण हो आया त्रेतायुगीय वह मनोहर दृश्य, जब किसी ने उसी के तट पर कहा था, 'सोषौं वारिधि विशिखि कृषानू।' उसे स्पष्ट स्मरण आया कि उस पुरुष ने भयानक अग्निबाण का सन्धान किया था। उसने अपने को विदग्ध होते जाना तो कहा था, 'क्षमहुँ नाथ सब अवगुन मोरे' और उसे ज्ञात हुआ कि वे राम थे; असुरकुल-कलंकहर राम, सत्यधर्म-प्रवर्त्तक राम। जलधिराज वरुण ने वह पौराणिक दृश्य देखा और पुनः अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण किया, 'क्षमहुँ नाथ सब अवगुन मोरे।' सम्भवतः वही दिग्विजयी आज भी कुछ और परीक्षा न करे। वायु ने वरुण के सन्देशों को देवों की सभा में प्रत्युच्चरित किया। देवों के आनन्द का पारावार न रहा। आज का दिन सचमुच उनके लिए महादिन था, जबकि वे विश्वातीत की पूजा कर सकते थे। अतः मेघदूत भेजे गए। चपला को देवनृत्य की आज्ञा हुई। वरुण ने विश्वात्मक-मृदंग में लहरें उत्पन्न कीं। मेघराज तथा चपला के नृत्य ने सुदूर दक्षिण की भूमि में अपने आराध्यदेव का अभिनन्दन किया।

पिछले कई सालों से दक्षिण की भूमि पर महाराज इन्द्र का प्रकोप था। समस्त दक्षिण-भूमि जल के लिए आतुर, आकुल तथा व्याकुल हो रही थी। विधाता का विधान अटल है। श्री स्वामी जी के नगर-प्रवेश करते समय सुदूर दक्षिण से विलम्बित पर्जन्य राग का उदय हो रहा था। मधुर और सुगन्धित सिन्धु-समीर देवाभिनन्दन का सन्देश ला रहा था। सुदूर ग्रामों में अति सुन्दर जनपद-वांछित जल बरस रहा था। परन्तु मद्रास नगर में कौतुकवश मेघमण्डल स्तम्भित हो गया और विस्मयमुग्ध हो मद्रास नगर के विशाल पथों पर हंसारूढ़ महात्मा और उसके पीछे जाती हुई मत्त जनता को देखता रहा। अत: मद्रास में सूर्यमण्डल मेघाच्छन्न अवश्य रहा, किन्तु जल न बरसा। दूसरे दिन मन्थर-मन्थर गति से जल-बिन्दु पुरवासियों की आशाओं को शीतल करने लगे और जनता के हर्ष का पार न रहा। उन्हें उस आकस्मिक दैवी कृपा के कारण को जानने की चेष्टा नहीं करनी पड़ी। उन्होंने दैवी कृपा के श्रेय से श्री स्वामी जी महाराज का अभिनन्दन किय। हमें यह कहना पड़ेगा कि यह केवल स्वामी जी ही थे, जिनके पदपद्मों के प्रवेश होते ही आतप्त दक्षिणमण्डल इन्द्र के वरद-हस्त का भागी हो गया।

* * * *

लहराता हुआ रथ नगर में प्रवेश कर रहा था। अटारियों से गृहस्थों ने देखा और फूल बरसाये। स्थान-स्थान पर पूर्ण-कुम्भ से महाराज को दिग्विजयी का सम्मान दिया गया। सामने उत्तुंग देवालय को देखते ही हमारे आनन्द का पार न रहा। श्री पार्थसारथी का सुविशाल मन्दिर हमारे महात्मा के अभिनन्दन के लिए अपने विशाल कपाट खोले खड़ा था। देवालय के अर्चक-मण्डल ने वैदिक-पद्धति के अनुसार स्वामी जी का स्वागत कर, देवता का प्रसाद समर्पित किया।

श्री स्वामी जी ने देवालय की प्राण-प्रतिष्ठा के दर्शन किए और अपने हाथों आरति उतारी। देवालय के प्रमुख-अधिष्ठाता की पूजा के उपरान्त स्वामी जी ने अन्यान्य देवताओं का पूजन किया। तदनुरूप देवालय की परिक्रमा करते हुए श्री स्वामी जी ‘रामानुज कूटम्’ में आये, जहाँ उनके निवास का प्रबन्ध किया हुआ था।

ज्यों ही महाराज ‘रामानुज कूटम्’ की सीमा में प्रविष्ट हुये, त्यों ही पुरवासियों ने उनका सम्मान किया और महाराज पर फूल बरसाए। मद्रास

की तप्त दोपहरी में भी महाराज की कृपा को प्राप्त करने और केवल मात्र उनके दर्शनों की आकांक्षा में, सहस्त्रों नागरिक नंगे पाँव और नंगे सिर और आस्वेद शरीर खड़े थे।

झरोखे से स्वामी जी के दर्शनों को प्राप्त कर नर-नारियों ने अपने को धन्य जाना; सचमुच अपने परमार्थ को सराहा। महाराज की दैवी छटा अखण्ड स्वर्ण-किरण के विस्तार के समान थी, जिसके आलोक में समस्त अन्धकार का निवारण हो जाता है, सभी क्लेशों का भय जाता रहता है और आवागमन का चक्र थम जाता है।

इस प्रकार स्वामी जी के प्रति समस्त मद्रास नगर की भावना थी। वहाँ के नागरिकों ने स्वामी जी में अपने इष्टदेव का भान किया, अपने सुखी जीवन का भविष्य-दर्शन देखा और अपने अज्ञान का निवारण अनुभूत किया। इस प्रकार जनपद ने कई शताब्दियों की अस्फुट-निराशा की उपत्यका के पार, बीसवीं शताब्दी के मध्य में हमारे स्वामी जी के दर्शन कर, अपने जीवन की सफलता को सराहा। उनका अहोभाग्य जो था; इसीलिये तो स्वामी जी किसी और शताब्दी में न होकर, उन्हीं की शताब्दी में अवतरित हुए थे।

* * * *

अभी दिन के दो भी नहीं बजे थे कि मद्रास जनपदीय 'दिव्य जीवन मण्डल' के सन्निधान में श्री स्वामी जी के प्रवचन और दर्शनों की संपूर्ति का आयोजन हो रहा था। समयानुकूल श्री स्वामी जी ने वहाँ पदार्पण कर, सबकी हार्दिक-अभिलाषा पूरी की। सहस्त्रों भक्तों ने अपने देव की पादपूजा की। प्रसाद-रूप आशीर्वाद की प्राप्ति तो की ही और साथ-साथ अपने नश्वर जीवन में शाश्वत-संस्कारों का उपार्जन भी किया; जिसकी अभिलाषा में अन्य तिरासी लाख, निन्यानवे हजार, नौ सौ निन्यानवे योनियाँ उत्कंठित रहा करती हैं।

सायंकाल के 4 बजे श्री स्वामी जी 'मद्रास जन परिषद्' के कार्य-केन्द्र 'रिपन् बिल्डिंग्स' में पहुँच ही पाये थे कि नगर-शासक माननीय डॉ. चेरियन ने प्रवेश-द्वार पर ही स्वामी जी का स्वागत किया। तदुपरान्त माननीय नगर-शासक ने नगराधीश को स्वामी जी का परिचय दिया और परिषद् भवन में सभासदों और अधिकारियों के समक्ष महाराज को ले गये।

प्रीतिभोज के अवसर पर नगर के प्रमुख अधिकारियों ने भाग लिया, जिनमें चीफ जस्टिस श्री विश्वनाथ जी भी सम्मिलित थे। माननीय मेयर

डॉ. चेरियन ने कहा – 'हमारी नगरपालिका सभा को अत्यन्त गौरव है, जो उसे स्वामी जी सदृश युग-प्रवर्त्तक के सम्मान का सुयोग मिला है। आज का युग धन्य है, श्री स्वामी जी सदृश महापुरुष को पाकर; जिनकी गोद में सभी धर्म, मत तथा सम्प्रदायों को मातृप्रेम का अनुश्रुत अनुभव हुआ है... क्या मैं स्वामी जी से मद्रास-प्रान्तीय जन-परिषद्' की ओर से प्रार्थना कर सकता हूँ कि वे मद्रासी जनता के प्रतिनिधियों को अपना सन्देश दें?' (हर्षनाद के साथ समर्थन)

उत्तर में श्री स्वामी जी ने परम-रमणीयमान अंशुमाली की आभा से परिषद्-भवन को आलोकित कर, अपना सन्देश दिया। वह भौतिक-विज्ञान को चुनौती थी या साम्राज्यवाद को सावधान रहने का संदेश? सभासद तटस्थ हो गए। उनकी आँखें स्वामी जी की पारलौकिक भाव-भंगियों के आनन्त्य में उलझती रहीं। उनकी बाह्य-इन्द्रियों की चेष्टा स्थगित सी हो गई। वे मन्त्र-मुग्ध हो गये थे; जिसका उच्चारण श्री महाराज के प्रज्ञान्वित, संविद्-व्यक्तित्व से प्रस्फुटित हो रहा था।

परिषद् के अध्यक्ष डॉ. चेरियन तथा अन्य अधिकारियों को सम्प्रसाद की प्राप्ति हो चुकी थी। उन्होंने प्रवचन के उपरान्त श्री स्वामी जी के चरणों का स्पर्श किया और जब स्वामी जी सभा के विसर्जित होने के उपरान्त 'परिषद् भवन' से बाहर आए तो सभी सभासदों और सदस्यों ने भक्ति, श्रद्धा और आदर के साथ उनको प्रणाम किया; साथ-साथ महाराज के मुख पर उस हास्य के दर्शन किए, जिसने दिग्विजय की सफलता को जन्म दिया।

*   *   *   *

30 सितम्बर। गोधूलि के अस्त होने पर श्री विश्वनाथ शास्त्री जी के सभापतित्व में 'दक्षिण भारतीय पत्रकार परिषद्' के सम्मेलन को सन्देश देते हुए, श्री स्वामी जी महाराज ने कहा, 'मुझे किसी भी धर्म की स्थापना नहीं करनी है। मुझे किसी धर्म से कोई आपत्ति नहीं। परन्तु मुझे इतना विश्वास होना चाहिए कि वह धर्म मनुष्य को आत्मत्व की ओर प्रेरित करे। मुझे इष्ट है कि वह धर्म मानव को अशान्ति से परम-शान्ति, असत्य से परात्पर सत्य, अधर्म से मोक्ष-धर्म, द्रोह से मैत्री, शैतानी से देवत्व और नरक से स्वर्ग के परमानन्द की आरे ले जावे। कोई धर्म ईश्वर-विश्वास ओर आत्मज्ञान का खण्डन न करे। ईश्वर और धर्म, दोनों एक हैं; दो नहीं। जब से मानव ने

सृष्टि को अपनी आँखों से देखा, तभी से ईश्वर ही धर्म रहा है और धर्म ईश्वर की पार्थिव-सत्ता रहा है। ईश्वर एक है; धर्म एक है ओर सत्य भी एक ही है और इन सबका योगफल भी एक ही है।'

'पत्रकार परिषद्' के सदस्यों की आँखों में जल भर आया। माता के सामने बालक अपनी भूल समझ गया था और पश्चात्ताप कर रहा था। गुरु ने शिष्य की सच्ची ताड़ना की थी और शिष्य अपने दोषों का प्रायश्चित् कर रहा था।

*　　　*　　　*　　　*

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। परन्तु जनता स्वामी जी के पीछे चली जा रही थी। हम लोग थक चुके थे और यह विचार कर रहे थे कि स्वामी जी अब निवास-स्थान को लौट चलें। किन्तु स्वामी जी को यह इष्ट नहीं था।

'शिवानन्द सेवाश्रम, काटुपाकम्' के संचालक और उपसंचालिका ने स्वामी जी को 'गोखले हॉल' में निमन्त्रित किया, जहाँ हजारों भक्त एकत्रित हो रहे थे। श्री स्वामी जी के आगमन के उपलक्ष्य में संगीत का आयोजन किया हुआ था। अत: स्वामी जी ने रात्रि होने पर भी इस अवसर की अवहेलना नहीं की। वे जानते थे कि ईश्वर की कृपा से सहस्रों व्यक्ति आत्मज्ञान के संस्कारों को अपने चित्त में बीज-रूप से संचित होता हुआ पायेंगे तो सही; और न जाने कितने लोगों की सुप्त-धार्मिक भावनाएँ जाग उठेंगी। कहा नहीं जा सकता कि कितने अनंकुरित धर्म-बीच पनप उठेंगे? कर्मयोगी के लिए कर्मक्षेत्र सदा खुला रहता है। वे किसी भी अवसर की अवहेलना नहीं करते। स्वामी जी कर्मठ थे और जानते थे कि न तो समुद्र की तरंगे थमेगीं और न स्नान ही होगा। सच्चे कर्मयोगी तो जीवन के किसी भी क्षण में आदर्श बीज बोने से नहीं चूकते। सच पूछो तो उनके लिए भविष्य कभी आता ही नहीं। अत: स्वामी जी 'गोखले हॉल' में दर्शन देने गए।

दर्शनों के उपरान्त लोग पवित्र हो चुके थे। उनके जीवन-उपवन में पावस की हरियाली व्याप्त थी। उनका जीवन-कानन नवानन्दित तथा सुरभित-पुष्पों के सौन्दर्य में खिलखिला रहा था। उनके अन्त: प्रदेश में ज्ञानगंगा नि:सृत हो रही थी; जिसने सगर के पुत्रों की भस्म को पावन करना था, मानव की तपस्या सफल करनी थी और शिव जटा में लहरा कर, अन्तत: असीम-सागर को जन्म देना था।

(2)

1 अक्टूबर को प्रात:काल अरुणोदय के साथ-साथ श्री स्वामी जी ने कपालीश्वर देवस्थान के प्राचीरों में प्रवेश किया, जहाँ सहस्त्रों नर-नारियाँ उनके दर्शनों की प्रतीक्षा में थे। देवता का दर्शन-स्थान महाराज के दर्शनों का केन्द्र बन चुका था। देवस्थान के पूजक-वर्ग ने साभिवादन महाराज को गर्भगृह में प्रवेश कराया, जहाँ अनन्त-सौन्दर्य के तपस्वी, विश्व के आदिनाथ आनन्द की निद्रा में मग्न थे; जिन्हें विश्व कहता था, 'सोए हुए हैं।' किन्तु आज तक कौन जान पाया कि यही सौन्दर्य देवस्थानों के प्राचीरों के ऊपर, गोपुरों से भी ऊपर, देवस्थान की महिमा के चरमाकाश से मानव कुकृत्यों पर बादलों द्वारा तड़िच्छटा चमकाता, मेघों द्वारा भयंकर जल बरसाता और ज्वालामुखियों के द्वार खोलता है; उसके सर्वनाश के लिए नहीं, किन्तु मानव के पवित्र नाम को कलुषित करने वाले दानव के सर्वनाश के लिये – जिसने देवत्व की वंचना की है, अमरत्व का तिरस्कार किया है और सत्य की अवहेलना की है। इन्हीं प्राचीरों के अन्दर तो वे आदिनाथ हैं, जिन्हें मानव ने अपना पूज्य जाना, पूजा की और फूल चढ़ाए। जिनके अनन्त-सौन्दर्य की अनुभूति में विश्व अपने को सुन्दरतर देखता है; जिनके जीवन-संचरण के आधार पर विश्व अपने को संप्राणित जानता है तथा जिनकी क्षणिक-निद्रा में अखिल-ब्रह्माण्डों का कल्पान्त-प्रलय भी हो जाता है।

पूजन के उपरान्त स्वामी जी रामानुजकूटम् में लौट आये। अपराह्न काल के लगभग 4 बजे मयलापुरस्थित 'गान्धी निलयम्' नामक बालिका-संस्था ने स्वामी जी को राष्ट्रीय सम्मान दिया और गुरुदेव की महिमा को गाया। प्रसिद्ध लेखक श्री के.एस. रामास्वामी शास्त्री जी भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

श्री स्वामी जी ने व्याख्यान दिया, जो धाराप्रवाहिक सन्देश की नाईं किसी अतीत के स्वप्न की सत्यता का प्रतिरूप हो, स्त्रोतस्विनी की गति के समान निर्बाध और अप्रतिहत था। उन्होंने बालिकाओं को सदाचार की ओर संकेत किया। स्पष्टवादी तो थे ही, अत: नारी-जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला। बालिकाओं से उन्होंने अनुरोध किया कि वे आज से ही चरित्र-निर्माण का विशिष्ट-प्रकाश आलोकित कर दें; जिसके फलस्वरूप भविष्य का भारत सत्य के आदर्श के परम-पवित्र शिखर पर अपनी सार्वभौम पताका का उत्तोलन करे।

अध्यापिकाओं ने तन्मय हो, उत्तरापथ के तपस्वी की वाणी सुनी। उनके जीवन में आज नवीन अध्याय का श्री गणेश हुआ। नायनारों की सन्तानें आज अपने खोए हुए वैभव की प्राप्ति के लिए तत्पर थीं। ऋषिकन्याओं को अपने गौरवमय उपवनों की याद आई और उनके नेत्रों में प्राचीन भारत के आश्रम सजग हुए। उनकी इच्छा हुई कि एक बार वे पुन: अपनी वैदिक सभ्यता के शिखर की ओर प्रयाण करें।

सायंकाल को 'गवर्नमेंट हाउस' में नगर के विद्वान् महानुभाव एकत्रित हो चुके थे। मद्रास की 'अन्तर्राष्ट्रीय सभा' में श्री स्वामी जी का भाषण होने वाला था। इसी अवसर पर मानीय श्री टी.एम.पी. महादेवन् जी ने उपस्थित जनता की ओर से स्वामी जी का स्वागत करते हुए कहा, '... श्री स्वामी जी आज सत्य और धर्म की दिग्विजय करते हुए यहाँ पधारे हैं। उनकी दिग्विजय मानव-कल्याण का सामूहिक अभ्युदय है, क्योंकि इस दिग्विजय में उन्होंने जनता के सोए हुए भावों को जागृत कर दिया है...।'

स्वामी जी ने उठकर वचन कहे। वे सत्य थे। अहो! महान् सत्य थे। *'एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति'* उन्होंने जनता के कानों में धर्म की एकता का मन्त्र स्वरित किया, 'धर्म की ही छाया में मानव सुखी रहता है। धर्म की अवहेलना ही विश्व के आतंकों का कारण है। धर्म की ग्लानि ही भय के नाटक की भूमिका है और इसी भय के विकास में मानव-नाश का विकास सूत्रित होते रहता है। धर्म ईश्वर प्रणिधान का पर्याय है। ईश्वर की महिमा का सर्वत्र अनुभव करना ही धर्म का आचरण करना है। समस्त विश्वों में ईश्वर की सत्ता को प्रतिष्ठित देखने वाला ही सच्चा वीर है, सच्चा ज्ञानवान् है। वही धर्म का सच्चा ज्ञाता और अभिभावक है।'

लगभग एक घण्टे तक स्वामी जी से व्याख्यान दिया। किसी अश्रुतपूर्व संगीत के सौन्दर्य की अनुभूति में तन्मय जनता को ज्ञान भी नहीं हो पाया कि कब स्वामी जी का व्याख्यान समाप्त हुआ। जब उनकी तन्मयता में प्रापंचिक-जागृति आई तो हमारे गुरुदेव मंच पर से उतर रहे थे।

*　　*　　*　　*

लगभग 15,000 जनता होगी। 'म्यूजियम थिएेटर' का विशाल प्रांगण जन-कलरव से प्रति-निनादित हो रहा था। '... हम मद्रास के नागरिक श्री स्वामी जी महाराज का स्वागत करते हैं ...।' हाइकोर्ट के सम्मान्य न्यायाधीश

श्री विश्वनाथ शास्त्री जी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा। प्रहर्षित-जनता ने करतल-ध्वनि से विजयनाद किया।

विशाल परिषद् भवन में सहस्त्रों मूर्त्तियाँ स्थानासीन थीं। सबके समाने श्री स्वामी जी विराजमान थे। सभी नागरिकों के सम्मुख महाराज के दिग्विजय की घोषणा करते हुए, मद्रास की जनता के प्रतिनिधि श्री विश्वनाथ शास्त्री जी ने 'रजताभिनन्दन पत्र' (Silver Casket) स्वामी जी महाराज को समर्पण किया और उनके चरण-स्पर्श किए। जनता ने भी विजय-संगीत को महाशून्य में प्रतिनिनादित किया। तदुपरान्त...

उसी दिग्प्रोज्ज्वल नीरवता ने महात्मा की वेदवाणी को निस्सीम में जागते देखा। इसी वाणी को कुमारिल भट्ट ने जगाया तो कर्मकाण्ड का संगीत विश्व में तन्मय हो गया था। इसी वाणी को ज्ञानसम्बन्धर ने भक्ति की मृदुल वीणा में गाया तो एक बार पुनः भक्ति के गीत प्रतिगुंजित हो गए। और आज दक्षिण-भारत की राज्यस्थली में वही विश्वात्मक-संगीत प्रतिश्रुत हो रहा था, जिसको आनन्द-विभोर हो सुन्दरेश्वर ने, माणिक्य-वासक्कर और तिरसठ नायनारों ने कई शताब्दियों के अस्फुट इतिहास में गाया था। वे गीत स्वामी जी के थे। वे गीत लोकप्रिय थे, जिनकी वाणी मंजुल थी और जिनका स्वरूप दिव्य था। उनको गाने वाला सत्य-धर्म के इतिहास का प्रवर्त्तक था, जिसकी प्रतीक्षा में मानव बैठे-बैठे सो गया था।

(3)

2 अक्टूबर को प्रातःकाल के निर्वात व्योम की विशालता में, सूर्य की किरणों के समुदय होते ही 'शिवाजी व्यायाम मण्डल' की विस्तृत-भूमि में अनुमानतः 10,000 व्यक्तियों के समकक्ष स्वामी जी को मण्डल की ओर से मानपत्र समर्पित किया गया। 'व्यायाम मण्डल' की ओर से श्रीयुत् कामथ ने महाराज को स्वागत-भारती पहिनाई। तदुपरान्त श्री गुरुदेव ने अपनी वाणी का प्रसाद दिया।

10 बजे प्रातःकाल 'हिन्दू थियॉलॉजिकल विद्यापीठ' में लगभग 5,000 विद्यार्थियों ने अपने शिक्षकों के नेतृत्व में दिग्विजयी को विजयपत्र समर्पित किया।

3 बजे दिन को 'राष्ट्रीय बालिका विद्यापीठ' की 6,000 सदस्याओं ने स्वामी जी को अपनी संस्था की ओर से मानपत्र समर्पित किया तथा अभिनन्दन-गीत गाए।

'गाँधी जयन्ती' के अवसर पर 'गोखले हॉल' में गाँधी जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए, सायंकाल के 5 बजे स्वामी जी ने 50 मिनट तक व्याख्यान दिया। महात्मा जी के आदर्श और त्यागमय जीवन की अभिव्यक्ति करते हुए स्वामी जी ने जनता को उनके उपदेशों के पालन के लिए उत्साहित किया।

8 बजे रात को 'मद्रास प्रान्तीय दार्शनिक परिषद्' की बैठक में 10,000 पुरवासी स्वामी जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। परिषद् की ओर से श्रीयुत् टी.एम.पी. महादेवन् ने श्री स्वामी जी का अभिवादन किया। व्यावहारिक-वेदान्त पर भाषण देते हुए स्वामी जी ने कहा, 'मानव को आवश्यक है कि वह जीवन में ही सच्चे वेदान्त का अभ्यास करे।'

अर्द्धरात्रि समीप थी। हमारे स्वामी जी गाँधी-नगरस्थ 'आरोग्य आश्रम' में अपना सन्देश दे रहे थे। श्री के.एस. रामास्वामी शास्त्री जी हमारे महाराज की अनवरत क्रियाशक्ति पर अवाक् थे। पिछले दो दिनों से उन्होंने प्रकाण्ड कर्मयोगी को देखने का अवसर प्राप्त किया था। वे सोच रहे थे, 'ये महात्मा थकते क्यों नहीं! व्याख्यान देते हैं, गाते हैं और नृत्य भी करते हैं और उस पर भी रात भर जागते ही रहते हैं।' उनको स्वामी जी में केवल आदर्शवाद ही दिखाई दिया। सम्भवत: अवतारवाद को खोजने का अवसर ही नहीं मिला। किन्तु वे एक सोपान ऊपर पहुँच पाते तो उनको दृष्टि आते वे परम-रम्य अगोचर दृश्य, जिनकी अनुभूति ही योगी को समाधि के आनन्द में समाश्रित कर देती है और जिनकी केवलमात्र एक झलक के लिए मन्वन्तर पर मन्वन्तर, अपनी गोद में अगणित महात्माओं को लेकर तड़िद्वेग से उस सामने और ऊपर के अनन्त-विस्तार में लवलीन हो जाते हैं।

(4)

3 अक्टूबर। पुण्यश्लोक स्वामी जी ने प्रसिद्ध 'कलाक्षेत्र' में प्रवेश किया, जहाँ श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल ने उनका स्वागत किया। श्री स्वामी जी के बैठते ही कलाक्षेत्र की छात्राओं ने रंगमंच पर 'भरत नाट्य' की विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन किया। उन बालिकाओं के नृत्य में अतुलित सौन्दर्य था, स्रष्टा की अपूर्व कलात्मकता थी और उनके सुकोमल बाल्य-शरीर में अभिनय-चातुर्य था। वह सत्यत: भरत नाट्य था।

नाट्य समाप्त हुआ और कुछ क्षणों में हमने स्वामी जी को मंच की ओर जागृत होते देखा। ऐसा प्रतीत होता था, मानो महाशिव विश्व के उदयकाल

में प्रकृति को वरदान देने उठे हों, चराचर को जीवनदान देने उठे हों। 'कला मन्दिर' की सुन्दरता को अतितर सुन्दर करते हुए, नृत्य-भूमि में आज स्वयं नृत्य के आदिगुरु नटराज ने अवतरण किया। 'कलाक्षेत्र' में स्वयं कला के नाथ पधारे थे। माता जी और ब्रह्मचारिणी कन्याएँ मुक्तकंठ हो सुन रही थीं, स्वामी जी के गीत, उनकी वाणी और उनके कीर्त्तन।

स्वामी जी का ताण्डव-नृत्य उन्मुक्त हो चुका था। सम्पूर्ण मंच सिहर-सिहर कर रह जाता था। जिस ताण्डव नृत्य के प्रगतिमय होने पर ब्रह्माण्डव्यापी प्रलय का सूत्रपात् होता है, उसी ताण्डव-नृत्य की प्रगति का भार एक साधारण मंच सह रहा था...

'खप्पर ले कर काली नाचे, नाचे आदि देव...'

गाया जा रहा था। मृदंग पर चोटें पड़ रही थीं। वीणा के तार उन्मुक्त हो, नृत्य की ही प्रगति का अनुसरण कर रहे थे। श्री स्वामी जी नटराज की विभूतिमत्ता के आदर्श को सजीव कर रहे थे। भरत नाट्य नहीं, कत्थाकल्ली नृत्य नहीं, मनीपुरी नृत्य भी नहीं, अपितु ताण्डव नृत्य... महादेव का ताण्डव-नृत्व था वह; जिसकी गति अपार है, जिसके भाव भावातीत हैं, जिसका अभिनय कलातीत है और जिसका माधुर्य महाताण्डव का ही माधुर्य है।

उनके नृत्य ने कलाक्षेत्र को स्पष्ट संदेश दिया कि नृत्य लौकिक नहीं, वरंच परमार्थसाधन है। नृत्य केवलमात्र कला का चातुर्य-प्रदर्शन नहीं, प्रत्युत् आत्मा में देखे गए द्वैत तत्त्वों का केन्द्रीयकरण है। उन्होंने अपने आनन्द-प्रपूरित नृत्य से कला के नामधारी अहंकार को क्षत-विक्षत कर दिया। वर्तमान काल में नृत्य मनुष्य-जीवन के विकास का अंग नहीं रहा। नृत्य की ओट में, कला की छाया में, अनैतिक नृत्य तथा कलाहीनता का वीभत्स-ताण्डव होता है, जिसके निर्मूलन के लिए ही कलाक्षेत्र में स्वामी जी ने अपने विचारों को प्रकाशित किया। फलत: कलाक्षेत्र ने जाना कि केवल कला, अभिनय, मुद्रा, भाव और माधुर्य के बल पर ही मानव अपने देवत्व की प्राप्ति नहीं करता, प्रत्युत् भक्ति के महान् समन्वय से ही कला चमक उठती है, अभिनय सफल होता है, मुद्राएँ गतिशीला होती हैं, भावों में ईश्वरीयता आती है और माधुर्य में अमरत्व का संयोग होता है।

*　　*　　*　　*

ताण्डव नृत्य की प्रतिक्रिया स्वामी जी के शरीर पर क्रियात्मक हो रही थी। उनका शरीर शिथिल हो गया था। जिस महापुरुष की उन्मुक्त वाणी पर्वतों को कम्पित सी कर देती, वायु की प्रगति को भी चुनौति देती; जिस महात्मा ने सम्वत्सर पर सम्वत्सर ध्यान और समाधि और सेवा में बिता दिए, वही महापुरुष आज दैहिक-शिथिलता को प्राप्त होता जा रहा था।

कौन नहीं जानते कि स्वामी जी विश्वविख्यात महर्षि थे? अत: उनकी उपस्थिति में जनमण्डल अपनी मानवीय-चेतना से परे अतिमानवीय चेतना के प्रदेश में प्रतिष्ठित हो जाता था। उनको केवल स्वामी-ही-स्वामी दृष्टि आते थे। उनके अपलक नेत्र स्वामी जी के पारमात्मिक-सौन्दर्य-सुधा का पान करते। उन को और चाहिए ही क्या था? महात्मा के दर्शन ही तो...! जिसकी प्राप्ति परात्परीय अपरिमित-वैभव का स्वामित्व प्रदान करती है तथा आत्म-विकास की दीक्षा से मानवता को *'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'* के परम धाम की ओर अभिप्रेरित करती है।

सुना नहीं? कृष्ण भगवान को देखते ही ब्रजांगनाएँ अपने-अपने काम छोड़कर दौड़ पड़ती थीं। ओखली में अन्न पड़ा रहता। मथानी दही में डूबी रह जाती। गागर पनघट पर पड़ी रहती। अंग-परिधान बिखर जाते। गोद के बालक बिलखते रहते और ग्वालिनें सहसा ही अपने-अपने कामों को छोड़, अपने ब्रजकुमार की पारमात्मिक-छवि देखने, गिरती, पड़ती, कूदती और नाचती हुई, व्रज की गलियों में लज्जा को तिलांजलि देकर, दौड़ पड़ती थीं तो उनके पथ पर कांटे भी फूल हो जाया करते और पत्थर भी राह दे देते थे।

इसी प्रकार स्वामी जी के दर्शन करने भर के लिए शतसहस्र स्वरूपों में मिट्टी का पुतला मानव घण्टों खड़ा रहता – आस्वेद शरीर; परन्तु सन्तुष्ट नहीं हो पाता था। देवदर्शन की लौ लग गई थी तो फिर मन की तृप्ति होने तक क्या करे? महात्मा का साक्षात्कार भी तो एक विशिष्ट-चेतना का जन्मदाता है, जिसके गर्भ से आत्मज्ञान की सृष्टि होती है। तभी वे नागरिक धन्यतम हो जाते हैं, अनुगृहीत हो जाते हैं, पवित्र हो जाते हैं।

श्री स्वामी जी यह भली भाँति जानते थे। अत: यह स्वाभाविक ही था कि वे किसी भी अवस्था में विचलित नहीं हुए। उनका शरीर शिथिल हो चुका था; दैहिक शक्ति ने असमर्थता भी प्रकट कर दी थी। पर हमारे स्वामी जी अपनी लगन के पक्के थे। जब उन्होंने सुना कि 'वाणी महल' में जनता

उनकी प्रतीक्षा कर रही है तो उनका कर्त्तव्य उनको जाने के लिए अभिप्रेरित करने लगा।

माननीय श्री विश्वनाथ शास्त्री तथा सभी ने आग्रह किया कि स्वामी जी इस अवस्था में कहीं न जाएँ। पर स्वामी जी कब मानने वाले थे। समुद्र से रत्नों को निकालने वाला क्या कभी तरंगों के थमने की प्रतीक्षा करता है? और विशेषता यह थी कि आज रात्रि को स्वामी जी सुदूर दक्षिण की आरे प्रयाण करने वाले थे। मद्रास नगर का अन्तिम कार्यक्रम भंग करना उनको इष्ट नहीं था।

तत्फलत: 'वाणी महल' में संगठित हुई 60,000 जनता ने धीरे-धीरे बोलते हुए स्वामी जी का व्याख्यान सुना और जी भरकर दर्शन किए। जनता को यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं थी कि महाराज अस्वस्थ हैं। चपल-गति से स्वामी जी की शारीरिक-अवस्था का समाचार नगर के कोने-कोने में प्रतिध्वनित हो उठा। जन-समाज में चिन्ता का आवेग ऊर्मित हो गया। सायंकाल होते-होते देवालय के पूजकों ने अपने आराध्य की सन्निधि में महाराज के शारीरिक-क्षेम का संकल्प कर पूजा और अर्चना की; जिसकी प्रतिध्वनि 'वाणी महल' से 'एग्मोर स्टेशन' की ओर जाते हुए दिग्विजयी के कानों में शंख-ध्वनियों द्वारा प्रतिशब्दित हुई।

*　　*　　*　　*

3 अक्टूबर। निशा का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका था। मद्रास की छोटी लाइन का 'एग्मोर स्टेशन' जन-कलरव से समाकीर्ण था। हमारी प्रथम 'दिग्विजयिनी टूरिस्ट कार' मद्रास के सेन्ट्रल स्टेशन पर ही थी और उसे सीधे जाकर पूने में स्वामी जी की प्रतीक्षा का आदेश मिला था। अत: हमारे पाठक अपनी पूर्व-परिचित दिग्विजयिनी के दर्शन 15 दिनों के उपरान्त पूने में करेंगे। सुदूर दक्षिण की विजय-यात्रा के लिए छोटी लाइन की 'टूरिस्ट कार' एग्मोर स्टेशन में दिग्विजयी के लिए प्रस्तुत थी।

10 बजने को थे। मद्रास जनपदवासी नागरिकों ने महाराज को विदाई दी। जिस मद्रास की कल्पना करते ही संन्यासी या कोई धर्म-प्रचारक स्तब्ध हो जाता है, उसी मद्रास के शिखर पर विजय-वैयजन्ती लहराते हुए, हिमशैल के तपस्वी-जीवन, दिग्विजयिनी के प्रवेश-द्वार पर कृपा-कटाक्ष-वीक्षण-लहरी से समायुक्त मुस्कान में परिवेष्टित हो, सबको कृतकृत्य कर रहे थे;

जबकि विजय-सुमन बरसाये गए, विजय-भाव लहराए गए, विजयी चरण पखारे गए, विजय-वेष सराहे गए और विजय-गीत गाए...

'जनगण-पथ-परिचायक जय हे, भारत भाग्य-विधाता'

और कुछ ही क्षणों में सीटी देती, धूम्र उड़ाती, प्रणवात्मक शब्द करती रेलगाड़ी, तमस्विनी का वक्ष चीरती हुई, द्राविड़-भूमि के अंक में विभीषिकामय अट्टाहास करती, विजय-पताका फहराती, वीरभद्र-संचालित महारुद्रों की सेना के समान मानो दक्ष-यज्ञ विध्वंस करने प्रकाण्ड-गति से अग्रसर हो रही थी। गगन-मंडल चमक उठता। तारे उज्ज्वल हो जाते। बादलों की ओट से नक्षत्रावलि उस प्रगति पर आश्चर्य प्रकट करती थी।

(5)

विल्लुपुरम्

अर्द्धरात्रि बीत चुकी थी। सुगन्धित दाक्षिणात्य वायु बह रही थी। 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' योजन-पर-योजन पार कर रहा था। हम लोग मद्रास के अनुभवों की पुनरावृत्ति कर रहे थे। स्वामी परमानन्द जी अपनी बीती सुना रहे थे। किस प्रकार जनता स्वामी जी को अपनी ओर खींचती और किस प्रकार वे मंडल के संचालक की हैसियत से उनका निवारण करते थे।

आज वे कुछ चिन्तित जान पड़ते थे। स्वामी जी के अस्वस्थ रहने से आगामी कार्यक्रम की क्या अवस्था होगी? विभिन्न केन्द्रों में नागरिक उनकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यही विचार बार-बार हमारे मन में केन्द्रित हो रहा था। 'यदि कहीं दो दिन अज्ञात रूप से ठहर कर स्वामी जी को विश्राम दें तो उत्तम होगा। क्या यह योजना सफल हो सकेगी?' क्योंकि केवल 1 या 2 मिनट के लिए गाड़ी किसी स्टेशन पर ठहरती तो हमें जनसमूह कार की ओर अग्रसर होते दिखलाई देता था। बहुधा उनके आ पहुँचने के पूर्व ही गाड़ी चल देती थी। ऐसी अवस्था में अज्ञातरूपेण विश्राम की योजना कैसे सफल होगी? यही हम विचार कर रहे थे। अन्त में संकल्प-विकल्प और विचार-विमर्श करते किसी तरह तन्द्रात्मक-निद्रा ने हमें स्वप्नों के साम्राज्य में समाश्रित कर दिया।

*　　　*　　　*　　　*

विल्लुपुरम्, 4 अक्टूबर। पुरवासियों का समूह स्टेशन की ओर पावसकालीन वायु की नाईं अग्रसर हो रहा था तो मेघमंडल भी उदित होना चाहते थे।

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'

दिग्विजयी को मन्त्र-पुष्पांजलि दी गई और रथ-समारोह नगर में प्रविष्ट हुआ। स्थान-स्थान पर स्वामी जी के दर्शनों के लिए सहस्त्रों स्त्री-पुरुष समुल्लसित-हृदय हो, एकटक उनका पन्थ निहार रहे थे। स्वामी जी की मुखाकृति सदा के समान सौम्य और स्निग्ध थी। केवल अन्तर इतना ही था कि वे आज नेत्र मूंदे किसी गम्भीर विषय पर मनन कर रहे थे।

स्थानीय संचालक डॉ. मणि ने सुव्यवस्था की थी, जिसके फलस्वरूप कोई भी दर्शनार्थी स्वामी जी के दर्शनों से वंचित नहीं रहा। सहस्त्रों जनपदवासी आए तो उन्हें महाराज के दर्शनों को यथेष्ट प्राप्ति हुई। नेत्रोन्मीलित प्रखर-प्रतिभावान् पौराणिक महर्षि की मधुर मुस्कुराहट में उन्होंने अपने जीवन के सुख का विभूतिसम्मित दर्शन किया; क्योंकि महर्षि के दमकते हुए शरीर में स्वर्ण की कान्ति, रजत की छवि, हीरे का आलोक, मणि की छटा और रत्नों की शोभा थी तो अंशुमाली का जीवन प्रकाश, शशि की स्निग्ध-कला तथा व्योम की विशालता भी थी और थी आत्मा की अमर-चेतना। उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों से और क्या संप्राप्त किया, इसकी साक्षी तो उनका भविष्य ही देगा। हम तो अब नटराज की नृत्यभूमि चिदम्बरनगर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं।

(6)

चिदम्बरम्

आज 4 अक्टूबर है। हम लोग चिदम्बरनगर पहुँच चुके हैं। सायंकाल के लगभग 4 बजे स्थानीय मण्डली के व्यवस्थापक डॉक्टर के.सी. राय की अध्यक्षता में स्थानीय महानुभावों ने स्टेशन पर ही स्वामी जी का स्वागत किया। सुप्रसिद्ध नटराज मन्दिर के अध्यक्ष वर्ग ने वेदपारायण द्वारा स्वामी जी की अभिवन्दना की तथा विश्वविद्यालय की ओर से स्वामी जी को आमन्त्रित किया।

स्टेशन से सीधे हम लोग श्री स्वामी जी के साथ विश्वविद्यालय की ओर गए, जहाँ उप-कुलपति तथा अन्य विश्वविद्यालयाधिकारियों द्वारा प्रीतिभोज

का आयोजन किया हुआ था। श्री स्वामी जी की अवस्था अभी भी असन्तोषप्रद ही थी; अत: वे विश्रामगृह में ही रह गए। हम लोगों ने अधिकारी वर्ग से परामर्श किया कि स्वामी जी की शारीरिक अवस्था विद्यार्थियों को सन्देश देने योग्य नहीं है। अधिकारी वर्ग ने भी यह स्वीकार किया और बतलाया कि 'यह कोई आवश्यक नहीं कि स्वामी जी व्याख्यान दें। स्वामी जी के दर्शनों से ही उनका सन्देश प्राप्त हो सकता है।'

निश्चय हुआ कि स्वामी जी को विश्राम करने दिया जाए। पर जब हम ठीक 5 बजे विश्वविद्यालय के 'परिषद् भवन' में पहुँचे तो हमारे आश्चर्य का पारावार न रहा। हमने देखा कि स्वामी जी ठीक उसी समय 'परिषद् भवन' में प्रवेश कर रहे थे। अत: हमारी योजना विफल हो गई।

सबके यथास्थान बैठने पर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति श्री मानवलु रामानुजम् ने विश्वविद्यालय की ओर से महाराज की अभिवन्दना की और कहा – 'हमारा अतीव सौभाग्य है कि आज विश्व-पूजनीय महर्षि अपने चरणों की छाया में हमारे आतप्त-जीवन को सुशीतल कर रहे हैं। हमारे धन्यभाग्य हैं जो हम आज के भौतिक-युग में परात्पर आध्यात्मिक-शिरोमणि का इन चर्म-चक्षुओं से अवलोकन कर रहे हैं...'

तदुपरान्त उन्होंने स्वामी जी की दिग्विजय के महत्त्वपूर्ण कार्य की प्रशंसा की। अन्तत: माननीय उप-कुलपति ने प्रस्ताव किया – श्री स्वामी जी व्याख्यान न दें। विश्वविद्यालय के पीठ-स्थविर (Registrar) ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

किन्तु इन सब प्रस्तावों के बावजूद भी स्वामी जी ने व्याख्यान दिया; लगभग 75 मिनट तक। विषय था 'हमारा कर्त्तव्य'। वे धीरे-धीरे बोल रहे थे। विद्यार्थियों ने स्वामी जी के प्रवचन को तन्मय होकर सुना। उनके हित की बात जो कही जा रही थी। शरीर के अस्वस्थ होने पर भी स्वामी जी ने धीरे-धीरे अत्यन्त प्रेम से अपना सन्देश दिया और उपदेशप्रद गीत गाए। और, जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो हमने देखा कि उनके मुखमण्डल पर रक्तवर्णिमता का संचार परिव्याप्त था।

तत्पश्चात् मंडली ने योगासनों का प्रदर्शन किया और चलचित्रों द्वारा यौगिक-मुद्राओं तथा बन्धों का दिग्दर्शन कराया।

रात के 8 बजने को थे। हमारा 'दिग्विजय मण्डल' परिषद्-भवन से 'षण्मुख-विलास' की ओर चला; जहाँ अन्नमलयनगर तथा चिदम्बरम् के

निवासी-महानुभावों की ओर से स्वामी जी को विजय-पत्र अर्पित किया गया। सम्मान के उत्तर में श्री स्वामी जी ने सबको धन्यवाद दिया और उनके अनुग्रह को स्वीकार किया।

तत्पश्चात् प्रसिद्ध 'नटराज मन्दिर' की स्तम्भावलियों की सुन्दर पंक्ति के मध्य में सहस्रों भक्तों से परिवृत्त स्वामी जी ने पूर्ण कुम्भाभिवन्दित हो, उस पवित्र-भूमि में पद-प्रवेश किया, जहाँ आदिदेव ने नाट्य-कलाधर नटराज की विभूतिमत्ता में अवतरण किया था। स्वामी जी के आते ही मन्दिर के अधिकारियों ने 'चिदम्बर रहस्य' के द्वार का उत्पाटन किया तो हमें केवलमात्र दहराकाश का दृश्य दृष्टि में आया; जिसके वक्ष-भाग में दो स्वर्ण-बिल्वपत्रों द्वारा अरुन्धती-न्यायेन दहराकाश के निर्गुण तथा अरूप-तत्त्वों की दीक्षा दी जाती है।

इसी पवित्र अवसर पर पाँडिचेरी से स्वामी जी के दर्शनों के लिये आये हुए योगीराज श्री शुद्धानन्द भारती जी ने हमारे महर्षि के सन्निधान में अपने दीर्घ-जीवन के मौनव्रत को भंग किया और प्रथम वचन कहे, 'श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय।'

समस्त देवप्रसाद शब्दायमान् हो उठा; जयनाद की व्यापिनी ध्वनि से। इसी समय डॉक्टरों ने सूचित किया कि स्वामी जी के शरीर का तापमान् 103 डिग्री का अतिक्रमण कर रहा है। सबके हृदय प्रकम्पित हो उठे। समस्त भवन नीरव-समाधि में समधितिष्ठित हो गया।

'... मैं श्री स्वामी जी महाराज की अस्वस्थता में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ, जो आप लोगों ने हमारे सत्संग को कृतकृत्य किया ...।' योगी श्री शुद्धानन्द भारती जी ने स्वामी जी को नहीं बोलने दिया तथा स्वयमेव अपने कर्त्तव्यपालन में तत्पर हो गये।

रात्रि के 12 बजने को थे।

(7)

मायावरम्

5 अक्टूबर। दिन के 10 बज चुके थे। पर्जन्यमण्डल वर्षा की सूचना दे रहे थे। विद्युत्-कड़क रह-रह कर घटाटोप-अम्बर के वक्ष को चीरती हुई, हमारी 'टूरिस्टकार' को चमत्कृत कर रही थी। श्री स्वामी जी चिदम्बर नगर के उपरान्त 'मायावरम्' की भूमि में प्रवेश कर रहे थे। मायावरम् में ही 'धर्मपुर

सन्निधान' के शैव-मठ की जन्मभूमि है। शैवों की गुरु-परम्परा के कमल-दिवाकर, शैव-सिद्धान्त-शिरोमणि श्री सुब्रह्मण्य देशिक महाराज ने 'धर्मपुर मठ' की कीर्ति को सजीव बनाए रखा है। विद्वत्ता में इनकी होड़ लगाने वाला और कोई शैव-सिद्धान्ताचार्य भारत में नहीं; यह सर्व-विदित है। परन्तु साथ-साथ यह भी कहना पड़ेगा कि लक्ष्मी की अखण्ड-कृपा इनके चरणों में प्रणिपात करती रहती है।

प्राय: समस्त मठ स्टेशन पर स्वामी जी की अगवानी के लिए पूर्वत: सन्नद्ध था। नागस्वरम् और मृदंग ने स्वागतगीत गाए। दो वज्र-दन्ती रथ-यात्रा के आगे-आगे प्रयाण कर रहे थे। तत्पश्चात् ध्वजा, निशान, छत्र और चामरों की पंक्ति रथोत्सव को अति-सम्पन्न कर रही थी। निस्तब्ध राजपथ पर, पत्रद्रुमों की छाया में, पद-पद-नि:सृत वेद-ध्वनि से प्रपूरित वायु के अंक में, महर्षि का रथ प्रचलित हो रहा था। रथ का अनुसरण करती हुई योजनार्द्धव्यापिनी जनता थी; द्राविड़ी भाषा में गीत गाती हुई।

स्थान-स्थान पर भस्म-चर्चित पुरवासी रथयात्रा में सम्मिलित होते जा रहे थे। मायावरम् की 'जनपालिका सभा' की ओर से मानपत्र समर्पित किया गया। दोपहर होते ही समारोह 'धर्मपुर मठ' के पुरद्वार में प्रवेश कर रहा था। विजय-पयोधि-अभिसिंचित स्वामी जी ने दिवलोक के वैभव की भी वंचना करते हुए राज-संन्यासी के मठ की पुण्यगन्धा मनोरम-भूमि में प्रवेश किया। धवलोत्पल से धवलित धरा ने धर्मार्य के चरणों का चुम्बन किया और मठाधिकारी ने प्रशस्तभाल हमारे स्वामी जी के साथ राजप्रासादोपम भवन में प्रवेश किया, जहाँ उनके विश्राम का अति-सुन्दर आयोजन किया हुआ था।

स्वामी जी की अवस्था मठाधिपति को भी सुविदित थी। अत: स्वामी जी के निवास का प्रबन्ध प्रसादान्तर्भाग में किया गया। यही कारण था कि कोई भी व्यक्ति स्वामी जी के विश्राम को खण्डित नहीं कर सका। मुझे भी स्मरण है कि हिमालय के भू-भाग को छोड़ने के उपरान्त आज ही स्वामी जी का विश्राम निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। मनुष्य की तो बात ही क्या, पक्षियों का प्रवेश भी वहाँ असाध्य था। मठाधिपति के आदेश का उल्लंघन करने की शक्ति किसी में नहीं थी, जो स्वामी जी के स्वास्थ्य के लिए वरदान-सी सिद्ध हुई।

*   *   *   *

उसी दिन सायंकाल के 6 बजे धर्मपुर-मठान्तर्गत प्रशस्त पंडाल रंग-विरंगों में इठला रहा था। इसी समय देवालयों से शंखध्वनि उठी। दीपकों में दामिनी दमकी। प्रासाद के अन्तर-भाग के द्वार खुल गए और हमने महासन्निधान की पवित्र-मूर्ति को सहज भाव से अपने चरणाक्षेपण करते हुए, रंगमंच की ओर जाते हुए देखा; जहाँ स्वामी जी कृतविद्य की भी पराकाष्ठा कर, महासन्निधान के प्रति प्रणाम करते हुए, साष्टांग दण्डवत् कर रहे थे। महासन्निधान के जीवन में यही प्रथम अवसर होगा, जबकि वे स्तम्भित हुए थे। वे मंडलेश्वर परम्परा के अनुयायी थे; अत: उन्हें अवश्यमेव उनका ही अनुकरण करना पड़ता था। थोड़ा सिर हिला देना उनके सत्कार की सीमा थी। साष्टांग दण्डवत् का प्रश्न तो परात्पर ही था।

स्वामी जी के इस आकस्मिक-आचरण पर जनता स्तम्भित हो गई। दक्षिणी जनता थी; हाहाकार कर उठी। वह हाहाकार जनता के आश्चर्य का ही द्योतक था। साथ-साथ महासन्निधान के हाथ से छड़ी दूर गिर पड़ी और उन्होंने झुक कर, स्वामी जी को उठाया। जनता में हलचल मची हुई थी।

अपरंच स्वामी जी के अभिनन्दन में गीत गाए गए, नाटक अभिनीत हुए और मान-पत्र समर्पित किये गए। महासन्निधान की ओर से स्वामी जी का स्वागत अपूर्व था और उसमें उनकी सच्ची भक्ति झलकती थी।

आज रात स्वामी जी को पूर्ण-विश्राम मिला।

* * * *

6 अक्टूबर का उद्योतित प्रभात...। गगनमंडल पर्जन्याच्छन्न था। कभी दामिनी दमकती थी तो स्मरण आता था; मानो इन्द्र का वज्र वृत्रवध का अनुष्ठान कर रहा हो। यही हमारे इतिहास का विशिष्ट मुहूर्त्त था, जब शैवागम और वेदान्त का सम्मिलन होने वाला था। मठान्तर्गत-देवस्थान में मठाधिपति ने नित्य-नियमानुसार देवपूजन किया। आराधनादि के पश्चात् उन्होंने प्रतिमार्चित बिल्व-पत्र की माला को स्वामी जी के मुकुट भाग में प्रशोभित किया। शैवागम बतलाते हैं कि शिव के अनन्य भक्त – दक्षिण के प्रसिद्ध नायनार भी इसी प्रकार अपने मुकुट भाग में रुद्राक्ष माला का वहन करते थे। यह मठ भी शैव-सिद्धान्तों की जन्म-भूमि है। अत: कोई भी वेदान्ती इस शैवागम-प्रचलित-विधान को स्वीकार नहीं करेगा। परन्तु स्वामी जी इन लौकिक-शृंखलाओं में आबद्ध ही कहाँ थे? वे तो ऐहिक और आमुष्मिक-प्राचीरों के उस पार

'सर्व ब्रह्ममयम् शिवमयम् विष्णुमयम्, शक्तिमयम्' के अनन्त-विस्तार में परात्पर की ओर से विश्व को उस सुन्दर, सौम्य, प्रज्ञान्वित-सत्ता के प्रदेश की महिमा का सन्देश देने आए थे। वे उस परम-विज्ञानमय साम्राज्य से आये थे; जहाँ मनुष्य परम-शान्ति को प्राप्त होता है; जहाँ उसे भूख-प्यासादि क्लेशों का तथा इस प्रपंच की लीला का ज्ञान ही नहीं रहता।

दिन के बारह बजे अश्रुतपूर्व सम्मेलन हुआ, जबकि स्वामी जी के निवासस्थान में त्रिमूर्तियाँ विराजमान् थीं। श्री स्वामी जी, महासन्निधानम् और योगी श्री शुद्धानन्द जी महाराज। मठाधिपति तो स्वामी जी की महिमा के गीत गा रहे थे और श्री शुद्धानन्द भारती स्वामी जी के योग का अपूर्व-वर्णन कर रहे थे।

सायंकाल को पुनः उसी पंडाल में तीनों महर्षि समाश्रित थे। ऐसा भान होता था मानो गिरिमाला के अंकिम में त्रिमूर्ति का साक्षात् अवतार हुआ हो; किंवा देवसभा में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का सम्मलन हो रहा हो; किंवा लोकत्रयों के प्रतिनिधि मेरु-शिखर पर 'विश्व-शान्ति-परिषद्' का उद्‌घाटन कर रहे हों।

पंचाक्षर की महिमा का वर्णन करते हुए तीनों महर्षियों ने अपना सन्देश दिया। मायावरम् की समस्त जनता के भाग्य जागे। आज के जगत् में तो एक ही महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं। तीनों के दर्शनों का होना उनके सौभाग्य का सूचक नहीं तो और क्या है?

रात को जब हमने विदाई ली तो मठाधिपति के नेत्र भर आए। स्वर्णजटित रुद्राक्ष भेंट करते हुए उन्होंने स्वामी जी को गले लगाया। पुराचीन प्रथानुसारेण उपहार देते हुए उन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि स्वामी जी इस उपहार की यथाशक्ति संरक्षा करें; क्योंकि यह उन दो समकालीन ऋषियों का पारस्पारिक प्रेम-प्रतीक था; जिससे विश्व का इतिहास उनके विषय में मतभेदों को स्थान न दे तथा कालान्तर में भी दो विराट्-सम्प्रदाय इस बात पर विश्वास करें कि हमारे आचार्य ने आपके आचार्य के सहवास में रह कर, उनके सम्प्रदाय का आदर ही किया था। अतः धर्मपुर सन्निधानम् के सुविधाजनक सन्निधान में महाराज का आगमन युगोत्तर-इतिहास में, शैवागम-कल्पों और वेदान्त-भाष्यों में अक्षुण्ण बना रहेगा। कभी-न-कभी कोई आचार्य इस देव-सम्मेलन की पुनरुक्ति करेगा और उस पर अपनी टीका करते हुए अवश्य कहेगा– *एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।*

(8)

तन्जावर

थोड़ी देर में शस्याभरण-भूषिता क्षेत्रावलियाँ दृग्गोचर हो रही थीं। समस्त भू-खण्ड हरे परिधान पहने था। मौसमी नाले बहते हुए दिखाई दे रहे थे। दूर-दूर तक दक्षिण की तप्त-भूमि जलपूरित हो चुकी थी। वृक्षों में कुसुमाकर की मंजुलता नाच रही थी तो कहीं पुष्पवल्लरियों में सुहाग की लाली का आवेश दमक रहा था। हमारी 'टूरिस्ट कार' अपने निर्दिष्ट पथ पर निर्भीक दौड़ी जा रही थी।

यथासमय 'टूरिस्ट कार' तन्जावर पहुँची तो हमने देखा – जन-प्रपूरित प्रकृति का सुरम्य क्षेत्र। उनको मालूम था कि स्वामी जी तन्जावर में केवल 2 घण्टे ही ठहरेंगे। अत: वे इस सीमित काल में ही महात्मा के दर्शनों से अपने मन, कर्म और वचनों को तप:पूत करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे। उनकी भावुकता नियन्त्रणातीत ही थी। उन्हें मालूम था कि स्वामी जी अस्वस्थ हैं; वे प्रवचन की अपेक्षा भी नहीं कर रहे थे। उनको केवल एक अभीप्सा थी कि वे किसी प्रकार उस पवित्र तीर्थ के दर्शन करें।

प्लेटफार्म की सीमा का अतिक्रमण करते हुए, जन-समारोह अकथनीय गति से ऊर्मित हो रहा था। संकीर्तन-मण्डलियाँ भावाविष्ट होकर नाचती और गाती थीं। ताल, मृदंग, नागस्वरम्, शंख, भेरी, तुरही तथा विधि-वाद्य विजयनाद कर रहे थे।

समारोह स्थानीय 'शंकर मठ' में अवतरण कर चुका था, जहाँ अर्घ्य-पाद्यादि से स्वामी जी की पूजा हुई। नगर की विभिन्न संस्थाओं ने स्वामी जी को अभिनन्दन-पत्र समर्पण कर, उनकी विजय-गीतिका गाई। न जाने कितनी शताब्दियों ने दिवा-नक्षत्र को उद्यत तथा अस्त होते देखा – केवल आज के अभूतपूर्व दृश्य का पर्यवेक्षण करने।

तत्परत: पादपूजा का श्रीगणेश हुआ। नारायणादि गुरु-परम्परा का स्मरण करते हुए, महाराज के चरणों का अभिषेक सम्पन्न हुआ तथा विश्वकुल-कमल-दिवाकर-मंडल ने गाया...

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था: संन्यासयोगाद्यतय: शुद्धसत्त्वा: ।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे: ॥

इसी कार्यक्रम में दो घण्टे दो क्षण के समान बीत गए। पुनः प्लेटफार्म की भूमि तन्जावर की जनता से प्राच्छादित हो गई। पावसकालीन जलधाराओं के समान उनका समुदाय था, जो नदी के रूप में सागर से मिलने जा रहा था। तूफान के समान उसकी प्रगति थी, जो विश्वात्मा के गीत गाने भूर्भुवस्सुवर्लोक के आदिमध्यान्त-विहीन साम्राज्य की ओर जा रहा था – उस अदृष्ट को देखने, अश्रुत को सुनने, अमन्ता को मानने, अज्ञात को जानने और उस अगोचर का साक्षात्कार करने।

करबद्ध वे अपने गुरुदेव को विदाई दे रहे थे, प्रणाम कर रहे थे, आशीर्वाद की अभियाचना कर रहे थे और कह रहे थे – 'पुनः दर्शन देना, देव!'

(9)

त्रिचिनापल्ली

7 अक्टूबर। हम त्रिचिनापल्ली पहुँच चुके हैं। जनता को हमारे आने का समाचार नहीं मिला है। वे सोच रहे हैं कि हमारी मण्डली पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार 8 तारीख को ही त्रिचिनापल्ली पहुँचेगी। अतः वे 7 तारीख को स्टेशन पर नहीं आए। किन्तु कुछ भाग्यवान् भी थे, जो स्वामी जी के अविज्ञापित आगमन का संकेत पा चुके थे। अतः जब हम त्रिची पहुँचे तो हमने स्टेशन को उन भाग्यवान् पुरुषों से समृद्ध देखा।

कुछ ही देर में – त्रिची के रास्तों पर जाते हुए स्वामी जी की पूर्व-स्मृतियाँ लहलहा उठीं। इसी भूमि में हमारे दिग्विजयी ने आज से कई साल पूर्व कुप्पू स्वामी के रूप में, एक नवयुवक को इन्हीं रास्तों पर जाते देखा था। यही वे मार्ग थे जिन पर कई साल पहले कुप्पू स्वामी दौड़ते हुए, विद्यालय की ओर जाते थे और आज यही वे मार्ग हैं, जिन पर अपनी विजय-पताका लहराते हुए, स्वामी शिवानन्द जी जा रहे हैं।

*　　　*　　　*　　　*

8 अक्टूबर। त्रिचिनापल्ली में स्वामी जी 'डबल मॉल स्ट्रीट' में श्री नटेश अय्यर के यहाँ ठहरे थे। यह समस्त पत्तन का व्यावसायिक केन्द्र है। कोई यहाँ हँसता है तो कोई टेलीफोन के पास हाथ धरे, बाजार-भाव के चढ़ने की आशा में बैठा है। आशा, दुराशा, निराशा और प्रतीक्षा के बल, चुरुट मुंह में दाबे, पान का बीड़ा ठोसे, अर्द्ध-स्वच्छ-परिधान पहिने, बाबा आदम के

जमाने की चप्पलों के सहारे मानव यहाँ चलता है। पर आज दृश्य-परिवर्त्तन हो गया। व्यावसायिक-केन्द्र उषा के उद्यत होने से पूर्व ही झांझ और करताल और मंजीरों के रव से तथा पतितपावन भगवन्नाम के संकीर्तन से दमक उठा। जब आदित्यदुहिता उषा अन्धकार का निवारण करने और पुण्य-प्रकाश का यश दान देने, अपने शुभ्रालंकृत अंगों में बल खाती हुई आई तो उसने अपने नीरव-वातावरण में महा-सुयश के गीतों को जागते देखा।

लगभग एक घण्टे तक संकीर्त्तन होता रहा। तत्पश्चात् अट्टालिका की अटारी से उदित-प्रकाश की छविमय-किरणों की धारा से परिमार्जित, अव्यावृत स्वामी जी ने नगरवासियों को निष्कृततया दर्शन दिए।

9 बज चुके थे। योजनव्यापिनी रथयात्रा त्रिची के विशाल मार्गों पर, रामनाम के अबीर-गुलाल से होली मनाती हुई, हरिनाम की पारसमणि से सब को स्वर्णिम करती, नगर के विशाल-अंक में आनन्दोन्मत्त हो, कीर्तन कर रही थी। जिसने भी कीर्तन गाया, वही रोने लगा और कुछ न कर सका। वह देखो, वे नाच रहे हैं। अरे! तू स्त्री नहीं, अमर आत्मा है। भूल अपने को; गा और नाच। तू भी नवयुवती नहीं, लज्जित न हो! मस्त होकर गा ले। अरे बुड्ढे! तू भी आजा, क्यों द्वार की ओट से झांकता है – वह लकड़ी है; उसके बल उतर। तुम पुण्यात्मा हो बालकों! गाओ, जी भर कर गाओ; जब तक प्रपंचात्मक-वीणा टूट न पड़े। ओ इक्के वाले, आता क्यों नहीं? पुन: यह अमूल्य अवसर हाथ नहीं आएगा। हे एकवस्त्रे! किधर जा रही है? कपड़े पीछे बदल लेना; उसके लिए तेरे जीवन में और भी कई सम्वत्सर आयेंगे। परन्तु कभी नहीं आएगा यह दिन, यह समय, यह मुहूर्त्त, यह निमेष और यह पल।

रथोत्सव में हाथी थे, घोड़े थे, नन्दीगण थे, इक्के थे, तांगे थे, फिटन भी थे तो रिक्शे भी थे और कारें भी थीं, मोटरें थीं, साइकिलें थीं। पीछे थी लहराती हुई जनता, फहराती हुई जनता, उन्मत्त जनता, विश्व विस्मृत जनता... कुमारियाँ, नवोढ़ायें, युवतियाँ, गृहिणियाँ, गर्भिणी, एकवस्त्रा, असिन्दूरा, वृद्धायें और बालक, युवक, विद्यार्थीगण, मजदूर, व्यवसायी, आफीसर, अन्धे और बहरे भी। असंख्य की संख्या में देवाक्षौहिणियाँ प्रयाण पर थीं। स्थान-स्थान पर स्वामी जी क्रमश: 108 बार पूर्णकुम्भ-समर्चित हुए, जो किसी भी दिग्विजयी की सफलता का द्योतक हो सकता है। आदिगुरु शंकराचार्य के उपरान्त स्वामी जी को ही तो दिग्विजयी माना गया था;

जबकि 9 सितम्बर को हिमगिरिमाला के प्रदेशों से दिग्विजयार्थ प्रयाण कर, 8 अक्टूबर को त्रिची में, वे 108 बार पूर्ण-कुम्भों से दिग्विजयी के रूप में समर्चित, समभिवन्दित और सम्मानित हुए थे।

आज समस्त त्रिचिनापल्ली का जनपद महत्तपोल्लासोल्लसित था। दोपहर की तप-भूमि पर जनता नंगे पांव श्री स्वामी जी के दर्शनों को जा रही थी। मुख्यद्वार के समक्ष अगणित-भक्तजनों का समूह किसी अरण्यस्थित विद्रूपावली की नाईं लहरा रहा था। मुख्यद्वारा खुला तो एक के बाद दूसरा और इसी प्रकार सहस्रों दर्शनार्थी विशाल-भवन में प्रवेश करते गए; जहाँ आत्मतीर्थ के पुण्यदेव संपरिविराजित थे – सुखासन में चिन्मुद्रा के चित्स्वरूप। फल-फूलों की उनके शरीर पर वर्षा हो रही थी। उनके चरणों पर सहस्रों के प्रेमपुष्प तथा स्नेहफल विश्राम पाते थे।

पादपूजा के अनन्तर 'सावित्री कन्या विद्यापीठ' में छात्राओं को स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने अभिनन्दन में गीत गाए और सम्मान पत्र भेंट किया। स्वामी जी ने विद्यापीठ की अध्यापिकाओं और कन्याओं को आशीर्वाद दिया तथा 'नेशनल कॉलेज' के शिक्षण-केन्द्र की ओर प्रस्थान किया, जहाँ अनुमानतः लक्षाधिक-जनता उनकी प्रतीक्षा में थी।

त्रिची की विभिन्न संस्थाओं ने इसी अवसर पर स्वामी जी के सम्मान में अभिनन्दन-पत्र भेंट किए। कई अभिनन्दन-पत्र तो पढ़े भी नहीं जा सके, क्योंकि समय कम था, तदुपरि अन्तरिक्ष में देवासुर-संग्राम प्रारम्भ हो गया था।

जिस समय स्वामी जी प्रवचन-मंडप की ओर आरोहित हुए, बिजली चमक रही थी, मेघ गरज रहे थे, जल के छींटे तीव्र-वेग से भू-पतित हो रहे थे। कुछ ही क्षणों में जब वर्षा का वेग तीव्र हुआ तो स्वामी जी के ज्ञानामृत की वर्षा का प्रवाह भी तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम होता गया। पुरवासी अचल थे और अडिग थे, नीरव थे, निःशब्द थे और अवाक् थे। माँ की गोद में बच्चा भीग रहा था तो रंग-विरंगे वस्त्र पहिने 20वीं शती का जनमंडल अपने अपने शरीर और परिधान की सुध-बुध भूले, वर्षा की तीव्र-धारा की वंचना कर, सुन रहा था; वेदों के गीतों की सुबोध गाथा, शास्त्रों का सुगम अर्थ और जीवन-तत्त्व का मनोहर-विवेचन।

वर्षा थमती ही नहीं थी; अतः सम्मेलन विसर्जित हुआ। समस्त जन-मंडल अपने अभिषिक्त शरीरों को लिए, अपनी-अपनी राह पर चल रहा था; अपने-अपने घरों की ओर – जहाँ वह अपने परिवार को आज की सुनी

और अनुभूत आत्म-कहानी सुनाएगा – मुक्तकण्ठ होकर, मुक्त-हृदय और आनन्द-गद्गद् होकर।

*   *   *   *

रात्रि के 8 बजे 'गोल्डन रॉक' नामक स्थान में, 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के अवधान में स्वामी जी का भाषण और संकीर्तन हुआ। श्री स्वामी जी ने आश्रम के कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की तथा तच्छाखा-संचालक श्री मुनीस्वामी नायडू को इस दिव्य-कार्य की सफलता के लिए आशीर्वाद दिया।

मौसम अनुकूल था। अत: स्वामी जी कई भक्तों के घरों को पवित्र करते हुए, विश्राम-स्थल में लौट आए।

दूसरे दिन 9 अक्टूबर। आज 'शिवानन्द दिग्विजय यात्रा' का प्रथम-मासान्त है। ब्रह्ममुहूर्त से ही दर्शनार्थियों का ताँता लग गया। सभी को दर्शन देकर स्वामी जी ने 'श्री उर्विशेषाचलम् चेट्टियार अनाथालय' में प्रवेश किया। भक्तों ने अत्यन्त प्रेम से पादपूजा की। 9 बजे तक दर्शन, पादपूजा और मन्त्र-दीक्षा का क्रम चलता रहा।

दिन के पौने ग्यारह बजे स्वामी जी ने सभी भक्तों से विदाई ली और श्री रामेश्वर की ओर प्रस्थान किया।

(10)

रामेश्वरम्

लगभग 11 बजे स्वामी जी 'पुदुकोटै' पहुँचे। नगर में स्वामी जी के दर्शनों के लिए विराट् आयोजन किया हुआ था। स्वामी जी का रथ जब जनपद के रास्तों पर चल रहा था तो दोनों ओर अटारियों पर से फूल बरस रहे थे। मार्ग के दोनों ओर पंक्तिबद्ध और पाणिबद्ध-जनमंडल स्वामी जी के आशीर्वाद की याचना कर रहा था। इतनी जनता की आशा करना किसी के लिए स्वप्न में भी असम्भव हो सकता है। सचमुच स्वामी जी जन-जन के हृदय-सम्राट् थे।

सायंकाल के 3 बजे अनुमानत: 80 सहस्र जनता को स्वामी जी ने अट्टालिका के उपरिभाग से दर्शन दिए। 4 बजे 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के सन्निधान में स्वामी जी ने आयोजित सम्मेलन का उद्घाटन किया और अपना आशीर्वाद दिया।

'जनपालिका सभा' की ओर से स्वामी जी को सार्वजनिक-सम्मान प्राप्त हुआ। अपने अभिवचन प्रकट करते हुए स्वामी जी ने जनता के योग, ऐश्वर्य, क्षेम, तुष्टि, पुष्टि, भक्ति और मुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और रामेश्वर क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया।

रात्रि के गहनतम अन्धकार में भी 'कनडुकातान्' और 'चेट्टिनाड' की भावाभिलाषिता-जनता को दर्शन देते हुए, उनको पुण्य-यशोमय आत्मपद पर दीक्षित कर, अपनी विजय-वैजयन्ती की भ्रूमध्य-रेखा के पथ पर आकृष्टमान् करते हुए, स्वामी जी ने पाम्बन सेतु के नीचे लहरायमान् उच्छल-तरंगी सलिलेश के दर्शन किए और अपना मौन प्रणाम समभिवन्दित किया।

अब हम लोग दो सागरों के मध्य 'मण्डपम् शिवगंगा' आदि भारत के अन्तिम-क्षेत्रभाग पर यात्रा कर रहे थे। एक ओर पूर्वीय सागर का हरा जल और दूसरी ओर अरब सागर का सुनील दृश्य। देखते ही किसका हृदय गद्गद् नहीं हो जायेगा। बारम्बार प्रणाम करने पर भी जी नहीं अघाता था। सबका मन बाँसों उछल रहा था, क्योंकि पवित्र तीर्थ रामेश्वरम् के गोपुर की अस्पष्ट-छाया धूमिल-क्षितिज की गोद से झांक रही थी।

* * * *

10 अक्टूबर। हम रामेश्वरम् पहुँच चुके थे। सायंकाल के 5 बजते ही रामेश्वर क्षेत्र की जनता महात्मा के चरण छूने आई थी। देवस्थान के पुरोहितवर्ग ने जयमाला अर्पण कर, हिमालय के ऋषि का स्वागत किया।

सिन्दु-तटवर्त्ती रामेश्वर का सुरम्य क्षेत्र अपने माहात्म्य के लिए अद्वैत रहा है। भारत के प्रायः सभी नरेशों, सभी महात्माओं और सभी जातियों के शीश इस एक क्षेत्र के सम्मुख झुकते आए हैं। सभी चक्रवर्तियों के मणि-मुकुट यहीं महादेव के चरणों के आशीर्वाद से विश्वोज्ज्वल होते आए हैं। त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र जी समुद्रतरण करने तथा माँ जानकी का उद्धार करने, जब इस सुरम्य भूमि पर आए तो उन्होंने स्वयं इस तीर्थ की प्रशंसा कर, इसे भारतीयों के हृदय की सनातन-स्मृति का वरदान दिया था। तब से रामेश्वर क्षेत्र की महिमा केवलमात्र शैवों द्वारा ही मान्य नहीं, प्रत्युत् रामभक्तों द्वारा भी उसी मात्रा में मान्य है। यह शिवलिंग धर्मस्थापना का प्रतीक और संस्कृति की भूमिका अभिवचन है। इसके आख्यान को हुए दो युग बीत चुके हैं; परन्तु रामेश्वर के लोक-संतारक लिंग की महिमा अभी

भी चिरन्तन है। जिनमें विश्वास है, श्रद्धा है, अकैतव भक्ति है, परिमार्जित ज्ञान है, उनको रामेश्वर के गोपुर के दर्शन करने से ही परम शीतलता का अनुभव होता है। उनके क्लेश छिन्न हो जाते हैं और उन्हें तापत्रयों से मुक्ति भी मिलती है।

(11)

11 अक्टूबर। उस दिन महालय अमावस्या का पर्व था। देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी आए हुए थे। प्रात:काल के अरुण-रश्मि ने गोपुर को प्रकाशित किया। वीचिनिलय खिल उठा। रामेश्वर क्षेत्र में आज चहल-पहल मची हुई थी। रंग-बिरंगे स्वरूप में रथयात्रा देवस्थान की ओर अग्रसर हो रही थी। हाथी के ऊपर ध्वजायें फहरा रही थीं। स्वर्ण-जटित पालकी पर गंगाजल-संपूरित रजत-कलश प्रतिष्ठित था और थे वाद्यादि से संपूज्यमान् समाभिवन्दनीय महर्षि। उनके पीछे भक्तगण थे; शिवनाम संकीर्त्तन करते, तालियाँ बजाते और धूल उड़ाते हुए।

विशाल प्रवेशद्वार के गर्भ में हिमशैल की तीर्थमयी पवित्रता का प्रवेश हुआ। सहस्रस्तम्भों में मानो सजीवता का संचार हुआ। देवताओं की बाँछें खिल उठीं। नायनारों के अधरों में प्रसन्नता की मुस्कान थी। साक्षी विनायक आनन्दातिरेक थे। और सभी ने देखा स्वामी जी को; जो महामहिम, वर्चस्व-तेजपुंजकर और स्वर्णशरीर के आलोक के समान गर्भगृह में प्रवेश कर रहे थे।

'बम् भोले... हर हर महादेव' समस्त देवस्थान प्रतिनिनादित हो गया। किसी ने कहा, 'जानकीजीवनस्मरणं राम राम'। गोपुर के शिखर को प्रतिध्वनित करती हुई विजयलहरी जागी। बस फिर क्या था, रुद्रिपाठ से गर्भगृह दमक उठा। महादेव का अभिषेक हो रहा था – पवित्र गंगोत्तरीय जल से। अनुवाक-पर-अनुवाक उच्चरित हो रहे थे। पूजकों के शरीरों से स्वेद-धाराएँ प्रवाहित थीं। विश्व की एकता के सूत्र को परिपुष्ट बनाते, वेदोक्त 'चमक सूक्त' का पाठ हुआ ओर अर्चना हुई। स्वामी जी ने स्वयं 108 बार स्वर्ण-बिल्व के 108 पत्रों से श्री रामलिंगेश्वर का समर्चन किया। जयजयकार से स्तम्भ वांग्मय हो उठे।

*   *   *   *

स्वामी जी! आज आपने दिग्विजय का प्रथम अध्याय पूर्ण किया है। आपने विश्व की भावी-संस्कृति, सभ्यता और उसके विकास के लिए पर्याप्त साधन जुटा दिए हैं। भारत तो आपका ऋणी है ही, समस्त विश्व भी आपकी दिग्विजय के ऋण से उऋण तभी हो सकेगा, जब वह आपके कहे मार्ग पर चल कर, अपने देश, अपने साम्राज्य और अपने घर में अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लेगा। आज आप द्राविड़ी भूमि की अन्तिम-सीमा तक रामनाम के आदर्श को जाज्ज्वल्यमान् कर, चिरन्तन और सनातन कर, उदधि-प्रक्षालिता स्वर्ण-भूमि लंका के लिए प्रस्थान कर रहे हैं – ठीक दो युगों के बाद; धर्म-रूपिणी सीता का उद्धार करने, भक्ति और प्रेमरूपिणी वैदेही (अशरीरी) को बन्धन-विरहित करने, मानव-चेतना की परात्परता को अन्ध-पदार्थवाद-रूप बहुमुखी रावण से मुक्त करने तथा असंस्कृत भौतिकवाद की जड़ता के असुर-सैन्य का संहार करने। आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम!



ध्यान करने से आपकी विचार-शक्ति पवित्र होगी। आपकी विचार-शक्ति में शक्ति आएगी; आपका निश्चय सदा पवित्र और आदर्श ही होगा। आपकी भावनायें ही कालान्तर में आपके जीवन का निर्माण कर पाएँगी। ईश्वर पर ही ध्यान इसलिए किया जाता है कि परमात्मा के अतिरिक्त किसी की भी सत्य-सत्ता नहीं और उनसे इतर और कोई पवित्र, आदर्श और दिव्य-चैतन्य नहीं। अनन्त, पूर्ण, चिरन्तन परमात्मा पर ध्यान करोगे, तो तुम भी अनन्त, चिरन्तन और परिपूर्ण बन सकोगे।

शिवानन्द दिग्विजय

षष्टम विजय

लंका द्वीप में

सिन्धु-तरण

श्री रामचन्द्र जी ने 'रामेश्वर लिंग' की स्थापना की और उसकी पूजा कर सेतुबन्ध का संयोजन किया। उसी आदर्श की पुनरावृत्ति कर स्वामी जी ने भी दो युगों के पश्चात् सिन्धु-तरण के लिए 'धनुषकोटि सेतुबन्ध' की ओर प्रस्थान किया। जलपोत उनकी प्रतीक्षा में तटस्थ था। 11 अक्टूबर को दिन के 3 बजे 'गोश्चेन' नामक जलपोत पर से भारत के गौरव ने तटस्थ भारतीयों से विदाई ली। तट पर से भारतीयों ने मंगल मनाया; संगीत की लहर उठी–

'जनगण मंगलदायक जय हे भारत भाग्य विधाता'

और उन्होंने प्रणाम किया। विजय के मंगल-स्वरूप उनके नेत्रों से जल बह निकला। जलपोत का लंगर खुला। पौने चार बजे ऋषिप्रवर ने सर्पाकार लहराते हुए, भारतीय तट के दर्शन किए, जो जलपोत के तीव्र-वेग के कारण अदृश्य होता जा रहा था। तरंगों को चीरता हुआ जलपोत 'तलैमनार पियर' की सीमा में प्रविष्ट हो रहा था। रात के 8 बजे हमने लंका की भूमि पर पदार्पण किया।

'तलैमनार सेतुबन्ध' सजग था। जलपोत से ही हमने तीरवर्त्ती लंकानिवासी नागरिकों की आकृतियों का अवलोकन किया। जलपोत के तटस्थ होते ही 'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' के जयगीत गाते हुए लंकावासियों ने दिग्विजयी का स्वागत किया। 'सीलोन गवर्नमेन्ट रेलवेज्' के जनरल मैनेजर

श्री कनक सभय महोदय स्वामी जी की यात्रा-विषयक सुविधाओं का आयोजन करने आए थे। सहस्त्रों कण्ठों से लंका की आत्मा पुकार रही थी – 'हरोहरा।'

रात के 8 बजे जनरल मैनेजर द्वारा व्यवस्थित 'सैलून' से स्वामी जी लंका की राजधानी कोलम्बो की ओर समण्डल अग्रसर हुए। जनमंडल-संपूरित स्टेशनों को पवित्र करती हमारी तीनों सैलूनें लंका द्वीप की सिन्धु-क्षालिता भूमि में प्रविष्ट होती जा रही थीं। एकाध मिनट भी गाड़ी ठहरती तो जन-समूह उमड़ा हुआ आ जाता। भारत के उत्तरावर्त्तीय महर्षि की ख्याति से परिचित, लंका के भक्तजन आधी रात में भी स्टेशनों पर कीर्त्तन करते हुए, स्वामी जी के दर्शनों की प्रतीक्षा में खड़े थे। जनरल मैनेजर की आज्ञा के अनुसार गाड़ी तीव्रगत्या केन्द्र-पर-केन्द्र का अतिक्रमण करती, नारियल की कतारों और रबड़ के वृक्षों की क्षेत्रावलियों को दिग्विजयी का सन्देश सुनाती, सुदूर के ग्रामों को सजग करती हुई, प्रातःकाल 8 बजे कोलम्बो दुर्ग के स्टेशन पर आ धमकी।

(2)

कोलम्बो

'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' से संकल्लोलित कोलम्बो दुर्ग का स्टेशन अद्वितीय वेष में सजा हुआ था। जनसमाज में अपूर्व-आनन्द और अमित-उत्साह का अमृत-सागर लहरा रहा था। लंका-राज्यस्थ-विदेशमन्त्री माननीय श्रीयुत् कान्तीय वैद्यनाथन्, लंकानुगत 'दिग्विजय मण्डल' के संचालक श्री के. रामचन्द्रन् तथा लंका के नगरशासक श्री कुमार रत्नम् महोदय स्वामी जी की अगवानी के लिए सर्वप्रथम थे। लगभग 80 सहस्त्र जनता रेलवे प्लेटफार्म की सीमा के अन्दर ही नंगे सिर और नगे पांव थी। सारा प्लेटफार्म आज ही सुन्दर देवालय के रूप में सजा था। माननीय नगरशासक ने कहा, 'लंका के इतिहास में कोलम्बो फोर्ट का स्टेशन अपनी स्टेशन-संज्ञा को किनारे रख, आज ही प्रथम बार इस सुन्दर और पवित्र वेष में सजा है।'

जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पुष्प ही पुष्प दृष्टि आते थे। विजय तोरणों के ही दर्शन होते थे। विजय-ध्वजाएँ फहरा रही थीं और सहस्त्रों नेत्र अपलक हो, आनन्द-स्वरूप ऋषि को निहार रहे थे। नेत्रों में याचना थी, 'क्या आप हमें इस भव-संग्राम में विजयी होने का वरदान देंगे? क्या आप हमको आन्तरिक असुरों के संहार की शक्ति देंगे?'

स्वामी जी स्टेशन से बाहर जा रहे थे। दोनों ओर योजनान्त-व्याप्त मानवमाला प्रसरित थी। नगरशासक के साथ-साथ स्वामी जी ने श्रीमती शिवानन्दम् तम्बया के नवीन-गृह को अपने समावेश से पवित्र किया।

दिन के ठीक तीन बजे स्वामी जी 'सार्वजनिक भवन' में उतरे ही थे कि कोलम्बो नगर के युवक शासक माननीय श्रीयुत् डॉ. कुमार रत्नम् महोदय ने जनता की ओर से स्वामी जी का अभिनन्दन किया तथा स्वामी जी के मंचावस्थित होते ही घुटने टेक कर, सप्रेम प्रणाम किया। इसी अवसर पर 'परिषद् भवन' में लंका के प्रधान मन्त्री महामाननीय श्रीयुत् सेनानायक जी तथा काण्डी और कुरुनेगल के शासक-द्वय श्री युत् एफ.एल. सेनानायक तथा श्रीयुत् पियादास से स्वामी जी का सम्मिलन हुआ।

'परिषद् भवन' में इस पवित्र और युगानुस्मरणीय अवसर पर, लंका के प्रधान मन्त्री तथा दो अन्य प्रान्तों के शासकों की उपस्थिति में, कोलम्बो के शासक डॉ. कुमार रत्नम् ने जनता की ओर से स्वामी जी के आशीर्वाद की अभियाचना की; ततः परिषद्-स्वीकृत 'रजताभिनन्दन पत्र' को चरणानुविन्दित करते हुए, 12 अक्टूबर को दिन के चार बज कर 35 मिनट पर स्वामी जी का सार्वजनिक-सम्मान प्रतिपादित किया। इस अवसर पर 'वैदेशिक विभाग से अम्रीकन दूतावास के प्रतिनिधि' श्रीयुत् पौलद्या तथा लंकानुगत 'मुक्ति सेनादल' के अध्यक्ष भी उपस्थित थे।

*   *   *   *

5 बजते ही स्वामी जी विश्वविद्यालय में पधारे और 42 मिनट तक प्रवचन दिया। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य व्याप्त था। प्रवचन के उपरान्त पुनः 'सार्वजनिक भवन' से निमन्त्रण आया कि लंका-राज्यस्थ विदेश मन्त्री माननीय श्रीयुत् कान्तीय वैद्यनाथन् के तत्त्वावधान में स्वामी जी के सार्वजनिक-सम्मान के कार्यक्रम को 'सीलोन रेडियो' से प्रसारित किया जाएगा। अतः सायंकाल 6 से 7 बजे तक सार्वजनिक सभा का कार्यक्रम 'रेडियो सीलोन' से प्रसारित किया गया। केन्द्रों-केन्द्रों में सहस्रों व्यक्ति प्रसारित-जनसम्मान के कार्यक्रम तथा स्वामी जी के उपदेशों को तन्मय होकर सुन रहे थे।

लंका की कलाकृति को उद्धृत करते हुए, सुकोमल और परिष्कृत ताड़ के पत्रों पर प्राचीन लिपि के अनुसार सम्मान-सूचक सुन्दर अक्षरों को अंकित कर, माननीय के. वैद्यनाथन् ने वह सम्मान-पत्र स्वामी जी के चरणों में भेंट किया।

(3)

लंका विजय

13 अक्टूबर। भगवान् दिनमाली के जागते ही श्रीमती शिवानन्दम् तम्बया के निवास-गृह में स्वामी जी की पादपूजा का कार्यक्रम समारम्भ हुआ। जन-साधारण के अतिरिक्त प्राय: सभी राज्याधिकारियों ने भाग लिया। पूर्वकथित राजवर्ग के अतिरिक्त 'लंका विश्वविद्यालय' के महामहोपाध्याय श्री रत्नसूर्य और उनकी विदेशी पत्नी श्रीमती रत्नसूर्या जी ने इस महोत्सवमय सुअवसर पर अपने हाथों स्वामी जी के चरणों में पुष्प चढ़ाए और स्नेहाभिरंजित प्रणाम किया।

पादपूजा के अनन्तर स्वामी जी 'केलेनिया बुद्ध विहार' के दर्शनों को गए। विहार में वहाँ के राजपुरोहित स्वामी जी के सम्मान में प्रवेशद्वार पर खड़े थे। लंका के न्यायमन्त्री माननीय एल.ए. राजपक्ष महोदय ने श्री स्वामी जी को विहार के दर्शन कराए। कीर्त्तन करते हुए, हमारे स्वामी जी ने महासम्बुद्ध-बुद्ध की लंका-विजय के स्तूपाकार विशाल-स्मारक के दर्शन किए और यह ज्ञात किया कि रावण के संहार के उपरान्त श्री रामचन्द्र जी ने यहीं विभीषण का राज्याभिषेक सम्पन्न किया था।

दिन के 1 बजे श्री स्वामी जी श्रीमती शिवानन्दम् तम्बया के निवासगृह आए, जहाँ लंका के सम्भ्रान्त-नागरिकों ने उस दिन के भोज में स्वामी जी के साथ योग दिया। राजखाद्यविभाग के संचालक श्रीयुत् आलवार पिल्लय् भी उपस्थित थे।

सायंकाल के 6 बजे 'विवेकानन्द सोसाइटी' की भूमि में, लंका का अनुश्रुतपूर्व जन-समूह संगठित हो रहा था। दैववशात् जो लोग अभी तक श्री स्वामी जी के दर्शनों को प्राप्त नहीं किए थे, उन्होंने भी इस संगठन में सम्मिलित होने का अवसर नहीं जाने दिया। जिन्होंने स्वामी जी के दर्शनों का आनन्द प्राप्त कर लिया था, वे भी पुन: अमृत बंटने के अवसर पर उसका स्वाद पाने के लिए न चूके। तत्फलत: दो लाख जनता 'विवेकानन्द सोसाइटी' की सीमा के अन्दर और बाहर लहरा रही थी। राजखाद्यविभाग के संचालक श्रीयुत् आलवार पिल्लय् ने स्वामी जी का स्वागत किया। दिग्विजय मंडल के स्थानीय संचालक श्री के. रामचन्द्र जी की दो कन्याओं ने स्वामी जी की महामहिमाशालिनी विरुदावलि के गीत गाए।

नगरपालों के भीष्म-नियन्त्रण की भी अवहेलना कर, स्वामी जी के चरणस्पर्श करने, दो लाख जनता मंच की ओर अग्रसर हो रही थी। उसके प्रकाण्ड-वेग के आगे नगरपालों के कटिबद्ध-प्रयास भी धरती का चुम्बन

कर रहे थे। किन्तु रंगमंच पर संन्यासी की मूर्ति यथावत् बैठी थी। कुछ देर तक सभी किंकर्तव्यमूढ़ हो गए। अन्ततः सभापति ने खड़े होकर गर्जना की 'हरोहरा'! लाखों कण्ठों से लंका की आत्मा ने उसका साथ दिया 'हरोहरा' और प्रबल प्रवाह स्तम्भित हो गया। दो मिनट तक वह अपूर्व जन-संगठन आँखें बन्द किए ध्यान में समाश्रित रहा, जिसके सामने विश्व के महर्षि का उज्ज्वल प्रकाश था। हमने जाना कि आज भी पूर्व की जनता में संन्यासियों और महात्माओं के प्रति वैदिक-युगकालीन श्रद्धा और भक्ति अक्षुण्ण है। हमें एक आश्वासन तो मिला कि पूर्व के देशों से, जो हमारे भारत के भाई-बन्धु हैं, धर्म और धार्मिकता कभी अन्त नहीं हो सकती। उस के चिरन्तन-जीवन के लिए, जिन्होंने बलिदान दिया है, वे विश्व के कलंकित युगों में भी संपूजनीय ही रहेंगे और उस पूजा के प्रतिफल में वे कलंक की परिमार्जना करेंगे तथा उसका संपरिष्करण कर, उसे नव-संस्करण में दीक्षित भी करेंगे ही।

*   *   *   *

अपने दो दिनों की स्मृति लंका के पुराचीन अंक पर अमिट बना कर, रात्रि के 7 बजे स्वामी जी ने पुनः भारत की ओर प्रत्यागमन किया। आज से दो दिन पहले, जिनमें अद्भुत उल्लास था, वे ही आज आंसू बहा रहे थे। जहाँ पहिले दिन 'हरोहरा' की गर्जना से लोकमण्डल कम्पित होते थे, वहाँ आज क्षीण-शब्दाकृत-सिसकियाँ वायुमण्डल में कुछ कह रही थीं। अधिकारीवर्ग ने अपनत्व त्याग कर, उस नीरवता में योग दिया। रेलवे स्टेशन में एक लाख से अधिक जनता होने पर भी शान्ति का साम्राज्य व्याप्त था।

क्रमशः रेलगाड़ी चली तो अपने उद्रेकों को नियन्त्रित रखते हुए, जनमण्डल पुकार उठा, 'हरोहरा'। सैलून के विशाल द्वार से स्वामी जी ने प्रत्युत्तर दिया, 'हरोहरा' और द्रुत-गति से प्रचालित चक्रों ने भी कहा, 'हरोहरा'। इसी पवित्र मन्त्र का जप करती, सारी रात विभीषिकामय निशा के आंचलों में खेलती-कूदती हमारी रेलगाड़ी 14 अक्टूबर को प्रातःकाल 'तलैमनार' में पुनः आ धमकी और तत्क्षण ही तटस्थ-जलपोत द्वारा श्री स्वामी जी समण्डल भारत आ गए।

परम सुखद चलि त्रिविध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहि सुन्दर चहुं पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥

शिवानन्द दिग्विजय

सप्तम विजय

पुनः भारत में

पुनः हम धनुषकोटि में आ गए। 14 अक्टूबर को दिन के सवा नौ बजे हमने भारत-भूमि पर पदार्पण किया। उसी दिन सायंकाल के समय हमारी दिग्विजयवाहिनी ने 6 बजे मदुरा की ओर प्रस्थान किया।

मद्रपुरी

15 अक्टूबर। प्रात:काल के चार बजे हमने विजय-वाहिनी के चारों ओर मंगल-गीत गाते हुए भक्तों के आने का आभास पाया। डॉ. सुब्रह्मण्यम् तथा मां जयलक्ष्मी ने नगर के सम्भ्रान्त सज्जनों तथा उच्च-कोटि के ऋत्विकों के साथ स्वामी जी के स्वागत का आयोजन किया हुआ था। वेद-विधानानुकूल स्वामी जी का अभिवादन सम्पन्न हुआ।

विधिवत् अभिनन्दन के उपरान्त मंगल बाजे बजे; डंके पर चोट पड़ते ही स्वर्णाविष्टित दो वज्र-दन्तियों ने नागस्वरम् तथा मृदंग बजाते हुए मंगल-चारणों का अनुसरण किया। सप्त-श्वेताश्वसमायुक्त चतुश्चक्रीय रथ पर दिग्विजयी स्वामी जी समासीन थे।

रथयात्रा का वह समारोह योजन-त्रय मार्ग पर लाखों पुरवासियों को स्वामी जी के दर्शनों का भागी बनाता हुआ, लाखों की संख्या में विराट् के दर्शन करता हुआ, फूलों से आवर्णित मार्ग पर, अट्टालिकाओं के नीचे राजपथ पर, संकीर्तन-मण्डलियों के समुदाय से नि:सृत हुए हरिनाम के अमृत-रस में ओत-प्रोत हो, 8 बजे 'सौराष्ट्र विद्यापीठ' के प्रकाण्ड-प्रांगण में प्रविष्ट

हुआ; जहाँ अनुमानत: 70 सहस्र भक्त नर-नारियों ने दिगन्त-व्यापिनी शुभ्र-कीर्ति के अक्षुण्ण भोक्ता – श्री स्वामी जी के दर्शन संप्राप्त किए तथा देवता का प्रसाद पाया।

पादपूजा के अनन्तर दिन के 12 बजे 'श्री मीनाक्षी मन्दिर' की सुरम्य-पद-पल्लव-पुंजित भूमि चमत्कृत हो उठी। धीर-वीर-गम्भीर महर्षि प्राकारों की सीमा में अनुप्रविष्ट हुए तो सहस्रों भक्त उस देव-मन्दिर में साक्षात्-देव के दर्शनों के लिए उपस्थित थे।

देवी मीनाक्षी की पूजा तथा सुन्दरेश्वर लिंग की आराधना के उपरान्त दिन के 3 बजे स्वामी जी ने 'सेतुपति विद्यापीठ' में विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों को अपना सन्देश दिया।

*   *   *   *

रात के 8 बजे 'मीनाक्षी देवालय' का विशाल प्रांगण मद्रपुरी के नागरिकों से सज रहा था। परकोटे के एक ओर नारीमण्डल और दूसरी ओर पुरुषमण्डल बैठा हुआ था। जनता के प्रतिनिधियों की ओर से स्वामी जी को सम्मान-पत्रों द्वारा आदर प्रदान किया गया। अपने व्याख्यान में स्वामी जी ने भक्ति का उपदेश दिया तथा लक्षानुमानिता जनता को कीर्त्तन करने पर विवश किया। थोड़ी देर में जन-गर्भ से उद्भूत हुई कीर्त्तन की स्वर-लहरी, गोपुरों से ऊपर असीम-आकाश और विस्तृत वायुमण्डल में तन्मय हो गई। अपनी मधुर-ध्वनि से हरिनाम के गुण गाते हुए, महात्मा ने मद्रपुरी की मातृस्वरूपा ईश्वरीय चेतना को पुन: एक बार जगाया और सबको यह सन्देश दिया कि 'ईश्वर-साक्षात्कार विश्व की विराट्-सम्पत्ति है। आत्मा की प्राप्ति किसी काल-विशेष पर निर्भर नहीं, किसी स्थान-विशेष में सीमित नहीं – किन्तु सब कालों, अवस्थाओं और सभी स्थानों में सम्प्रापनीय है। जिसका ज्ञान प्रत्येक के हृदय में ही हो जाता है; निरन्तर-शुद्ध कर्म करने से, अकैतव-भक्ति के दृढ़ होने से, सत्कार-सेवित-योग तथा सद्वैराग्यनिष्ठ-ज्ञान से।'

दूसरे दिन प्रात:काल के समय श्री स्वामी जी ने विरुधनगर होते हुए तिरुनेलवेली की ओर प्रस्थान किया। माँ जयलक्ष्मी को सान्त्वना देते हुए स्वामी जी ने कहा कि 'पुन: कभी ऋषिकेश आना।' वे रो रही थीं ओर पुरवासी भी तो सिसकियाँ भर कर रो रहे थे।

(2)

16 अक्टूबर। 8 बजे हम विरुधनगर पहुँचे तो वर्षा हो रही थी। मंगल-गीत गाते हुए जनपदवासियों ने स्वामी जी की अभ्यर्थना की। रथयात्रा का श्रीगणेश हुआ। जल की तीव्र धारें महाराज और महाराज के अनुगामी भक्तों का अभिषेक कर रही थीं। रथयात्रा के आनन्द में तन्मय विरुधनगर की जनपदावली 'श्री स्वामी जी महाराज की जय' के जयजयकार की तुमुल ध्वनि को प्रदिशि-निनादित कर रही थी। नगर के 25 स्थानों पर रथ रुका और पच्चीस संस्थाओं ने स्वामी जी को विजय-भारती से अलंकृत कर, अभिनन्दित किया; सम्मान-पत्र समर्पित किए।

* * * *

जन्मभूमि में

16 अक्टूबर। तिरुनेलवेली में स्वामी जी के शुभागमन की तैयारियाँ होने लगीं। स्वामी जी के पधारते ही तिरुनेलवेली अनेकों शोभाओं से निर्मल हो उठी। यही वह पवित्र देश है, यही वह धन्य देश है, जहाँ इस पवित्र देह ने जन्म लिया।

विचित्र-विचित्र प्रकार के स्वागतोपकरणों से सब लोगों ने स्वामी जी का स्वागत किया। राजमार्ग पर नागस्वरम् की तानें गूँज रही थीं। सबको सनाथ करते हुए, सबको कृतार्थ और अहोभाग्य तथा कृतकृत्य करते हुए, सबका मंगल मनाते और सबको दर्शन देते हुए, श्री स्वामी जी हिमांचलीय बसन्तों के सुहावने प्राकृतिक-वैभव की समाधि के आनन्द में चालीस सम्वत्सर बीतने पर अपनी जन्मभूमि की सीमा में प्रविष्ट हो रहे थे।

ताम्रपर्णी के तटों पर बसी हुई उस नगरी ने अपने देव को पहिचाना। पट्टामडाई से पुराने सम्बन्धी भी आए थे, जिन्होंने 40 या 45 साल पहले स्वामी जी को सेवाप्रेमी डाक्टर के रूप में देखा था। उनके नेत्रों से आनन्द के मोती बरस रहे थे। स्वामी जी के समीप खड़े-खड़े वे अघाते नहीं थे।

* * * *

17 अक्टूबर। हमने पावन मलय-प्रदेश की आरे प्रस्थान किया। मार्गानुवर्त्ती ग्रामीण स्थान-स्थान पर स्वामी जी के दर्शनों के लिए खड़े

दिखलाई देते थे। स्वामी जी के ग्राम-निवासियों ने भी स्वामी जी की पूजा की। उनके प्रेम की थाह पाना, उनकी भक्ति और श्रद्धा का वर्णन करना असम्भव है। स्वामी जी प्रत्येक ग्राम में केवलमात्र दो-चार मिनट ठहरते और दर्शन देते थे। परन्तु भक्तों के स्वागतायोजन से ऐसा जान पड़ता था मानो वे पिछले दो महीनों से स्वामी जी के स्वागत की व्यवस्था कर रहे हों। स्थान-स्थान पर तोरण-द्वार मिलते, ध्वजाएँ लहराती हुई दीखतीं और 'आनन्द मूर्ति श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' का जयनाद सुनाई देता था। उनकी श्रद्धा ने महात्मा के दिगन्तोज्ज्वल यश पर चार चाँद लगा दिए और उनकी भक्ति ने शबरी के बेरों तथा सुदामा के तण्डुलों को भी भुला दिया। हम मलय प्रदेश की ओर जा रहे थे...।

... द्राविड़ भूमे! अपनी ग्रामवासिनी वैदिक-सभ्यता के अमर-सौन्दर्य से अलंकृत होकर, तू धन्य हुई। मातेश्वरी! तेरी कोख सफल हुई और तेरा यश पावन हुआ। तेरी ही गोद में नायनार पले; तेरी ही गोद में हमारे आचार्य और प्राचार्य आत्मज्ञान को संप्राप्त कर पाए। देवालयों की जननी! तुझे हमारा प्रणाम है; क्योंकि तेरे ही वक्षस्थल में हमारे आराध्य देव हैं। हे अम्बे! तू ही हमारी भारत माता है। तेरे दूध को पीकर हम तेरा यश यावच्चन्द्रदिवाकर अक्षुण्ण बनाएँ; यही हमें – अपने पुत्रों को वरदान दे!

एक छत्र हो धर्म-ध्वजा का, नीचे हम सब मिले जुलें,
मन के भेद औ' भाव मिटा दे, शन्ति हमें दे, ज्ञान हमें माँ!
जय जग जननी भारत माँ!!



शिवानन्द दिग्विजय

विजयाष्टमी

मलय क्षेत्र में

नागरकोविल

रात के 10 बजे हम नागरकोविल पहुँचे। पुरवासियों का समूह हिलोरें ले रहा था। अत्यन्त सुन्दर मण्डपाकार रथ के चारों ओर दीपमालाएँ जगमगा रही थीं। उनके मध्य श्री स्वामी जी प्रतिष्ठित थे। वेदपारायण और हरिनाम संकीर्तन से महत्तम उल्लास का अनुभव हो रहा था। रात भर दर्शनार्थियों का समागम अविच्छिन्न रहा।

18 अक्टूबर को प्रात:काल 6 बजे 'दिग्विजय-मण्डल' की कारें कन्याकुमारी अन्तरीप की ओर त्वरिद्वेग से उन्मुख हो रही थीं। स्थान-स्थान पर केरलदेशीय ग्राम-मूर्तियाँ स्वामी जी के आगमन की प्रतीक्षा में थीं। यथाविध दर्शन देते हुए स्वामी जी कन्याकुमारी में प्रविष्ट हुए और भारतीय सीमा के दर्शन किए। पारावारविहारी सलिल-निलय तरंगित हो रहा था। उस अगोचर की अपरम्पार माया का मानो वही साक्षात्कार था। तट पर शत-सहस्राधिक पुरवासियों की संख्या उसी सागर को चुनौती देती खड़ी थी। स्वामी जी ने कन्याकुमारी की शास्त्रानुकूल आराधना की।

तत्पश्चात् स्वामी जी ने स्थानीय देवालयों के दर्शन किए और 'हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक' धर्मविजय का लोकोत्तर कार्य सम्पन्न किया। हम पुन: नागरकोविल लौट आए।

प्रशस्त पण्डाल में स्वामी जी को जन-सम्मान देने का आयोजन किया हुआ था। मलयालम् भाषानुबद्ध सर्वप्रथम अभिनन्दन-पत्र स्वामी जी को

अर्पित किया गया। तदनुसरतः स्वामी जी के ओजस्वी-भाषण, मस्त-कीर्तन और तन्मय-भजन हुए। मलय प्रदेश में यही प्रथम प्रवचन था; क्योंकि केरल-देशीय जनता श्री स्वामी जी के दर्शनों से ही तृप्त हो जाती थी। जब अपने देव के दर्शन ही मिल गए तो और क्या चाहिये?

सायंकाल के छविमय होते ही धर्मधुरन्धर ट्रावंकोर नरेश की ओर से निमंत्रण का सुसंदेश पाकर, स्वामी जी ने त्रिवेन्द्रम् राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

(2)

त्रिवेन्द्रम्

विशाल जनपथ की सीमा का अतिक्रमण करती हुई राजकीय कार, हमारे दिग्विजयी को सुहावने और मनोरम-दृश्यों की अनुपम छटा में दृश्य-विमुग्ध करती हुई, श्री अनन्त पद्मनाभ की सुललिता, तपोमयी और वैभव-सम्पन्ना भूमि के रमणीय-पृष्ठ को पावन करती, पुण्य-चर्चित और संप्राणित करती, ट्रावंकोर राज्य के प्रधान नगर त्रिवेन्द्रम् में पहुँची। स्वामी जी के प्रवेश करते ही राजाज्ञानुसरतः देवस्थान के अर्चकों ने यथाविध, यथाशास्त्र, यथानुकूल, यथाकाल, यथायोग्य, यथासम्भव तथा यथाप्रचलित-रीत्या हिमशैलागत विजयी महामंडलेश्वर को दिग्विजयी के सम्मान से समर्चित करते हुए, उनके दर्शनों का आयोजन सम्पन्न किया।

गोधूलि की छटा के विस्तीर्ण प्रांगण में छिटकते ही त्रिवेन्द्रम् का सार्वजनिक भवन जनपद-संकुलित हो गया। गीर्वाण-भाषानुबद्ध विजय-पत्र द्वारा जन-सम्मान सम्पन्न हुआ तथा हाथी दाँत से निर्मित 'श्री अनन्तपद्मनाभ' की प्रतिमा के आकार की पेटिका में विजयाभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। पश्चात् श्री स्वामी जी का भाषण हुआ।

*   *   *   *

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। सारा राजप्रासाद प्रकाश की किरणों में स्नान कर रहा था। इसी समय सिंहद्वार पर कोलाहल के उद्यत होते ही राजपरिवार राजमार्ग की ओर अग्रसर हुआ। सबसे आगे थे ट्रावंकोर नरेश और उनका अनुसरण करते हुए महारानी तथान्य बन्धु-बान्धव।

श्री स्वामी जी के राजमहल में प्रवेश करते ही सबने साष्टांग प्रणिपात किया। समस्त राजपरिवार अपने जीवन को महात्मा के चरणों की स्वर्ण-

धूलि के मधुरस से धन्यतम बनाने आया था। पवित्र-किरण हिमांशु की चन्द्रकला उनके जीवन को शान्त और शीतल बना चुकी थी। महाराजा ने भी जिस प्रेम को स्वाजी जी के चरणों पर न्योछावर किया, वह राजोचित था और उसी राजोचित साधु-सम्मान की परिपाटी की स्वर्णकिरण को भारतीय सभ्यता के प्रकाश-गृह में प्रतिष्ठापित करने के श्रेय का उत्तरदायित्व सम्पन्न करते हुए, ट्रावंकोर नरेश ने महात्मा का सम्मान किया।

राजदरबार की शोभा अपूर्व ही थी। श्री स्वामी जी आत्मतन्मय-से आसन पर बैठे हुए थे। समस्त राजपरिषद् किसी अपूर्व महोत्सव की रचना के कौतुक का पर्यावलोकन कर रही थी। चिन्मुद्रा धर और मौनावलम्बन कर स्वामी जी उस प्रश्रब्ध राजसभा को क्या सन्देश दे रहे थे? सम्भवत: शान्ति का और परम-शान्ति का। महाराज भी तटस्थ थे। उपदेशों की आवश्यकता नहीं थी; धर्म-चर्चा तो विषयान्तर ही हो गई। सभी एक प्रकार की विस्मृति का अनुभव करने लगे, जिस विस्मृत-भूमिका में उन्हें उपदेश और धर्म-चर्चा, वेदान्त और दर्शन किसी अनन्त-गगन के प्रांगण पर बिछे नक्षत्रों के समान प्रतिभासित हुए। स्वामी जी की उपस्थिति में सभी के पूर्व-निश्चित विचार, अपनी-अपनी संज्ञा को भूल कर, तत्कालीन शान्ति की गोद में चित्स्वरूप की अनुभूति करने लगे। तब शास्त्रों का मूल्य ही क्या रहा और दर्शनशास्त्रों की आवश्यकता ही क्या रही?

(3)

19 अक्टूबर। ब्रह्ममुहूर्त में ही स्वामीजी ने सबको दर्शन देना प्रारम्भ कर दिया। उपरत: श्री अनन्तपद्मनाभ मन्दिर के प्राकार के दर्शन करते हुए स्वामीजी देवालयाधिकारी-वर्ग से सम्पूजित हुए। राज्य की पुलिस के सुव्यवस्थित-नियन्त्रण द्वारा स्वामीजी ने देवालय की परिक्रमा सम्पन्न की और स्तम्भों से परे खड़ी हुई जनता को दैवी उच्छ्वास के मंत्र से अभिमंत्रित किया; सम्भवत: इसी की अभिलाषा में वे लोग खड़े-खड़े, महात्मा के चरणों की रज निहार रहे थे।

ट्रावंकोर राज्य के कुलदेवता के दर्शन करने के उपरान्त स्थानीय 'दिव्य जीवन मण्डलीय पुस्तकालय' की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। जब लौटकर आवास-गृह में आए तो पादपूजा के लिए एकत्रित हुई जनता के समारोह को देखा। सुविशाल भवन में दर्शनार्थियों को दर्शन देते हुए, स्वामी जी ने सबको आशीर्वाद दिया।

10 बजे स्वामी जी पुन: राजमहलों में प्रविष्ट हुए। प्रतीक्षा में अनुरत महाराजा, महारानी तथा युवराज ने स्वामी जी को दण्डवत् प्रणाम किया। सादर तथा सभक्ति स्वामी जी को राजमहलों में ले जाया गया। महाराजा ने सपरिवार स्वामी जी की पादपूजा की। पादपूजा के अनन्तर राजपरिवार ने स्वामी जी से भोजन करने का आग्रह किया। श्री स्वामी जी तो किसी अद्भुत प्रेम के रस में रंगे थे; उन्हें भक्त की प्रार्थना अस्वीकृत ही क्यों होती? राजपरिवार ने अपने जीवन के उस क्षण को धन्यतम बना लिया, जिस समय उनके राजप्रासाद का अन्न-जल स्वामी जी के दिव्य शरीर के रक्त में संचरित हुआ। धन्य हुई वे भुजाएँ, जिन्होंने स्वामी जी के चरणों को छूकर, उनका आशीर्वाद ग्रहण किया।

मलय प्रदेश में दिग्विजयी की विजय-वैजयन्ती लहरा चुकी थी। त्रिवेन्द्रम् को अपूर्व सौभाग्य की संप्राप्ति हुई और ट्रावंकोर नरेश ने अपने ही नहीं, प्रत्युत् अपनी प्रजा के जीवन को पवित्र करने का महद्-यश प्राप्त कर लिया। अब कर्णाटक की भूमि आचार्य की प्रतीक्षा कर रही है। विमान-केन्द्र पर नगर-निवासी आचार्य को विदाई देने के लिए संस्थित थे। 'शिवानन्द दिग्विजय' का नवीनतम अध्याय प्रारम्भ हुआ।



नित्य प्रति उपासना के द्वारा आन्तरिक मल को हटा कर, यौगिक-क्रियाओं द्वारा शरीर को योग्य और समर्थ बना, वेदान्तिक-विचारों द्वारा अपने आदर्श को विशाल करते हुए, आप जप, कीर्तन और सत्संग में सर्वप्रथम विश्वास करें- ये ही आपको महिमामय आनन्द के साम्राज्य की ओर ले जाने वाले देवदूत हैं और साथ-साथ आपके अनन्त पथ की विघ्न-बाधाओं के निवारण में समर्थ भी हैं; क्योंकि इन देवदूतों को यह मार्ग अच्छी तरह मालूम है - इन देवदूतों ने इसी मार्ग से अनन्त युगों के मानव समाज को महिमामय साम्राज्य की ओर पथप्रदर्शन किया है। इनकी सहयोगिता के बिना आपकी यात्रा कण्टकाकीर्ण तो होगी ही और भी सदा असफलता की ही सम्भावना अधिक है। परन्तु इनका सहयोग आपको योग और वेदान्त के मार्ग से परमार्थ की ओर ले जायेगा, जो प्रत्येक का लक्ष्य है और जिसकी प्राप्ति के लिये हमको पशुदेह न मिल कर मनुष्य देह मिली है।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय नवमी

कर्णाटक प्रदेश में

मैसूर राज्य

19 अक्टूबर। 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' वायुमार्ग से धर्म-ध्वजा को फहराते जा रहा है। बादलों की गोद में, निस्सीम शून्य को त्वरिद्-गति से पार करते हुए वह विमान अपराह्नकाल की अरुणिम छटा में बंगलूर पहुँचा। विमान-केन्द्र पर ही मैसूर राज्य के प्रतिनिधियों ने मैसूर की राजमाता की ओर से स्वामी जी महाराज को राजप्रासाद में पधारने का निमन्त्रण दिया। अत: वायुयान से उतरते ही श्री स्वामी जी महाराज ने समंडल मैसूर की ओर प्रस्थान किया।

रात के 8 बज चुके थे। स्वामी जी राजमहलों में पहुँचे, जहाँ राजमाता से उनका साक्षत्कार हुआ। अपने हर्षावेग को न रोक सकने के कारण राजमाता का कंठ अवरुद्ध हो गया। वे कुछ क्षणों के उपरान्त बोली, 'स्वामी जी! अन्तत: आपने हमारे राजप्रासाद को पवित्र कर ही दिया। हमें आपके दर्शनों से अनहत आनन्द की संप्राप्ति हुई है।'

राजमाता तथा स्वामी जी का परिचय पुराना है। वे कई बार स्वामी जी के दर्शनों के लिए ऋषिकेश भी गई थीं। परन्तु यह सब होते हुए भी उन्हें स्वामी जी के दर्शनों में अतीव आह्लाद की अनुभूति हुई। बारम्बार वे आँखें बन्द कर ध्यानमग्न हो जाया करती थीं। लगभग तीन घंटे तक स्वामी जी राजमहलों में रहे और जब वे अपने आवास-गृह की ओर लौटे तो राजमाता ने प्रार्थना की कि कल को भी स्वामी जी राजमहलों को पवित्र कर, सिहांसनासीन नरेश

को आशीर्वाद दें। 'तथास्तु' कह कर स्वामी जी अर्द्धरात्रि के अवसान होने पर विश्रामागार में लौट आए।

*   *   *   *

20 अक्टूबर। दिन के 10 बज चुके थे। स्वामी जी पुनः राजभवन में प्रविष्ट हुए। राजमाता के साथ अन्य बन्धु-बांधव भी खड़े थे। महाराजा की प्रसन्नता का पार न था, जब उन्होंने सुना कि आचार्यवर्य की दिग्विजयिनी यात्रा का सूत्रपात हो चुका है और वे स्वयं मैसूर के मार्ग से विजय-ध्वजा लहराते हुए जायेंगे। अंगुलियों में दिन गिनते-गिनते वह सु-दिन आया, जबकि वैभव के सम्राट् ने शान्ति के अवतार को देखा। महाराजा के आनन्द के वर्णन की शक्ति किस में है? उनके प्रेम, उनकी श्रद्धा और धर्मप्रियता को साहित्य के मोल आँकना हमारा दुःसाहस ही होगा।

प्रणामादि के उपरान्त स्वामी जी तथा राजपरिवार का अन्तरिम-साक्षात्कार हुआ। तदन्यतर घटनाएँ अप्रकाशित ही हैं, क्योंकि स्वामी जी के अतिरिक्त और कोई भी अन्तरिम-प्रासाद के समाचार नहीं जान पाया। लगभग 90 मिनट तक आचार्यवर्य तथा राजपरिवार में क्या संवाद हुआ, हमारी जानकारी से परे है। किन्तु इतना तो मालूम है कि राजोचित मर्यादा से ऋषिवर का अपूर्व सम्मान हुआ और धर्मचर्या भी हुई, सम्भवतः पादपूजा भी, जिसके चिह्न हमने स्वामी जी के शरीर पर देखे।

(2)

बंगलूर

दिन के दो बज चुके थे। अतः स्वामी जी ने राजपरिवार की हितकामना करते हुए बंगलूर में प्रवेश किया। श्री स्वामी जी के बंगलूर आने का समाचार बिजली के समान नगर के कोने-कोने में फैल गया। तब फिर था ही क्या? वही पुरानी परिपाटी क्रियात्मक हुई। नगर सज उठा।

श्रीयुत् वी.एल. नागराजन् तथा उनके सहयोगियों का उल्लेख आवश्यकीय है। लौकिक-शक्तिमत्ता तथा वैभव के नाते वे साधारण कर्मचारी थे; परन्तु गुरु की असीम कृपा का जो अनिर्वचनीय प्रसाद उन्हें प्राप्त हुआ, वह दिव्यतम ही था। बंगलूर-सदृश विशाल तथा आधुनिक-शिक्षा में रंगे हुए नगर तथा नागरिकों के पदार्थवादी हृदयों को प्रभावित कर, उन पर

दैवी आधिपत्य संस्थापित कर देना कोई साधारण बात नहीं। उसके लिए तो गुरुकृपा की ही आवश्यकता है, जिसकी प्राप्ति कर श्री वी.एल. नागराजन् तथा उनके सहयोगियों ने बंगलूर में धर्मक्रान्ति को जन्म दिया।

नगर में कई सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। बंगलूर-निवासियों ने हृदय खोल कर, स्वामी जी का स्वागत किया तथा उनके उपदेशों को सुना।

*　　*　　*　　*

21 अक्टूबर। श्री स्वामी जी को नगर की विभिन्न-संस्थाओं ने मानपत्र समर्पित किए। 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा का निरीक्षण कर, विश्वेश्वरपुरस्थित 'अशक्त पोषक सभा' तथा वासंवानुगुडी में 'शंकर मठ' की परिक्रमा करते हुए स्वामी जी ने ईश्वर धर्म का संदेश दिया। 'पत्रकार परिषद्' की बैठक में सभी पत्रों के स्थानीय प्रतिनिधियों को उन्होंने आध्यात्मिक साम्यवाद का संदेश दिया।

स्थानीय नाटक-मंडली द्वारा श्री स्वामी जी की दिग्विजय के उपलक्ष्य में 'भक्त अम्बरीष' नामक नाटक अभिनीत हुआ। नाटक के समाप्त होते ही स्वामी जी ने मंच पर से कीर्त्तन और नृत्य किया। अपूर्व-गति, अद्भुत-ताल, अलौकिक-अभिनय, अविस्मरणीय मुद्राएँ। दर्शकों के नेत्र स्तब्ध हो चुके थे। किसी अगोचर की झांकी का उनके सम्मुख दर्शन हो रहा था। सबके भावों में अप्रत्यक्ष आनन्द नाच रहा था।

*　　*　　*　　*

22 अक्टूबर को स्वामी जी ने प्रात:काल 8 बजे जलहल्ली के सैनिक-केन्द्र में अपना संदेश दिया। सहस्रों भारतीय सैनिकों ने अपनी आनुशासनिक प्रथानुसार महाराज के संदेशों को शान्तिपूर्वक और दत्त-चित्त होकर सुना। उन्होंने निरन्तर सामरिक अनुशासन के सिद्धान्तों का पालन करते हुए भी जीवन के मुख्य-दर्शन को अपना आधार बनाया; जिसके फलस्वरूप स्वामी जी के व्याख्यान को उन्होंने हृदयंगम तो किया ही, एवं च मस्त होकर कीर्त्तन में योग भी दिया। केवल वे ही नहीं, उनके अनुशासकों ने भी उस सुनहरे अवसर पर अत्यन्त दत्त-चित्त हो स्वामी जी के उपदेशों को सुना तथा अन्त में सुबेदार श्री देशराज शचदेव ने स्वामी जी के स्वागत में अपनी मृदु-तरंगिणी कविता को गाया। अन्यान्य अधिकारियों ने भी स्वामी जी के प्रति सम्मान प्रकट किया।

'जलहल्ली सैनिक सत्संग' के उपरान्त स्वामी जी निवास-स्थान में लौट आए, जहाँ उन्होंने सहस्रों भक्तों को भगवान के पवित्र नाम में दीक्षित किया तथा उन्हें आत्मा का श्रुतिमधुर और जीवन-पावन संदेश दिया। इसी अवसर पर कर्णाटक प्रदेश के कोने-कोने से आए हुए लोगों ने अपने गुरुदेव का वचनामृत-रूप-प्रसाद प्राप्त कर, संप्रसादिता का अनुभव किया। स्वामी जी के मधुर उपदेशों द्वारा उन्होंने अनासक्ति योग का जीवन से समन्वय करना सीखा। मन्त्र-दीक्षा लेते समय प्राय: सभी लोगों के जीवन-कष्टाक्रान्त मुखों पर प्रकाश की अदृश्य-रेखा उद्यत हो चुकी थी। उनके नेत्र सजल थे तथा उनकी भाव-भंगियाँ स्नेह के अमर वरदान को पाकर, सन्तोष की वर्षा कर रही थीं।

इस प्रकार स्वामी जी ने समस्त भरतखण्ड में धर्म, संस्कृति और सभ्यता का पुनरभ्युदय किया, धर्म-विषयक जटिलताओं को सुन्दर और सुगम रूप दिया; जिससे भारतवासियों ने साक्षात्कार किया कि धर्म प्रत्येक प्राणी के आचारों का वह सामूहिक-सिद्धान्त है, जो उसको अभ्युदय तथा महद्-श्रेय के पद पर अवस्थित करेगा और अन्तत: धर्म के अधिष्ठान परमात्मा की सुषमामय गोद में विश्राम भी देगा।

* * * *

23 अक्टूबर। कर्णाटक प्रदेशानुवर्तिनी जनता में धर्म की भावना को अमर कर, दिग्विजयी ने 'निजाम राज्य' की ओर प्रस्थान किया। बंगलूर की जनता ने विमान-केन्द्र पर विदाई देते हुए, स्वामी जी को प्रणाम किया। मैसूर राज्याधिगत-मुख्य मन्त्री माननीय श्रीयुत् के. सी. रेड्डी जी मैसूर महाराजा की ओर से स्वामी जी के चरणें में राजपरिवार की श्रद्धा समर्चित करने आए थे। श्री स्वामी जी को प्रणाम कर उन्होंने अक्षय आशीर्वाद ग्रहण किया। भक्तों की आज्ञा प्राप्त कर, जयजयकार के तुमुल-घोष के व्योम-मंडल में जागृत होते ही, मरीचिमाली के स्वर्णमय-प्रकाश में, वह अहोभाग्य विमान प्रात: 7 बजे देवलोक के गर्भ में लहराते हुए 'निजाम राज्य' की ओर अगोचर हो गया।



शिवानन्द दिग्विजय

विजय दशमी

निजाम राज्य में

हैदराबाद

कालीदास के मेघदूतों की चिन्मय-विरुदावली सुनते हुए, हमारा दिग्विजयी द्युतिमान् पर्जन्य-मण्डल को विदीर्ण कर, पृथिवीमण्डल से दूर और अतिदूर, निरंजन आकाश की गोद में नारद के समान, लंका-विजयोपरान्त पुष्पकारोहित राम के समान विजय-दुन्दुभि बजाता हुआ, विजय-वैजयन्ती लहराता हुआ, भरतखण्ड की सम्पन्नतम राज्यभूमि... हैदराबाद की सीमा में प्रविष्ट हो रहा था।

वायुयान 'बेगमपेट् विमान-केन्द्र' पर रुक गया और जयजयकार के गीत गाती हुई मानव-तरंगिणी अपने-अपने तटों को भूल कर इतस्तत: फैल गई। विमान के ऊपर से ही आचार्यवर्य के तप:प्रज्वलित-स्वरूप में परमोज्वल आत्मा के दर्शन करते ही प्रशान्त-निस्तब्धता ने महद्-शांति का संचार किया। कुछ क्षणों के लिए जो हाथ जहाँ था, वहीं रह गया – काष्ठवत् अचल हो गया। वे मंत्रमुग्ध हो गए थे, निर्वाक् और निश्चल हो गए थे। इसी अल्प-अवधि में उन नागरिकों के जन्म-जन्मान्तरों से अन्तर्हित ईश्वरीय-ज्ञान के अनुभव का उदय हुआ। चौरासी के चक्कर में भ्रमित हुए, जो कष्ट उन्होंने पाए तथा जिन-जिन कटु-अनुभवों से वे आक्रान्त हुए, उनसे छुटकारा तो मिला तथा स्वतन्त्र-साम्राज्य का राजपथ भी तो दिखाई दिया।

उस समाहित-क्षण के उपरान्त जब स्वामी जी ने प्रणवोच्चारण कर सबको सजग किया तो ऐसा जान पड़ा, मानो वे किसी सचेतन निद्रा से

जागे थे। कुछ ही क्षणों के बाद सबको दर्शन देते हुए, स्वामी जी नीचे उतरे तो निजाम राज्य के श्रम-मन्त्री माननीय श्रीयुत् वी.बी. राजू महोदय ने उनके गले में विजय-माला डाली और हैदराबाद की जनता की ओर से श्री स्वामी जी के चरण छुए। स्थानीय 'दिग्विजय मण्डल' की व्यवस्थापिका सभा के स्वयंसेवकों ने राष्ट्रीय-विधितया स्वामी जी को सम्मान दिया। इस प्रकार 23 अक्टूबर को स्वामी जी ने प्रथम प्रहर के उदय होते ही हैदराबाद में पदार्पण किया।

* * * *

दिन के तीन बजते ही 'उस्मानिया विश्वविद्यालय' की भूमि जन-कलरव से प्राच्छादित हो उठी। विश्वविद्यालय का 'परिषद् भवन' विद्यार्थियों तथा शिक्षकों से अपनी परिधि को आवृत्त किए था। विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम. एस. डोरैस्वामी ने अपने प्रास्ताविक शब्दों में स्वामी जी का परिचय दिया।

प्रस्तावना के उपरान्त लगभग 1 घण्टे तक परिषद्-भवनस्थ प्रतिभामण्डल और भारत की भावी नागरिकता के संरक्षकों ने श्री स्वामी जी का सुन्दर, रोचक, ललित और आदर्श सन्देश सुना। विद्यार्थियों को सचेत करते बतलाया गया। 'उन्हें अपने चरित्र को सुव्यवस्थित तथा सुनियन्त्रित रखना चाहिए। यदि ऐसा न किया तो उनके जीवन का नैतिक-पतन तो होगा ही, तदुपरि उनके जीवन में कष्ट ही कष्ट धिर आयेंगे और वे अपने जीवन में कोई काम ऐसा नहीं कर पायेंगे, जिससे समाज उनको आदर्श जाने' – यही उनके आप्त-वाक्य थे।

'उस्मानिया विश्वविद्यालय' में कार्यक्रम समाप्त हुआ। 'निजाम महाविद्यालय' में नागरिकों के सम्मेलन में, विद्यार्थियों के मध्य, यमराज के चार पत्रों का उल्लेख करते हुए स्वामी जी ने कहा – 'यमराज का प्रथम पत्र साधारण बुकपोस्ट द्वारा आता है। वह है बालों का सफेद हो जाना। यमराज का दूसरा पत्र साधारण डाक से आता है। वह है दृष्टि का क्षीण हो जाना। यमराज का तीसरा पत्र रजिस्ट्री से आता है। फलत: दाँत गिर जाते हैं; और यमराज की चौथी चेतावनी वी.पी.पी. से आती है। तब तो जीवन का मूल्य चुका कर वी.पी.पी. छुड़ानी ही पड़ेगी। कोई दूसरा बचाव नहीं। यदि पहले ही तीनों पत्रों का विवेकपूर्ण उत्तर दिए जाते तो यह बला क्यों आ खड़ी

होती? हमने विश्व-नियम की वंचना की। विधाता के विधान का अनादर किया। अब तो चौरासी के फेर में पड़ना ही पड़ेगा।'

जो लोग अभी तक हँस रहे थे, वे अब गम्भीर हो गए। एक अज्ञात भय उनके हृदयों में प्रविष्ट हो गया। आज उनको नींद नहीं आएगी, जब तक वे उन पत्रों के विवेकपूर्ण उत्तर को नहीं सोच लेंगे। उनका चित्त तब तक उद्विग्न रहेगा, जब तक वे उन पत्रों के प्रतिकार का पारमार्थिक उपाय नहीं खोज लेंगे। अन्त में स्वामी जी ने कहा –

'यमराज के पत्रों का उत्तर है, सद्कर्मनिष्ठ होकर चेतावनी का अर्थ समझना, धर्मनिष्ठ होकर तदनुसार कर्म करना तथा आत्मनिष्ठ होकर यम के पाश से विमुक्त बनते हुए, आत्माराम में परमानन्दित हो विचरना।'

(2)

लोक-प्रचलित सिद्धान्तों की वंचना कर पारसी, जैन तथान्य सभी धर्मावलम्बी भी महाराज के सामने उसी पवित्र-आदर भाव से ओत-प्रोत होकर आते थे, जो आदर-भाव उन्हें अपने गिरजों या मस्जिदों या विहारों या मन्दिरों या मूर्तियों के लिए होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी साम्प्रदायिक-प्रथाओं को भूल कर स्वामी जी के समक्ष दण्डवत् करता, फूल चढ़ाता, चरण-स्पर्श करता और उनके शुद्ध-वेष पर बलि-बलि जाता था। यह इसीलिए कि स्वामी जी उस अलौकिक-धर्म के प्रतिपादन अथवा संरक्षण के लिए आए थे, जो विश्व के निखिल मतों, सम्प्रदायों, समाजों और समग्र विज्ञानों को अपनी विशाल शाखाओं में पुष्प के समान समानतया विकसित किए हैं और जो सभी विभिन्न-पथों का निर्दिष्ट लक्ष्य है; जहाँ सारा संसार अपनी विविधात्मक-प्रगति को भूल कर, सच्चे स्वरूप में शोभा पाता है; जहाँ मनुष्य अपनी मनुष्य संज्ञा को तिरोहित कर, नाम-रूपों में देखे जाने वाले विश्व का अखण्डित, अपरिच्छिन्न तथा अप्रतिहत रूप में अनुभव करता है।

इसका लोकोत्तर-दृश्य हमें 'महबूब महाविद्यालय, सिकन्दराबाद' में देखने को मिला। सभी पैगम्बर की सन्तान थे। सभी कलामे-पाक की शपथों पर न्यौछावर जाने वाले थे। सभी कुरान शरीफ की आयतों को ही ईश्वर के गीत समझते थे और मक्के-मदीने को पवित्र-गति देने वाले मानते थे तथा जिनका नारा था 'अल्ला हो अकबर।' परन्तु उन्होंने भी रटना प्रारम्भ किया

'प्रणव महामन्त्र' को। स्वामी जी अनवरत गति से कहते जा रहे थे। समस्त परिषद् भवन तटस्थ था। सबके नेत्र निर्निमेष थे।

इसी अवसर पर दिग्विजयी के कीर्ति-चन्द्र की चारु-चन्द्रिका को शरद्-गगनमण्डल-मण्डित कर, महाविद्यालय की शिक्षक-मंडली द्वारा जनमण्डल की ओर से रजतमंडित मानपत्र महामंडलेश्वर के सकल-भुवनमंडल-मंडित चरण-मंडलों में मण्डित किया गया और जब स्वामी जी मंच पर से नीचे उतरे तो विजय-ध्वनि श्वैर-गति से अन्तरंग वातावरण में ध्वनित होती हुई उठी और कुरान की आयतों के पाठ करने वाले कई सहस्र कंठों ने तुमुल नाद किया, 'श्री स्वामी जी महाराज की जय।' ऐसा प्रतिभासित होता था, मानो मस्जिद के गलीचे पर मौलवी बैठे हुए गा रहे थे –

बिस्मिल्लाहिर्रहमान्हिर्रहीम। अलहम्दु लिल्लाहि रबिऽल्ल्-आलमीन्

* * * *

एक ही दिन में हैदराबाद की यह अवस्था हो गई कि नगर में कोई ऐसा नहीं रहा, जिसने स्वामी जी के दर्शन नहीं किए थे। हम लोगों को यह पीछे मालूम हुआ।

श्री स्वामी जी 'महबूब विद्यालय' से लौट कर अपने निवास-स्थान की ओर आ रहे थे तो मंडल के स्थानीय व्यवस्थापक ने सोचा कि स्वामी जी को एक बोतल सोडे का देवें तो उत्तम होगा। अत: पार्श्ववर्त्ती दुकान के सामने कार रोक दी गई और दुकानदार से एक बोतल सोडा लाने के लिए कहा गया।

यह सब कुछ होने में देर ही क्या लगती। परन्तु अभी सोडा आ भी नहीं पाया था कि कार के चारों ओर जनता संगठित होने लगी और कुछ ही क्षणों में यह अवस्था हो गई कि समस्त मार्ग दर्शनार्थियों से प्राच्छन्न हो गया। अनवरत गति से 'श्री स्वामी जी महाराज की जय' की विजय-ध्वनि से राजमार्ग शब्दालोकित हो रहा था।

हम दुकानदार को सोडे का मूल्य देने लगे तो वह लेता ही नहीं था और कह रहा था 'अहोभाग्य हैं मेरे, जो आज साक्षात् भक्तवत्सल भगवान विदुर के घर भोग लगाने आए। अब मुझे क्या चाहिए? मेरे जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य-उदय हुए, जो आपने मेरे द्वार पर भोग लगाया...।' और यह कह कर

रोने लगा; सम्भवतः आनन्द के कारण उसके चिर-संचित-संताप द्रवीभूत होकर बह रहे थे।

*   *   *   *

लाखों लोग थे, जो उनके चरणों की रज के प्रताप से पावन हुई भूमि पर माथा टेकते गए। सहस्रों लोग थे, जो उनके योगानुष्ठित रूप की माधुरी की कल्पना करते-करते समाहित-चित्त हो गए। न जाने कितने ऐसे भाग्यवान् रहे होंगे, जिन्होंने उनके स्पर्श से पवित्र हुई भूमि में मिली हुई रजकण के ही ऊपर अपने जीवन की ऐहिकता का विसर्जन किया होगा। आज हम (उनके शिष्यगण) उनकी महिमा के साक्षी हैं, क्योंकि हमने अपनी आँखों से ही उनके प्रताप से प्रत्युज्ज्वल हुए असंख्य जीवनों को देखा है; जो इस संघर्षमय जगत् में रहते हुए भी सद्कर्मपरायण तथा आत्मनिष्ठ हैं।

(3)

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही 'प्रतापगिरि भवन' में भक्त लोगों ने आना प्रारम्भ कर दिया। राजकीय भवन के विशाल-प्रांगण में प्रातःकर्मों का दिग्दर्शन कराया गया। हम लोगों ने गुरुदेव की प्रथा के अनुसार मनुष्य जीवन की साधना का संक्षिप्त अभिनय किया। स्वामी जी की इच्छा थी कि तदुक्त अभिनय में जिन-जिन साधनों का दिग्दर्शन कराया जाय, उनका अनुपालन प्रत्येक व्यक्ति करे। पुनः मण्डली ने बालोपयोगी, ब्रह्मचर्योपयोगी, वृद्धोपयोगी तथा स्त्रीयोपयोगी आसनों का पृथक्-पृथक् निदर्शन ओर प्रदर्शन किया। इस प्रकार दैनिकजीवन की साधना का वह अभिनय केवल दो घंटे रहा। इसी अल्पकाल में सभी गृहस्थों को योग की परम-जटिल-कल्पित-समस्या का रहस्य प्रत्यक्ष कर दिखलाया गया। योग के विषय में जो-जो शंकाएँ साधारण जनता में प्रचलित रहती हैं, उनका समाधान और निवारण हुआ और जो लोग योगाभ्यास को संसार से विरक्त साधकों, साधुओं तथा महात्माओं द्वारा ही अनुष्ठेय जानते थे, उनके मत का परिहार हुआ।

24 अक्टूबर। दोपहर को 'हैदराबाद रेडियो स्टेशन' से श्री स्वामी जी महाराज का सन्देश प्रसारित किया गया।

तदुपरान्त स्वामी शिवानन्द जी ने 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा का पर्यवेक्षण किया और 'शिवानन्द सरस्वती मन्दिर' (पुस्तकालय) तथा 'शिवानन्द धर्मार्थ औषधालय' की प्राण-प्रतिष्ठा की। संस्था की सपुलता के लिए कामना करते हुए स्वामी जी 'प्रतापगिरि भवन' में वापिस आ गए।

दिन के दो बजे प्रतापगिरि के महाराजा ने सपरिवार श्री स्वामी जी के दर्शन किए और उनका उपदेश लिया।

*　　　*　　　*　　　*

इस प्रकार राज्य-केन्द्र में दिग्विजयी की विरुदावली प्रत्येक प्राणी के मुख से संकीर्तित हुई। लाखों की संख्या में विभिन्न-मतावलम्बियों ने महाराज के उपदेश सुने, कीर्त्तन-ध्वनियाँ सुनीं, दर्शन पाए और ईश्वरीय सम्प्रसाद की प्राप्ति की। तब तक उन्होंने महाराज के विश्वविख्यात यश:प्रताप के गीत ही सुने थे; परन्तु आज उन्होंने एक अकल्पित विभूति को साकार देखा तो उनके हृदय-सरोज खिल उठे। जब हृदय-गगन में चन्द्रिका छिटका तो मोक्ष-कमल के अवगुण्ठित रूप को मानव ने खिलते देखा और जब मरीचिमाली जागे तो ज्ञान की किरण मानव के विवेक-क्षितिज से जाग रही थी।

24 अक्टूबर को सायंकाल के समय 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' ने निजाम राज्य से महाराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया।



शिवानन्द दिग्विजय

विजय एकादशी

महाराष्ट्र प्रदेश में

पूने में

अक्टूबर मास की 25वीं तारीख को हम लोग महाराष्ट्र-प्रदेश की नैसर्गिक गोद से जागते स्वर्ण-रथी के विश्व-प्रकाशक प्रकाश में आनन्दित होते हुए, विजयनाद-समाकीर्ण पूने के वायुमंडल की श्री-राजिता छाया में संप्रविष्ट हुए।

पूने के निवासियों ने विश्व के सन्त का स्वागत किया और वेद-विधानानुकूल पूजन कर, अपने भाग्य को अतितर सुतर कर दिया। पूने में स्वामी जी का जो स्वागत हुआ, वह यदि सच्चे शब्दों में कहा जाय तो अपूर्व ही था।

ज्यों ही स्वामी जी ने दर्शन दिए, त्यों ही एक कम्पन ने सबको चकित कर दिया। जनता का विराट्-सा कलरव नीरवता में समाधिस्थ हो गया। परन्तु कुछ ही क्षणों में सबने तुमुलनाद किया, 'श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' बस फिर क्या था। शृंगीनाद से दशों दिशाएँ दहल गईं। मृदंगों पर नृत्य हुआ। मंगलाचरण उच्चरित हुए।

'स्वामी जी पूने में आज के दिन ठहरेंगे' यह समाचार पाते ही जनता ने उनके आशीर्वाद को पाने का भरसक प्रयत्न किया। स्थान-स्थान पर स्वामी जी के व्याख्यान और प्रवचन हुए और पादपूजा भी हुई। स्वामी जी के दर्शन करते ही उन्हें हिम की-सी शीतलता का अनुभव होता था। समस्त पूना विद्युद्लहर से संयोजित हो चुका था। क्या बालक, क्या युवक और क्या वृद्ध – सभी के जिह्वाग्र में स्वामी जी का पवित्र नाम था।



दिग्विजयी — मद्रास में


SRI SIVANANDA YATRA RISHIKESH-RAMESWARAM









दिग्विजय मण्डल

और, स्वामी जी तो किसी ऐसे रंग में तरंगित थे कि जनता को उनकी छवि क्षण भर में दिखाई देती और दूसरे ही क्षण अदृश्य हो जाती थी। अभी 'सरस्वती विद्यालय' में उपदेश दे रहे हैं तो दूसरे क्षण 'बम्बई प्रान्तीय मलेरिया संघ' में आप उन्हें अधिकारियों और कर्मचारियों से आत्मचर्चा करते पायेंगे। उनके कंठ से रक्तस्राव हो रहा हो या नाक गिर रही हो... परन्तु किसी ने उनको कर्त्तव्यहीन नहीं देखा। समाज और समाजों से बने विश्व के प्रति उनकी भावना सदा सक्रिय रहती थी, जिसमें स्फूर्ति थी और आनन्द था। उन्होंने अमृतमय ज्ञान द्वारा विश्व के विकास पर सद्प्रकाश किया, जिसके फलस्वरूप जनता अपना दृष्टिकोण निश्चित कर पायी, समाज ने अपनी भूलें सुधारीं, धर्म अपनी कट्टरता के रंग को धोकर अपना सच्चा स्वरूप देख पाया और प्रत्येक व्यक्ति ने आत्म-विचार करना प्रारम्भ कर दिया। उनके जीवन में स्फूर्ति और क्रियात्मकता और पूर्ण ज्ञान का जो समन्वय था, वह आज की सर्वप्रथम आवश्यकता है। सभी राष्ट्र इसी समन्वय के लिए दृष्टि पसारे हुए थे और स्वामी जी उनके सभ्य जीवन के सूत्रधार बने।

*   *   *   *

जब स्वामी जी 'बम्बई प्रान्तीय मलेरिया संघ' से बाहर आए तो डाक्टर श्री विश्वनाथन् ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि अब स्वामी जी कुछ भोजन और विश्राम करें। स्वामी जी ने कहा- 'मीरा विद्यालय में जाने का समय समीप है। तत्पश्चात् आपके ही घर में, यदि आवश्यक हुआ तो प्रसाद प्राप्त कर लूँगा।'

विद्यालय के शिक्षकों और बालिकाओं ने स्वामी जी की अभ्यर्थना की। गीता के द्वादश अध्याय के भक्तियोग-निरूपक श्लोकों को गाती हुई, वे बालिकाएँ साक्षात् सरस्वती की अनुपम रचना के कला की परिचायिका प्रतीत हो रही थीं। उनके एक-एक शब्द में विश्व का अमर संगीत था, सत्य का मनमोहक अभिनय था और ब्रह्मज्ञान का सुन्दर मार्गशीर्ष विराज रहा था।

द्वादश अध्याय के पाठानन्तर 'मीरा विद्यालय' की ओर से श्रीयुत् गंगाराम सजनदास ने स्वामी जी को स्वागत-भारती समर्पित की। अब उठे स्वामी जी।

डाक्टर ने देखा, सुमधुर-वेष में रंजित स्वामी जी को। अनुभव करने का प्रयत्न किया। परन्तु पलकें नहीं उठ पाईं। विचार अवरुद्ध हो गए। बुद्धि

समाहित-चित्त हो गई। जब उनकी पलकें जागीं तो उन्होंने देखा कि स्वामी जी उनकी बांह पकड़ कर, उनको क्षण-कल्पावभास-दृश्य से जगा रहे थे।

सब लोग 'मीरा विद्यालय' से बाहर आए। विद्यालय की छात्राओं ने सप्रेम-पुरस्सर प्रणाम किया।

'मीरा विद्यालय' में उपदेश देकर, स्वामी जी डाक्टर विश्वनाथ जी के घर आए। लगभग एक घण्टे तक स्वामी जी के कीर्त्तन और भजन हुए। उपरत: स्वामी जी ने भिक्षा ग्रहण की। दिन के दो बजने को थे।

(2)

अपराह्नोत्तरकालीन रम्य-आलोक में श्री स्वामी जी ने आलन्दी की ओर प्रस्थान किया। इन्द्रायणी तटस्थित सन्त ज्ञानेश्वर के समाधि मन्दिर में पहुँच कर, हमारे स्वामी जी ने महाविभूति के नामों का संकीर्त्तन करते हुए, अपना प्रणाम समर्पित किया। जब हम आलन्दी से वापिस लौटे तो सायंकाल के दीपक जलने को थे।

* * * *

आलन्दी से लौटते समय स्वामी जी स्थानीय 'दिव्य जीवन मण्डल, खड़की' में गए। समय अधिक नहीं था। 'तिलक मंदिर' में बम्बई प्रान्त के माननीय मन्त्री श्रीयुत् बी. जी. खेर के सन्निधान में स्वामी जी के सार्वजनिक-सम्मान का आयोजन किया गया था। तत्फलत: केवल 10 मिनट की अवधि में ही स्वामी जी ने उपस्थित भक्तों को आत्मज्ञान प्राप्त करने का सन्देश दिया और हरिनाम का पवित्र कीर्त्तन भी किया। 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के सदस्यों तथा सहयोगियों ने जनता की ओर से स्वामी जी के आशीर्वचन की याचना की। 'तथास्तु' कह कर स्वामी जी 'तिलक मन्दिर' की ओर प्रस्थित हुए।

* * * *

'तिलक मन्दिर' में पूने का सन्त-समागम हुआ। नगर के सभ्य-नागरिक तथा उच्च पदाधिकारी भी पधारे थे। 7 बजे ही थे कि माननीय मन्त्री की मार्गदर्शिका ने रंगीन-ज्योति से उनके आगमन का समाचार दिया। कुछ ही क्षणों में माननीय खेर महोदय की कार और समंडल स्वामी जी की कारें

यथाक्रम आ खड़ी हुईं। त्वरित-गति से श्रीयुत् खेर महोदय ने मंच की ओर प्रस्थान किया तथा यथास्थान पर से स्वामी जी की अभिवन्दना के हेतु कुछ क्षण प्रतीक्षा भी की। जन-समाज शान्ति की गोद से इस अभिनय-कौतुक का पर्यावलोकन कर रहा था। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि वेदोच्चारण से मंगल श्रुति का पाठ हुआ और स्वामी जी भी गम्भीर-प्रगति से, जनता-जनार्दन को प्रणाम करते हुए, मंच की ओर अग्रसर हो रहे थे। मंचारोहण करते ही माननीय मन्त्री महोदय ने विजयमाला अर्पण कर, स्वामी जी का अभिनन्दन किया।

सब यथास्थान पर बैठ गए। माननीय मंत्री महोदय ने स्वामी जी के विषय में भूमिका का सूत्रपात करते हुए, उनके जीवन और उनके आदर्श का बखान किया।

प्रत्युत्तर में स्वामी जी ने अपना संदेश दिया, जो अज्ञान-अन्धकार का निवारण करने वाले प्रकाश के समान था, अज्ञान के बादलों को क्षत-विक्षत करने वाले प्रबल-बवण्डर की नाईं था।

लगभग 80 मिनट तक स्वामी जी ने जीवन के प्रमुख कर्त्तव्य – आत्मज्ञान का ज्ञान कराया।

श्री स्वामी जी के सन्देश से मन्त्रमुग्ध होकर, जनता ने अतिदुर्लभ सन्त-समागम का आनन्द लूटा। उसका चित्त कुछ काल के लिए संसार-स्फूर्ति को त्याग कर, चित्स्वरूप का अनुभव करने लगा। जब सूर्यनारायण प्राची में आए तो संशय-रूप नक्षत्रों का अस्तकाल आ गया। वह अपने घरद्वार, पति-पुत्र, काम-काज, स्वजन-सखा, धन-धान्य तथादि सबको भूल गई। विषय सुख को भूल गई और द्वन्द्वसुख भी भूल गई।

'तिलक मन्दिर' के सत्संग के उपरान्त स्वामी जी पुनः 'टूरिस्ट कार' पर आ गए तो रात के 10 बजने को थे और हमारा मण्डल बम्बई-प्रस्थान की तैयारी में लगा था; जबकि पुरवासी पावसकाल के पर्जन्य मंडल के समान प्लेटफार्म की ओर उमड़-घुमड़ कर आ रहे थे।

(3)

बम्बई

26 अक्टूबर। प्रातःकाल के 8 बजे स्वामी जी बम्बई पहुँचे। जनता उनका स्वागत करने प्लेटफार्म को आच्छन्न किए खड़ी थी। सम्मान्य सोलीसिटर श्री

हीरालाल मेहता सपरिवार पधारे थे। यहाँ तक कि 'शान्ता क्रुज' से पुरोहित-परिवार भी पधारा था।

अब बम्बई में दिग्विजयिनी को सुविशाल मार्गों पर फहराया जाने लगा। सार्वजनिक सम्मेलनों का उद्‌घाटन हुआ। नगर के कोने-कोने में व्याख्यानों के आयोजन हुए। कभी-कभी एक साथ शतसंख्यक कारें 'शिवानन्द दिग्विजय' के सूत्रधार तपस्वी के काषाय-स्वरूप से जनपद को धन्यनेत्र करती, तीव्रगति से, हरिनामरंग की होली में तन्मय हो, सुविशाल नगर को चिररम्य करती थीं। स्थान-स्थान पर जनता एकत्रित होती और रामनाम की संगीतावलि को गाती थी। उन में स्त्रियाँ थीं, बालक थे और वृद्ध भी थे। दीन भी थे और साथ-साथ धनी और समाज के सभ्य-सम्पन्न सज्जनों का समुदाय भी किसी अचिर-साम्यवाद के प्रभाव में एक ही भूमि पर, एक ही शब्द गाते, एक ही उद्‌देश्य से, एक ही महापुरुष के सौम्य-स्वरूप की ओर टकटकी लगाए देखता रहता। एक ही आनन्द था; एक ही केन्द्रित विभूति थी और एक ही जमघट था। उस दिन सब लोगों ने उत्कंठापूर्वक भोजन किया। लाला जी के तिजोरी की चाबी तिजोरी पर ही छूट गई। सोलीसिटर श्री हीरालाल मेहता के वस्त्र शरीर से चिपके जा रहे थे और हेमलता के अंग-परिधान मार्गमलाकीर्ण हो गए थे। वृद्ध पुरोहित भी लम्बी-लम्बी साँसें भर रहे थे। कारों के इंजिन भी कई दिनों के बाद शक्त्याधिक श्रम किए होंगे और मालिनों के फूल उस दिन हाथों-हाथ बिक गए होंगे, 'हमारे स्वामी जी आए हैं; मुंशी जी! कच्चे पान दे दो – सुपारी भी दे देना; केले भी दे दो और नारिकेल भी। कहीं धूपबत्ती न भूल जाना।' उस दिन से लेकर अगले तीन दिनों तक मुंशी जी के नगर-परिवार के भाग्य जागे होंगे।

स्वामी जी 'लक्ष्मी बाग' में ठहरे थे। उनके आते ही व्याख्यान और कीर्त्तन होने लगे। सायंकाल को 'पत्रकार परिषद्' ने स्वामी जी के मुख से आत्मज्ञान के शब्द सुने। उनके लिए वह एक परम पुण्य अनुभव था।

दूसरे दिन प्रान्तीय-समाचार पत्रों ने अपने शीर्षभाग पर स्वामी जी के धर्म-समन्वय अथवा विश्व के मूलभूत मौलिक धर्म का व्याख्यान प्रकाशित किया था।

इस प्रकार स्वामी जी ने बम्बई में हरिनाम का पांचजन्य सुधोषित किया। यह तो प्रथम दिन है ...।

(4)

27 अक्टूबर। प्रात:काल होते-न-होते दिग्विजयी तीर्थ की यात्रा करने सहस्त्रों पुरवासी पधारे। कोई दीन थे तो कोई लक्ष्मी को करतल पर नचाने में समर्थ थे। कोई व्यवसायी थे तो कोई शासन-विभाग के कर्मचारी। सूर्योदय होते ही ट्रामगाड़ियाँ, मोटरें, किराये की कारें, इक्के, तांगे, फिटन क्रम-क्रम से एक निश्चित-स्थान के लिए जनमंडल को लेकर अग्रसर हो रहे थे। इस प्रकार नगर का जनमंडल 'लक्ष्मी बाग' में जाता और अपने जीवन के अज्ञान का निराकरण कराता था। साथ-साथ समधिगत-विरक्तिरंजित आत्मा के अविनश्वर यश को प्राप्त करते हुए, विश्व की वृत्तियों के दासत्व से विमुक्त हो, पर्वत कन्दरा में दृढ़नियमी तथा ध्रुव-आचरणपरायण योगियों के समान ही मुदितमनस्वी बन, अपने गार्हस्थ्य-जीवन में ही तपोमहिमा के महत्प्रसाद की प्राप्ति करता था।

*　　　*　　　*　　　*

सायंकाल के 6 बज चुके थे। 'माधव बाग' में बम्बई का जनमंडल लहरा रहा था। उसके महत्प्रशस्त प्रांगण में शुचि-समाधिस्थ महात्मागण, पूर्ण-चन्द्राननश्रीपूर्णा महिलाएँ, सर्वलोकाभिवन्द्य राज्याधिकारी, पूर्वपुण्योपार्जित सत्फल को प्राप्त किए भक्तगण विराजमान थे। महामंडलेश्वरादिसंगीत-प्रकीर्तित श्री महेश्वरानन्द जी महाराज तथा श्री-ल-श्री प्रेमपुरी जी महाराज और हमारे स्वामी जी महाराज 'माधव बाग' में शुद्ध समाराधित महात्माओं के मध्य प्रशोभित हो रहे थे।

'माधव बाग' का वह अपूर्व जनसम्मेलन, हमने सुना, लोग कहते थे, बम्बई के धार्मिक-इतिहास में प्रथम दृश्य ही था। उन लोगों का कहना था कि कभी ऐसा जमघट नहीं हुआ। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि सभी शान्त और दत्तचित्त हो, स्वामी जी की श्रुतिपावनी वाणी सुन रहे थे। गीताधर्म और मानव-जीवन का अनन्य-सम्बन्ध सूत्रित किया जा रहा था। साथ-साथ स्वामी जी का व्याख्यान ताम्रतन्त्री में स्वरांकित भी किया जा रहा था। जिस समय उन्होंने गीतोक्त-वैराग्य पर अपना मन्त्र सन्धाना तो ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वैराग्य ही सबके नेत्रों के सम्मुख नृत्य कर रहा था। उन वैराग्याभिरंजित नेत्रों से सभी ने विश्व की कंकालवत् पदार्थवादिता को पहिचाना। वह दृश्य,

हम समझते हैं, दृश्य नहीं था, अपितु अनुभूति थी; जिसका संयोग नेत्रों के स्पन्दन से हो रहा था।

इसी अवसर पर बम्बई की जनता की आरे से स्वामी जी के प्रति कई भाषाओं में अभिनन्दन पत्रों का पाठ हुआ। करतलध्वनि से सबने अभिनन्द की पुनरुक्ति की। और, जब हम 'माधव बाग' के उपरान्त मंच पर से उतरे तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो पूर्णिमा का सिन्धु उद्वेलित होने वाला हो। लाखों की इच्छा हुई कि महाराज के चरणस्पर्श-रूप आशीर्वाद के भागी बनें। किन्तु हम लोगों ने चपल-तड़िद्वत् दिग्विजयी को उस उद्वेलित-सिन्धु की सीमा से बाहर कर दिया।

एक कार के पास आते ही हमने देखा कि उसके संचालक ड्राइवर ने कार का द्वार खोलकर, स्वामी जी से बैठने की प्रार्थना की। परन्तु वह तो किसी अन्य की थी। हमें क्यों कर बैठना चाहिए? यदि कार का मालिक कार-संचालक पर अप्रसन्न होवे तो? किन्तु संचालक ने कहा कि वह तथा उसके मालिक के अहोभाग्य, यदि स्वामी जी ने कार में बैठने की कृपा की तो। उसने पुन: कहा कि उसके मालिक भी अन्दर गए हैं। परन्तु उन्हें जब ज्ञात होगा कि श्री स्वामी जी ने उनकी कार को धन्य जीवन किया, उनको अतीव प्रसन्नता और परितोष का ही अनुभव होगा। अत: हमारे स्वामी जी ने आसन ग्रहण किया और कुछ ही क्षणों में हम वायुवेग से 'आस्तिक समाज, मातुंगा' में व्यवस्थित आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए अग्रसर हो रहे थे, जहाँ हमारी दुस्तर-समस्या का एक दृश्य अभिनीत हुआ।

यहाँ पर स्वामी जी की उक्ति चरितार्थ हुई। 'संन्यासी की कोई स्वकीय वस्तु नहीं होती, परन्तु उसे विश्व के अणु-परमाणु के उपयोग का अधिकार है।' लोकोक्ति तो यह कि संन्यासी का स्वकीय अधिकोष भी नहीं, परन्तु वह विश्व के समस्त अधिकोषों के उपयोग का स्वामी है। इसी प्रकार संन्यासी का कोई स्वायत्त गृह या भवन या प्रसाद नहीं होता, परन्तु कोई भी गृह विश्व में नहीं, जिसमें निवास करने का संन्यासी को अधिकार न हो; क्योंकि संन्यासी अपनत्व और ममत्व के परिच्छिन्न-व्यवहार को निर्मूल कर चुका है। उसके लिए विश्व केवल एक परिवार ही नहीं, अपि च अद्वैत-स्वरूप है।

समाज का जीवन, समाज की संस्कृति, समाज की लोक-सभ्यता, समाज की बृहत्तर-शान्ति और उसके साधारण और दैवी-धर्म उसकी विशाल-शक्तिपरायणता पर अधिष्ठित हैं। संन्यासी ही समाज का प्रथम

सभ्य व्यक्ति है। संन्यासी ही समाज को जीवन की समस्याओं से परिचित कराता रहता है और उन समस्याओं के हल करने में वरदहस्त भी सिद्ध होता है। वह विश्वात्मकता का सर्वव्यापक विकास और सर्वतोमुख अभ्युदय है, जो समय-समय पर जनता को सजग करता और उसे अमरत्व, सत्य और ज्योति की ओर जाने की अभिमन्त्रणा और अभिप्रेरणा देते रहता है।

(5)

नक्षत्रमालिका उदित हो चुकी थी। हम लोगों की कार मातुंगा की घनी बस्तियों के मार्गों को पार करती जा रही थी। मार्ग पर जनमंडल प्रबल प्रभंजन के समान एक ही ओर को उन्मुख हो रहा था। जनता 'शंकर मठ' के चारों ओर योजनाकार-वृत्त बनाए, कई मार्गों को रोक कर खड़ी थी। हमारी कार को गेरू-संशोभित देख, उनको यह जानने में देर नहीं लगी कि स्वामी जी आ रहे हैं। 'शंकर मठ' के अधिकारियों ने बहुत प्रयत्न किया कि जनता मार्ग दे और स्वामी जी अटारी पर से यथायोजित कार्यक्रम सम्पन्न करें। परन्तु यह कब सम्भव था कि योजनाकार-परिवृत्त-जनता अलौकिक महात्मा की सन्निधि में लोक-व्यवहार के नियन्त्रण को स्वीकार करती। यह तो नहीं हो सकता कि कहीं धन-वितरण हो रहा हो ओर आप सोचें कि धैर्यसहित प्रतीक्षा करनी चाहिए।

हमें साहस नहीं हुआ कि स्वामी जी को स्वतन्त्र छोड़ दें। हमने जान लिया कि किसी भी अवस्था में न तो जनता ही रास्ता दे सकेगी और न कोई अन्य आयोजन ही हो सकेगा। अतः हम 'भजन समाज' की ओर चले। परन्तु वहाँ का सम्मेलन और भी गहनतम था। दुकानें बन्द हो चुकी थीं। कार के जाने का कोई भी मार्ग नहीं था।

हमारे शरीर से स्वेद की अनवरत धारें प्रवाहित थीं। कार के अन्दर बैठे-बैठे हमारी स्पन्दन-शक्ति में उष्णता का संचार हो चुका था और स्वामी जी तो किसी अदृश्य अभिनय को देख रहे थे। उनकी पलकें पूर्णतः स्थिर थीं, जिसमें बाहर के दृश्य प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

'भजन समाज' के अधिकारीवर्ग ने अनुभव किया कि स्वामी जी के लिए एक पग भूमि को नापना भी दुस्तर होगा। उन्होंने निवेदन किया कि स्वामी जी कार से न उतरें। परन्तु स्वामी जी ने एक न सुनी और घटना का सूत्रपात यहाँ तक हो गया कि स्वामी जी स्वयं कार के द्वार को खोलने लगे।

किन्तु जनता ने द्वार की तिल-तिल भूमि को समाकीर्ण कर, द्वार खोलने का अवसर ही नहीं दिया। हमारे आश्चर्य का पारावार नहीं रहा, जब हमने देखा कि तृणावर्त पवन-संतुल्य भक्त-समाज के वेग से हमारी कार अयन्त्रगति से पीछे की ओर प्रचलित हो रही थी, जो कुछ ही देर में चौराहे पर भी पहुँच गई। क्षण भर की देर थी कि कार के संचालक ने कुशलतापूर्वक कार को तीव्रगति से पीछे हटा कर, 'आस्तिक समाज' की ओर प्रयाण किया, जब लाखों वाणियाँ तुमुल-घोष कर रही थीं। हमने सुना वह तांडव गर्जन, 'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' और सुनते गए, जब तक वे विजय ध्वनियाँ 'आस्तिक समाज' की दूरी में अन्तर्हित नहीं हो गईं।

कुछ ही देर में 'आस्तिक समाज' का मनोहर जनसमागम दृष्टिगोचर हुआ। वहाँ विशेषता यह थी कि सभी कीर्त्तन में दत्तचित्त थे। ज्यों ही स्वामी जी कार से उतरे, त्यों ही 'स्वामी जी आ गए' का यह वाक्य एक बालिका के मुख से प्रस्फुरित होता हुआ, तड़ित्पल में ही कई सहस्र भक्तों की वाणी का सुमन्त्र-सा हो गया। तो फिर क्या कहना? सिन्धुपति का उदय और तरंगावलियों का उत्तेजित नृत्य। प्रदीप्त प्रकाश और पतंगों का उसमें सम्मेलन।

स्वामी जी कार से उतर तो गए, परन्तु दो सौ गज तक की विस्तृत-जनता को पार कर जाना था। केवल एक क्षण तक नेत्र मूंद, न जाने स्वामी जी ने क्या सोचा और दूसरे क्षण, कलरव-कलित पुरवासियों में प्रविष्ट हुए और वायु के अगोचर वेग के समान मंच की ओर पुरोग्रणी हुए। उनकी दक्षता और स्फूर्ति ने हमारे लिए पथ का निर्माण किया; हमारे मार्ग को सुमार्ग बनाया – जिसके फलस्वरूप हम उनके अनुसरण से वंचित नहीं हो पाए। वे हमारे पथ-प्रदर्शक थे और हम उनके चरणों की छाया के अनुपम-सौरभ की मनोरमता में मार्ग पर चल रहे थे। चन्द्रकिरण के समान अमृतवर्षा करते हुए स्वामी जी, मंच उपरिभाग से विराट्-समागम के अवर्णनीय प्रसार को देख कर अति हर्षित हो उठे। उनके मुखमंडल पर उनकी वही स्वभाव सुलभ मुस्कान संचरित हो गई, जिसने कोटिशः भारतवासियों के हृदयों को मोहित किया था।

स्वामी जी ने मंच पर से देखा। वह कैलासाचलविहारी का रौद्रात्मक रूप था। लाखों की संख्या में वह प्रगहन रूप, तमसाच्छन्न विश्व को मानो विदीर्ण करने पर तुला हुआ था। काषायाम्बरधारी महाशिव के उन गणों ने सहस्त्रों मुण्डों से तांडव वेष को संपूजित, समभिवन्दित और समर्चित किया

और अपने उस खाली खप्पर को खोला, जिसमें नटराज ने चन्द्र-कलाधर के रूप में अमृतांशुपान के लिए तथा अपने प्रव्राट् मुण्डों की शान्ति के लिए हलाहल को अमृत कर भर दिया।

स्वामी जी मानव को अपना लोकान्तर-विश्रुत अध्यात्मवाद का सन्देश दे रहे थे, सत्य का उपदेश दे रहे थे, सद्कर्म-परायणता का आदेश दे रहे थे और मानव के मन में प्रज्ञा रूप से प्रवेश कर रहे थे। उनकी सुन्दर, श्रुतिमधुर, कर्णप्रिय, नेत्रोल्लासक, हृदयानन्दिनी गीर्वाणी आकाशगंगा की देवोपम-धवलता को नि:सृत करती हुई, मरुभूमि को उपवन, क्षेत्र, ग्राम, जनपद और पत्तन के योग्य बनाती, दिग्विश्रुता-कीर्त्तिमती विजय-वैजयन्ती का महोत्सव सम्पन्न कर रही थी।

जिन लोगों ने 'शंकर मठ' तथा 'भजन समाज' में स्वामी जी के दर्शनों के सुअवसर को प्राप्त नहीं किया, वे भी 'आस्तिक समाज' में नागरिकों की संख्या को द्विगुणित करते हुए खड़े थे। उनके नेत्रों में गंगा-जमुना का प्रवाह था। उनके रोम-रोम में प्रकम्पन था। उनकी आँखें सजल हो गईं और उनके जीवन सफल हो गए।

अन्तत: कार्यक्रम सम्पूर्ण हुआ। संचालक वर्ग ने अभिनन्दन पत्र समर्पित किए। जनता ने शान्त होकर, आज्ञाकारी बालक की नाईं स्वामी जी को अपने मध्य से पार होने दिया। लाखों हृदयों में एक अमिट चित्र अंकित हो गया; एक अमर सन्देश ध्वन्यंकित हुआ और एक आदर्श की शाश्वत-स्मृति अंकुरित हो उठी, जिसने विश्व के रंग-मंच पर विश्वशान्ति का, विश्व साहौर्द और विश्वात्मकता का सूत्रपात करना था; क्योंकि लाखों हृदयों की शान्तिप्रियता ही कोटिश: हृदयों की शान्ति है; जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तिगत, परन्तु अनवरत तथा कठोर कर्त्तव्य है और यही व्यक्तिगत शान्ति ही कालान्तर में विराट्-शान्ति का अभ्युदय करती है। ऐसी शास्त्र की वाणी है।

(6)

28 अक्टूबर। विगत रात्रि के अथक परिश्रम के कारण हमारे नेत्रों में अग्नि-ज्वाला की भीषणता सी व्याप रही थी। नेत्र खोले नहीं खुलते थे। परन्तु स्वामी जी पूर्ण स्वस्थ थे। उनमें वही स्फूर्ति थी। अत: 'वनिता विश्राम कन्या विद्यापीठ' तथा 'सुनीता विद्यालय' में क्या-क्या हुआ, हमें प्रत्यक्ष ज्ञात

नहीं। परन्तु श्रुतिप्रमाण से प्रतीत हुआ कि अत्यन्त आनन्ददायी तथा हार्दिक-स्वागत का आयोजन हुआ था और स्वामी जी ने भी अत्यन्त मधुर स्वरों में कन्याओं को अपना सन्देश दिया।

जब स्वामी जी लौट कर 'लक्ष्मी बाग' में आए तो रविरथी आकाश की आधी सीमा नाप चुका था।

सायंकाल को 6 बजे तक स्वामी जी ने भक्तों के आवास-गृहों को पवित्र किया। उन्हें जीवन को सफल तथा संस्कृत बनाने का उपदेश दिया। 'संसार के प्रत्येक कर्म को कुशलतापूर्वक करते हुए, प्रत्येक प्राणी आत्म-सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।' स्वामी जी ने कीर्त्तन और भजन द्वारा सबको यही उपदेश दिया कि 'मनुष्य कभी भी ईश्वर-नाम को न भूले, क्योंकि जीवन की सच्ची सफलता ईश्वर-भक्ति पर निर्भर रहती है।' साधारण श्रेणियों के व्यापारियों के परिवारों को मितव्ययिता का उपदेश देते हुए आपने कहा कि 'वैभव-विलास में रत्ती भर द्रव्य भी व्यय नहीं करना चाहिए।'

इस प्रकार स्वामी जी ने द्वार-द्वार पर जा कर, धर्म और संस्कृति में छिपे लोकधर्म तथा मानव-कर्त्तव्य के पवित्र-मन्त्र का उच्चारण करते हुए, सायंकाल के 6 बजे 'ऑल इण्डिया रेडियो' के बम्बई स्टेशन में प्रवेश किया और अपना सन्देश दिया। तदुपरान्त महाराज ने महामण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्द जी के आश्रम में आयोजित सत्संग में कीर्त्तन करने और आशीर्वाद देने के हेतु प्रयाण किया। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो रहा था।

*　　*　　*　　*

अश्वत्थ-विटप के नीचे सत्संग प्रारम्भ हुआ। वेदस्वर के पर्जन्यनाद ने हृदय-प्रदेश के दानव पर कुलिशाघात किया। महिलाओं और बालकों, कन्याओं और वृद्धों, युवकों और महिलाओं का अहोपुण्य तीर्थीकरण था वह।

सत्संग के उपरतः स्वामी जी ने 'लक्ष्मी बाग' में प्रवेश किया तो अश्विनोदयकाल का समारम्भ होने वाला था।

(7)

29 अक्टूबर। हमारे बम्बई-निवास का अन्तिम दिन था। अतः प्रातःकाल होते ही नगर के महोच्चपदस्थ नागरिकों का आना प्रारम्भ हो गया। स्वामी जी

से यह प्रार्थना की गई कि वे अनाच्छादित रथ पर नगर भ्रमण करें, अन्यथा जन-पवन का वेग 'लक्ष्मी बाग' में सहन नहीं हो सकेगा। अत: अनाच्छादित रथ के ऊपर स्वामी जी विराजे। नगर में सहसा ही यह समाचार प्रसारित हो गया कि स्वामी जी सबको दर्शन देने आ रहे हैं। दामिनी के समान सबके हृदय स्पन्दित होने लगे। अटारियाँ कुलवधुओं से सजने लगीं। मार्ग के दोनों ओर पुरवासियों की पंक्तियाँ शोभित होने लगीं।

ऊपर से पुष्पवर्षा हो रही थी। सिंदूर की लाली वायुमंडल में नृत्य कर रही थी। स्थान-स्थान पर कीर्त्तन और भजन का उपक्रम प्रचलित हो रहा था। झांझ और करतालें, मृदंग और शहनाइयाँ और मँजीरे बज रहे थे। वह शान्ति का शुभ-मुहूर्त्त था, जब जनता ने शान्तिपूर्वक शान्ति के अवतार को दिखा, जब जन-जन की वाणियों से रामनाम प्रस्फुरित हो रहा था, प्रणव की ध्वनि जाग रही थी, वेद के गीत गूँज रहे थे और हरिनाम की पयस्विनी उदित हो रही थी। मूक भी गाते थे और अशक्तांग भी नाचते थे।

यह था हमारी बम्बई नगरी का दृश्य, जिसे लक्षश: नागरिकों ने देखा और अपने हृदय में अंकित कर लिया। उन्हें ज्ञान हो गया कि किसलिए उनको स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बम्बई पवित्रतीर्थ सन्तों की भूमि है। तत्फलत: उनके हृदयों में सन्त-परम्परा के संस्कार सजीव हैं; जिन्हें अपने जीवन से निर्मूल करना किसी भी प्राणी के लिए सम्भव नहीं और जो समय पाते ही अंकुरित हो जाते हैं और दर्शनमात्र से ही पनपने लगते हैं तथा स्मृतिपरायण होने से फल भी जाते हैं!

*　　　*　　　*　　　*

तदुपरान्त हम 'शान्ता क्रूज विमान केन्द्र' के पास पहुँचे जहाँ बम्बई प्रान्तीय 'दिव्य जीवन मंडल' की आधार-शिला को स्वामी जी ने अपने करकमलों से प्रतिष्ठित करना था। श्रीयुत् स्वामी कृष्ण चैतन्य जी महाराज के उद्योग से दिव्य जीवन मंडलान्तर्गत इस शाखा के शिलान्यास के लिए, नगर-कोलाहल से अतिदूर, वह सुन्दर क्षेत्र निश्चित किया हुआ था।

बम्बई-प्रान्तीय 'दिव्य जीवन मंडल' की आधार-शिला को संप्राणित कर, स्वामी जी शान्ता क्रूज (उप-नगर) में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते ही हमने अपूर्व जन-समारोह देखा। कह नहीं सकते कि कहाँ तक वह जनक्षेत्र विस्तृत था। हमने तो मार्गों और उपमार्गों, झरोखों और अटारियों, छतों तथाच तिल-

तिल भर भूमि को जनपदसमाकीर्ण देखा। अपने सुन्दर भारतीय वेष में जनता महासौन्दर्यान्वित दृष्टिगत हो रही थी; जिसने सत्यप्रधान शान्ति के महारथी का अभिनन्दन किया।

15 मिनट तक स्वामी जी ने उन्हें हरिनाम का माहात्म्य और महद्-पुण्य प्रदान किया। तत्फलत: वे नागरिक आध्यात्मिक रीति का ही अनुपालन करते हुए, अपने गृहमग की ओर शान्तिपूर्वक पग धरते हुए, प्रस्थित हुए। जनता के विस्तारित हो जाने पर स्वामी जी श्री पुरोहित-परिवार को दर्शन देने उनके आवासगृह में प्रविष्ट हुए। महामण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्द जी महाराज भी वहाँ विद्यमान थे तथा दिग्विजय मण्डल के अन्यान्य स्थानीय संचालक-सहयोगी भी।

पादपूजा का उपक्रम प्रारम्भ हुआ तथा सभी उपस्थित महानुभावों ने बम्बई के नागरिकों का प्रनिधित्व करते हुए स्वामी जी की पादपूजा की। दिन के दो बज चुके थे।

सायंकाल के 4 बजते ही स्वामी जी ने सुविख्यात 'भारतीय विद्या भवन' में पदार्पण किया। बम्बई विश्वविद्यालय के उप-कुलपति जस्टिस् श्री भगवती जी ने स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया। 'भारतीय विद्या भवन' नगर के विद्वानों से आपूर्ण था।

माननीय कुलपति महोदय ने अपने विवरण में स्वामी जी का पूर्ण परिचय दिया और उनके लोकोत्तर ज्ञानयज्ञ की प्रशंसा की – 'स्वामी जी बीसवीं शताब्दी के महान् दार्शनिक, योगी, सन्त तथा कर्मयोगपरायण महात्मा है... !' इस प्रकार के वाक्यों के नि:सृत होते ही जनता ने करतल-ध्वनि द्वारा माननीय उप-कुलपति के विचारों का अनुमोदन किया।

अपने संदेश में स्वामी जी महाराज ने योग की प्रणाली का व्यावहारिक-विश्लेषण करते हुए, सूचित किया कि 'वायुमार्ग से जाना, अदृश्य हो जाना तथा मनोनुकूल-शरीरों की प्राप्ति करना तथा तथाविध सभी सिद्धियाँ योग की मनोवैज्ञानिक शाखायें हैं, किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो अपने जीवन को पतन से उत्थान की ओर ले जाना है। अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुराचरण से सदाचरण तथा स्वार्थपरता से विश्वकल्याण की ओर अपनी बौद्धिकता तथा कर्मपरायणता को जागृत करना ही योग है। भौतिकता, नास्तिकता, हिंसा, असत्यता, कामुकता, धूर्तता से विरत होकर पारमात्मिकता, ईश्वरीयता, अहिंसा, सदाचरण, इन्द्रिय-संयम तथा

शीलपरायणता के मार्ग की ओर अपनी बुद्धि, अपने कर्म तथा अपनी वाणी को अभ्युदित करना ही योग है। योग यदि अपने अन्दर नहीं प्राप्त होता तो और कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता।'

इस प्रकार 5 बजे तक उपस्थित महानुभावों ने स्वामी जी का व्याख्यान दत्त-चित्त होकर सुना। जिस योग को उन्होंने इन्द्रजाल के समान एक विज्ञान माना था; जिस योग की प्राप्ति करने के लिए अरण्यों में जाना ही उनका विचार था; उसी योग का सारगर्भित परन्तु सरल तथा समुचित-विश्लेषण समझते ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि यदि योग का मार्ग हमारे समीप ही है तो हम निश्चयत: उसको अपने दैनिक-जीवन में व्यवहृत करेंगे और अपने पूर्वजों तथा आचार्यों के सद्-उत्तराधिकार की सम्प्राप्ति कर अपने ऐहिक और आमुष्मिक-जीवनों तथा तद्गत-क्लेशों की इतिश्री कर देंगे।

* * * *

यह विजय-वैजयन्ती है, जो कल प्रात:काल गुजरात की भूमि पर लहरावेगी। भक्ति-समन्विता बम्बई की जनता ने जो अश्रुतपूर्व सहयोग दिया, हमारा सांस्कृतिक इतिहास उसका ऋणी रहेगा और उसकी पुनरुक्ति समय-समय पर करता रहेगा। भावी-भारत की जनता के समक्ष भारत के इस सिंहद्वार की विरुदावली गाई जाती रहेगी कि यहीं बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में अवतार-पुरुष ने अपनी धर्मध्वजा को उत्तोलित कर, योग और ज्ञान, कर्म और भक्ति, आध्यात्मिकता और अद्वैतनिष्ठा की स्वरलहरी भारतान्तर द्वीपों के लिए जागृत की थी और इसकी रूपरेखा को अपने आध्यात्मिक-तत्त्वावधान में संवारा था तथा इसके अतीतकालीन गौरव को आदर्श और विमल बनाया, संस्कृत और सत्यानुविन्दित किया था। जब यह कथा समाप्त होगी तो उनके मुखों से स्वत: ही जय-जयकार की ध्वनि प्रोद्यत होगी...

'जय हो शिवानन्द सरस्वती की'



शिवानन्द दिग्विजय

विजय द्वादशी

गुजरात में

मातेश्वरी! न जाने कितनी बार तूने अपने पुत्रों की रणबलि देकर भी भारत का सौन्दर्य अक्षत रखा? हमें कितना आनन्द अनुभूत हो रहा है, हम कह नहीं सकते। तेरे क्षेत्र के अन्न-जल को प्राप्त कर, हम हिमांचलनिवासी भिक्षुक तृप्त हुए, शीतल हुए; सचमुच परम आह्लाद में तत्पर हुए।

(1)

अमलसाद

30 अक्टूबर। चन्द्रवासर के उदय होने से पहले ही दिग्विजय-मण्डल अमलसाद के ग्राम केन्द्र में प्रविष्ट अुआ। स्टेशन पर पहुँचते ही हमने जब टूरिस्ट-कार के विशाल-द्वारों को खोला तो हमारी आँखें किसी अलौकिक-विस्मय में लवलीन हो गईं। श्वेत वस्त्रधारी सौराष्ट्रीय जनमण्डल करताल, मँजीरे, झांझ तथान्य वाद्यों के स्वर-में-स्वर मिलाता हुआ, देवता के शुभ्र-गीतों की मन्दाकिनी में अनन्त सागर की ओर बहता जा रहा था। गलियों में ग्रामदेवता दौड़ रहे थे। जन-कलरव से विटप-दल रह-रह कर कांप उठते थे। आज ही न जाने कितने दिनों के उपरान्त ध्वजाओं ने अपने मस्तक ऊँचे किए। ग्रामस्थ ग्वाल-बालों के समुदाय ग्राम में प्रविष्ट होती हुई रथयात्रा की अधिकाधिक संख्या को अधिकतम करते, विजय-मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। ज्यों-ज्यों विजय-रथानुगामी विजय-सेना अग्रसर होती, त्यों-त्यों धूल के बादल, भूमिधरों के पथ पर से जागते हुए, आदित्य के रथ को भी आवर्णित कर देते थे।

अमलसाद की इस विजय-यात्रा का श्रेय जितना श्रीयुत् भद्रशंकर भट्ट जी को है, उतना ही श्रीयुत् मगनलाल वैद्य जी तथा 'गंगेश्वर-स्मरण कार्यालय' के सदस्यों को भी है, जिन्होंने उस ग्राम में पार्थिव-स्वर्ग की सृष्टि की थी।

स्थानीय सुविशाल भवन में श्री स्वामी जी ने ग्राम्य-संस्कृति की कीर्ति को समुच्चरित करते हुए, उपस्थित भक्त-समागम को सन्देश दिया। उन्होंने आचार्य के उपदेशों को सुना और नेत्रों को मूंद कर उनको अपने हृदय में समवर्तित कर लिया। जब कीर्त्तन का समारम्भ हुआ तो जनता ने जो कुछ भी अपना था, सब लुटा दिया और वे अपने-अपने आश्रमों को लौटे तो उनके विशाल-हृदयों से नवजीवन का संगीत जाग रहा था, क्योंकि उन्होंने अपने को खाली कर दिया था। अन्यथा आत्मदेव मुरली में स्वर भर ही कैसे पाते?

अपराह्नकाल के अस्त होने के पूर्व अमलसाद के वृक्षों की छाया के नीचे, लगभग शतार्द्धसहस्राधिक ग्रामप्रभु संगठित हो चुके थे। उस दिन उनके जीवन का अपूर्व त्यौहार था, जबकि उन्हें गुरुकृपा का वरदान प्राप्त होने वाला था।

स्वामी जी ने भी अपना संदेश देते हुए, ठीक वही वचन उच्चारित किए, जिनकी आशा में तीसों मील दूर से ग्राम्य प्रभुता आई थी। ज्ञानगंगा निरन्तर प्रवाहित थी और तीर्थयात्री उसमें स्नान कर रहा था। अपने जीवन को अमृत जल से अभिषिक्त करता हुआ, परम दिव्यतम यश का भागी बन रहा था। पुजारी के मन्दिर में दीपक जल रहा था, जिसके प्राचीर्य-आलोक ने उसे निज इष्टदेव की महिमामयी छवि के दर्शन कराए।

स्वामी जी के सन्देश के उपरान्त श्री नलिन भट्ट तथा श्री भद्रशंकर भट्ट जी ने महाराज के सम्प्रति जनता की ओर से अभिवन्दना समर्चित की। श्रीयुत् मगनलाल जी ने जनता की ओर से 'रजतांकित अभिनन्दन पत्र' को पूज्य गुरुदेव के चरणों में समर्पित करते हुए, आशीर्वाद की अभियाचना की। अन्ततः सभी भक्तों की ओर से शुभ-कामनाएँ प्रत्यक्ष की गईं।

दूसरे दिन 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' ने पौ फटते ही बड़ौदा के लिए प्रस्थान किया।

(2)

बड़ौदा

31 अक्टूबर। दिग्विजयवाहिनी ने बड़ौदा में प्रवेश किया। 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' की स्थानीय स्वागत-समिति ने विश्वविश्रुत-यशस्वी की

अभिवन्दना की। पुरवासीगण फूलों की मालाओं और धूप-दीपादि से सम्पन्न होकर आये थे।

सर्वसम्मति से स्वामी जी महाराज के ठहरने का प्रबन्ध 'विठ्ठल मन्दिर' में किया गया, क्योंकि सार्वजनिक सम्मेलनों की सुविधाओं के उपयुक्त यह प्रसिद्ध स्थान किसी भी नगरवासी के लिए अज्ञात न था।

स्वामी जी ने यथासमय विठ्ठल मूर्ति के पवित्र सन्निधान में सत्संग समारम्भ किया। उन्होंने गाया...

बुद्धि नहीं औ' देह नहीं हो, नहीं कभी तुम चंचल प्राण,
तीन गुणों से परम परात्पर, आत्मा हो तुम अमर महान्।
मानव-सेवा प्रभु की सेवा, ऐसा दृढ़-विश्वास करो,
कर्म-करण की ममता त्यागीं, रामचरण-रज-दास बनो।
सरल, सुलभ-अति, प्रभु-पद-दायक, सर्व-सुगम है, भक्ति महान्,
कलियुग में केवल योग यही है, गावो हरिहर केशव राम।

यही स्वामी जी का योग था, जिसकी छत्रच्छाया में केवल वीतराग संन्यासी ही नहीं, किन्तु पुत्र-धनादि-सम्पन्न गृहस्थी, मणिमुकुटरंजित राजवर्ग, दरिद्र, तथा अनाथ मानववर्ग समान रूप से स्थान पाते थे। अपने धर्मचक्र-प्रवर्त्तन द्वारा स्वामी जी ने जनता के हृदयों में यह सन्तोषजनक भावना भर दी कि योग प्रत्येक प्राणी के लिए सम्भव है। अपने-अपने नियत कर्मों को करते हुए भी, मनुष्य कर्मफल-त्याग द्वारा कर्मजनित-वासना का क्षय कर आवागमन की विश्रान्ति की भूमिका का सूत्रपात् करता है।

'विट्ठल मन्दिर' के दीर्घकालीन सत्संग के उपरान्त स्वामी जी ने दर्शनार्थी तथा मन्त्र-दीक्षाभिलाषी भक्तों की कामनापूर्ति की। घंटों यही उपक्रम चलता रहा। गुरु और शिष्यों का मेला लगा हुआ था।

सायंकाल को 'गायकवाड़ विश्वविद्यालय' की उप-कुलाध्यक्ष महोदया श्रीमती हंसा मेहता के सभापतित्व में, बड़ौदा के नागरिकों की ओर से 'न्याय मन्दिर' में स्वामी जी का सार्वजनिक सम्मान सम्पन्न हुआ। बड़ौदा महाविद्यालय के संस्कृताध्यापक श्री गोविन्दलाल भट्ट जी ने अपनी स्वभावसुलभ काव्य-सलिला वाणी से स्वामी जी का यथायोग्य परिचय दिया। तत्पश्चात् श्री टोडरमल चिमनलाल सांवलबिहारी सेठ जी ने अपने प्राक्कथन में यह स्पष्ट बतलाया कि 'स्वामीजी जनतंत्र भारत के सर्वप्रथम धर्मचक्र-प्रवर्त्तक तथा आचार्य हैं।'

माननीय सेठ जी के प्राक्कथन के उपरान्त श्री गो.ह. भट्ट जी ने स्वामी जी की यात्रा के माहात्म्य को आध्यात्मिक-पुनरुत्थान के रूप में सबके समक्ष प्रकट किया। उन्होंने सभापति की आरे से निवेदन भी किया कि स्वामी जी पवित्र-सन्देश देने की कृपा करें।

जनता के प्रतिनिधियों के सम्मान का प्रत्युत्तर देते हुए, स्वामी जी ने सर्वप्रथम आत्म-तत्त्व की मीमांसा की और क्रमश: यह परिज्ञान कराया कि 'एक ही आत्मा में लोक-लोकान्तर प्रतिष्ठित है। आत्मा सभी प्राणियों के हृदयों में भिन्न-भिन्न प्रतीत होता हुआ भी एक ही है। एक ही आत्मा के सर्वव्यापी होने से हमारे पारस्परिक भेदभाव की समस्या का कोई भी मूल्य नहीं। तथैव हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक-वैमनस्य की कोई सत्कारिता नहीं। एक ही तत्त्व की विभिन्न नामरूपात्मक-प्रतीति नि:सार है और असत्य है। सत्य एक है और उसी का ज्ञान श्रेयस्कर है।'

लगभग 70 मिनट तक आचार्य का व्याख्यान प्रगतिमय रहा। तदुपरान्त श्रीमती हंसा मेहता ने जनता की ओर से महाराज के चरणारविन्दों में अनेकों मानपत्र समर्पित किये। जनता ने जयध्वनि से हर्ष और उल्लास का प्रकाशन किया।

सभाविसर्जन के प्रतिपूर्व श्रीमती माता जी ने अपने दो शब्दों में हमारे उपरोक्त प्रसंग की ही पुनरावृत्ति की तथा स्वामी जी महाराज को जनता की ओर से प्रणाम किया।

(3)

1 नवम्बर। द्वितीय प्रहरोदय होते ही 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के सहयोगियों ने विराट् आयोजन किया हुआ था। श्रीयुत् के. पी. पाण्ड्या जी के अध्यक्षत्व में, मण्डल का दीक्षा-संस्कार सम्पन्न करने के लिए श्री स्वामी जी महाराज ने विराट् जनसम्मेलन के समक्ष सत्संग का उद्घाटन किया।

'दिव्य जीवन मण्डल' की शाखा को दीक्षित करते हुए, श्री स्वामी जी महाराज ने कीर्तन और भजन किए। दिन के 12 बज चुके थे।

दिग्विजयी स्वामी जी समण्डल अहमदाबाद की आरे प्रस्थान कर रहे थे।

* * * *

अहमदाबाद

आनन्द, नाडियाड, मोहम्मदाबाद आदि स्थानों में उत्सुक जनता को महातपस्वी की दिव्य-छवि के दर्शन कराती हुई, दिग्विजयिनी जब अहमदाबाद पहुँची तो हमने मानव-सागर को हिलोरें लेते देखा। मानो विशाल गगन में रजत-गंगा प्रवाहित हो रही थी।

अभ्यर्थकों में सर्वाग्रणी थे – श्री हरिदास अछरतलाल, श्री शान्तिलाल मेहता, श्री एन.बी. ठाकोर, श्रीमती केवलराम चेलारामणी, श्रीयुत् स्वामी माधवतीर्थ जी और गीता मन्दिर के अन्यान्य महात्मागण। गुजराती दैनिक 'सन्देश' के सम्पादक श्री एन.सी. बोदीवाला अशक्त होते हुए भी महाराज के स्वागत के लिए आए थे। उनका जर्जर शरीर भी अपने कष्टों की परवाह न कर, महाराज के चरणों में आ गिरा था। भक्ति की यह पराकाष्ठा थी; मानवता का यही स्वरूप दर्शन था; देवत्व की यही भूमिका थी और आत्मत्व की ओर यही संकेत था... सम्भवत: राजपथ भी।

स्टेशन से विजयरथ चला, प्रसिद्ध 'गीता-मन्दिर' की ओर। गीताव्यास महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्द जी महाराज ने यहीं माँ गीता की पावन-प्रतिष्ठा की है। मन्दिर अति-भव्य और परम-पवित्र है। गीता के महानायक का संस्मरण तो है ही, साथ-साथ भारतीय-संस्कृति की सार्वभौम-सिद्धान्तपरायणता का उज्ज्वल रत्न भी है।

'गीता मन्दिर' में समारोहित भक्त-जनसमाज को दर्शन देकर, श्री स्वामी जी ने पुन: 'माणिक भवन' की ओर पदार्पण किया। वहाँ विराट् समारोह सम्पन्न होने वाला था। श्रीयुत् स्वामी माधवतीर्थ जी महाराज भी वहाँ उपस्थित थे।

पुन: शिव जी की मस्ती आरम्भ हुई। कीर्तन-पर-कीर्तन, उपदेशों-पर-उपदेश। जनता में भक्ति का रंग गहरा होता गया। केवलमात्र सिर ही तो हिल रहे थे। कभी-कभी तालियाँ बज उठतीं तो कभी निर्जीव प्रतिमा के समान उपस्थित भक्त-समाज आत्मतन्मय-सा हो जाता। भक्ति और कीर्तन की सोमरसवती गंगा बह रही थी और मनुष्य जी भर कर अपनी प्यास मिटा रहा था। श्रीयुत् माणिकलाल जी, जिनके भवन में सत्संग हो रहा था, किसी नवीन-चेतना में समाश्रित थे।

'माणिक भवन' में सत्संग के उपरान्त जनता 'गीता मन्दिर' की ओर दौड़ी आई। भक्तों की हलचल से माँ का अंक लहलहाने लगा और गोद भरने लगी। अबोध था बालक। अत: रोते और खिलखिलाते, गिरते और

पड़ते स्नेहमयी के अंक में विश्राम पाने, ज्ञान और शरण-त्राण पाने आ रहा था।

रात्रि के मध्यप्रहर तक सत्संग का नशा गहरा रहा। सभी लोग भोजनादि की सुध-बुध खोए हुए, श्री स्वामी जी महाराज के कीर्त्तन को सुनते रहे, गाते रहे और गाते ही रहे। कुमारी हरिबाला भी उसी सत्संग में थीं। उन्होंने अपनी कौमार्य-सुलभ वाणी द्वारा भगवान की महिमा का उच्चारण किया और सुनने वालों के कानों में अमृत-लहरी संप्रसारित कर दी।

(4)

2 नवम्बर। ब्रह्ममुहूर्त में ही 'गीता मन्दिर' पवित्र-विजयनाद से आपूरित हो उठा। मन्दिर के अध्यक्ष श्री स्वामी शिवानन्द जी ने हमारे महाराज को मन्दिरान्तर्गत सभी खण्डों और उपखण्डों का परिचय दिया। मन्दिर के नीचे भूगर्भखण्ड भी दिखलाए।

मन्दिर के पवित्र भागों की परिचयावलियाँ पाते-पाते लगभग 9 बज चुके थे। अत: स्वामी जी विशाल भवन में आए, जहाँ सत्संग का आयोजन किया हुआ था। महाराज ने ज्यों ही भवन-खण्ड में प्रवेश किया, त्योंही वहाँ पर उपस्थित नर-नारियों ने जयजयकार से गुरुदेव के प्रति अपने प्रणाम समर्चित किए। कुमारी हरिबाला ने कर्णामृतलहरी से सम्प्रोल्लसित हरिनाम-संकीर्त्तन की रसगंगा बहाई। उत्साहपूर्वक जनता ने भजन और कीर्त्तन में योग दिया। वे सब जीवन की कुटिलताओं को किनारे रख, आत्मिक-जीवन के महिमामय-स्तर पर आसीन थे।

हिन्दी तत्त्वज्ञान प्रचार समिति के मन्त्री श्री शान्तिलाल मेहता ने जनपदवासियों की ओर से श्री स्वामी जी के प्रति अभिनन्दन वचन संप्रकाशित किए। श्री रामलक्ष्मणाचार्य जी ने ओजस्वी वक्तृता में महाविभूति के प्रति जनता के प्रेम की अभिव्यक्ति की। तदुपरान्त श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने श्री गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हो, पुन: सबके समक्ष महाराज के जीवन-विषयक अभिवचन प्रकट किए और महाराज के महिमामय जीवन का सम्प्रति-विशाल उद्देश्य प्रकाशित किया। 'विशाल मानव समाज को सांसारिक-जीवन की संकीर्णताओं से जगा कर, उसे परमार्थ की अनुभूति कराना महाराज का प्रथम उद्देश्य है, जहाँ प्रत्येक मनुष्य मनुष्य-देह और मनुष्य-जीवन में ही आत्ममय सुन्दर और चिरन्तन-पद की प्राप्ति कर पाता है...।'

अब स्वामी जी उपदेश देने उठे – आनन्द और करुणा के विशाल-सागर के समान; जिसमें अनन्त-मोतियों का भण्डार निहित रहा करता है। उन्होंने गीत गाए और उपदेश दिए। जनता ने आनन्दातिरेक होकर, कीर्त्तन में योग दिया। तभी तो वह घण्टों तन्मय हो, अवतार-पुरुष के सान्निध्य में विमुग्ध रही।

व्याख्यान के अनन्तर श्री शान्तिलाल मेहता जी ने अपनी ओर से कहा– 'श्री स्वामी जी महाराज वैदिक-संस्कृति के विशाल ज्ञान के पुनरभ्युदय और पुनर्प्रसार के लिए अवतरित हुए हैं। महाराज ने इस दिग्पर्यटन द्वारा वैदिक-महर्षियों की सन्तानों के अस्फुटभावों को विकास के पथ पर ला दिया है...।'

उसी दिन दोपहर के उपरान्त तीन बजे 'पत्रकार परिषद्' के अधिवेशन में अपना सन्देश देते हुए, श्री स्वामी जी महाराज ने स्पष्टत: और संक्षेप में कहा –

'सेवा, दया, मैत्री, आत्मशुद्धि और ध्यान द्वारा प्रत्येक मनुष्य सच्चे जीवन की प्राप्ति कर सकता है। सदा अच्छे बनो और अच्छे ही कामों को करो। जहाँ हो और जहाँ रहते हो, अच्छाई के अतिरिक्त सब कुछ को नि:सार, मिथ्याचार तथा भ्रम समझ कर, त्याज्य जानो। अपमान और निन्दा के आक्रमणों को सहन करने की अपूर्व शक्ति धारण करो तथा 'मैं कौन हूँ' इस वाक्य पर सदैव विचारपरायण रहो। यही साधना है और यही एकमात्र साधना है...।'

परिषद् के सदस्यों ने चुपचाप सब कुछ अंकित कर लिया – विमुग्ध और विभोर हो, निर्वाक् और चकित हो।

*　　　*　　　*　　　*

साबरमती की ओर। यही परम रम्यमाण साबरमती है; युगजनरंजन महात्मा गाँधी जी का सर्वप्रथम आश्रम, जहाँ से उन्होंने महात्मा बुद्ध के त्याग की पुनरावृत्ति करते हुए डाँडी यात्रा का श्रीगणेश किया था और जहाँ उनके चरणारविन्दों की अवशेष-विभूति आज भी मानव-समाज को सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का उपदेश देती आ रही है तथा उसे परमार्थ का पथ दिखला रही है। साबरमती की रत्ती-रत्ती भर भूमि भी युगस्मरणीय-आत्मवाद के गीतों की पुनरावृत्तियाँ करती रहती है।

आश्रम में पहुँच ही पाए थे कि श्रीयुत् प्रतापभाई ने आश्रमवासियों के साथ महाराज का स्वागत किया। आश्रमवासी बालकों के साथ जब श्री स्वामी

जी ने कीर्तन प्रारम्भ किया तो सम्पूर्ण वायुमण्डल प्रतिमुखरित-सा हो उठा; मानो आत्मविस्मृत हो नाच रहा था।

कुछ देर तक वहाँ रह कर, श्री स्वामी जी पुण्यतोया साबरमती के किनारों पर से होते हुए, 'प्रेमबाई हॉल' की ओर अग्रसर हुए, जहाँ श्रीयुत् एन.बी. ठाकोर और श्रीयुत् सेठ हरिदास अछरतलाल उत्कण्ठित होकर, महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे।

'प्रेमबाई हॉल' में श्री स्वामी जी के प्रवचन हुए। प्रवचनोपदेशोपरान्त प्रोफेसर दावर ने जनता को सम्बोधित कर, महाराज के जीवन पर व्याख्यान दिया। अन्ततः आशीर्वाद की याचना करते हुये, उन्होंने महाराज के दीर्घ-जीवन के लिये शुभेच्छाएँ प्रकट कीं। जयजयकार के साथ समागत भक्तसमाज ने भी उसका समर्थन किया।

*　　　　*　　　　*　　　　*

इस प्रकार जन-जन के मनों में पवित्र रामनाम की अमृतस्वा पयस्विनी को लोलायमान् करते हुये, प्रत्येक व्यक्ति को उच्चातितर स्तर की ओर विस्तृत करते हुए तथा सदाचार, सद्विचार, सर्वात्मभाव और सर्वभूतहित की गीता का संप्रतिप्रचार करते हुए, दिग्विजयी महाराज ने – युगविभूति और अवतार पुरुष ने विशालतम मण्डलों, मन्दिरों और विद्यालयों में, आश्रमों और भवनों में आदिदेव की प्राचीन गीता को दिग्यशस्वी किया; परम-परिमार्जित विचारधारा को जन्म दिया और धर्मस्थापन कर, एकदम नवीनतर योगप्रणाली पर जनता की बहुधाकार रुचियों को एकस्थापित किया।

उसी दिन हमने अहमदाबाद से जनतन्त्र भारत की राज्य-स्थली देहली की ओर प्रस्थान किया। गुजरात की मनोरमा भूमि पीछे रह गई। निशा के प्रगाढ़ अन्धकार में वायुमंडल से संघर्ष करती हुई, दिग्विजयिनी केन्द्र-पर-केन्द्रों का अतिक्रमण करती, वृक्षों, मार्गों, पर्वतों, अरण्यों और मरुस्थलों को पार करती हुई, त्वरित्-वेग से भारतीय-शासन की केन्द्र भूमि देहली की ओर प्रचक्रित हो रही थी। शीतोष्ण-कटिबन्ध की वनस्पतियाँ अपने-अपने सौन्दर्य प्रकाशित कर रही थीं। क्रमशः उत्तरापथीय शीतल वायु ने हमारा स्पर्श किया। अहो! हम आनन्द-पुलकित हो उठे; हिमस्त्रजित-शैलमाला से आती हुई मलयवायु का सुखद स्पर्श पा कर...।



शिवानन्द दिग्विजय

विजय त्रयोदशी

राजधानी में

राजधानी में

4 नवम्बर। भारत की राज्यभूमि पूर्णतः सजग थी। लाखों की संख्या में जनपदवासी तिल-तिल भर भूमि को प्राच्छादित किए हुए थे। सबके हृदयों में उल्लास और नेत्रों में प्रतीक्षा थी। हिमालयानुवर्त्ती शिवगिरि अंचल के अवतार की धर्मध्वजा के नीचे लाखों प्राणियों को विश्राम देने, जनतन्त्र भारत की अहोपुण्य राजधानी पूर्णतः सन्नद्ध थी, जबकि निशान वायु में फहरा रहे थे, शंखों की ध्वनियाँ वृक्षों के शिखरों तक जाग-जाग कर, किसी के आगमन का निश्चय कर रही थीं।

अरुणोदय हुआ और 7 बजे ही थे कि यथापूर्व गति से वायु को चुनौती देती, दिशाओं और प्रदिशाओं को कम्पित करती, हमारी दिग्विजयिनी अपने दिगन्तोज्ज्वल शुभ्र कीर्ति के गौरव-ललाट महाराज को लेकर, नई दिल्ली के स्टेशन पर आ खड़ी हुई। अभिनन्दन के लिए आए हुए नागरिकों के नेत्रों में अमित शीतलता का आविर्भाव हुआ, जब प्रथम बार महाराज ने 'टूरिस्ट कार' के विशाल द्वारों से उनको दर्शन दिए। सहसा ही आनन्दोद्रिक्त होकर, तालियाँ बज उठीं और रामनाम की ध्वनि से समस्त जनमण्डल पावन हो गया।

नगर के जन-शिरोमणियों ने जनपद की ओर से स्वामी जी का स्वागत किया। माननीय गोस्वामी गणेशदत्त जी के तत्त्वावधान में संयोजित 'महावीर दल' के स्वयंसेवकों तथा बालचरों ने महामन्त्र कीर्त्तन की स्वरलहरी जगा

कर, स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया और 'दिव्य जीवन मण्डल' की धर्म-ध्वजा को लहराया।

'स्थानीय स्वागत समिति' के संचालकों और सहयोगियों ने बारी-बारी से महाराज की वन्दना की। उनमें प्रमुख थे – श्री मोहनलाल सक्सेना (भूतपूर्व पुनर्वास मन्त्री), धर्मप्रचारधुरन्धर श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी (अखिल भारत सनातन धर्म सभा के मुख्य-मंत्री), रायबहादुर श्री नारायणदास जी (श्री बिरला मन्दिर ट्रस्ट के मन्त्री), श्री एम.सी. दावर, भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री ए.एन.एस. मूर्ति, नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री ऋषि, रावसाहब श्री बी.एल. बाट्रा, रावसाहब श्री ए.वी. रामन्, 'वैदिक संघ' के प्रचालक श्री वैद्यनाथन्, दिल्ली की 'स्वागत समिति' के संचालक श्री डी. नारायण स्वामी चेट्टी तथान्य राज्याधिवर्ग एवं च परावारविहारी जनसमुदाय।

स्वागत-आयोजन यथानुकूल और यथाविधि सम्पन्न हुआ। श्री स्वामी जी सुप्रसिद्ध 'बिरला मन्दिर' की सीमाओं में संप्रविष्ट हुए... जहाँ उनके स्थानीय-निवास का आयोजन श्रीयुत् बिरला जी की इच्छा के अनुसार किया हुआ था।

* * * *

दिनभर दर्शनार्थियों का समागम तैलधारावत् अविच्छिन्न रहा। सहस्त्रों को मन्त्रदीक्षा दी गई, उनकी समस्याओं का उत्तर दिया गया और उनके जीवन-पथ की आध्यात्मिक-कठिनाइयों के परिहार का मार्ग भी बताया गया। उस जनसमागम में राज्याधिकारी वर्ग तथा साधारण जनता तो थी ही, साथ-साथ अनेकों मतों के अनुयायी भी सम्मिलित थे; जिन्होंने धार्मिक भेदभाव को तिलांजलि देकर, महात्मा के आशीर्वाद का महत्प्रसाद ग्रहण करते हुए, अपने पूर्वजों की परिपाटी को जीवन-दान दिया और अपने जीवन को सफल तथा तीर्थरूप बनाया।

गोस्वामी श्री गणेशदत्त की अहैतुकी कृपा का वर्णन किस प्रकार किया जाय? श्री स्वामी जी की निवास-विषयक सुविधाओं का उन्होंने अतितर सुन्दर आयोजन किया हुआ था। सब कुछ होने पर भी वे बारम्बार महाराज के कुशल-समाचार पूछते रहते थे। उनकी धर्म-भावना को कोटिश: प्रणाम!

उसी दिन सायंकाल की नीरव बेला में स्वामी जी से श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला जी का सम्मिलन हुआ। धर्मधुरन्धर सेठ जी तथा धर्मचक्रप्रवर्तक

स्वामी जी के बीच विचारों का विनिमय हुआ। अनेकानेक विचारों की पृष्ठभूमि में आधार रूप से ईश्वर-कृपा को ही सर्वशक्तिमती बतलाते हुए, स्वामी जी ने जटिल राजनैतिक प्रश्नों का यही उत्तर दिया, 'परमपिता की इच्छा ही सर्वशक्तिमती है। वे यथायोग्य कार्य सम्पन्न करते रहते हैं। मनुष्य उनके सामने केवलमात्र अस्तित्वहीन तत्त्व है; जिसका भूत, वर्तमान और भविष्य केवलमात्र माया की कपोल कल्पना है।'

लगभग 45 मिनट तक यह साक्षात्कार हुआ, जिसमें विभिन्न परिस्थितियों का समाधान आचरणनिष्ठा में सन्निहित माना गया और यह बतलाया गया कि आध्यात्मिक-आचरण के उदय होते ही सभी क्लेशों और सभी दुःखों की इति-श्री हो जाती है, परिस्थितियों के अन्धकार का निवारण हो जाता है और ज्ञानोदय की प्रभा में मानव-पथ स्वच्छ एवं निर्मल बन जाता है।

रात को 'श्री बिरला मन्दिर' के सामने प्रशस्त पण्डाल के नीचे 'सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा' के तत्त्वावधान में श्री स्वामी जी का स्वागत हुआ। विशाल जन-प्रांगण में उत्सव की भूमिका को जन्म देते हुए, मुख्यमन्त्री श्री गोस्वामी गणेश दत्त जी ने महाराज के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकाशित की। अनन्तर जनता ने श्री गोस्वामी जी के मुखारविन्दों से 'शिवगिरि अंचल' के तपस्वी की महिमा के मन्त्र सुने और अपने जीवन को पवित्र माना। 'धर्म प्राण हमारे स्वामी जी महाराज परात्पर ज्ञान की परम महनीय भूमिका में समधितिष्ठित रहते हुए भी जन-कल्याण के प्रशस्त कार्य को सुस्थिररूपेण संचालित कर रहे हैं; जिसका सूत्र विराट्-मानव समुदाय को एकता के विचारों में ग्रथित करता जा रहा है... ' प्रवचन देते हुए श्रीयुत् गोस्वामी जी ने यही कहा था।

तत्परतः हर्षनाद से विजयान्वित-स्वरूप के तेज को प्राप्त हुए स्वामी जी मंच पर उदित हुए... हिरण्यगर्भ की स्वर्णप्रभा के समान; मानो वेदों की ऋचाओं का उच्चारण कर रहे थे। सनातन धर्म पर व्याख्यान दिया और उस धर्म की व्यावहारिकता का स्वरूप भी दिग्दर्शित किया। 'धर्म जटिल नहीं...' उन्होंने कहा, 'किन्तु धर्म आपके जीवन का आत्मप्राण है, जिसका व्यवहार करने से ही मनुष्य-संज्ञा निर्धारित की जा सकती है। जीवन का प्रत्येक कर्म धर्म की कसौटी है। जीवन की भावनाएँ ही धर्म का निर्णय करती हैं। सदाचार ही धर्म है और ईश्वर-प्रणिधान ही धर्म है। आध्यात्मिक-भावना में अपने जीवन का निर्माण करना ही धर्म का व्यवहार है और परहितपरायणता ही धर्म की भूमिका है; जहाँ प्रत्येक मनुष्य मनुष्यत्व से परे देवत्व और उससे भी

परे आत्मत्व की विभूति के प्रोज्ज्वल दर्शन करता है... ' इस प्रकार प्रवचन-प्रवाह प्रतिप्रवाहित रहा। दूर-दूर से आए हुए यात्री उसमें स्नान कर रहे थे, प्यास बुझा रहे थे और उसकी पूजा कर रहे थे।

तदुपरान्त श्रीयुत् एन.वी. गडगिल् महोदय तथा श्रीयुत् दीनानाथ 'दिनेश' जी के व्याख्यान हुए। जब सभा विसर्जित हुई तो मध्यप्रहरीय अन्धकार प्रगाढ़ होता जा रहा था।

(2)

5 नवम्बर। प्रातःकाल 'योगाश्रम' में श्री स्वामी जी का भाषण हुआ। इस अवसर पर श्री वृजलाल नेहरू भी उपस्थित थे। 'योगाश्रम' के संचालक श्रीयुत् आत्माराम जी ने, जो पूर्व-लाहौर के प्रसिद्ध योगनिष्ठ प्रकाशदेव जी के अनुयायी हैं, स्वामी जी का सप्रेम अभिवादन किया।

भूमिका का सूत्रपात करते हुए श्रीयुत् वृजलाल नेहरू ने कहा, 'स्वामी जी का परिचय अनावश्यक है, क्योंकि सारा संसार उनको भली भाँति जानता है।' लाहौर के दिनों की याद दिलाते हुये आपने कहा, 'मुझे स्वामी जी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य पूर्व-लाहौर में हुआ, जहाँ महाराज जी ने हरिकीर्तन की लहर जगाई थी।'

श्री वृजलाल नेहरू की प्रस्तावना के उपरान्त स्वामी जी का योग-विषयक भाषण हुआ। आपने कहा 'प्रत्येक को चाहिये कि वह नित्यप्रति योगासनों का अभ्यास करे। योगासनों के अभ्यास से न केवल शरीर की पुष्टि होती है, अपि च मानसिक शक्ति के बन्द द्वार भी खुल जाते हैं और आत्मज्ञान का प्रकाश प्रदिशि जागृत होता है।'

श्री स्वामी जी के उपदेशों के उपरान्त श्रीयुत् प्रकाशदेव जी ने अपने पुराने लाहौर के दिनों की पुनरावृत्ति की, जबकि उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य प्राप्त किया था।

अन्त में विधान-परिषद् के सदस्य पंडित ठाकुरदास भार्गव ने, जो उस सभा के अध्यक्ष थे, स्वामी जी के प्रति अपना प्रणाम समर्चित किया और आशीर्वाद का आग्रह भी।

'योगाश्रम' के उपरान्त श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला जी के निवास-गृह में श्री स्वामी जी के पदप्रवेश हुये और 'बिरला गृह' पवित्रतम हुआ! इसी अवसर पर महात्मा गाँधी जी के 'प्रार्थना-भवन' के दर्शन भी सम्पन्न हुये।

दोपहर को 12 बजे तक 'बिरला मन्दिर' के सामने प्रशस्त पंडाल के नीचे जनता की ओर से महाराज की पादपूजा सम्पन्न हुई। पादपूजा के अनन्तर श्री स्वामी जी ने कई भक्तों के निवास-स्थानों को परम-मन्त्र में दीक्षित किया। भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री मूर्त्ति, यातायात विभाग के मन्त्री श्री वाय.एन. सूक्तांकर महोदय के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके घरों में जाकर स्वामी जी ने 'राजवर्ग-द्वारा-धर्मप्रचार' की लहर प्रसारित की। स्टेट्स मिनिस्ट्री विभाग से श्रीयुत् जी.आर. चौबल भी श्रीयुत् सूक्तांकर के निवास-स्थान में उपस्थित थे; जिन्होंने उस सत्संग में योग दिया था।

उपरोक्त दोनों महानुभावों के निवास स्थान को दीक्षित करने के उपरान्त स्वामी जी विधान-परिषद् के सदस्य और भूतपूर्व पुनर्वास मन्त्री श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना के आवास-गृह को पवित्र करने गए।

तथा, सायंकाल के संप्रतिपूर्व 'दिग्विजय मंडल की स्वागत समिति' के तत्त्वावधान में दिल्ली का 'सार्वजनिक भवन' नगर के जनशिरोमणियों से आपूर्यमाण था। माननीय न्यायाधीश श्रीयुत् चन्द्रशेखर अय्यर (सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया), श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना (विधान-परिषद् के सदस्य), श्री वृजलाल नेहरू, श्रीयुत् अब्दुल मजीद खाँ (सौदी अरेबिया में भारत के भूतपूर्व राजदूत) तथान्य राज्याधिकारीगण एवं च भक्तिभाव-समन्विता जनता 'सार्वजनिक भवन' में महात्मा के सन्देश को सुनने, शान्त तथा नीरव वातावरण की सृष्टि करती हुई खड़ी थी।

मंगलाचरण हुए। समिति के संचालक ने प्रस्तावना का सूत्रपात किया और सभा प्रारम्भ हुई। धाराप्रावाहिक व्याख्यान हुए – महात्मा के जीवन-रहस्य को विमुक्त करते, और उनके यशचन्द्र को कीर्तिमती ज्योत्स्ना से आचन्द्रांकित करते हुये। श्री आनन्द स्वामी सरस्वती जी महाराज का व्याख्यान हुआ। श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना जी ने भी महात्मा के प्रति अपनी अर्चना समर्चित की। वाग्मंजरी से सुशब्दललिता पुष्पावलियों को चुन-चुन कर, श्री अब्दुल मजीद खाँ ने भी बिल्वारण्य-क्षेत्र के महर्षि की पूजा की और आशीर्वाद की अभियाचना भी।

'अपने को विमुक्त करो बन्धनों से' सबने स्वामी जी के सन्देश सुने, 'यदि चाहते हो अप्रतिहत कल्याण और अनन्त की गोद में विश्राम तथा परमात्मा का आनन्ददायक सन्निधान...!' स्वामी जी कहते गये अपने प्रवचन। आत्मा के गुणों का व्याख्यान किया, सदाचार की विवेचना की। सदाचार

और धर्म, ईश्वर और धर्म, मनुष्य और धर्म, राजनीति और धर्म, व्यवहार और धर्म – सबकी एकता का सिद्धिकरण किया और इन सब में परमात्मा की ही सर्वव्यापकता को दिग्दर्शित किया।

स्वामी जी की अनहत गीता को राजधानी के आत्मप्राण सुनते गये। उनकी आत्मा प्रफुल्लित होती गई और उनकी चेतना विकसित। उनका संकीर्णवाद संकुचित होता गया और उनका लोकव्यवहार गलित। पवित्रता रही और कलुषता का निराकरण हुआ। आत्मा का सन्निधान प्राप्त हुआ; और हुआ अनात्मा का तिरस्कार।

अन्त में माननीय अध्यक्ष श्रीयुत् पतंजलि शास्त्री जी ने स्वामी जी की दीर्घायु के लिये परमात्मा से अभियाचना की और कहा –'स्वामी जी इसी प्रकार धर्मसंस्थापन का कार्य युगानुयुगों तक करते रहें – मानव को आत्मक्षेम, आत्मकल्याण और आध्यात्मिक-मोक्ष की ओर प्रेरित करते रहें अपि च उपनिषद् के देश, वेदों की भूमि के यश को अक्षुण्ण और कल्पान्तर्व्यापी बनाए रखें'।

'वैदिक संघ' के पुरोहितों के वेदोच्चारण के उपरान्त सभा विसर्जित हुई– अपनी छाप सहस्रों हृदयों में अमिट बना कर; जिसका आधार था स्वामी जी का अतुलेय व्यक्तित्व और उनका तपोज्ज्वल-ज्ञान।

*   *   *   *

उपरोक्त सत्संग करने के उपरान्त जब हम 'बिरला मन्दिर' के प्रशस्त पंडाल में पहुँचे तो रात के 9 बज चुके थे। हिमांचलागता शीतल वायु बह रही थी और लोग कांप रहे थे। किन्तु स्वामी जी के आते ही पुन: योगाग्नि का संचार हुआ और वे लोग अपने शरीर की सुध-बुध भूल गए। स्वामी जी के कीर्तन और भजन हुए – उपदेश भी तो। आनन्द और परमानन्द में समाश्रित थी जनता। तीव्रगति से बह रहा था मलय-पवन; मानो भक्ति की हिम-परीक्षा हो रही थी। आँखें खोले नहीं खुलती थीं। हाथ पसारे नहीं पसारे जाते थे। परन्तु रामनाम के गुण गाने के लिये वाणी जीवित थी; और थी सतत्-सन्नद्ध। क्या बच्चे और क्या युवक, क्या स्त्रियाँ और क्या पुरुष- सभी ने मानो पंडाल को नहीं छोड़ने की शपथ खा ली थी।

अन्तत: मध्यप्रहर की रजनी ने सत्संग की मधुरता को सहस्रों जीवों में तन्मय देखा। उन सब लोगों के साथ श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला भी जा रहे

थे – भक्ति और आनन्द से आप्लावित, मोक्ष के विचारों में लीन तथा परम शान्ति की भावनाओं से अभिरंजित।

(3)

6 नवम्बर। 8 बज चुके थे। राजघाट की दिग्विश्रुता भूमि दिव्य हलचल से जाग उठी। सत्य, अहिंसा के पुजारी की आत्मा के सन्निधान में आरण्यक-शान्ति के संस्थापक ने राम-ध्वनि जगाई, जो उसके निरंजन ज्ञान का प्रशान्त राग था और जिसकी एकमात्र सत्ता को प्रतिष्ठापित मान कर, उसने जनजागरण का श्री-गणेश किया। धूप, दीप, नैवेद्य और आराधना से राजघाट सुरभित हो उठा। पुष्पों की नयन-रंजक राशियाँ युगनिर्माता गाँधी जी के हृदयधन 'रामनाम' का आलिंगन करने लगीं। उसी समाधि के सन्निधान में सहस्रों व्यक्ति श्री स्वामी जी के साथ समाहित-मनसा कुछ क्षणों तक पारमात्मिक आनन्द लूटते रहे; ध्याननिष्ठ रहे और भक्तिनिष्ठ भी!

दिन के 1 बजते ही भारत के सेनापति, जनरल के.एम. करियप्पा और स्वामी जी का सम्मिलन हुआ।

उस दिन के भोजन में स्वामी जी तथा माननीय सेनापति के अतिरिक्त मेजर-जनरल ए.एन. शर्मा की पत्नी और पुत्री ने भी योग दिया। पौने तीन बजे तक परस्पर सम्भाषण होता रहा। कीर्तन हुए ओर भजन भी; तथा हुई उपदेशों की जीवन-पावनी वर्षा।

माननीय सेनापति के निवास स्थान से स्वामी जी ने 'ऑल इण्डिया रेडियो, दिल्ली' के प्रतिष्ठान में प्रवेश किया और 'प्रसारण केन्द्र' में गए; जहाँ से राज्याधिनिर्माता समय-समय पर राष्ट्र को अपनी वाणी सुनाते और विश्व की नीतियों को प्रभावित करते रहते हैं।

'रेडियो प्रतिष्ठान' का वह सौभाग्य था, क्योंकि विश्व की कुटिल नीति को परिवर्त्तित करने के लिए एक युगावतार उसकी सीमाओं में प्रविष्ट हुआ। प्रतिष्ठान के अधिकारियों ने सादर और सभक्ति युगविभूति की वाणी को आकाश की विशालता में प्रसारित करते हुए, राष्ट्रव्यापी किया।

धर्म की सार्वभौमिकता पर स्वामी जी ने आकाशवाणी की – 'यह निश्चयत: ईश्वर से आवृत्त है। ईश्वर के अतिरिक्त और जो कुछ है, वह माया है। मनुष्य सत्य को भूल असत्य को ग्रहण करता है; अत: दु:खी जीवन को प्राप्त होता है। सत्य पदार्थ की ओर अपनी भावनाओं को उन्मुख

करने से मनुष्य परम-शान्ति का अनुभव करता है; जिस शान्ति का विद्युत्-गृह प्रत्येक प्राणी के हृदय में ही है, बाहर नहीं। धर्म ईश्वर को कहते हैं; ईश्वर के नाम, पवित्र आचरण और पवित्र वचनों को कहते हैं। धर्म मनुष्य को पृथक् नहीं, किन्तु उसकी सभी विभिन्नताओं को एकता के सूत्र में ग्रथित करता है। धर्म ही मनुष्य की एकता के जीवन का समाधान है। यदि धर्म की ग्लानि हुई तो मनुष्यत्व की ग्लानि समझनी चाहिए और यदि धर्म का संस्थापन हुआ तो जनकल्याण ओर आत्म-क्षेम निश्चित जानो। धर्म ही विश्व का आधार है और ब्रह्माण्डों का परिपोषक भी। मोक्ष का अभिवचन तो धर्म है ही...!'

'ऑल इण्डिया रेडियो' के दिल्ली-स्टेशन से यह आकशवाणी प्रसारित की गई...!

सायंकाल के समय 'दिल्ली विश्वविद्यालय' में स्वामी जी के कई प्रवचन हुए। विश्वविद्यालय की ओर से माननीय पीठ-स्थविर ने स्वामी जी का स्वागत किया और विद्यार्थियों के मध्य महाराज का ओजस्वी परिचय दिया।

स्वागत का सुन्दर उत्तर देते हुए स्वामी जी ने विद्यार्थियों को अपना सन्देश दिया; धर्म की नींव को सुधारने और आत्म-सुधार के लिए प्रोत्साहित किया। वेदों और शास्त्रों, पुराणों और इतिहासों के पिछले पन्नों की पुनरावृत्ति करते हुए, स्वामी जी ने कहा 'प्रत्येक विद्यार्थी को अपने चरित्र का निर्माण करना होगा। तभी वह अपने को राष्ट्र और विश्व की सेवा का योग्य अधिकारी बना सकता है। सर्वप्रथम आत्म-सुधार की आवश्यकता है। द्वितीय, जनकल्याण की महद् अभिलाषा होनी चाहिए और सेवा के लिए उत्कट इच्छा भी...!'

तत्पश्चात् विश्वविद्यालय के 'परिषद् भवन' में विश्वविद्यालय के छात्रों की बैठक को अपना सन्देश देते हुए स्वामी जी ने सदाचार और सद्विचार पर जोर दिया; भगवद्-विचार और भगवद्भक्ति की आवश्यकता को सिद्ध किया। आपने कहा कि 'प्रत्येक विद्यार्थी को योगमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। तभी वह अपने में देशसेवा की योग्यता को परिपक्व हुआ पावेगा। यदि वह योगसिद्ध और व्यवहारकुशल न हुआ, सदाचारी तथा सद्विचारी न हुआ तो वह जनकल्याण और देशसेवा के योग्य नहीं हो सकेगा; वह सदा असफल ही रहेगा। धर्मस्थापन के लिए आवश्यकता है योगनिष्ठ व्यक्तियों की, नवयुवकों की... जो संसार के भोग-विलास को त्यागने की क्षमता रखते हैं... !'

विद्यार्थियों ने शान्तिपूर्वक दत्त-चित्त होकर उनके सन्देश को सुना और उसे हृदयंगत कर लिया। जब स्वामी जी दिल्ली स्थित 'लोदी संस्थान' में विशाल जनसमारोह को दर्शन देने प्रविष्ट हुए तो उन्होंने भी महाराज का अनुसरण किया।

* * * *

6 बजते ही महाराज ने 'लोदी संस्थान' में जनता को दर्शन दिए और उपदेश भी। तदुपरान्त अनेकानेक भक्तों के घरों को तीर्थरूप करते हुए, स्वामी जी ने 'बिरला मन्दिर' में संप्रति पदार्पण किया। सहस्रों नर-नारी उनके दर्शनों की अभिलाषा में दो घण्टों से प्रतीक्षा कर रहे थे।

'बिरला मन्दिर' के सामने पूर्वोक्त प्रशस्त पण्डाल में पुनः भक्त-जनसमागम प्रारम्भ हुआ। 'लाहौर हरिकीर्त्तन सभा' की ओर से स्वामी जी को मान पत्र अर्पित किया गया। अनन्तर स्वामी जी का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान ओजस्वी था; निर्जीव में भी जीवन-संचार करने वाला। सागर की विशालता को नापने वाले, तथा तृण को भी महान् कर देने वाले सर्वशक्तिमान् के समान उनकी योगोज्ज्वला कान्ति का प्रकाश सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द का संचार करता था, शान्ति-ही-शान्ति लाता था। उनके वचनों में सत्यता थी, जिसके प्रकाश में मनुष्य ने अपना पथ खोजना सीखा। उनके भावों में सद्प्रेरणा थी, जिसके आधार पर जनकल्याण का दिव्यतम प्रासाद अभिनिर्मित हुआ और उस विश्वात्मक धर्मचक्र की संस्थापना हुई, जिसको युगानुजीवी करने के लिए समय-समय पर अवतारों का अवतरण, धर्मप्रचारकों का अभ्युदय और युगविभूतियों का समावेश हुआ करता है।



शिवानन्द दिग्विजय

विजय चतुर्दशी

राजधानी में (द्वितीय)

7 नवम्बर। प्रातःकाल बिरला मन्दिर-स्थित 'गीता भवन' में सत्संग हुआ। स्वामी जी ने उपस्थित जनता को उपदेश दिये और श्रुतिमधुर भगवन्नाम गाये। सत्संग के उपरान्त आपने 'करौल बाग' में शरणार्थी विद्यार्थियों को 'सालवान् विद्यालय' में दर्शन और उपदेश दिये। विद्यालय की ओर से राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त करते हुए, आपने शिक्षा-दीक्षा की प्रशंसा की। जिस अध्यात्म भाव से बालकों की शिक्षा का प्रतिष्ठापन किया हुआ था, वह प्रणाली किसी भी विद्यालय के लिए स्पर्धा का पात्र हो सकती थी।

विद्यालय में विद्यार्थियों को उपदेश देने के उपरान्त 'बिरला मन्दिर ट्रस्ट' के मंत्री श्री नारायणदास जी ने स्वामी जी को अपने निवास-स्थान में निमन्त्रित किया। कीर्त्तन और भजन के उपरान्त श्री स्वामी जी डॉ. सराफ की निवास-भूमि को पवित्र करते हुए राजखाद्यविभाग के उप-सचिव श्री एम. तिरुमल राव के आवास-गृह की ओर आकृष्ट हुए।

श्री तिरुमल राव ने आध्यात्मिक-सम्राट् के श्री-चरणों में नत-मस्तक होने का स्वर्ण-अवसर प्राप्त किया; जो सर्वथा देवदुर्लभ है। उनके भाग्य का परमोदय हुआ था, तभी तो स्वामी जी ने यथासमय उनके निवास-गृह में स्वतः जा कर, उनको मन्त्र-पुनीत किया। अन्यथा स्वामी जी वहाँ न जाकर अन्यत्र चले गए होते। किन्तु ऐसा न हुआ। श्री तिरुमल राव जी की अनन्य भक्ति अन्य किसे प्राप्त थी? उनकी अकैतव और अव्यभिचारिणी भक्ति के सामने नगर के अन्यान्य धनपतियों और कर्मचारियों की गणना ही क्या थी!

भगवान राम शबरी के यहाँ क्यों गये थे? और भगवान श्रीकृष्ण विदुर के अतिरिक्त और कहीं क्यों नहीं गये? भगवान को अपनी ओर खींचने के लिए तो अनन्यभक्ति और परात्परीय प्रेम चाहिये। तब फिर क्या साधारण गृहस्थ और क्या राजमणि-मुकुटरंजित सम्राट्, क्या लक्ष्मीसेवित धनपति और क्या राह का भिखारी – सभी भगवान के दरबार में समान स्थान पाते हैं। भला श्री तिरुमल राव के सौभाग्य का क्या कहना? वह तो अनेकों जन्मों के सुसंस्कारों का समुदय था।

*   *   *   *

सायंकाल के 5 बजे वाय.एम. सी. ए. के तत्त्वावधान में विशाल भवन जनकलरव-संयोजित था, जहाँ युगावतार की आध्यात्मिक गीतायें जाग रही थीं – स्वामी जी का व्याख्यान हो रहा था। विषय था 'योग साधना'। अमेरिकन दूतावास से भी अतिथिगण पधारे थे। जनता की ओर से श्री तिरुमल राव जी ने स्वामी जी का स्वागत किया।

अपने प्रवचन में स्वामी जी ने कहा, 'मनुष्य के राक्षसी विचारों को दबाने के लिये योगसाधना ही एकमात्र उपाय है। आज हम अपने जीवन में जो कुछ आतंक प्रविष्ट हुआ पाते हैं, वह केवल हमारे राक्षसी विचारों की माया है। यदि हम योगसाधना के द्वारा आज ही इन राक्षसी विचारों को लुप्त कर दें तो हमारे जीवन से आतंक का तिरोधान हो ही जायेगा, साथ-साथ हम अपने जीवन को अमित-आनन्द से आपूरित हुआ पायेंगे...'

सान्ध्य गगन अरुणिम होता जा रहा था। जब कि दिल्ली निवासी, राज्यवर्ग और धनपति रेलवे स्टेशन की ओर संवर्त्तक पवन की नाईं बहे चले जा रहे थे। गगनगामिनी पिपीलिकाओं के समान था उनका ज्वार; जिसमें केवलमात्र एक ही विभूति की मनोहर रूप-रेखा नृत्य कर रही थी; एक ही युगावतार के निस्तुलेय सौन्दर्यान्वित व्यक्तित्व की अलौकिकता विराज रही थी।

रात्रि के 10 बजने वाले थे। नगरनिवासी दिग्विजयी के दर्शनों को आए। विशाल भारत के प्रतिनिधि, जनता के छत्र-शिरोमणि, दिल्ली के निवासीगण दिग्विजयी को शिवगिरि के अंचल की ओर जाते हुये देखने आए थे। न जाने उन के जीवन में पुन: कभी वे दिन भी आयेंगे या नहीं, जब वे तपस्वी की महामहिमाशाली छटा के दर्शन भी कर सकेंगे?

दिग्विजय की पूर्णिमा का उदय होने वाला था। समस्त गगनमण्डल निष्कलंक हो गया। भगवान शशांकशेखर की सदाचार-राशि से पथ उज्ज्वल हो चुका था। दिल्ली में ही हमने चतुर्दशी के आलोक से ज्योत्सना को सज-धज कर आते देखा; जबकि हमारे तपोज्ज्वल महर्षि शिवगिरि के अंचलों की ओर, हिमालय की घाटी को प्रणाम करते हुए जा रहे थे... दिग्विजयिनी की सुखद गोद में विश्राम पाते हुये।

*   *   *   *

दिल्ली पीछे छूट चुकी थी; अपने हृदयों में हृदयेश्वर की झाँकी को अमिट बना कर और हृदयेश्वर के हृदय में अपनी स्मृति को अखण्डित कर। उत्तरापथीय केन्द्र तीव्र-गति से दिग्विजयिनी की प्रगति के तेज में तन्मय होते जा रहे थे। मणिकूट की मनोहर पर्वतमालाएँ, शिवगिरि का मनोरम अंचल, बिल्वारण्य का तपोनिष्ठ क्षेत्र अपने देव के दर्शनों की अभिलाषा में एकटक होकर खड़ा था। निर्मल अमृतसलिला गंगा अपने देव के चरणों को पखारने उसी मार्ग से बह रही थी, जहाँ दिग्विजयी ने उसे दो महीने पहले बहते देखा था। निशा के गहनतम अन्धकार और मलय पवन की शीतलता से समायुक्त वातावरण में, शान्त और नीरव विटप-क्षेत्रों की विशालता में अपना विजय-सन्देश प्रसारित करती, हिमशिखर-समाश्रित महर्षियों को अपने आगमन का शुभ-सन्देश देती, विजय-वैजयन्ती की स्वर्ण-गरिमा – वह दिग्विजयिनी स्वामी जी महाराज को पुण्य-भूमि ऋषिकेश की ओर ले जा रही थी; ठीक 60 दिनों के व्यतीत होने पर, दिशि-प्रदिशि विजय-दुन्दुभि बजा चुकने और विजय-सन्देश सुना देने पर।

हम ऋषिकेश की ओर प्रस्थान कर रहे थे, रात्रि के अन्धकार में।



शिवानन्द दिग्विजय

विजय पूर्णिमा

शिवगिरि के अंचल में

उनके हृदय आनन्द-गद्गद् थे। उनकी वाणी कोमल हो चुकी थी और उनका जीवन अमित ज्ञान के विश्व-वन्दित प्रकाश में सम्पत्तिशीलता के अपारावार वैभव को सम्प्राप्त कर चुका था। ऋषिकेश की भूमि धन्य हुई और ऋषियों की चरण-रेणु (मुनी-की-रेती) कृतार्थ हुई। साधुवाद से अंचल डोल उठे। जयजयकार से माता के आनन्द का प्रवाह सुनील और सुलील हो उठा। हिमांचल की शीतलता ने भी दर्शन के लिए शिवगिरि के अंचल की यात्रा की और जब हम तीर्थपुरी हरिद्वार के द्वार में प्रवेश कर रहे थे तो मलयाचल की शीतलता ने हमारे दिग्विजयी का चरणालिंगन किया और परम-पुण्य स्पर्श की अनुभूति की। सामने से मणिकूट का वैभव भौतिकवाद को चुनौती और सावधान रहने का आदेश दे रहा था तो दूसरी ओर शिवगिरि की मालायें बिल्वारण्यक्षेत्र में नृत्य करती, देवदुर्लभ सन्तागमदर्शन की प्रतीक्षा में अनुरत थीं। हम ऋषिकेश की पुण्य-भूमि में प्रविष्ट हो रहे थे।

8 नवम्बर (शिवानन्दाष्टमी)। दो मास के पश्चात् ऋषिकेश-निवासी पुनः रेलवे स्टेशन पर लहरा रहे थे। दो महीने पहले तो उनके नेत्रों में ज्वार-भाटा तरंगित था, जब दिग्विजयी महाराज भारत और लंका में धर्मस्थापन के लिए प्रस्थान कर रहे थे; किन्तु आज उनके नेत्रों में आनन्द के मनोहर दृग्विन्दु थे, जिनमें उनके आह्लाद का सौन्दर्य नृत्य कर रहा था। आज से ठीक दो महीने पहले तो वे दिग्विजयी के प्रस्थान के समय शान्त और मौन थे, किन्तु

आज उनके सौख्य का पारावार असीमित हो गया था। उनकी कोमल वाणियाँ निरन्तर हरिनाम की पीयूषवाहिनी से क्रीड़ा कर रही थीं।

आज स्वामी जी पुनः अपने तपोनिष्ठ स्थल में आ पधारे थे। यहीं से उन्होंने अपने जीवन के सुन्दर वसन्तों, वैभवसम्मित श्रावणों और तपोलीन हेमन्तों को कितनी ही बार लहराते हुए हिमांचल की शीतलता में अदृश्य होते देखा था। यहीं से बारम्बार उन्होंने मनुष्य को सत्य के आह्वान की ओर जागृत, धर्म और परमात्मा की गीता की ओर आकृष्ट किया था। कितनी ही बार उनकी गीता इसी स्थान से उठी और यही स्थान कितनी ही बार मानव के लिए कुरुक्षेत्र का नाटक खेल चुका था; जहाँ कृष्ण के अवतार की पुनरावृत्ति कर महाराज ने अपने उपदेशों को, अपनी गीता और अपनी दिव्य वाणी को दिगन्त-विश्रुत किया। 1 जून, सन् 1924 की वह परम तिथि थी, जिस दिन महाराज ने इस भूमि पर अपने दक्षिणसेवित-चरण प्रतिष्ठित किये थे। तब से लेकर आज तक यही भूमि उनके जीवनादर्श की प्रथम भूमिका रही तथा उनके धर्मविजय की अटल सु-तिलकांचिता देवी भी।

ऋषिकेश की तपोभूमि के लिए यह प्रथम अवसर तो नहीं; किन्तु यह कहा जा सकता है कि यही वह अपूर्व अवसर था, जिसके लिए इस ऋषिभूमि ने अपनी महिमा को अक्षुण्ण बनाना उचित और यथानुकूल समझा। इतिहास के परिवर्तन के साथ-साथ अनेकों तीर्थभूमियाँ अपनी महिमा की गाथाओं को अतीत स्मृति में तन्मय होती देख चुकी हैं। कितने ही आश्रम आज तक अवतरित हुए, चमके और पुनः विश्व-महिमा के आगार, प्रकृति के विशाल-जीवन में समासीन हो गए। किन्तु ऋषिकेश के लिये यह दृष्टांत नहीं घटा। वह अपने जीवन की रूपरेखाओं को पौराणिक तपस्वियों की चरण-रजों में सुरक्षित करती आई। सम्भवतः इसी आशा में कि किसी दिन कोई महापुरुष उसके जीवन की रूप-रेखा को संवार सकेगा।

तपोभूमि का स्वप्न-दर्शन आज दिव्य दर्शन के रूप में अभिनीत हुआ। सचमुच स्वामी जी महाराज ने उसके गौरव-ललाट को विश्व-शिरोमणि बनाये रखा और नव-जीवन के यश का दान दिया। जब मानव समाज ने सुना तो वह दृष्टियों को पसारे इस भूमि की ओर विश्व-नेतृत्व के लिये देखने लगा। विश्व यहाँ से भला माँग ही क्या सकता था; केवलमात्र शान्ति और सनातन शान्ति, जिसके लिए प्रत्येक प्राणी युगानुयुगों से प्रयत्न करता आया है और मानव जीवन ही जिसकी प्राप्ति के लिए एक चिरन्तन संघर्ष है।

मनुष्य ने इस भूमि से न तो स्वर्ण मांगा और न स्वर्लोक का सजीव सौन्दर्य ही तथा न निधियों का अक्षय भण्डार। हाँ, केवल एक वस्तु के लिए विश्व ने इसी भूमि में नारे लगाए। वह वस्तु थी – आत्मशान्ति, आत्मकल्याण और आत्मोद्धार। उसी की प्राप्ति के लिए हमारे उपनिषद्, वेद और शास्त्र तथा अन्यान्य ग्रन्थ मनुष्य को वेदों के उद्भव-काल से प्रेरित और उत्साहित करते आ रहे हैं।

वह माँग पूरी हुई। 9 सितम्बर, 1951 को दिग्विजयी ने दिगन्तों में अपनी गीर्वाणी सुनाई, अपनी गीता जगाई और विजय-पताका लहराई। नगर ओर पत्तन, अग्रहार और निःसीम जनपद, तीर्थ और क्षेत्र, नदियाँ और सागर तथा दिशाएँ दिव्य-चेतना को प्राप्त होने लगीं। क्या उत्तर भारतीय और बंगभूमीय, क्या आन्ध्रपदी अथवा द्राविढ़पथी – शिवगिरि के अंचल से सिंहलद्वीप तक, हिमालय से कन्याकुमारी तक सभी प्रान्त उद्वेलित हो उठे। आध्यात्मिक-सागर का मन्थन हुआ और हुआ रत्नों का समुदय। स्वामी जी इस महान् आध्यात्मिक-मन्थन के सूत्रधार थे।

ऐसे महापुरुष के ऋषिकेश में पदार्पण करते ही भक्तहृदय-रंजन जनता के आनन्द की सीमा ही कहाँ थी। हमें यह आशा तो नहीं थी कि इस प्रकार देवभूमि भी अपने देव को पहिचान सकेगी। यह निर्विवाद सिद्ध है कि महात्मा या विद्वान् अपने देश और अपने काल में यशोमहिमा के आनन्द-परिचित अधिकार के भागी नहीं बना करते। किन्तु यह तो प्रकृति के उस चिरन्तनागत नियम की अवहेलना ही थी। महात्मा पूजा को प्राप्त कर पाये, अपने ही जीवन में और अपने ही जनपदवासियों द्वारा।

ऋषिकेश के सम्भ्रान्त जनपदवासियों में श्री इन्द्रसेन जी सर्वाग्रणी थे, जिनके साथ विज्ञान प्रेस के संचालक श्री देवेन्द्र विशारद जी थे। तत्परतः बालक और बालिकाएँ, स्त्री और पुरुष, शिष्य और भक्त, ऋषि और मुनि तथा जनपदवासी आ जुटे थे। देवों का समागम था वह, जिसमें मानवता का आवरण पड़ा हुआ था।

पिछले कई सप्ताहों से वे सोये नहीं थे। वे लोग अंगुलियों में दिन गिनते जा रहे थे। जब आश्रम के महात्माओं ने आठवीं तिथि को घोषित किया तो उनके जीवन पुलकित हो उठे। दूर-दूर से लोग आये थे। आश्रम के प्रत्येक साधक के मुख में आनन्द का शस्यांचल लहराता था। इस अवसर पर श्री स्वामी जी के एकान्तप्रिय शिष्य भी कर्मपरायण महात्मा के बन्धन में आ ही

तो गए। श्री स्वामी प्रेमानन्द सरस्वती सदृश लोकोत्तर-भावनामय महात्मा भी अगवानी के लिए आ पधारे थे, जो सचमुच हमारे लिए एक आश्चर्य की घटना थी। श्री स्वामी मौनानन्द जी, श्री स्वामी सदानन्द जी और श्री स्वामी कृष्णानन्द जी ने अपूर्व उत्साह के साथ अपने गुरुदेव का स्वागत किया। शिष्य के द्वारा गुरु का वन्दित होना साधारण दृष्टि से तो कोई भी विशेष महत्त्वपूर्ण घटना नहीं। किन्तु यहाँ पर स्वामी जी के लोकोत्तर-विचारपरायण कुछ शिष्यों का सम्मिलित होना आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। लोकोत्तरविचारशील महात्मागण हर्ष और शोक में किसी भी विशेषता का अनुभव नहीं करते। उनके लिए सभी अवस्थाएँ समान ही हैं। अत: यदि ऐसे महापुरुष अपने गुरु के स्वागत में भी किसी विशेषता को महत्त्व न दें तो आश्चर्य की बात ही नहीं।

त्यागमूर्त्ति श्री नित्यानन्द जी महाराज और दिव्य जीवन मण्डल के प्राण, उसके संचालक तथा कर्णधार पधारे थे। समस्त वातावरण काषाय वेष में प्रतिसज्जित-सा किया हुआ था।

* * * *

दिगन्तोज्ज्वल कीर्ति को अपने अंक में संरक्षित किये हुए, दिग्विजयी के विजय-वैजयन्ती की नायिका का गगनभेदी-निनाद सुनकर प्रकृति जाग उठी और सूर्य उदित हुए। पक्षिशावकों ने भी आज अपने निवास सुशीघ्र छोड़ दिए और शरद्-आगमन की आशा में नीहार-कणिकाएँ सूर्य को देख कर लज्जित हो, प्रकृति-माता के उदर में अपने मुँह छिपा चुकी थीं।

सहसा ही 'जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' की श्रुति जागी। दिग्विजयिनी ने किलकारी मचाई; आनन्द में तरंगित होकर। ऋषिकेश की तपोभूमि अपने श्रृंगार में प्रशोभित हो, देवाराधन के लिए जल्दी करने लगी।

मंगल गीत हुए। डंके पर चोट पड़ते ही वेदध्वनियों से दिगन्त प्रतिशब्दित हो उठे। 'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जय' के विजय घोषों से आनन्द-ही-आनन्द बरस रहा था।

दिग्विजयिनी आज थमी। दो महीनों के बाद। अन्तिम गीत गाए उसने। उसका प्रशस्त द्वार खुल गया। पुन: ज्वार आया आगत-समाज में। पुन: विजय लहरियाँ अपने प्रोत्तुंग शिखरों पर जाग कर विजय-सुमन बरसाने लगीं। हम

लोगों ने दिग्विजयिनी के द्वारों से देखा – वह अपूर्व जन-समारोह, जिसकी कल्पना करते ही, बम्बई, कलकत्ता, कोव्वुर और सभी स्थानों के संगठन भी भुलाये जा सकते हैं। सुन्दरता को भी सुन्दरतम करता हुआ, सत्य-सौन्दर्यशील तपस्वियों के देश की जनता का सौभाग्य अपनी चरम-सीमा पर स्थित हो विजय के गीत गा रहा था, दिग्विजय के नाटक के अन्तिम अध्याय का दृश्यावतरण और धर्म स्थापन के विशाल-प्रासाद में पूर्णकलात्मक शिल्प का सूत्रपात् कर रहा था।

श्री स्वामी सदानन्द जी महाराज ने विजयमाला समर्पित की और विजय-पत्र समर्चित किया। तिलकों से उज्ज्वल-ललाट प्रशोभित हो उठे। दर्शन महाविद्यालय के वेदाध्यायी और योगनिष्ठ विद्यार्थियों ने शुक्ल यजुर्वेद से स्वस्तिवाचन किया और वेदों के आशीर्वचन गाए। भारत और सिंहल द्वीप की कोटिश: जनता को विजय-मन्त्र-मुग्ध करने वाले दिग्विजयी वेदों के आशीर्वचनों को ध्यानपरायण होकर सुन रहे थे, जिस प्रकार आदिमानव ने हिरण्यगर्भसम्भूत वेदों की ऋचाओं को सृष्टि के आदिकाल में सुना होगा।

श्री स्वामी जी को देख कर सब अपनी-अपनी सुध-बुध भूल गए। गोपियों को भी यह सौभाग्य कहाँ प्राप्त था? श्री कृष्ण जी तो सदा के लिए चले ही गए थे। फिर आए ही कब? गोपियाँ देखते-देखते राह में पत्थर बन कर लोट गई थीं। उनकी आँखें मोती बन कर द्वारका के समुद्र में जाने के लिए तरसने लगीं। किन्तु श्याम न आये ओर न आये। गोपियाँ उनसे न मिलीं, न मिल सकीं और न मिल पाईं। पत्थर बन कर राह में अनन्त युगों तक लेटे रहना था, सो हो ही गया। किन्तु स्वामी जी कठोर हृदय नहीं थे। कोमलता और मृदुता के युगोत्तर अवतार स्वामी जी भला अपने प्रेमियों को कैसे भूल सकते थे। अत: वे विजय के उपरान्त आए। वे कंस-संहार के लिए नहीं, किन्तु उग्रसेन और देवकी के उद्धार के लिए गए थे। वे हिंसा के आधार पर विजय के लिए नहीं, किन्तु प्रेम और सत्य तथा परमात्मा के आधार को सर्वाधार घोषित करने के लिए ही दिग्विजय में कर्मपरायण हुए।

ऋषिकेश-निवासियों की ओर से अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया गया, जिसमें गाया गया '... ऋषि मुनि देवेन्द्र! आपकी कीर्ति-पताका की परिधि उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होवे; ऐसी भगवान से प्रार्थना करते हुए हम एक बार पुन: आपको हार्दिक प्रणाम निवेदन करते हैं। भगवान हमारा यह सौभाग्य सब भांति अक्षय करने की कृपा करें।'

विज्ञान प्रेस के कर्मचारियों (साध्यक्ष), स्थानीय व्यापार सभा के सभापति श्री देशराज जी तथा लाला इन्द्रसेन जी द्वारा यह विजय पत्र महाराज को समर्पित किया गया।

अनन्तर जनपद के राजमार्ग पर अवतीर्ण होता हुआ रथ-महोत्सव मुनि-की-रेती पर संस्थित 'आनन्द कुटीर' की ओर अग्रसर हुआ। निशान वायु के अंक में लहरा रहे थे। विजयिनी पताकाएँ वायु के कोमल स्पर्श को पा, मानो आगे-आगे भागने का प्रयत्न कर रही थीं। शंखों की ध्वनि से आती हुई प्रतिध्वनि सहसा ही वातावरण को एक सूत्रांकित कर देती थी। पुष्पवर्षा पर तो सम्भवत: दिव्यलोक के निवासी भी बलि-बलि जाने की इच्छा रखते होंगे। समस्त दिशायें सात्त्विकवेष की सुन्दरता में अलंकृत हो चुकी थीं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी, साधक, योगी और तपस्वी, अवधूत, तितिक्षु और वैरागी सभी वासन्त्य-आनन्द की अलौकिकता में संपरिविराजमान् थे। सभी के जीवन में मानो नवजीवन का कुसुमाकर नाच रहा था और उत्पल-विकास का मार्गशीर्ष विराज रहा था। सभी के निष्पथ-जीवनों में दीपमालिका का त्यौहार मनाया जा रहा था और होली के फाग गाए जा रहे थे। विजयदशमी की मानो यही पुनरावृत्ति थी, जिस दिन गगनाकार, सागरोपम तथादिक काव्य-अलंकृत उपमाओं से सेवित राम-रावणयुद्ध के फलस्वरूप विजयदशमी का अवतरण हुआ था; जिस दिन विश्वविनायक और दनुजवंशसेवित असुरमंडली का संहार कर रौद्रात्मिका देवी अपने कराल वक्षस्थल में कोटिश: पापियों को समासीन कर अपने सौम्य, सुन्दर तथा च परम-दिव्य वेष में भक्तों को दर्शन दे रही थी; जिस दिन मनुष्य के जीवन की नवरात्रियाँ दशमी की विजय-छटा में एकात्मिका हो रही थीं; जिस दिन मनुष्य के जीवन के तीन महाशत्रु अपने त्रिगुणात्मक-गुणों के साथ दशमी के विशाल-सागर में समासीन हो रहे थे।

सचमुच दिग्विजय की पूर्णिमा विजयदशमी की ही पुनरावृत्ति थी, जिस दिन श्री स्वामी जी ने अपने जीवन में विशाल यज्ञ की पूर्ति की। उनके जीवन का उद्देश्य सफल हुआ और उनके जीवन की सिद्धि-प्रसिद्धि चरितार्थ हुई। उन्होंने प्रान्तों-प्रान्तों और नगर-नगर में जाकर जनपदवासियों को आत्मा का सन्देश दिया एवं च उनको सत्यपरायणता और सदाचरण की ओर जगाया। उनके दिमागों से धर्म के पोले भूत को सदा के लिए हटाया और यह सिद्ध किया कि 'योग मनुष्य के जीवन के अन्तिम प्रहर में सिद्ध किए जाने के लिए

नहीं किन्तु सम्पूर्ण जीवन के समस्त क्षण ही योगमय होने चाहिए। योगमय क्षणों का योगफल ही योग है। जीवन को आत्मा और परम-शान्ति से मिला देने वाला ही योग है।'

9 सितम्बर से 8 नवम्बर तक देश के कोने-कोने में स्वामी जी ने ये ही सन्देश दिये, ये ही गीत गाये और ये ही वार्तालाप अपनी वाणी से निःसृत किए। अवतारों की परम्परा को सजीव बनाते हुए, उन्होंने जगद्गुरु श्री शंकराचार्य के समान दिगन्तों का भ्रमण किया, गुरु गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ के समान योग की लुप्त-विद्या का पुनरुद्धार किया। श्री स्वामी जी को जनता के मंच पर जागृत होते देख कर बीसवीं शताब्दी की सभ्यता और संस्कृति ने सादर मस्तक झुकाया। राज्याधिकारी और साधारण जनसमाज, व्यापारी और कर्मचारी, नास्तिक और आस्तिक, हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और पारसी तथान्य जातियों के लोग समान आदर से स्वामी जी के उपदेशों को सुनने आए। उसका कारण यही था कि स्वामी जी ने सम्प्रदायवाद में परिवर्त्तन किया। सम्प्रदायों की विभिन्नता, अनेकमत-परायणता, परस्पर के द्रोह और दूसरे के सिद्धान्तों का तिरस्कार, इन सबमें स्वामी जी ने समूल परिवर्त्तन किए। किसी विशेष वाद का आश्रय न लेकर ही स्वामी जी ने जनता के आदर की प्राप्ति की। स्वामी जी न तो हिन्दू सिद्धान्तों का प्रचार करने गए थे और न अन्धविश्वास की परम्परा को नवजीवनदान देने ही। किन्तु उन्होंने समाज के आगे एक ऐसी सिद्धान्तपरायणता को उपस्थित किया, जिसका जन्म आदिमानव के साथ-साथ हुआ। जिस समय प्रथम बार मनुष्य ने प्रकृति की गम्भीरता के शब्द सुने, जिस समय प्रथम बार मनुष्य ने अश्रुतपूर्व अनन्त का अनुभव किया, जिस समय प्रथम बार मनुष्य ने अपनी बुद्धि के परिमार्जित होने पर अपनी महान् किन्तु अभिन्न सत्ता का अनुभव किया, उसी समय के अनुभवों की आधारशिला पर ही स्वामी जी ने अपनी दिग्विजय को प्रतिष्ठापित कर विश्व के प्रतिनिधित्व के लिए आध्यात्मिकता के आदि-सिरमौर भारत को सुसज्जित किया था।

शताब्दियों से सन्तों की अनहत परम्परा ने मनुष्य के अन्ध-विश्वास को क्षत-विक्षत करने का महत् कार्य सम्पादन किया है। अवतारों की परिपाटी इसी स्वर्णकिरण के प्रकाश में जन्म लेती आई है। श्री कृष्ण जी ने अपने समय में रूढ़िवाद को समाज से दूर किया; गीता उसकी साक्षी देती है। भगवान अर्हत्, सम्यक् और सम्बुद्ध ने भी नाममात्र के कर्मकाण्ड से पतित

समाज को जगाया और निर्वाण का सन्देश दिया। पुन: अनेकों प्रचारक होते गए और सफलतापूर्वक उचित मार्ग पर जनता को ले गए। किन्तु कुछ प्रचारकों ने सम्प्रदायवाद के आधार पर समाज को संकीर्णबुद्धि बना दिया। फल यह हुआ कि आध्यात्मिकता का अर्थ और योग का तत्त्व अनुचित-रीति से समझा गया। मुक्ति को किसी जादूगर के इन्द्रजाल के समान समझ लिया गया और ज्ञानी की अवस्था किसी मदिरा पीने वाले के समान समझी जाने लगी। जिस प्रकार भंग पीकर कोई व्यक्ति अपनी चेतना को खो देता है, उसी प्रकार जनता ने ज्ञानी की कल्पना की। योग की परिभाषा ही वायुगमन, अन्तर्धान होने से जान ली गई। चमत्कार को ही योग की कसौटी समझा गया। किन्तु जिस समय कबीर आए तो उन्होंने इन निर्मूल धारणाओं पर कठोर आघात किया। जनता में कुछ सीमा तक चेतना आई। किन्तु विशाल मानव-समाज को जगाने के लिए पर्याप्त शक्ति की आवश्यकता थी। सन्तों की परिपाटी तो मानवोचित सुधार ही कर पाती है। अत: आत्मशक्ति से सर्जित तत्त्व की आवश्यकता हुई, जो आत्मशक्ति के बल इन पर परिवर्त्तन की लहर लाए। स्वामी जी का अवतरण इस कार्य के लिए ही हुआ था।

दिग्विजय के अवसर पर विशाल समाज में, जो अन्धविश्वास का लक्ष्य बन चुका था, जिसमें सम्प्रदायवाद की संकीर्ण-निशा छाई थी, स्वामी जी ने योग के परम-रम्य अनुभवों का प्रचार किया। स्वामी जी ने न तो कभी योग की परात्परवादिता और चमत्कार-परम्परा को खण्डित किया और न इसको प्रधानता ही दी। उन्होंने कहा कि 'वायुगमन भी योगशक्ति के बल पर किया जाता है; अन्तर्धान भी योग द्वारा आप हो सकते हैं; किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो वह है, जो मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ, पतन से उत्थान, मानव से देवत्व और सांसारिकता से आत्मसिद्धि की ओर ले जावे।'

उन्होंने कहा, 'भोजनादि का त्याग ही सच्चा त्याग नहीं है। वस्त्रों के त्याग से ही वैराग्य की परिभाषा सीमित नहीं की जा सकती और न संसार-त्याग ही वैराग्य के सिद्धान्तों का पूरक है। किन्तु मनोभावनाओं की कलुषता का त्याग भी किया जाना चाहिए। अपने अन्दर संचित दुर्बल-संस्कारों का त्याग भी किया जाना चाहिए। वैराग्य की परिभाषा तो संसारत्याग से ही पूरी नहीं होती, किन्तु सांसारिकता के त्याग से अवश्य पूरी होती है। वैराग्य बाहरी कर्म नहीं, जिसका प्रदर्शन किया जा सके, किन्तु आन्तरिक-परिवर्त्तन है, जिसका अनुभव किया सकता है।'

हिमालय से लेकर सिन्धुभूमि-पर्यन्त विभिन्न प्रान्तीयों ने यह नवीन-चेतनात्मक वाणी सुनी। जिस प्रकार ईसामसीह ने समस्त पश्चिम को प्रभावित कर दिया और जिस प्रकार उनकी प्रेममयी वाणी ने निर्दय मनुष्य में भी कोमलता का अभिसंचार किया था, उसी प्रकार महाराज की योगमयी वाणी से जनता के प्रसुप्त विभाव जाग उठे। तब तक तो जनता योग के अभ्यास के लिए जीवन के अन्तिम प्रहर को ही उपयुक्त जानती थी; युवावस्था को तपस्या, वैराग्य और आध्यात्मिक-कर्म के लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझती थी। किन्तु स्वामी जी की नवीन किन्तु आदि-व्याख्या ने उसके विचारों को पलट दिया, उसके जड़-निश्चय को उलट ही दिया। हमने देखा कि सहस्रों के नेत्र स्वामी जी की ओर टकटकी लगाये निरन्तर देखते रहते थे। हमने देखा कि सहस्रों अपने अंगवस्त्रों से आँखों को सहलाते-सहलाते थक जाते थे। हमने देखा कि सहस्रों उनके पीछे रात और दिन अविश्रान्तगत्या किसी विशेष और दिव्य प्राप्ति के लिए चलते रहते थे। और हमने देखा कि भारत तथा लंकावासी कोटिशः हिन्दू, मुस्लिम, पारसी और ईसाई... सभी-सभी मन्त्रमुग्ध होकर, हिमशैल के अवतार की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते रहते थे।

महाराज ने योग के सभी अंगों पर सुन्दर विचार प्रकट किये। जीवन और योग का आजीवन-समन्वय सिद्ध किया। आध्यात्मिकता और दैनिक जीवनचर्या का परस्पर मिलाप किया। प्रत्येक को भली-भांति समझाया कि 'योग चमत्कार से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, किन्तु योग के चमत्कार में मनुष्य की सोई हुई आत्मा जाग जाती है। योग अपने जीवन में सदाचरण के उदय को कहा जा सकता है। सदाचरण की भूमिका ईश्वर-विश्वास और ईश्वरपराणयता में ही है। भगवान पर अपना सब कुछ अर्पित किए बिना सदाचरण अधूरा ही रह जाता है। कण-कण में भगवान को ही व्यापक देखते हुए और उस कण-कण से उसी प्रकार व्यवहार करते हुए (जिस प्रकार आप अपने भगवान से करेंगे) मनुष्य निःसन्देह ज्ञानी और जीवनमुक्त बन सकता है। मनुष्य को अपने नीच मन पर विजय पानी चाहिए, जो विश्व-स्फुरण का उत्तरदायी है; जो दुनियादारी का जन्मदाता है। यदि अपने नीच मन पर विजय पाई जा सकी तो जीवन का मार्ग अमल और उज्ज्वल हो जाता है अपि च उसी उज्ज्वलता में मनुष्य को परमात्मा के विशाल-स्वरूप की अनुभूति होती है। जब मनुष्य इस प्रज्ञा में प्रतिष्ठित हो जाता है तो विश्व का वातावरण

उसे प्रभावित नहीं कर सकता। जिस प्रकार कमल के पत्तों पर जल स्थिर नहीं रह सकता और कमल का पत्ता भी प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुआ व्यक्ति अपने जीवन में किसी प्रकार के सुख अथवा दु:ख से विचलित या प्रभावित नहीं होता, किन्तु अपने स्वरूप में ही विचरण करता हुआ, शरीर, मन और बुद्धि से यथायोग्य कार्यों को सम्पन्न कर सदा निर्लिप्त ही रहता है।'

मनुष्य के जीवन का उन्नायक था स्वामी जी का दर्शन। आत्मा के गीतों का अमरकोष था उनका प्रचार और विश्व की जागृति का इतिहास था उनका धर्मस्थापन। उनके नेतृत्व में भारत ने सर्वप्रथम अपने सुधार करने प्रारम्भ किए। अपनी कट्टरता को धोया। अपनी भूलें सुधारीं और अपनी संकीर्णवादिता को अस्ताचल की ओर आकृष्टमाण किया। सम्प्रदायवाद से दूर हटने की लगन में अनेकों शिक्षित भारतवासी संलग्न हो गए। धर्मप्रचारकों के सामने सुप्राचीर्य ज्योति का उदय हुआ और समाज सुधारकों को अवलम्ब मिला। जिसका सहारा पाकर वे अपने कार्य की सम्पूर्ति कर सकते थे।

वे दो महीने विश्व की आध्यात्मिकता के उदय काल थे, जिनमें पूर्व से अरुणगिरि का अंचल रक्तिम हो उठा और उदयगिरि से आध्यात्मिकता की किरणें गगनशोभित होने लगीं। वे दो महीने प्रसूतिकाल के थे, जिनमें मानवता की गोद आध्यात्मिक-शिशु के सौन्दर्य से भरने और लहलहाने वाली थी। उन दो महीनों को आदिमानव की आध्यात्मिक सभ्यता का उदयकाल कहा जा सकता है। सच कहें तो वे दो महीने बीसवीं शताब्दी का इतिहास आने वाले युगवासियों से कहते ही रहेंगे; क्योंकि मानवता का सच्चा इतिहास उसकी आध्यात्मिक संस्कृति का आख्यान ही है। और सब कुछ तो केवल ढकोसला है और आडम्बर मात्र ही है।

*   *   *   *

8 नवम्बर को प्रात:काल के 9 बजे दिग्विजयी का विशाल रथ ऋषिकेश के राजमार्ग पर बल खाते हुए लहरा रहा था, जिसके मनोहर अंक में आरण्यक पुष्पों की राशियाँ इठला-इठला कर नाच रही थीं। महामन्त्र गाया जा रहा था। याचकों को दान और आशीर्याचकों को आशीर्वाद का अभिदान दिया जा रहा था। देवालयों में पूजा, अभिषेक, अर्चना और आरतियाँ हो रही थीं, क्योंकि महाराज परिदर्शन दे रहे थे। सुन्दर मन्दिरों के शिशु-

शिखर अन्तरंग की घण्टियों के कल-कल निनाद से आनन्दरंगमग्न हो रहे थे। क्षितिज तिलकांचिता सौभाग्यवती के समान चमत्कृत था। मार्गानुवर्त्ती कुष्ठियों के रूप में साक्षात् नारायण को मानो पूजन की सामग्री अभिषेक में अर्पित की जा रही थी। अन्त में आनन्द कुटीर की मनोहर भूमि में दिग्विजयी के पदार्पण हुए। श्री विश्वनाथ मन्दिर में, जो दिग्विजयी की प्रेरणा का सदा से सूत्रधार रहा, जिसके आदेश से स्वामी जी महाराज ने आज तक जनकल्याणार्थ आत्मा की गीता को विश्व-विश्रुत किया और जिसमें निवास करने वाले देवी एवं च देवता महादेव और श्री कृष्ण, राम और गणेश सदा से स्वामी जी को जन-मंगल की प्रेरणा देते आ रहे हैं, स्वामी जी के प्रविष्ट होते ही आरति-संदर्शन होने लगा। रुद्रि के अनुवाक उच्चारित हुए, भगवान सोमशिरोमणि के पवित्र लिंग श्री विश्वनाथ ने परम-पवित्रीकृत दुग्धाभिषेक को स्वीकार किया। चमक के पाठ होते ही बिल्वारण्यक्षेत्र अध्ययनशील वैदिक-बालकों के अपारावार समुदाय के समान शब्दशील हो गया; जब श्री स्वामी जी महाराज देवालय की भूमि में पदार्पण कर रहे थे; जब उनके पीछे काषायवस्त्रानुसज्जित महात्मागण, श्वेतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी, नगरवेषपरायण नागरिक तथा विविध रंगों में अलंकृयमान महिलामंडल भी नतमस्तक हो प्रवेश कर रहे थे।

'सोमो वा एतस्य राज्यमादत्ते। यो राजा सम्राज्ञो वा सोमेन यजते। ते वसुवामेतानि हवि॑ँ षि भवन्ति...।'

आदिपुरुष के गीत गाए जा रहे थे। अपने करारविन्दों में बिल्वदल का हार लिए स्वामी जी और सभी भक्तगण आनन्दारविन्दमुख-उत्पल खोल रहे थे; जब वैदिकों ने मन्त्र-पुष्पांजलि दी...

'योऽपां पुष्पं वेद पुष्पवान् प्रजावान् पशुमान् भवति चन्द्रमा वा अपां पुष्पं पुष्पवान् प्रजावान् पशुमान् भवति। य एवं वेद।'

धीरे और प्रशान्त और गम्भीर गति से वेदों का पारायण हो रहा था; आदिपुरुष परमात्मा के प्रथम शब्दों की आवृत्तियां गाई जा रही थीं; मन्त्रों द्वारा आत्मसमर्पण किया जा रहा था; और बिल्वदल भगवान शशांकशेखर पिनाकपाणि के विश्वनाथलिंग के सुस्तर पीठ पर तन्मय हो रहे थे। कोटिशः जनों के हृदयों में अपनी आध्यात्मिक-छाप अंकित करने वाले दिग्विजयी

विश्व-विभूति के आगार और त्रिलोकी के अधिपति तथा ब्रह्माण्डों के रचयिता, उन्नायक एवं च त्राता के चरणों की सन्निधि में अपना प्रणाम समर्पित कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे अपने को सर्वथा भूल चुके और प्राकृतिक-विधानवश व्यवहारपरायण हो रहे थे।

इस प्रकार दिग्विजय का खेल पूर्ण हुआ। 61 दिन लोकोत्तर महान् कार्य की भूमिका का सूत्रपात कर स्वामी जी शान्त और मौन हो चुके थे। उनके मुखमण्डल पर अखण्ड तपस्वी की नीरव ज्योति विराज चुकी थी। आश्रम के अधिष्ठाता का उत्तरदायित्व उनके मुख पर अवतरित हो चुका था। साधकों को जीवनदान देने वाले गुरु के रूप में वे अब कर्मपरायण हो चुके थे, क्योंकि वे विश्व को निरन्तर कर्मपरायणता, निष्काम कर्म और अहर्निश सेवा का उपदेश देने आए थे, न कि उसको विश्व से दूर कर विश्वप्रियता का अभिनायक बनाने। वे मनुष्य को आत्मत्व की ओर ही जागृत करने आए थे न कि उसको मानव-जीवन-सुलभ संकीर्णताओं की परिधि में जकड़ने। उन्होंने मनुष्य को आत्मत्व का प्रथम प्रतिनिधि माना। दर्शन की दृष्टि से तो उसे साक्षात् आत्मा ही जाना। यही स्वामी जी ने हमको सिखलाया, जिसकी विभूति में ही हम आज पथ खोज सके हैं और दूसरों को उसी पथ का पन्थी बना पाए हैं। अनन्त पथ के ऐसे सूत्रधार को अनन्त बार प्रणाम!!!

* * * *

दिन के दो बजे तक महात्माओं का भोजन समाप्त हुआ। वह स्वामी जी की दिग्विजय का महाभोग था, जिसे सबने प्रेमपूर्वक ग्रहण किया। वह श्री विश्वनाथ भगवान के प्रतिनिधि का प्रसाद था, जिसको पाकर मुनिपदरजसेवित ऋषि-मुनीश्वर धन्यजीवन हो उठे। उसी दिन स्थानीय याचकों को भी भिक्षा दी गई, जिनमें विशेषत: कुष्ठ रोग से पीड़ित नारायण (अच्युत नारायण) थे। भगवान के नामसंकीर्त्तन से गंगा के तट पर बसी हुई 'शिवानन्द नगरी' पुण्यजीवन को प्राप्त हो रही थी। कलकल शब्द करती हुई भगवती गंगा का सुनील वक्ष भी भरता जा रहा था, प्रेम और स्नेह के अमित वरदान को पाकर। मानो दुग्ध की धारा नि:सृत होने जा रही थी।

सबने दिग्विजयी की दिग्विजय को सराहा और उसे यशोऽलंकार-दीप्ति से परिमण्डित माना एवं च युगों की अस्पष्ट छाया के नीचे एक महान् अपने

जीवन में अपने ही प्रतिप्रवासियों द्वारा आत्मपदसमन्वित जाना गया। यही दिग्विजय की परिसमाप्ति थी।

*　　　*　　　*　　　*

हे दिग्विजयी! हम उन स्वर्ग-दिवसों की पुनरुक्ति बारम्बार करते रहेंगे तथा च प्रतिवर्ष 9 सितम्बर से 8 नवम्बर तक हमारे जीवन में आध्यात्मिकता के संस्कारों का मन्थन होगा। हम विश्व के स्नेहमय अंक में निवास करने वाले आपके महान् उपकार को नहीं भूल सकेंगे। प्रतिवर्ष उपरोक्त दोनों महीने हमारे सुप्त संस्कारों में जागृति को लाएँगे ही, हमारी चेतना में अभिनव-चैतन्य का संचार तो कर पायेंगे ही और साथ-साथ हम उसी दिन और उन्हीं दो महीनों में आपको अपने सामने प्रत्यक्ष देख सकेंगे, जिस प्रकार आपने हमको उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगभूमि और आन्ध्रदेश में, द्रविड़ भूमि, लंका, मलय प्रदेश और कर्णाटक में, निजाम राज्य, गुजरात और भारत की राजधानी में दिव्य-दर्शन दिए थे, जिस प्रकार कोटिशः नागरिकों ने आपके साक्षात् स्वरूप को देख अपने को पारमात्मिक मन्त्र से प्रतिमुग्ध जाना था। हे देव! इसी प्रकार आप युगों-युगों तक विश्व के निवासी हम मानवों पर अपनी दया-दृष्टि का वरदान यशस्वी करते रहना, जिससे हम अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कर पाएँ और अपनी आत्म-प्रतिष्ठा को प्राप्त करते रहें। प्रकृति मानवता को जन्म देती रहे और आप उसे आत्मा के उज्ज्वल निकेतन की ओर ले जाते रहें। विधाता विश्व की रचना करते रहें और आप उस विश्व में आत्म-सुधार का श्री-गणेश करते जाएँ। अनादि माया के सभी तत्त्व भी यथानुरूप और यथापूर्व ही रहें, हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु आप हमें उनके द्वन्द्वात्मक कार्य-कलापों से विमुक्त और स्वतन्त्र बनाए रखें। आपका यश, आपकी कीर्ति और आपके नामों का संकीर्त्तन करते-करते हम परमपद की प्राप्ति करें। यही एक वरदान हम आपके वरद-हस्तों से अभियाचित करते हैं।

हे शाश्वत जीवन की गीता के गायक! अपने मधुर गीतों को निरन्तर गाते रहना। हमें भी उनके श्रवण के लिए सनातन रखना। जब तक आप गीत गाएँ, तब तक हम भी उन्हें सुनते रहें। जब तक आप अपने उपदेश दें– शिवगिरि के मनोहर और पौराणिक अंचल से – तब तक हम भी टक-टकी लगाए, हिमांचल की आदि-उपत्यकाओं की ओर शान्ति और आनन्द, सनातन विश्राम और ज्ञान के लिए देखते रहें। यदि हम पश्चिम में निवास करें

तो पूर्व की ओर ही हमारी दृष्टियाँ अपने को विशाल मार्ग पर पसारे युगों-युगों तक देखती रहें। पूर्व की ओर ही हमारा सूर्य उदित होता रहे। पूर्व की ओर से विश्वज्ञान की लालिमा जागे और पूर्व ही समस्त विश्व के प्रभात का श्रेय प्राप्त करे। आनन्द-कुटीर ही इस पूर्व का प्रतिनिधित्व करता रहे, जहाँ आपने विश्व के आनन्द का कोष संचित रख दिया, जहाँ आपने विश्व के अनहत-ज्ञान की राशि को संरक्षित कर दिया; आने वाले अनन्त कालों और अनन्त मानव समाज के हेतु।

हम विश्व के नागरिक, जिन्हें आपने आत्मा की संज्ञा दी है, आत्मा ही बन जाएँ। यदि आत्मा ही हैं, तो अपने को पहिचानें और अपने दर्शन करते रहें। आप सनातन रहें और हम भी आपके साथ-साथ सनातन पद की प्राप्ति करें। आप हमारे कल्याण में अनुरत रहें तो हम भी अपने और दूसरों के कल्याण में कृतकर्म हों। आप सबका भला करो और हम अपना तथा दूसरों का भला करें। आप विश्व का मंगल करो और हम भी आत्ममंगल और परमार्थ-मंगल के लिए प्रयत्नशील होवें। बल दो, बुद्धि, साहस, तेज, ओज और आशीर्वाद भी।

उत्तरापथ के हे अमर तपस्वी! हे कूटस्थ और अचल महान् अवतार! हमारी ओर से मंगलकामना स्वीकार कीजिए। आपकी ज्योति जलती रहे। आपकी प्रेरणा फलती रहे। हमारी जीवन-तूलिका अमर रहे और लेखनी अप्रतिहत तथा वाणी सनातन। हम आपके चित्र बनाते रहें, आपकी कहानी लिखते रहें और आप के गीत गाते रहें। यही वरदान दो, हे शिव! ब्रह्माण्डों के युगोत्तर अवतार!!

*　　*　　*　　*

स्वर्ण दीप हे अमर रहो तुम,
विश्वविजय कर सतत् चलो तुम,
यावच्चन्द्रदिवाकर उज्ज्वल,
करो अभय हे करो विजय!!

स्वर्ण-शिखर के तेरे अंचल,
सदा प्रदीपित, उज्ज्वल प्रतिपल,
कोटि युगों तक गावें अविचल,
तेरी पावन विश्वविजय!!

कर्मभूमि में विश्व-पार तुम,
भूमा जीवन हार बने तुम,
विश्वपरात्पर महापार तुम,
सत्यरूप जय! ज्योति विमल जय!!

दिव्य ज्ञान के चन्द्रदिवाकर,
पुण्य धरा के हे! मधुर अधर,
सप्त-द्वीप नवखण्ड निनादित,
प्राणप्रतिष्ठित शंकर जय जय!!

ज्ञानामृत बरसाते जाना,
जीवन गीता गाते जाना,
हेमदीप में आते जाना,
निर्भय जय! जन अभिनव जय जय!!

हरित भूमि में, सरिता जल में,
अम्बरपट में, सागरतल में,
एक रूप, तुम रूप अनेकों,
व्यापक बनना, रवि औ' शशिमय!!

जीवन में उल्लास जगाना,
पावनश्रुति तुम गाते जाना,
इन्दु सूर्य सम चिरयुग जीना,
सत्यचिरन्तन ज्योतिविजय जय!!

◇◇

ॐ तत्सत् शिवानन्दार्पणमस्तु

◇◇

परिशिष्ट प्रथम

जिसमें 'अखिल भारत यात्रा' के संस्मरण स्वरूप स्थान-स्थान पर प्राप्त हुए अभिनन्दन पत्रों का संग्रह है। ये अभिनन्दन पत्र श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में स्थान-स्थान पर स्थानीय नागरिकों ने समर्पित किए थे। यहाँ केवल मात्र हिन्दी और संस्कृत के ही मानपत्रों का संग्रह दिया जा रहा है। अंग्रेजी अभिनन्दन पत्रों का संग्रह 'शिवानन्दाज़् लेक्चर्स' (Sivananda's Lectures) नामक बृहद् ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुका है। तामिल भाषा के मानपत्र 'शिवानन्द दिग्विजयम्' (तामिल) नामक पुस्तक में प्रकाशित हो ही चुके हैं। अन्य भाषाओं के मानपत्र अभी अप्रकाशित ही हैं। समयानुसार प्रकाशित किए जाएँगे।

मैं आप लोगों के अखण्ड सहयोग का ऋणी हूँ। आपके अभिनन्दन पत्रों में हमारे देश की आध्यात्मिक-संस्कृति का अभिवचन है, और आर्य कहलाने वाले वैदिक पुरुषों की अक्षुण्ण-परम्परा का उज्ज्वल दर्शन भी। आप सचमुच साधुवाद के श्रेय को प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

–स्वामी शिवानन्द

जनता के हृदयों के विजेता ऋषि को समर्पित

विजय-पत्रों का सारांश

वाल्टेयर तथा विशाखापत्तनम् के नागरिकों का विजयपत्र

अपने प्रारम्भिक जीवन में आपने जिस भावना से सांसारिक सुखों को त्याग कर चतुर्थ आश्रम ग्रहण किया, वह हमें प्राय: दो सहस्र सम्वत्सर-पूर्व उस समय की स्मृति के प्रांगण में पहुँचा देती है, जब महान् राजकुमार गौतम संसार त्याग कर बुद्ध बन गए थे। आपके द्वारा संस्थापित 'दिव्य जीवन मण्डल' आपके महान् बलिदान तथा मानव-प्रेम का स्तम्भ है। आपकी वर्तमान यात्रा से सभी भक्तों को आपके दिव्य सम्पर्क में आने का अवसर मिला है और इससे उनकी आध्यात्मिक साधना में नवीन आशा का संचार हुआ है। आप युग-युग जीते रहें!

पुस्तक के विस्तार भय से अंग्रेजी के सभी मानपत्रों का अनुवाद नहीं दिया जा सका। अत: प्रमुख मानपत्रों के सारांश का हिन्दी अनुवाद ही दिया जा रहा है।

राजमहेन्द्रवरम् की नगरपालिका सभा की ओर से

आपका आत्म-स्वतन्त्रता का सन्देश –'भगवान तुम्हारे अन्दर है, वह प्राणियों के हृदय में विराजमान् है; जो कुछ तुम देखते, सुनते, तथा अनुभव करते हो, भगवान है; अत: किसी से घृणा न करो, सबसे प्रेम करो और सब एक हो जाओ' – सरल, उत्साहप्रद तथा जीवन का उन्नायक है। आपको कोटिश: प्रणाम!

विजयवाड़ा के नागरिकों द्वारा

आपकी महामान्य रचनाओं से प्राचीन ज्ञान का भण्डार वर्तमान नास्तिक पीढ़ी को सुलभ हो गया है, जो अपनी संस्कृति से हट कर बहुत दूर जा गिरी थी। हमने यह अनुभव किया है कि इस यात्रा से आपका एक लक्ष्य है और वह है सार्वभौम शान्ति तथा विश्वप्रेम के लिए अपूर्व प्रचार। हम अत्यन्त विनम्रता के साथ आपको प्रणाम करते हैं, क्योंकि आपने अपने दर्शन देकर हमें आत्म-सम्पर्क का सुयोग प्रदान किया है। आप चिरायु रहें!

मद्रास के नगरपाल की ओर से

इस 'कॉरपोरेशन' को आज तक किसी धर्मप्रचारक के स्वागत का सुयोग नहीं प्राप्त हुआ। श्री स्वामी जी का सम्मान कर – जिनकी निस्वार्थ सेवा तथा सार्वभौम दृष्टिकोण ने विश्व का आदर और मानव की पूजा का श्रेय प्राप्त किया है, वास्तव में हम अपने को ही सम्मानित और कृतार्थ कर रहे हैं। स्वामी जी आज के युगनिर्माता हैं। वे वेदायु को प्राप्त करें।

मद्रास की स्वागत समिति का स्वागत-पत्र

यद्यपि आपका आधार भगवान में है, किन्तु धरातल पर आप अपने सहोदर मानव समाज के कल्याण के लिये प्रयत्नशील हैं और उसके प्रति आपके विशाल हृदय में ऐसा गम्भीर और अविनाशी प्रेम है कि यदि आपको निर्वाण की भी तिलांजलि देनी पड़े तो आप सन्नद्ध हैं। किन्तु हम जैसे दुर्बल मृतप्राय समाजियों को नि:सहाय छोड़ना आपको प्रियकर नहीं होता। भारत तथा भारतेतर देशों के नर-नारी, धनी-दरिद्र, विद्वान्-अज्ञानी और सभी प्रकार के

मनुष्य आपके व्यक्तिगत तथा दिव्य-सम्पर्क एवं च आपके उपदेशों के गीतों की स्वर-तरंगों में परम-आनन्द को प्राप्त कर रहे हैं। आप शतकोटि आयु के वसन्त देखें।

हिन्दू (दैनिक) मद्रास की जनवाणी

स्वामी जी में प्रधान गुण है, विचारपरायणता और परम-बुद्धिशीलता। वे अपने शिष्य के साथ भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पर्क बनाये रखते हैं। उनकी कार्यप्रणाली और उसकी उपयोगिता तथा च बुद्धिपरायणता उनके शिष्यों के लिये विश्वास का आधार बन जाती है, जिस पर भावी निर्वाचन का कार्य छोड़ दिया जाता है। गोपनीयता, रहस्यवादिता और छायावाद की अनुपस्थिति स्वामी जी के दर्शन का प्रमुख सौन्दर्य है। सच है कि सत्य की खोज में इसकी ही आवश्यकता रहती है। सिद्धान्ततः स्वामी जी वेदान्त के अनुयायी हैं, किन्तु उन्होंने वेदान्त से इतर सभी दर्शनों का साक्षात्कार कर लिया है; अतः सम्मान देना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार 'दिव्य जीवन मण्डल' भी जनता के लिए साक्षात् सत्य है, जिसकी प्रणाली आज अनुपमेय और युक्तिसंगत है, क्योंकि इसमें साधकों को यन्त्रवादी बनाने की चेष्टा नहीं की गई है।

अन्नमलय विश्वविद्यालय की ओर से

आपने अपने में एक कर्मयोगी, राजयोगी, भक्त तथा ज्ञानयोगी का जीवन समन्वित कर लिया है। एक संन्यासी के लिए यह समन्वय की अनुपम प्रणाली है। आपके लेखों ने दिखला दिया है कि योग क्रियाएँ केवल संन्यासियों के लिए ही नहीं, किन्तु सार्वजनिक हैं। आपके स्पष्ट और आत्म प्रकाशक लेखों ने हमारे देश की प्राचीन और महान् संस्कृति को विदेशियों के जीवन के सन्निकट ला दिया है। आपके चरणों में प्रणाम!

तन्जावर की जनता के विजय-पत्रों से

भारत ही नहीं, वरन् समस्त विश्व की प्रयोगशालाओं में ऋषिकेश सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है, जहाँ आपकी अध्यक्षता में समस्त मानवीय रोगों की चिकित्सा तथा उसका पवित्रीकरण किया जा रहा है। धन्य है आपको! आप युगान्तरजीवी हों!

तिरुचिरापल्ली की सभाओं के मानपत्र

आपके उपदेशों तथा लेखों की विश्वात्मपरायणता तथा आनन्द कुटीर में दैनिक-जीवन-सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान के प्रदर्शन ने 'शिवानन्द' नाम को सभी की वाणी का गीत बना दिया है। इस नाम से सबको आश्वासन, प्रसन्नता, प्रोत्साहन और बल प्राप्त होता है तथा च उनका जीवन महान् बन जाता है।

कोलम्बो कार्पोरेशन की ओर से

आप हमारे बीच प्रेम, शान्ति तथा समन्वय के दूत तथा नवयुग के प्रवर्त्तक-रूप में पधारे हैं। अपने अन्दर शाश्वत शान्ति प्राप्त कर आपने विश्व के कोने-कोने में रणोन्मादमत्त राष्ट्रों तथा विभेदभावपूर्ण धर्मों को वास्तविक शान्ति, आनन्द तथा सत्य का मार्ग प्रदर्शित कराया है। लंका के नागरिक आपका स्वागत करते हैं।

लंका के हिन्दू नागरिकों की ओर से

लंका के हम हिन्दू नागरिक आनन्द तथा श्रद्धा के साथ आपके आत्मज्ञान की उज्ज्वलता, आपके लेखों द्वारा प्रकटित महती विद्वत्ता तथा महान् उद्योग की सफलता को देख रहे हैं। आधी शताब्दी पूर्व श्री स्वामी विवेकानन्द ने इस द्वीप में दर्शन दिये थे। पश्चात् हम लोगों को हिमांचलागत नवयुग के नेता के स्वरूप में आपके स्वागत का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

सीलोन 'टाइम्स' की जनवाणी

स्वामी शिवानन्द जी का लंका में अपूर्व स्वागत हुआ। इससे स्पष्ट है कि पूर्व में हम लोगों ने आध्यात्मिक मूल्यों का अवमूल्यन नहीं किया है। आज तो अनुपयोगी युद्धों द्वारा राजपथ रक्तरंजित हो रहे हैं। युवकों के जीवनों का सर्वनाश हो रहा है और, जनता केवल राजवंश के पुरुषों का ही स्वागत करती है। किन्तु एक साधु का राजोचित स्वागत अपूर्व और उत्साहप्रद लक्षण का अभिमतदाता है। स्वामी जी ने समाज को जो सर्वोत्तम उपहार प्रदान किया, वह है आत्मोत्सर्ग, जिसके आधार पर ही जनकल्याण का निर्माण होने वाला है। बुद्धिमानों की प्राचीन लोकोक्तियों को चरितार्थ करते हुए, वे हमारे बीच में पधारे हैं। हम उनका उसी रूप में अनुश्रुतपूर्व स्वागत करते हैं।

तिरुनेलवेली जनसमाज की ओर से

आप हमारे महान् आध्यात्मिक गुरु हैं। आपके उत्साहप्रद और प्रेरणादायक सन्निधान में तथा हृदयोत्कर्षक व्याख्यान एवं च रचनात्मक ज्ञान द्वारा हम भौतिक भावनाओं के अन्ध-प्रदेश से आध्यात्मिक-ज्योति के समुज्ज्वल मार्ग पर आ गये हैं। यह आपकी जन्मभूमि रही, जहाँ आपका परिपालन हुआ माना जाता है। हमें इसका गर्व है। आप इस समय मानव-जाति के लिए ज्ञान, संस्कृति एवं साधुता के प्रकाश-स्तम्भ बन गये हैं। धन्य है आपको! कोटिशः प्रणाम!

मंगलोर के नगरपाल द्वारा सम्मानपत्र

यह एक असाधारण अवसर है, जब प्रथम बार 'कॉरपोरेशन' एक धार्मिक संस्था के किसी महापुरुष का नागरिक सम्मान कर रहा है। आप जाति, धर्म तथा राष्ट्र की परिच्छिन्न सीमाओं और संकीर्णताओं से परात्पर होकर मानवता की सेवा कर रहे हैं। आपके द्वारा स्थापित 'दिव्य जीवन मण्डल' अपनी अनेकों शाखाओं से जनता की सेवा कर रहा है। वह आपके उपदेशों का आध्यात्मिक-प्रचार इस महादेश के कोने-कोने तथा इतर देशों में भी प्रचारित कर रहा है।

बम्बई के नागरिकों की ओर से

अपनी तपस्या, धार्मिक तथा आचारिक शिक्षा-प्रचार में आपका उत्साहप्रद तथा अत्यद्भुत प्रयत्न विशालतर क्षेत्रों की सीमा का अतिक्रमण कर चुका है। अपने ब्रह्मनिष्ठ-सुलभ सद्गुणों तथा पवित्र भू-माता के प्रति पुनीत प्रेम से आप उन महान् ऋषियों तथा महात्माओं की श्रेणी में सरलता से पहुँच गए हैं, जिन्होंने अपनी उपस्थिति से इस देश को धन्य कर दिया था। आपने भारत की जनता को अत्यन्त आभारी किया है और ईश्वरीय ज्ञान के प्रसार में अपने सतत् प्रयत्नों से भारत तथा विदेशों के लाखों लोगों को धन्यजीवन भी; जो आपकी कीर्ति गाते जा रहे हैं।

बड़ौदा के भक्त नागरिकों के विजय-गीत

संघर्षशील मानव जाति के लिए असीम करुणा के कारण आपने हमें वेदों की प्राचीन तथा मूल्यवान् शिक्षा अत्यन्त सरल तथा आकर्षक रूप में प्रदान की है। आप साक्षात् नारायण हैं।

अहमदाबाद के सत्संगियों के विजय-उद्गार

आप महामान्य के रूप में हमने एक ऐसा चिकित्सक पाया है, जिससे प्रथम अपनी चिकित्सा कर ली है – एक ऐसा शिक्षक पाया है, जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जिसकी शिक्षायें सीधे मनुष्य के अन्तस्तल तक आप्रविष्ट हो जाती हैं। आप हमारे गुरु, हितैषी ओर सच्चे मित्र हैं, जो सुख-दु:ख में हमारा साथ देते हैं।

बम्बई के मुख्यमन्त्री ने भी कहा था

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि श्री स्वामी जी ने यहाँ पधारने की कृपा की। मेरे लिए यह अत्यन्त आनन्द का विषय है कि मुझे महाराज के दर्शनों का सुअवसर मिला। जब मैं ॠषिकेश गया था तो मैंने स्वामी जी के महान् कार्यों के सम्बन्ध में जाना। महाराज के ग्रन्थों को मैंने देखा है।

वही सुन्दर कार्य, जिसकी आवश्यकता आज है, श्री स्वामी जी द्वारा हो रहा है। ऐसी महान् आत्माओं के कारण हम – इस देश के वासी धन्य हैं। हमारे देश की जनता का भविष्य महान् है। अत: स्वामी जी के सम्मान को मैं अपना सम्मान जानता हूँ और उनके प्रति पुन: प्रणाम करता हूँ।

भारत की राजधानी ने भी सम्मान दिया

हम अपने बीच एक ऐसे जीवित आध्यात्मिक सन्त को पाकर अपना सौभाग्य समझते हैं। आप में वासना तथा कामना के संसार से विरक्त एक पूर्णयोगी के सद्गुण हैं। आपने अपने उपदेशों और अपने व्यवहार द्वारा विश्व को ईश्वरीय-आनन्द का ठीक मार्ग बतला दिया है। अपनी कठोर तपस्या, आचरण की पवित्रता तथा विचारों की उच्चता और वेदान्त योग की व्याख्या द्वारा वर्तमान संन्यासियों एवं सन्तों के समुदाय में आपने अपने लिए स्थान प्राप्त कर लिया है। हम आपके चरणों में नतमस्तक होते हैं!

आध्यात्मिकयात्रावसरे वाराणसीसमागतानां
योगीश्वरश्रीस्वामिशिवानन्दयतिवराणां
श्रीकाशीपण्डितसभासमर्पितं

शुभाभिनन्दनपत्रम्

षष्ट्यब्दिपूर्तिपुरतः प्रथितैर्द्विजेन्द्रै-
राखालदासविबुधादिभिरादृता या।
श्रीकाशिपण्डितसभा प्रथिता पृथिव्यां
त्वां तत्सदस्यसुधियोऽद्य समर्चयन्ति॥ 1॥

स्वातन्त्र्यमाविरभवज्जननेतृयत्नात्
श्रीविश्वनाथकृपयाखिलभारतेऽस्मिन्।
साध्यात्मसंस्कृतिरपि प्रथिता यथा स्या-
द्भारोऽयमद्य मुनिराज! भवादृशेषु॥ 2॥

वेदान्तदीक्षित इहाप्पयदीक्षितोऽभूत
तस्यान्वयं यतिवर! त्वमलंकरोषि।
लोकोपकारनिरतो विरतो विकारा-
दध्यात्मतां प्रथयसि भ्रमणोपदेशात्॥ 3॥

सहस्रशः संप्रति सांप्रदायिका
ये भारते पूर्वत एव संश्रिताः।
विनेतुमेतान्निजशिक्षयानया
तवोपदेशः प्रचरेद्धरातले॥ 4॥

जनादृतेनेह तवागमेन वै
वाराणसी धर्मपुरी विभूषिता।
अध्यात्मभृद्योगिवराभिनन्दना-
न्मोमुद्यते पण्डितमण्डलोप्ययम्॥ 5॥

केचिद्धर्मधियः कलाविद इहैतिह्येऽथ वैशेषिके
    न्याये केऽपि च योगसाधनरताः साहित्यशास्त्रेऽपरे।
वेदान्ते विमलेऽथ जैमिनिनये ख्याताः परे कापिले
    विश्वस्मिन्नपि विस्तृतामलमतिर्विद्वान् भवान् भारते॥6॥

श्रीदिव्यजीवनसमाजसुशिक्षया त्वं
        दिव्यात्मतामुपदिशस्यधुना जगत्याम्।
तेन प्रसाद्य वयमद्य समे समेताः
        श्रीमन्तमादरभरादभिनन्दयामः॥7॥

वाराणस्याम्
भा. शु. 2, सं. 2007 (*श्रीकाशिपण्डितसभासदस्याः*)



परमपूज्य योगिराज स्वामी श्री शिवानन्द सरस्वती जी
को काशी-निवासियों की ओर से

सादर अभिनन्दन

श्रीमानप्पयदीक्षितोऽजनि पुरा यो विज्ञचूड़ामणि:
पी. एस. वेंगुबुध: सदय्यरकुले तस्यैव वंशेऽभवत्।
कुप्पुस्वामिवरस्तदीयतनय: पूर्वाश्रमे विश्रुत:
सोऽयं साधुशिरोमणिर्भुवि शिवानन्दोऽस्ति योगीश्वर:॥
सौजन्याब्धे: किमु समुदितो निष्कलंक: शशांक:
काम्यंकायं किल कलितवान् किं सदाचारराशि:।
उत्साहो वा धृततनुरयं मूर्त्तिमान् वा प्रसाद:
किंवादर्शो जयति हि महान् श्रीशिवानन्दयोगी॥

कर्मवीर!

जीवन की भौतिक समृद्धि को सर्वथा तिलांजलि देकर मनुष्य मात्र को अपने वर-उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर करते हुए आध्यात्मिक सुख-शान्ति को सर्वसुलभ करने के लिये आपने अपने को अर्पित कर दिया है। आप लाखों भक्तों के लिये सफलमार्गदर्शक हैं। आपके सदुपदेश विद्याभ्यासी समाज को सच्ची सभ्यता की ओर ले जाने, गृहस्थवृन्द को पापों के पंकिल पथ से बचाने, जनसाधारण को राष्ट्रकल्याण की अभिवृद्धि के लिए प्रेरित करने तथा सुधी-समाज को सत्य की खोज में सहायता प्रदान करने में सहायक होते हैं। इस समय आप अपने अनुगामी सन्त-समाज के साथ पतितपावन प्रभु के गुणानुवाद, नामकीर्त्तन और अपने उपदेशामृत से समस्त भारत को पवित्र करने, भ्रमण करते हुए काशी पधारे हैं। अत: इस शुभ अवसर पर हम काशी के नागरिक आध्यात्मिक-शिक्षक आपका अभिनन्दन करते हुए अमन्द-आनन्द-सन्दोह का अनुभ कर रहे हैं।

योगीश्वर!

आपकी आध्यात्मिक ज्ञानसंवलित दिव्य वाणी की निरवच्छिन्न प्रवाहधारा परम-पावनी त्रिपथगामिनी श्री गंगा जी की प्रवाह धारा की तरह असंख्य

मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक अगणित सन्तापों के समूल संहार में निरन्तर निरत है। आपके नितान्त पवित्र निवास के केन्द्रस्थान हृषीकेश में विशाल संकीर्तन भवन, विश्वशान्ति सहायक यज्ञ के लिये विश्वकल्याण यज्ञशाला, महात्माओं, रोगाक्रान्तों, तथा बद्री-केदारेश्वर के सहस्रश: यात्रियों की चिकित्सा के लिये एक सुसम्पन्न औषधालय, बहुसंख्यक साधु-सन्तों और साधकों के भोजन के लिये उपयुक्त अन्नसव तथा आनन्द कुटीर में आने वाले अतिथिवृन्द के विश्रामार्थ अतिथिशाला के निर्माण का कार्य जो सम्पन्न हुआ है, यह आपकी ही प्रेरणा और पुरुषार्थ का परिणाम है।

भगवन्!

आप अपने पूर्वाश्रम के सहपाठियों में सर्वप्रथम और वैद्यक-व्यवसाय के प्रमुख नेता रहे। इस कामकंचनसंग्रहकारी सुखाभास-स्वरूप मृगमरीचिकामय सांसारिक जीवन का साहसपूर्वक परित्याग करते हुये, आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व अपनी पूर्ण यौवनावस्था में आपने साधुजनोचित वीतराग होकर, समस्त भारत में भ्रमण करने के उपरान्त हृषीकेश की विविक्तस्थली पर तीव्र तपश्चर्या में लीन रहकर, चतुर्थाश्रम में प्रवेश किया। तब से लेकर अब तक आपके आध्यात्मिक ज्ञान का निर्मल स्रोत हिमाचल के चरणों से परिस्रुत होकर आधुनिक जागतिक जीवों के सन्तप्त-स्वान्त में सर्वविधि सुख-शान्ति का संचार कर रहा है। आप न तो पापी से घृणा करते हैं, न दुराचारी का तिरस्कार करते हैं और न अभियुक्त की अवहेलना करते हैं। आपकी प्रेम वर्षा प्रत्येक व्यक्ति पर पूर्णमात्रा में हुआ करती है। भगवान् शंकराचार्य के मतानुयायी संन्यासी और अद्वैत के मतावलम्बी होते हुए भी अपने शिष्यों को उनकी मानसिक-स्थिति के अनुकूल कर्म, उपासना और ज्ञान के साथ योगसाधन का भी आप उपदेश देते हैं।

भक्त शिरोमणे!

आज से लगभग चौदह वर्ष पूर्व हृषीकेश के निरतिशय पवित्र गंगातट पर स्थित आनन्द कुटीर से देवदुर्लभ आत्मज्ञान के परिपूर्ण प्रसारार्थ आपने 'दिव्य जीवन संस्था' की स्थापना की, जिसके द्वारा अनेक पत्तन तथा नगर के बहुसंख्यक जीवों को सात्त्विक-जीवनयापन करने के लिए आपने प्रेरित

किया है। इस संस्था की बहुसंख्यक शाखायें भारत में ही नहीं, प्रत्युत विदेशों में भी प्रसृत हैं, जो आपकी निर्धारित व्यवस्था द्वारा आध्यात्मिक प्रचार का कार्य सफलतापूर्वक संचालित कर रही हैं। आपने गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्रों के भाष्यों के अतिरिक्त योग, वेदान्त, भक्ति, तथा अनेक वैदिक विषयों पर लगभग सौ पुस्तकें रची हैं। आपकी प्रेरणा से बिना मूल्य वितरणार्थ पुस्तिकाओं और पत्रिकाओं का प्रकाशन भी विभिन्न-भाषाओं में नियमित रूप से होता रहता है।

महानुभाव!

इदानीं ते तत्तद्गुणगणनसामर्थ्यरहिता,
इमे सर्वेऽत्रत्या मनसि विनयामो वयमिदम्।
चिरायुर्नैरोग्यं वपुषि च बले तत्रभवते
ह्यमन्दानन्दात्मा सुवितरतु काशीपुरपतिः॥

आपके अनुगृहीत,
काशी के नागरिक

(वाराणस्याम्)



प्रात: स्मरणीय योगिराज श्री शिवानन्द जी का
सेन्ट्रल हिन्दू बालिका विद्यालय की ओर से

सादर-स्वागत

योगिराज!

तीर्थों की राजधानी काशी नगरी के हृदय में बसे इस विद्यालय में पधार कर आपने हमें अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाने का जो शुभावसर दिया है उससे आज हम कृतकृत्य हो गये।

आपका हम किन शब्दों में अभिनन्दन करें? जीव भी कभी ब्रह्म की पहुँच का पार पा सका है? फिर भी हम आपका गुणानुवाद कर, आकाश से तारे तोड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। हमारा अहोभाग्य है जो आज हम आप-से उच्च कोटि के महापुरुष की सत्संगति का दुर्लभ लाभ उठा गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में –

मुद मंगलमय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

का अनुभव कर रहे हैं।

आप सच में साधु हैं। इस मायावी जगत् में रह कर भी आप उसके बन्धनों से मुक्त हैं। परमार्थ ही आपका जीवन है। मानव कल्याण के लिए ही आप इस भौतिक शरीर में अवतरित हुये हैं। आप सुख और शान्ति के दूत हैं। आपके पास पापी, दुराचारी और कुत्सित के लिये घृणा नहीं है वरन् सबके लिए स्नेह का मुक्त वरदान है।

आपका उपदेशामृत केवल एक ही अवस्था के लोगों के लिए सीमित नहीं है वरन् आबाल-वृद्ध सभी उसका पान कर सकते हैं और विद्यार्थियों के लिए तो आप एक आदर्श हैं।

नारी को आशीर्वाद देने का जन्म-सिद्ध अधिकार रहा है। अत: इस नाते हम ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि वह आपको चिरायु करे और आप इसी पंचभूत देह में रह कर देश और समाज का उत्थान तथा कल्याण करें।

हम हैं
आपकी सदुपदेशाभिलाषिणी–
प्रधानाध्यापिका, अध्यापिकायें व छात्रायें

श्रीभगवत्पादारविन्दमिलिन्दहृदयेषु
श्रीस्वामिशिवानन्दमहात्मवर्येषु
सविनयाभिनयं निवेदयन्ते

पुरास्माकं भाग्यं किमपि परमं जातमभवत्
भवत्पादाम्भोजद्वयमतिपवित्रं यदकरोत्।
न विद्मः को दोषोऽजनि यदधुना विस्मृतमभूत्
कुटीरं छात्राणां पुनरपि पदा स्प्रष्टुमुचितम्॥

शिवानन्दस्वामिंस्तव चरणयोर्दर्शनसुखम्
पुनीते नो केषां हृदयमतिपापैः कलुषितम्।
तदाप्ता याचामः पुनरपि कदा सात्र भविता
कृपादृष्टेः सृष्टिर्विमलमनसां हृष्टिरपि नः॥

इति श्रीमतां दयार्द्रदृष्टिकोणाभिलाषिणः
मीठापुर – पटना निवासिनः।

सं. 2007 भाद्रपद शुक्ल
ऋषिपंचमी।
सूर्यसूनुवारः
16-9-50



अभिनन्दन पत्र

धर्मधुरीण परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती के करकमलों में सादर-सभक्ति समर्पित

दिव्य जीवन के अमर प्रतिष्ठाता!

विश्व के कण-कण आनंद-सिंधु में आलोड़ित-विलोड़ित हो रहे हैं आज दिव्य-जीवन-सम्बन्धी आपका अमर मंत्र पाकर। आपके अमर प्राणों से निःसृत आध्यात्मिकता का दिव्य मलयानिल घनघोर भौतिकता के शुष्क वातावरण को भी स्निग्घ, सरस और सुरभित कर रहा है। इस पतनोन्मुख विश्व को उत्कर्ष का जो दिव्य मार्ग आपने प्रदर्शित किया है, वह सृष्टि का अमर वरदान है और है मानवता के लिये चिर-कल्याण। इस मार्ग पर आरूढ़ होने की क्षमता दो, देव!

मानवता के सफल उन्नायक! आनन्दमय शिव!

धरा धन्य है आप-सा धर्मनायक पाकर। मानव-मानव के मन-मन्दिर में आपकी आनन्दमूर्त्ति विराज रही है और उनमें नित-नूतन चेतना का संचार कर रही है। सचमुच शिव ही तो हैं आप। विश्व के समस्त कलुषों को कण्ठगत कर धरा पर मन्दाकिनी की पावन धवल धारा प्रवाहित करने को आपके मन-प्राण सतत् व्याकुल हैं। ऋषिकेश की कैवल्य-गुहा से निःसृत जो अमर ज्योति आज विश्व के अणु-परमाणु को अमर बना रही है वह तो आपकी ही तपःपूत प्रतिच्छाया है। आपने आध्यात्मिकता को कुछ ऐसा सरस, रोचक, व्यावहारिक, आकर्षक और युक्तियुक्त रूप में विश्व के समक्ष समुपस्थित किया है कि वह पूर्ण आनन्ददायक बन उठा है। आपकी लेखनी पर आपका अगाध अध्ययन प्रतिध्वनित होता है।

हमारे आदरणीय अतिथि!

हमारे मन-प्राण आनन्द-विभोर हो रहे हैं आपके दिव्य दर्शनों से। आपका पावन तथा पुनीत व्यक्तित्व हमारे हृदयों में एक दिव्य-विभूति का संचार कर रहा है। हमें एक अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हो रही है आज। आपकी अमर ज्योति हमें चिर प्रकाश दे तथा हम आपके पुनीत चरण-चिह्नों का अनुगमन करके जीवन की सार्थकता प्राप्त कर सकें।

हम हैं आपके चरणरजाभिलाषी

18 सितम्बर, 1950 *दिव्य जीवन संघ, हाजीपुर के सदस्यगण*

भारतीय संस्कृति-समिति की ओर से

परमाराध्य महात्मन्,

भगवान श्री विष्णु और बुद्ध के पद-चिह्नों में अंकित गया की धरित्री आज आपके पावन चरण कमलों को धारणकर फूली नहीं समाती। श्रद्धाविनत इस भूमि की सन्तान, हम, आपका अभिनन्दन करते हैं। श्रद्धा के विनम्र भावों को छोड़ हमारे साथ और वैसी कुछ भी चीज नहीं, जिन्हें ले हम आपके पुनीत चरणों में उपस्थित हो सकें। हाँ, त्रुटियाँ हैं, जिन्हें हम आपकी लोकोपकारनिरत सदाशयता को देख भूल से गए हैं।

सभापति

(20-9-1950)



स्वामिश्रीशिवानन्दसरस्वतीमहाभागानां

करकमलयोः सबहुमानं समर्पितमिदं

सम्मानपत्रम्

जातो ब्रह्मकुले स्वतो हि पवितः पूतः पुनर्विद्यया
ज्ञानेनोज्ज्वलितस्तपोभिरुदितो ब्राह्म्यामहोमूर्त्तिमत्
भित्वा सन्तमसं प्रबोध्य जगतीं दिग्विश्रुतो योऽधुना
दिष्ट्या दृष्टिपथं गतोऽद्य भगवान् सोऽयं शिवानन्दकः ॥ 1 ॥

सम्प्राप्य दर्शनमघौघहरं तवेदं
सम्प्रोञ्छ्य लाञ्छनमिहाद्यजनेरलीकम्
संच्छिद्य सम्वरकसार्थमपारपारं
आनन्दवृन्दमधुना परिभावयामः ॥ 2 ॥

योगांगशीलितसमाधिपरम्पराणां
निर्वीजमाकलयतस्तव भूरिधाम्नः
सोऽहंह्यखण्डधिषणाधिगतस्य तत्त्वं
रूपं कथं कथयितुं वयमद्यशक्ताः ॥ 3 ॥

श्रुत्वाऽवधीरितसुधामुपदेशवाचं
देशान्तरोद्भवजना अपि शिक्षमाणाः
संलभ्य गूढ़तरवोधमलं प्रपन्नाः
गायन्ति कीर्त्तिमथ योगविधिं श्रयन्ते ॥ 4 ॥

निवेदकाः

गयास्थ ब्रजभूषण महाविद्यालयाधिकारिणो (ट्रस्टिगण) ऽध्यापकाश्च

भाद्रपद शुक्ल अष्टमी सम्वत् 2007 वि.

अभिनन्दनमाला

वन्दे शिवानन्दगुरोर्द्वयांघ्रिपंकेरुहद्वन्द्वममन्दचित्तः।
यदर्चयाज्ञानतमोनिविष्टा ज्योतिर्मयीमुत्पदवीं प्रविष्टाः॥

वन्दे गुरुशिवानन्दप्रबोधदीपांकुरं किंकरपंकनिघ्नम्।
ययार्जनेनाखिलदेहमोहदाहप्रशान्तिर्भवति प्रजानाम्॥

वन्दे शिवानन्दयतीन्द्रपादान्मन्दाकिनीवारिमहाविनोदान्।
यत्सेवयाज्ञानतमोविकीर्णास्सन्मार्गमारादभितो भशन्ते॥

बोर्ड हाई स्कूल, कोव्वुर।
27-9-1950 (आंग्ल तिथि)



स्वागत गीत

आओ शिवानन्द महाराज।

हिमालय की पुण्य भूमि से।
ऋषिकेश की तपोभूमि से।
गंगातट आनन्द कुटी से, आये आन्ध्र देश आज॥

हे संन्यासी, हे परम तपस्वी,
हे ज्ञानी, हे सजल मनस्वी।
हिमगिरि पथ के गिरि गह्वर से, आये योग-सम्राट्॥

जब मानव के जीवन पथ पर,
उतरे भूत-पिशाच भयंकर।
तब तुम ज्ञान प्रकाश जलाए, सप्त सिन्धु – उस पार॥

ऋषिवर आओ, मुनिवर आओ,
हे सन्त हृदय, सत्वर आओ।
गोदावरि के पुण्य तटों पर, दिव्य-राज्य के ताज॥

गौतम ऋषि की तपोभूमि में,
जानकिराम की रमण भूमि में।
मार्कण्डेय की मोक्ष भूमि में, सु-स्वागत! तुम आज॥

आओ शिवानन्द महाराज।

राजमहेन्द्रवरम्
29-9-50 (आंग्ल तिथि)

स्वागत-पत्रिका

आगम्यतामासेतुहिमाचलान्तदिव्यजीवनप्रचारणैः मनोह्लादकरैः भवद्भिरुपदेशैः अनुगृहीतैः वेदोद्धारणवैदिकसभालंक्रियते आदिश्यतामुपदिश्यतां यद्धितं चास्मद्‌गुरुभिरहो, धन्येयं नगरी, धन्यतरेयं सभा – एते धन्यतमाः।

दिनमपि सुदिनं यदियमधुना दिव्यजीवनसंस्थापकश्रीशिवानन्दसरस्वतीकटाक्षवीक्षणलहरीसंप्राप्ताः नान्यां गतिं वयममुं गुरुमन्तरेण जानीमः एव भवसागरतारणाय तस्मादनन्यगतिकाः सततं तमेव प्राग्जन्मपुण्यनिचयैः शरणं व्रजामः।

(*वेदोद्धारणवैदिकसभा*)

पुरशवाक्कं,
चेन्नपुरी (मद्रास)
2-10-1950 (आंग्ल तिथि)



श्रीमतां तत्रभवतां श्रीमत्शिवानन्दसरस्वतियतिवर्याणां
हिन्दू थियालाजिकल् कलाशालाविद्यार्थिभिः अध्यापकैश्च
प्रणामपुरस्सरं समर्पितं

स्वागतपंचरत्नम्

शिवस्य कल्याणगुणाननन्तान्,
संस्मृत्य संकीर्त्य समात्तमोदाः।
ते श्रीशिवानन्दसरस्वतीन्द्रा
गृह्णन्तु सुस्वागतमस्मदीयम्॥

अक्षाणां निग्रहार्थम् सकलमपि जगत्यां हृषीकेशमूर्तिम्।
संसेव्याप्नोति सिद्धिं भगवदभिमतं तद्हृषिकेशदेशम्॥

अध्यासीना भवन्तः जितविषयगणाः स्वात्मना तुष्टिमाप्ताः।
अस्माकं भागधेयाङ्शिमपि दयया दक्षिणां दृष्टवन्तः॥

अज्ञानां हार्दपद्मं सुवचनकिरणैः ह्लादयन्तो भवन्तः।
भक्त्याख्यं मुक्तिबीजं तदुपरि भगवद्भृंगमानाय्य तोषम्॥

लोकानां वर्धयन्तः सवितुरपि वरा माननीया वरिष्ठैः।
स्वीकृत्यास्मत्प्रणामान् हितपरवचनैराशिषा वर्धयन्तु॥

चेन्नपुरी
2-10-50 (आंग्ल तिथि)



स्वागतम्

स्वामी शिवानन्दसरस्वतीति
विख्यातनाम्नामिह भारतीये।
देशे यतीनां महनीयभूम्नाम्,
धन्या वयं स्वागतमीरयामः॥

नाम्नानन्दकुटीरके हिमवतः पार्श्वे महानन्ददे,
यः पूर्वं तपसा प्रकाशितवपुः भक्तेष्टपूर्तौ रतः।
सोऽयं रम्यहिमालयात्सहगणैः कन्याकुमारीं प्रति,
लोकानुग्रहकांक्षया यतिवरः प्रस्थापितश्शम्भुना॥

कलौ मनुष्यं किल दुःखतप्तम्
दृष्ट्वा कृपाप्रेरणया यतीन्द्राः॥
स्वामी शिवानन्दसरस्वतीति
उद्धर्तुकामा भुवि संचरन्ति॥
ध्यानेन नामग्रहणेन विष्णोः
अहिंसासत्यमिताशनाभ्याम्।
श्रेयः कलौ प्राप्यत इत्यजस्रम्
उद्बोधयत्येव यतीन्द्रवर्यः॥

इत्थं विधेयाः

27-10-1950 (आं.ति.) *गोपालसमुद्रवासिनः महाजनाः*

महामहिमोन्नतमहनीयविद्वत्कुलावतंसानां हिमाचलसानुप्रतिष्ठापित
'हृषीकेश' सिद्धाश्रमनिवासानां श्रीपद्मनाभदास बालरामवर्म
महाराजस्य आदरातिशयोपस्कृतं आतिथ्यमंगीकृत्यात्रागतवताम्

श्रीशिवानन्दयोगीन्द्रपरिव्राजकाचार्यवर्याणाम्

सविधे वञ्चिक्षोणीनिवासिभिः भक्तवरेण्यैः सादरं समर्प्यमाणा

स्वागतप्रशस्तिपत्रिका

वेदान्तविज्ञानसुनिष्ठितात्मन्! स्वामिन्! हृषीकेशकृताधिवास!
श्रीमन् शिवानन्द! शिवंकराद्य त्वत्सन्निधौ स्वागतमर्पयामः॥

इदमिदानीं परमप्रमोदस्थानमस्माकं सर्वेषामनन्तशयनक्षेत्रवासिनामन्येषां वञ्चिक्षोणीनिवासिनां च, यदेते यतीन्द्राः शिवानन्दयोगीन्द्राः अन्वर्थनामानः महोन्नतहिमाचलप्रान्तप्रतिष्ठापिते 'हृषीकेश'-समाख्याप्रथिते सिद्धाश्रमे चिरं विहितनिवासाः, इदानीमखिलभारतमनुजिघृक्षव एवेमां भूमिं आसेतुहिमाचलं पर्यटितुमुद्युक्तः अस्मदभ्यर्थनानुरोधं अस्मिन् क्षेत्रे कृतसन्निधाना विराजन्त इति। तत्रभवतां महानुभावानां भगवतां योगीश्वराणां परमहंसपरिव्राजकाचार्य-पूज्यपादानां सांगपरिवाराणां सविधे अस्मत्स्वागतवार्तां प्रश्रयनम्रां सादरं उपहरामः।

एते खलु दक्षिणभारतभूमिमौक्तिकमाल्यायमानाः शिशिर-स्वच्छाम्भःपूर्ण-गहनायाः ताम्रपर्ण्या महानद्याः प्रान्ते 'पत्तमडै' नाम्नि महत्यग्रहारे वेदवेदांगादि-विद्याबहुश्रुतैः भूसुरवरैः समधिष्ठितपूर्वे लब्धजन्मानः, चतुरधिकशतप्रबन्ध-निर्मातुः भारद्वाजकुलावतंसस्य शिवाद्वैतमतप्रतिष्ठापकाचार्यस्य श्रीमतः अप्पय्य-दीक्षितस्यान्ववायेऽवतीर्णाः, बाल्य एव आंग्लद्राविडगीर्वाणवाणी-नामध्येतारः, उच्चावचप्राच्यप्रतीच्यविद्याकलाविदग्धाः, विशिष्य चारोग्यशास्त्रं यथाप्रतीच्यविद्यापद्धति अधीतवन्तः, तच्छास्त्रे उन्नतपरीक्षायां समुत्तीर्णाः, तदनु च 'मलया, सिंगप्पूर' प्रभृतिषु प्राच्यभूखण्डेषु आरोग्यशास्त्रप्रचारणेन तदर्थं आतुरशालानां बह्वीनां प्रतिष्ठापनेन च समार्जितविपुलधनयशसः,

विशिष्य चाकिञ्चनानां रुग्णानां औषधदानेन शुश्रूषया च प्राणदायका भिषग्वरेण्या व्यराजन्त चिरमारोग्यशास्त्रजीवातुभूताः। अथ च भौतिकेषु विषयेषु अर्थकामप्रधानेषु परं विरक्तमानसा एते अध्यात्म-मार्गनिरूढदृष्टयः परोपकारप्रवणाः सांगयोगाभ्यसनचरणाः, वाराणसीक्षेत्रादि-दिव्यभूमिपर्यटनेनाधिगतानेकविद्वद्यतिवरप्रसादाः हिमगिरिसानुसन्निविष्टा एव श्री 'विश्वानन्द' यतिवरादाचार्यात्तुरीयमाश्रमं स्वीकृतवन्तः, लौकिक्या अलौकिक्या च दृष्ट्या परमपुमर्थोपायं अध्यात्ममार्गं सर्वान् भारतीया-नन्यांश्चोपदिशन्त एव समुल्लसन्ति अन्वर्थनामानं 'आनन्दकुटीरं' अधिवसन्तः।

एते चाध्यात्मशास्त्रे योगशास्त्रे च प्राचीनाविरुद्धया नवीनया तारतम्यदृष्ट्या अतिरमणीयया मधुरललितया च रीत्या शताधिकान् प्रबन्धान् आंग्लभाषायामुपनिबबन्धुः। स्वीये पुण्याश्रम एवैते नैकान्याध्यात्मिकतत्त्वानि आचरणप्रचारणाभ्यां छात्रेभ्योऽन्येभ्यश्च स्वैरमुपदिशन्ति – भक्षणे नियमः, इन्द्रियाणं निग्रहः, एकान्तभूमिमासाद्य विविधासनस्वीकारेण योगाचरणम्, नियतब्रह्मचर्यम्, मौनव्रताचरणम्, सज्जनसंगतिः, लौकिविषयेभ्यो दूरतः स्थितिः, अहिंसाचरणम्, भगवन्नामसंकीर्तनमित्यादीनि। एवं निरवद्यधार्मिक-पथप्रतिष्ठापका एते महानुभावाः कर्मयोगेन भक्तियोगेन ज्ञानयोगेन च यथाधिकारं अध्यात्मतत्त्वं योगारूढान् युयुक्षून् योगभ्रष्टांश्च सर्वान् वैषम्य नैर्घृण्यशून्यया दृष्ट्या समुपदिशन्तः 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' इति भगवद्वाक्यं प्रमाणमुररीकुर्वन्तः लोकसंग्रहमेवानुतिष्ठन्तः भगवन्नवावतारा इव स्थिता भारतभूमिभागधेयभूताः प्रोज्ज्वलयन्तीमां अध्यात्ममार्गभूमिम्।

ईदृशां महतां यतीश्वराणां सन्दर्शनेन प्रत्युद्गमनेन शुश्रूषया प्रपत्त्या अनुगमनेन उपदेशवाक्यश्रवणेन चात्मानं कृतार्थयन्तो वञ्चिक्षोणीनिवासिनो वयं एतेषामभ्युदयं पुनःपुनरेतत्क्षेत्रसमागमनं च प्रार्थयमानाः अकैतवभक्ति-संभृतधन्यवादपुरस्सरं इमां स्वागतभारतीं तत्रभवतां एतेषां पदकमलयोः समर्प्योपसंहरामः।

श्रीशिवानन्दयोगीन्द्रसन्निधौ सकलार्थदे।
समर्पयामो भक्त्येमां पत्रिकां प्रश्रयानताः॥



श्रीवडिवीश्वरग्रामवास्तव्यैःसमर्पितं स्वागतपत्रम्

शिवानन्दगुरुं नित्यं शिवपादाब्जभृंगकम्।
शिववाक्योपदेष्टारं शिवमार्गप्रदर्शकम्॥

शिवैश्वर्यरहस्यज्ञं शिवत्राणस्वरूपिणम्।
शिवानन्दगुरुं वन्दे सरस्वत्यवतारकम्॥

स्थातुं सभायां सर्वत्र स्त्रीत्वमालोच्य लज्जया।
पुंस्वरूपं विधृत्यैव भातीत्येवं विभावना॥

अवनाववतीर्णार्या त्रातुं सर्वाः प्रजा इमाः।
माता महदुपास्या नः शिवज्ञानसरस्वती॥

शारदा सैव कृया नवरात्रान्तरेऽधुना।
अस्माकं भाग्यवशतः आगतानुजिघृक्षया॥

हृषीकाण्याशु संयम्य हृषीकेशे स्थितं गुरुम्।
हृषीकेश इति ध्यात्वा शरणं कुर्महे वयम्॥

भगवन् दर्शनं तावदानन्दाश्रुं रुणद्धि नः।
तद्विमृज्य पुनर्द्रष्टुमुत्साहः प्रेरयत्यहो॥

जन्मान्तरीयसुकृतैकनिषेव्यमाणम्।
संसारभेषजमिदं पदपद्मयुग्मम्॥

सुक्रीडितं भुवि शरण्यमनन्यलभ्यम्।
नत्वास्मदीयजननं सफलं महात्मन्॥

श्रीपादपद्मयुगलस्मरणावधूत–
पापौघजातसुकृतः परिवार्यमाणम्।
अन्तेवसज्जनविभूषितपाश्र्वभागम्
श्रीकण्ठदेवकलया ह्यवतीर्णमीड्यम्॥

मीनाक्षीकरुणाकटाक्षनिलयं मीनध्वजागोचरम्
मित्रादप्यधिकप्रभावविभवं शान्त्यादिभिर्मण्डितम्।
श्रीमातुश्चरणारविन्दयुगलं संस्थाप्य भक्त्या हृदि
लोकानुग्रहमाचरन्तमसकृन्नत्वा सुधन्या वयम्॥

भगवद्दर्शनेनैव चक्षुस्साफल्यमाभजत्।
वाक्सुधासेचनेनैव श्रवः प्रीतिं समेष्यति॥

उपदेशस्य संप्राप्त्या चित्तं हि विमलं च नः।
भविष्यति न सन्देहो महतां संगमाद्ध्रुवम्॥

सद्वासना भवति साधुसमागमेन,
दुर्वासना क्षयमुपैति च शीघ्रमेव।
तस्माद्भवादृशसमागमसंप्रतीक्षा–
स्वान्ता वयं प्रतिगृहं भगवन् भजामः॥

निस्तुलत्वं समीक्ष्यैव तुलाराशिं गताधुना।
विषुसंज्ञं दिनं तावत् व्याप्तं तस्य यशोन्वगात्॥

भगवद्दर्शनं तावदानन्दाश्रुं रुणद्धि नः
तद्विमृज्य पुनर्द्रष्टुमुत्साहः प्रेरयत्यहो।
यथा चन्द्रः षोडशभिः कलाभिरभिवर्द्धते।
तथा पद्यावलिरियं वर्धतामभिवर्धताम्॥



अभिनन्दनपत्रिका

स्वस्ति श्रीमदखिलभूमण्डलप्रख्यातहृषीकेशनिवासिनामतुलितसुधारस-माधुर्यकमलासनकामिनीधम्मिल्लमल्लिकानिष्यन्दमकरन्दझरीसौवस्तिक-निकुम्भविजृम्भणानन्दतुन्दिलितमनीषिमण्डलानामनवरतं ज्ञानमार्गोपदेशे बद्धकंकणानां शान्तिदान्तिभूम्नां श्रीमच्छिवानन्दसरस्वतीस्वामिनां सन्निधौ मण्डपंक्याम्पुनिवासिभिर्महाजनैः सविनयं समर्पितेयमभिनन्दनपत्रिका।

अयि भोः!

सेतुवास्तव्यजनतासंचितसुकृतसंचयफलायितविजयोदयानां श्रीमद्गुरु-चरणानां प्रशस्तेऽस्मिन् विजयोत्सवमहाघोषे हृदये विलसन्तं भक्तिस्तोमं प्रकाशयितुमनसो भक्तजनस्य प्राप्तः शुभवासोऽयं दिष्ट्या वर्धते।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इति स्वोक्तं अर्थम् प्रकाशयितुमेव भगवान् श्रीकृष्णः आध्यात्मिकादि-तापत्रयपराहतानां जनानामनुजिघृक्षया तीर्थयात्राच्छलेन भुवमिदमाससादेति तोषमाप्नुमः।

किंच सर्वतः प्रवृत्त्या कलिबाधया दुष्परिहाराय च परितस्थित्या, समुदायाचारपरम्परा वर्णाश्रमधर्ममर्मसंरक्षिणी सुदूरंनीता स्वयमाकृतौ प्रकृतौ चानिर्वचनीयां कामपि दुरवस्थां प्राप्तेति परं विषादमनुभवामः।

महोन्नतमहामहिमशालिनामखिललोकतपश्चर्याभूम्नां स्तवनीय-नाम्नामविकलब्रह्माद्वैतसाक्षात्कारधाम्नां कलिसन्तारणोपनिषद्बुद्ध–हरेरामेति-मन्त्रोपदेशेन जनततेः भवसन्तारणपटीयसां श्रीमच्छिवानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रथमोत्पत्त्यानुगृहीतस्यास्येन्दुमहाराज्यकृतार्थतां वक्तुं वयमसमर्थाः स्मः। श्रीशिवानन्दो विजयते।

इति मण्डपंक्याम्पुनिवासिभिर्महाजनाः।

अभिनन्दनपत्रिका

स्वागतं लोकगुरवे स्वागतं दृश्यशंभवे।
स्वागतं मन्मथजिते स्वागतं धर्ममूर्तये॥

लोके कालवशात् गतेऽस्तमतुले धर्मे त्रयीकीर्तिते।
व्याप्तेऽधर्मतमश्चये च गिरिशः प्रादुर्बभूव स्वयम्॥

धर्मं स्थापयितुं समस्तभुवने योगिस्वतन्त्राखिल-
तन्त्रस्याप्पयदीक्षितस्य हि कुले योगी शिवानन्दजी॥

योगाभ्यासदृढ़ीकृतेन मनसा ध्यात्वा शिवं ब्रह्म तत्।
तल्लीनो भवति प्रकाममलं देहस्मृतिस्त्यज्यते॥

ज्ञाने तेजसि मंगले सति चिदानन्दस्वरूपे निजे।
लीनं ज्ञानिवरं नमामि शिवमानन्दस्वरूपं परम्॥

जयतु जयतु योगी सर्वलोकोपदेष्टा
जयतु जयतु धर्मस्थापनैकप्रवीणः।
जयतु जयतु विद्याराशिरादित्यतेजाः
जयतु जयतु नित्यं श्रीशिवानन्दयोगी॥

इत्थं

4-10-50 (आंग्ल तिथिः) *चिदम्बरनिवासिनः*



श्री मायूरक्षेत्रे मार्गवशात् समागतानां श्रीशिवानन्दपूज्यपादानां
अमरभारतीसभासमाजिकैरुपहारीकृता

स्वागताभिनन्दनपत्रिका

भवानीशितुः शैलराजस्य सानौ
हृषीकेशमारात् तटे स्वर्गसिन्धोः।
पवित्रां कुटीं निम्निताभावसन्तः
शिवानन्दनाम्ना भवन्तः प्रथन्ते॥ 1॥

कुटीरे किलानन्दनाम्नि स्थितानां
समाधौ समासादितानन्दभूम्नाम्।
सदानन्दविस्फूर्तिफुल्लाननानां
नमो ब्रूमहे वः शिवानन्दनाम्नाम्॥ 2॥

प्रवाहै रमन्ती गिरेर्जह्नुकन्या
यथा पावयत्यार्यभूमिं विशन्ती।
तथा यूयमप्यागता दक्षिणाशां
वहध्वेऽभितः प्राज्यमानन्दपूरम्॥ 3॥

श्रुतावस्ति यः पूर्वमानन्दशब्दं
स्मृतौ सन्दधानश्चमत्कारलेशम्।
शिवाख्यायुजोऽभ्यन्तरस्तस्य सारः
प्रणीतोनुभूतामिदानीं अहो नः॥ 4॥

भवे बन्धभाजां पशूनां क्व वार्त्ता
क्व यूयं परे ब्रह्मणि स्वैरखेलाः।
इदानीं भवद्दर्शनस्य क्षणोऽयं
किलास्माभिरासादितो भूरिभाग्यैः॥ 5॥

नमो योगसिद्धिप्रसिद्धाय
मायानटीपाटवोच्चाटनच्छोटिकर्त्रे।
नमस्ते नमो ग्रन्थकोटिप्रणेत्रे
शिवानन्दकर्मन्दिविन्दो नमस्ते॥6॥

पुनाना जगत्पादपाथोजधूल्या
दृशा संभृतप्रेमपीयूषवर्षाः।
हिताः प्राणिनां केवलानामभेदात्
कति ज्ञानिनो द्रष्टुमस्माकमर्हाः॥7॥

मितैर्नो वचोभिः सपर्याभिरेवं
कदर्योचिताभिर्महात्मन् प्रसीद!
अनात्मज्ञधुर्यास्त्वमात्मज्ञधुर्यः
क्षमोऽनुग्रहीतुं क्षमस्वापराधान्॥8॥

त्वरितममरभारतीसभेयं
शिव भवतः सदृशीं भुजंगमालाम्।
वितरति भगवन् गृहाण चास्मान्
समनुगृहाण सभासदः प्रणम्रान्॥9॥

इत्यमरभारतीसभासदः

मायूरम्
5-10-1950 (आंग्ल तिथि)



तिरुचिरापल्ल्यामर्पिता

स्वागतपत्रिका

नित्यं शिवे नन्दति यो हिमाद्रौ, ख्यातः शिवानन्दसरस्वतीति।
सुदर्शनोऽयं सुखदर्शनोऽभूत् अस्माकमेषा खलु भाग्यसंपत्॥

सावित्र्याः समुपासनं समभवत्त्वद्दर्शनप्रापकम्।
ह्यस्माकं सफलं च जन्म भवतां सद्दर्शनाद्भाग्यतः॥

प्राप्तव्यो किमितोऽस्ति तत्रभवतां पादाब्जसंसेवनात्।
अस्मान् मोचय हे गुरूत्तम भवत्सूक्तैः सदा बन्धनात्॥

सावित्रीविद्यालयस्थाः

तिरुचिरापल्ली



श्रीशिवानन्दसरस्वतीपद्यमालिका

भारद्वाजकुलोद्भवान् सुयशसः श्रीशाम्भवाग्रेसरान्
वर्यान्यज्वसु भूमिपालविनुतान् शास्त्राब्धिपारंगतान्।
सद्ग्रन्थैश्च शताधिकैः सुमनसामानन्दसन्दायकान्
जानन्त्यप्पयदीक्षितान् हि सुतरां विद्वज्जना भूतले॥ 1॥

धन्यः पाण्ड्यमहीपतेश्च सचिवो वैदुष्यरत्नाकरो
पौत्रस्तस्य महात्मनस्समजनि श्रीनीलकण्ठाध्वरी।
काव्यैरन्यनिबन्धनैरनुपमैराशान्तकीर्तिच्छठः
संन्यासाश्रममाश्रितः स्वतपसा ब्रह्मात्मभावं गतः॥ 2॥

ताम्रपर्णीतटे जातान् शिवानुभवपूरितान्।
श्वेतनद्यास्तटे लीनान् सुन्दराख्यान् यतीन्नुमः॥ 3॥

लोके शास्त्रे च व्युत्पन्नाः जायन्तेऽस्मिन् कुले सदा।
सी.पी. रामादयोप्यार्याः सन्ति लोकहिते रताः॥ 4॥

जातः पत्तमडाभिधे जनपदे श्रीताम्रपर्ण्यास्तटे
प्राचीपश्चिमसम्प्रदायसहिते भैषज्यतन्त्रेऽप्यसौ।
प्रावीण्यं समवाप्य कीर्तिमतुलां वीतस्पृहो धार्मिकः
आधिव्याधिहरः स्वभावमधुरो वैद्यो बभूवश्चिरम्॥ 5॥

दृष्ट्वा जातिमताभिमानविवशैरन्योन्यनिन्दाकरैः
नीचैर्नास्तिकयुक्तिवादनपरैः सन्तप्यमानं जनम्।

कारुण्याप्लुतमानसो विगतभीः स्वीकृत्य तुर्याश्रमं
सत्यज्ञानसुखाद्वितीयसुपथं संप्रापयन् राजते॥6॥

शिवं पुण्यवाचं सदा कीर्तयन्तं
शिवं चित्स्वरूपं मुदा भावयन्तम्।
शिवं सर्वलोकं समालोकयन्तं
शिवं नूनमेनं मुनिं भावयामः॥7॥

आद्यो दैव्यो भिषगिति शिवं प्राह साक्षात् श्रुतियो
तस्यैवांशः समजनि पुरा ह्यप्पयो दीक्षितेन्द्रः।
आविर्भूत्वा पुनरपि शिवानन्दरूपेण लोकान्
दैव्ये जीव्ये पथि निरुपमे चालयन्नेष भाति॥8॥

नगेन्द्रावरूढा शिवांगैकसंगा
समुत्तारयत्यार्तभक्तान् हि गंगा।
हृषीकेशनाम्नोऽचलात् हन्त सर्वान्
शिवानन्दसिन्धौ इमे मज्जयन्ति॥9॥

पुदुक्कोट्टै,
9-10-50



परमपूज्य श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती महाराज
के कर-कमलों में
श्री तामिलनाद-हिन्दीप्रचारिणी सभा और त्रिची की
हिन्दी वाग्वर्धिनी सभा के सदस्यों द्वारा सादर समर्पित

मानपत्र

पूज्य स्वामी जी!

यह हमारा अहोभाग्य है कि आपने इस पवित्र नगर में पदार्पण कर, हमें दर्शन देने की कृपा की। संसार में जबकि हर व्यक्ति और हर राष्ट्र स्वार्थ-सिद्धि को लक्ष्य मानकर अनेक-क्रान्ति के प्रयत्न कर रहा है तब आप सदृश महापुरुषों का आगमन संसार को स्वार्थ से दूर परमार्थ का पथ प्रदर्शित करेगा।

हे सिद्ध पुरुष!

आपने इहलोक के साधनों को पाकर भी उन्हें तुच्छ समझा और अब हिमशिखर-विहारिणी-गंगा के तट पर आप लोकसंग्रह के पुनीत कार्य में परायण हैं।

हे आचार्यवर्य!

आपने ऋषिकेश में आरण्य विश्वविद्यालय स्थापित किया। प्राचीन प्रणाली के अनुसार आयुर्वेद औषधालय की स्थापना की। यही नहीं, सर्वशक्तिमान् ईश्वर की ओर मानवता का ध्यान आकृष्ट करने आप हिन्दुस्तान ही नहीं, वरन् विश्व की सभी मुख्य-भाषाओं में धार्मिक साहित्य रचकर, दिव्य जीवन संघ के द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं।

मनुष्य के उद्धार के लिए आपने क्या-क्या नहीं किया है।

हम हैं आपके,
तिरुचिरापल्ली के हिन्दी प्रेमीगण

8-10-50 (आंग्ल तिथि)



सिंहलद्वीप के नागरिकों की ओर से

अभिनन्दन-पत्र

लंका की कलाकृति को उद्धृत करते हुए, सुकोमल परिष्कृत ताड़ के
पत्रों पर प्राचीन परिपाटी को सजीव कर, सम्मानसूचक अक्षरों
को अंकित करते हुए, लंका के विदेशमंत्री श्री कान्तीय
वैद्यनाथन् ने यह सम्मान पत्र दिग्विजयी के चरणों
में समर्पित किया। हिन्दी अनुवाद
यहाँ पर दिया जा रहा है।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज! सम्मान के इष्टदेव!

लंकानिवासी भारतीयों की ओर से हम आपके प्रति आज अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन करने यहाँ एकत्रित हुए हैं, क्योंकि आपने 'अखिल भारत यात्रा' में अनेकों कार्यक्रमों के होने पर भी श्री लंका को नहीं भुलाया। हम इस पवित्र द्वीप में आपके स्वागतार्थ खड़े हैं, क्योंकि इसी भूमि को श्री राम और श्री गौतम बुद्ध के चरणों के चुम्बन का श्रेय प्राप्त हुआ था।

इस पवित्र और तीर्थवत् दिवस पर हम पुन: उन दिनों की स्मृति को अपने में जागती हुई पाते हैं, जो हिन्दुओं के लंकागत इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। वे दिन थे, चिकागो के वीर विजयी श्री स्वामी विवेकानन्द के आगमन के, जिस दिन उन्होंने अमेरिका और यूरोप में वेदान्त का डंका दिग्घोषित कर, भारत के यशस्वी मार्ग पर यहाँ विश्राम पाया था। आज आधी शताब्दी बीत चुकी है और हमें पुन: वह प्रोज्ज्वल सौभाग्य प्राप्त हो रहा है कि हम हिमालय के अंचल से आध्यात्मिक नेता और युग के नवनिर्माता के दर्शन कर सकें।

महाराज! हमने अत्यन्त आनन्द और आश्चर्य तथा च आदर से भी आपके ज्ञान की दिगोज्ज्वला ज्योति देखी, आपके लेखों की वेदभावना को पहिचाना और आप में तन्मय विश्वोद्धार की अमर भावना को जाग देखा।

आपकी विश्वोद्धार और जनकल्याणमयी भावना में साधारण-से-साधारण मानव और विश्वाधिपति राजवर्ग समान रूप से सम्मिलित हैं। जाति, वर्ण, सम्प्रदाय का प्रश्न आपके लिए युगों पहले देखा गया दिवास्वप्न ही है। सचमुच आप तो इनके निर्मूलन के लिए ही हुए हैं। शास्त्र में कथित सनातन सत्य को मनुष्य में साक्षात् करना आपके जीवन का प्रथम और एकमात्र ध्येय है।

श्री स्वामी जी महाराज! हम अत्यन्त नम्रतापूर्वक सिंहलद्वीप के निवासियों की ओर से आपके आशीर्वाद की अभियाचना करते हैं। आप हमें सद्ज्ञान प्राप्त करने का संप्रसाद दें, जिससे हम शान्ति और प्रेमपूर्वक एक-दूसरे से मिलें तथा अपनी जीवनयात्रा को सफलतापूर्वक सम्पन्न करते हुए, दिव्य जीवन और परम-शान्ति के पद को प्राप्त करें, क्योंकि परमशान्ति सभी मनुष्यों की एकता का सूत्र है।

स्वामी जी महाराज!

हम हैं आपके चरण-सेवातत्पर
के. वैद्यनाथन्, सभाध्यक्ष।
के. रामचन्द्रन्, मन्त्री

कोलम्बो, 20 अक्टूबर, 1950



पट्टामडाईग्राममहाजनैः समर्पिता

स्वागतपत्रिका

भोः श्रीगुरुमहाराजाः! श्री शिवानन्दस्वामिनः!

आसेतुहिमाचलस्थानां सर्वेषामपि जनानां सर्वाभीष्टसिद्धये सदा पत्रिकाद्वारा-सदुपदेशपराः, जगद्विख्यातयशोलंकृताः सन्तत-सन्तत्यमान-जप-योग-समाधिभिः स्वभक्तान् कृतार्थयन्तः, इदानीमपि तत्र-तत्र विजययात्रयाखिलान् जनान् करुणार्द्रदृष्ट्या पावयन्तः, तापत्रयाग्निसंतप्त-निखिल-जनमनः समाह्लादन-चन्द्रिका-रूपमाधुर्याः, तत्र-तत्रसंचरणक्रमेण स्वजन्मभूमिमिमां पट्टमडाख्यां ताम्रपर्णी-दक्षिणातीरस्थां संप्राप्ताः, अत एव भवद्दर्शनपात्रभूताः परमभाग्यवन्तः एतद्ग्रामस्थाः सर्वे महाजनाः वयमत्र भवतामागमनं परुषार्थप्रदमिति चिरं प्रतीक्षमाणः अद्यैव तत्फलमिति सन्तुष्टा अनुमन्यामहे।

हृषीकेशवासी शिवानन्दयोगी,
कृपापूर्णदृष्ट्या कृतार्थीकरोतु,
इहस्थान् समस्तान् अतिप्रेमभक्त्या,
युतान् स्वीयभक्तान् प्रसादैकयोग्यान्॥

भवच्चरणरजानुचराः
पट्टामडाई-ग्राम-महाजनाः



अभिनन्दन पत्र

हे दिव्य जीवन वंशावतंश!

आपके दर्शन प्राप्त कर हम आज सुखी हुए हैं, क्योंकि ऐसे पुण्यमय दर्शन तो हमारे पूर्वजन्मकृत अच्छे से अच्छे कर्म का फल है।

हे ब्रह्मविद्याम्भोधि!

हम यह भली-भाँति जानते हैं कि आपके हृदय में हमारे स्कूल की एक मधुरस्मृति है। आप से हमारी यही प्रार्थना है कि आपके उपदेशामृत से हम शान्ति और सुख से अपने विद्यार्थियों के शारीरिक-मानसिक विकास का आत्मिक विकास के साथ संयोग करें।

योगत्रयनिष्णात!

वही मानव यशस्वी है, जो निःस्वार्थ होकर सब मतों को एक-सा देखता हो। इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं आप। आप जैसे महापुरुष को देख हम महद्गौरव का अनुभव कर रहे हैं। आपका दिव्य मन्त्र साध्य कर के अनेकों मानव आत्मा को प्राप्त करते हैं। आपके संकल्प में व्रत और कर्म में फल की विरक्ति को देख कर हमें प्रोत्साहन मिलता है। आपके साथ, आशीर्वाद को प्राप्त, आपकी जन्मभूमि पट्टामडाई के ये प्राचीन विद्यालय, अनन्त शक्ति और मर्यादा-सम्पन्न हो, कठिनाइयों को पारकर आगे बढ़ सकेंगे। हम सब मिलकर ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि आपका यह शुभागमन हम में नवीन-आत्मविद्या की शक्ति पैदा करे और हम आपकी सौम्यमूर्ति को अपने मन-मन्दिर में सदैव प्रतिष्ठित रखें।

अप्पयकुलरत्न!

आप जो उज्ज्वल स्मृति छोड़े जा रहे हैं, वह निरन्तर हमारा पथप्रदर्शन करती रहेगी – शक्ति तथा साहस देकर हमें सच्चा रास्ता दिखाएगी। हम सब आपका सभक्ति स्वागत करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आप चिरायु रहें, जिससे आप चिरकाल तक मानवता का कल्याण करते रहें।

आपके परम विनीत तथा आशीर्वादाभिलाषी,
सदस्य बोर्ड आफ ट्रस्टीज़, अध्यापक तथा विद्यार्थी
रामशेषय्यर हाई स्कूल, पट्टामडाई

स्वागत एकादशी

श्री शिवानन्द दिग्विजय यात्रा के उपलक्ष्य में राजनगर समारोह के अवसर पर त्रिवेन्द्रम्वासिनी श्रीमती सरोज माताजी ने 18-10-50 को यह स्वागत-गीत गाया था।

सुनो सुगाथा राजयती की, स्वामि शिवानन्द सरस्वती की।
गुंजित कीर्तिदीप्त शरीरी, ब्रह्मअंश में पूज्य गुरु की॥ सुनो...

ताम्रपर्णी नदी किनारे, पट्टामडाई नाम गाँव में,
सन् अठ्ठारह सौ सतासी, सेप्तम्बर की आठ तिथि में।
ऊँचे कुल के उच्चास्पद में, भव्य पुरुष ने जन्म लिया,
पाठशाला कालेज घरों में जीवन अपना पूर्ण किया॥ सुनो...

एम.बी.बी.एस. डिग्री पाये, ऐफ.सी.एम. में आ पहुँचे,
जगतीतल में घूम घूम कर सत्य सुपथ में जा पहुँचे।
जाग्रत किया अपने मन को, आत्मभाव का भार लिया,
माया-बन्धन मूल मिटा के, देश-भक्ति का कार्य किया॥ सुनो...

मीठे मीठे गीत बना के विश्व-विपिन में खोज रहे,
शान्ति कहाँ है, सत्य कहाँ है, जग का कारण कौन कहे।
सद्गुरु तुमने योग सिखाया, दिव्य धाम का राह बताया,
भक्ति-भाव का पाठ पढ़ाया, जन्म-जन्म का बन्ध छुड़ाया॥ सुनो...

वेद शास्त्र का सार बता के कर्म योग की मार्ग गही,
स्वार्थ रहित हो मानव सेवा, दलित जनों की नित्य गही।
कर्मलोक के पुण्य प्रतापी, शिव-आनन्द गुरु हमारे,
चौसठ वर्ष महातिथि में, आयु सहस्र हो लिए तुम्हारे॥ सुनो...

हृषीकेश की पुण्य-वटी में मुक्तिधाम आनन्द कुटी में,
भागीरथि के पूति पुंज में, मुक्ति लहूं मैं स्वामि पदों में।
स्वागत अर्पण दिव्य गुरो, सौख्य सदा यह देश बना,
स्वागत स्वागत महा गुरो, कृतार्थ हमारा जन्म बना॥ सुनो...

सुनो सुगाथा राजयती की, स्वामि शिवानन्द सरस्वती की।
गुंजित कीर्ति दीप्त शरीरी, ब्रह्मअंश में पूज्य गुरु की॥ सुनो...

संसार किसकी पूजा करता है?

(श्रीमती राजेश्वरी सुन्दरराजुलू, बंगलूर)

दुनिया में केवल नाम के लिये कई प्रकार के महान् पुरुष होते हैं। परन्तु यदि हम सबका विवेचन करें तो हमें केवल कुछ व्यक्ति इस प्रकार के मिलते हैं, जिनकी महानता दूसरों से नहीं तोली जा सकती। किसी ने कहा है कि राजा लोग, जो हाथी पर आसीन होकर अमित-वैभव के साथ जाते हैं, वस्तुतः महान् नहीं। धनी मनुष्य, जिनके पास असीमित धन-दौलत है और जो बिना तकलीफ के अपनी जिन्दगी व्यतीत करते हुए, दूसरों के कष्टों को नहीं सोचते और विश्व की परख अपनी विलासमयी दृष्टि से ही करते हैं, महान् कहलाने योग्य नहीं हैं। जो मनुष्य अपना धर्म और कर्त्तव्य त्यागकर, स्वार्थ और सुख के लिए दूसरों को तो दुःख पहुँचाता और स्वयं सुख की कामना करता है और उसका भोग भी करता है, कभी भी महान् नहीं कहलाया जा सकता। लम्बी-चौड़ी बातें बनाने वाले, जो दूसरों की तारीफ बिना किसी सत्य के कर देते हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य अपना मतलब साधना रहता है, सच्चे शब्दों में बड़े नहीं कहलाये जाते। सबसे ताकतवर और खूबसूरत आदमी भी महान् होने की शक्ति नहीं रखते, क्योंकि उनके अन्दरूनी मनुष्य की परीक्षा की जाय तो वे अत्यन्त कायर और विहीन-स्वरूप मालूम देंगे। खूब पढ़े-लिखे विद्वान् लोग बिना सद्गुण और सच्चरित्रता के साधारण ही समझे जाने चाहिये।

परन्तु जो आदमी दूसरों की सेवा निःस्वार्थ भाव से करते हैं, वे ही सबसे महान् हैं। सूरज को बड़ा कहते हैं, इसलिए नहीं कि वह ऊँचाई पर रहता है, परन्तु इसलिए कि वह दुनिया को निःस्वार्थ और निष्पक्ष भाव से प्रकाशित करता है।

सेवा करने वाले इतने ऊँचे दर्जे पर आ पहुँचते हैं कि परोपकार के लिए उनका अवतार हुआ माना जाता है। इसका रहस्य और दूसरे मुख्य विषयों पर प्रकाश करने की शक्ति गुरु के अतिरिक्त और किसी दूसरे में नहीं, क्योंकि मनुष्य में यह शक्ति नहीं कि वह अपनी ही बुद्धि के बल से इसका ज्ञान कर ले। इसीलिए गुरु को इस संसार में सबसे श्रेष्ठ स्थान दिया गया है, क्योंकि गुरु के अनुभवों के आधार पर हमारी शिक्षा का आरम्भ होता है।

गुरु सबसे श्रेष्ठ तो है ही, क्योंकि उसका स्थान भगवान के बाद दूसरा है। और किसी व्यक्ति में यह शक्ति नहीं कि वह गुरु की महिमा के मूल्य को निर्धारित कर सके। केवल मात्र हमारी शक्ति इस निश्चय पर जा पाती है कि गुरु श्रेष्ठ होते हैं और सचमुच प्रशंसनीय होते हैं। प्राचीनकाल में महाराजा लोग भी गुरुवर्ग पर अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा का भाव रखते थे। इसीलिए वे गुरु की आज्ञा को वेदवाक्य मानते थे और उस आज्ञा को पालित करने में वे सहर्ष अपनी सम्पत्ति और अपने पारिवारिक सुखों की भी तिलांजलि दे देते थे।

यद्यपि संसार में ऐसे राजा और ऐसे गुरु थोड़े ही होते आए, तो भी गुरु के सामने हमारी प्राचीन शास्त्र-पद्धति सदा से भक्ति और श्रद्धा का ही प्रकाशन करती आई है। सच तो यह है कि गुरु एक शिष्य के समान कई शिष्य बना सकते हैं, लेकिन कई शिष्य मिल कर भी एक गुरु का निर्माण नहीं कर सकते। इसीलिए गुरु के सामने शिष्य को अत्यन्त विनीत होना पड़ता है, क्योंकि गुरु की बुद्धिमत्ता अत्यन्त उच्चकोटि की होती है, जिसके द्वारा वह समस्त विश्व का निरीक्षण करते रहता है। गुरु में ऐसी शक्ति का सामंजस्य होता है कि वह किसी भी कार्य के परिणाम का विचार पूर्वत: ही कर लेता है और उसके उचित स्वरूप का निश्चय भी कर लेता है, जैसा हममें नहीं देखा जाता। उनके आशीर्वाद में किसी विशाल कार्य की शक्ति अन्तर्निहित रहती है। उनका विचार ही बल और संकल्प होता है और उसमें सत्यता का ही प्राचुर्य होता है। इसी शक्ति के बल वे अन्धकार से प्रकाश की ओर का मार्ग प्रदर्शित करते हैं और मनुष्य जीवन की कठिनाइयों का परिहार भी करते रहते हैं।

उनका संग करो तो आपकी बुराइयाँ स्वत: ही चली जायेंगी और उसका स्थान सद्‌भावना और सद्विचार ले लेंगे, जिनका प्रभाव अमिट रहेगा और जो सदा-सर्वदा आपकी परिस्थिति में सुधार करते रहेंगे।

ऐसी निराली भावनाएँ हमने अपने गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज में देखीं, जबकि वे हमारे जनपद में पधारे थे। वे सच्चे आदर्श गुरु हैं, विश्व को आत्मानुगामी बनाने पर कमर कसे हैं। यह तो नामुमकिन है कि हम उनकी शक्ति का विस्तृत वर्णन कर सकें, क्योंकि उन्होंने हमारे समान न जाने कितने शिष्यों का उद्धार किया है और इसी भाँति यदि सब उनकी महिमा के ग्रन्थ लिखने लग जाएँ तो विश्व के सभी पुस्तकालय भर जायेंगे और विश्व के साहित्य का प्रत्येक काव्य समाप्त ही हो जायेगा। हाँ इतना अवश्य है कि हम उनके आशीर्वाद की याचना करें, जिससे हमारा जीवन सफल हो और हम उनके चरणों की छाया का आश्रय लेकर इस जगजीवन पथ पर शान्ति और निष्कंटक रूप से यात्रा पूर्ण कर सकें।

एतदर्थ ही हमने उनके उपदेशों को बरतने के लिए स्थानीय 'दिव्य जीवन मण्डल' खोला है जिसमें हमारी माँ-बहिनें उनके उपदेशों के अनुसार अपना कदम बढ़ाने का मार्ग खोज निकालें और जो सदा हमें उनकी याद दिलाता रहेगा, क्योंकि यह आवश्यकीय है कि हमारे समान गृहस्थ मायाभ्रमित मनुष्य उनकी याद कर-कर पुनः घुटने टेक कर उठ जायें, और कई बार गिरने के बावजूद भी हताश न हों और अपने कर्त्तव्य से विमुख न हों और अपना ध्येय भूल न जायें। हम यह प्रर्थना करते हैं कि हमारी देवियों के ऊपर विश्व के अविस्मरणीय सन्त महामंडलेश्वर स्वामी शिवानन्दजी महाराज की कृपा बनी रहे, जिससे हमारी गृहस्थी इस संग्राममय जग में सुरक्षित हो, सुसम्पन्न रहे और हम उनके बताए हुए परमार्थ को पावें।



श्रीमतां समधिगतसकलविद्यावदातचेतसां साधुकर्माचरणेन क्षपितमलानां विमलान्तःकरणानां तापत्रयभिहतजनसमुद्धरण-धुरन्धराणां भारतीय-सनातनधर्मोपदेशेन सर्वान् स्वधर्मे प्रवर्तयतां विदितवेदितव्यानामद्वैता-मृतानन्दझरी निमग्नानां ऋषिकेशप्रतिष्ठापितसकलजनानन्ददायकानन्द-कुटीरकुलपतीनां भूमण्डलेश्वराणां श्रीशवानन्द स्वामिनां मुम्बापुरी दाक्षिणात्य शिक्षणमण्डल्या समर्पिताभिनन्दन माला।

धन्यान्मन्यामहेऽस्मान् वयमिह भवतां संगमाद्दर्शनाच्च।
वन्द्यानाचार्यपादान् सविनयमभिनन्द्याशिषो वो भजामः॥
सद्भिः संगेह्यभंगोऽभवदथ परिशुद्धान्तरंगा भवामो।
ब्रह्मानन्दं भजामः समधिगतशिवानन्दसाधूपदेशात्॥

विद्याः सर्वाः पठित्वा तदुदितमपि सत्कर्मजातं चरित्वा।
शुद्धे चित्ते विदित्वा जननमरणक्लेशनाशाभ्युपायम्॥
श्रुत्वा मत्वा च बुद्ध्वा भगवति परमे न्यस्तचित्ता यतीन्द्राः।
साक्षात्कारं च लब्ध्वा निजहृदि सततं मोदमाना रमन्ते॥

गंगातीराविदूरे हिमगिरिसविधे श्रीहृषीकेश देशेऽ-
प्यानन्दाख्ये कुटीरे बुधवरसमितिं स्थापयित्वैधयन्ते॥
सद्धर्मान् बोधयन्तः श्रुतिविहितपथे सज्जनानावहन्तः।
स्वानन्दे स्थापयन्तो मुनिकुलतिलका लोकमुद्धारयन्ते॥

ब्रह्मात्मैकत्वदृष्ट्या निखिलमपि जगद्ब्रह्मरूपं विदन्तोऽ-
प्यासक्तानां जनानां शुभहितकृतये लोकयात्रां वहन्तः।
विद्यावन्तो भवन्तः क्षपितकलिमलाः श्रीशिवानन्दपादाः
जीवन्मुक्ताश्चरन्तो जगति करुणया विश्वपीडां हरन्ति॥

इत्थं मुम्बापुरी निवासिनः



॥सम्मान-पत्रम्॥

॥तस्माद् आत्मज्ञं हि अर्चयेद् भूतिकामः॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-अवधूतशिरोमणि-योगभास्कर-सर्व-भूतात्मभावारूढ-कलिमलप्रध्वंसनदक्ष-अज्ञजनाज्ञतानिरसनबद्धपरिकर-साक्षरता प्रचारणशील-धर्मधुरंधर-भक्तिरसमन्दाकिनीधरधवलितयशो-धवलित-दिगन्तर-भारतीयसंस्कृतिज्योतिर्धर-गुणागुणालंकृत-श्रुतिनिकर-गीतपरममंगल तत्त्वपदार्थानुभवरसिक-दीनजनवत्सल-संसारवैतरणी-पतित जीवोद्धारणदीक्षित-आर्त्तबन्धु... शिवानन्दस्वामीमहोदयाः।

स्वान्तस्थेन गदाभृता तीर्थान्यपि तीर्थाकुर्वतां भवादृशां लोकाभ्युदय-जनिजुषां, लोकसंग्रहाभिरतानां, हरिगुणाक्षिप्तमनसां, विधिनिषेधातीताध्व-संचारिणां, शुकादिसम्मितानां, कुरुणा-वरुणालयानां परमभागवतानां पावन-चरणसरोरुहकेसरांकिता इयंभूमिः व्रजभूरिव योगीश्वरेश्वरराधारमणचरणां चित्ताद्याधिकं जयति। राजर्षिप्रवर-परीक्षित्संभावित-ऋषिसभायां भगवन्तम्। भगवतकलोद्वहन्तं गृहमेधिनां गृहेषु गोदोहनमात्रावस्थायिनं शुकयोगिनमिवात्र-भवन्तं समादरेण, गौरवेण, प्रश्रयेण, प्रेम्णा च व अभिनन्दामः। राजर्षिवर्य-पृथुतत्पुत्रा कुमाराणामिव श्रीमतां स्वागतव्यवहरामः। अवसरेऽस्मिन्मंगलतमे भगवद्-दर्शने भक्ता इवात्र भवतां दर्शनेन प्रमुदितहृदयाः श्रीमतां गुणसमु दायोल्लेखेन, कृतसत्कर्मणां परिकीर्तनेन, आदर्शजीवनोल्लासाविष्करणेन कृतकृत्यतां मन्महे।

कौमारादेव महतां भाविमहिमा तावत् दरीदृश्यते। अत्रभवन्तः श्रीमन्तोपि जन्मनैव अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्-इति भगवदुक्तिं सत्यां कुर्वन्तो दृश्यन्ते। तत्र भवतां सुगृहीतनामधेयानां अप्पयदीक्षितमहोदयानां अन्वये जनिं प्राप्य, कुलक्रमागतां सरस्वतीं उपास्य, आंग्लविद्यासंपादनेऽपि डाक्टरपदवी प्राप्य, मलयाप्रदेशेषु जनसेवैव जनार्दनसेवास्तीति स्ववृत्या संसाध्य, व्यासचरणा इव सर्वभूतहितेरतापि, आत्मानमसम्पन्नमिवाभिलक्ष्य, त्यागेनेवामृतत्वप्राप्ति ऋषिपरंपरासम्मितां अभिसमीक्षमाणः सर्वभूताभयप्रदं

संन्यासधर्मं भगवत्प्रियं परिरम्य, आत्मत्वेनाभिमतं सर्वस्वं हित्वा, नगाधिराजं हिमवन्तं समाश्रितवन्तः।

श्रीमन्तः स्वीकृत्यापि संन्यासं, साक्षात् शंकरं शंकराचार्यमिव क्षणमपि स्त्यानदुष्टं न नयन्ति। अपि च जगद्धितचिकीर्षया चारवंशोद्भवं व्यजनमिव परतापनिवृत्तये एवाद्यपर्यन्तं जीवनमुद्वहन्ति। अनभ्यासतिरोहितं श्रुतौ निगूढं भारतीय संस्कृतेः तत्त्वं कालकर्मतमोरुद्धं उद्घाट्य विश्वजनतापथप्रदर्शनाय सर्वतोमुखं अद्भुतं यत्नं विदधति भवन्तः।

दिव्यजीवनसमाजसंस्थापनेन-संचालनेन-नियन्त्रणेन-प्रेरणेन-विस्मृतात्मगौरवं इमं लोकं पुनरात्म-गौरवस्मरणदानेन चेतयितुं प्रयत्नशीला भवन्तः निखिलसहृदय-संस्कृति प्रियजनहृदयधन्यवादान् अर्हन्तः नूनं पूर्वेषां महर्षीणां अन्ववाये ध्रुवक्षितिं लप्स्यमानाः अनागतयुगेष्वपि बहुमानपुरस्सरां सपर्यां प्राप्यस्यन्ति।... न मे भक्तः प्रणश्यति च भगवद्वाक्यम्। अतः कालोऽपि श्रीमतां अक्षयां कीर्तिम् क्षपयितुं न क्षंस्यते। अपितु तृष्णामिवप्रति-फलोपचितां वर्धयिष्यत्येव।

यथा भगवतस्तथैव भक्तस्यापि कृत्स्नां गुणसम्पत्तिं कात्स्न्येंन अभिधातुं शेषोऽपि सहस्रफणधरो नेष्टे। अतः मनःस्पृष्टमात्रां तामुल्लिख्य विरतिं भजामः।

इयमेवाशीरस्माकं यद् निर्व्याजकरुणावलयस्य भगवतः परिपूर्णकृपया भुंजन्तु भवन्तः वेदायुः, अनुभवन्तु योगक्षेमं कृण्वन्तु विश्वं आर्यम्, समुद्धरन्तु आर्य संस्कृतिं, उद्दीपयन्तु योगप्रदीपं, प्रचारयन्तु विश्वेषु ज्ञानप्रकाशं, प्रवहन्तु भक्तिमन्दाकिनीं जगतितले, प्राप्नुवन्तु अजरां अक्षयां, अमलां, विमलां कीर्तिम इति शम्॥

अत्र भवतां

अत्रत्यजनताप्रतिनिधिरूपाः शिवानन्दस्वागतसमितिप्रमुखादिसभ्याः

अमलसाड, चन्द्रवासरे
30-10-50 (आंग्ल तिथि)



श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्याणां पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणानां यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यष्टांगयोगानुष्ठाननिष्ठानां श्रीहृषीकेशक्षेत्रविराजमानानां श्रीस्वामीशिवानन्दचरणानां सन्निधौ नवसालपुरी श्रीकुलपतिबालय्याकलाशालाध्यापकैः सप्रणामं सांजलिविनयादरभक्तिबहुमानपुरस्सरं च समर्पितेयं स्वागतपत्रिका॥

स्वागतं श्रीशिवानन्दयोगिनां ब्रूमहे वयम्।
संगतं वन्दनार्चादि यथाशक्त्युपबर्हणैः॥

य ऐते महान्तः सन्ततामितशालिव्यूहपरिपाट्यां श्रीशालिवाट्यां पट्टामडाईग्रामे सप्तत्युत्तराष्टशताधिकसहस्रतमे (सन् 1887) वर्षे कृतावताराः आबाल्यादेव परोपकारनिरताः वैद्यविद्यापारंगताः विदेशनिदर्शितभैषज्यप्रावीणाः प्राग्भवीय-सुकृत विशेषसंचयोदितेहामुत्रफलभोगविरागाः परित्यक्तपरदेशनिवासाः साक्षात्कृतर्षिगणनिवासदेशे हृषीकेशे परिकल्पितावस्थाः नियमितमनोरथाः विराजन्ते तराम्॥

... त ऐते यतीन्द्राः विरक्तितीव्रतानिदानभोग्यदोषानुचिन्तनाभ्यासजनितसाधनचतुष्टयसंपन्नाः परमकारुणिकतया संसारजलनिधिनिमग्नान् मोहान्धकारजटिलान् पामराग्रेसरा-नप्युद्धर्तुम् ज्ञानदैरविरलैरुपदेशसहस्रैः श्रुतियुक्तत्यनुभूत्युपबृंहितैः हृषीकेशात्प्रस्थिताः भागदेयादस्माकं पूर्वाश्रमकृतमलयावासवासनानुवृत्त्येव कुलपतिबालैयाकलाशालायामस्यां संन्निहिताः सर्वेषामप्यस्माकं नितान्तमानन्दमापादयन्ति॥

... प्रार्थयामहे च संयमिनीलनीरदान् चातका इव भवतापतप्ता वयं, ज्ञानोपदेशामृतवर्षधाराभिषेकैः अनुगृहीतव्याः इति॥

इत्थं
श्रीस्वामिचरणसेवापरमाणवः अध्यापकाः

नवसालपुरी
9-10-50 (आंग्ल तिथि)



श्री हृषीकेशाधिवासिभ्य:श्रीशिवानन्दयोगिभ्य: नवसालनिवासिभिरर्पिता

स्वागत-पत्रिका

शिवानन्दमहायोगिन् स्वागतं ते निवेद्यते।
अस्माभिर्नवसालीयै: भक्त्या प्रेम्णा च भूरिणा॥1॥

सांप्रतं प्रायशो लोके स्वस्वार्थकपरा जना:।
राज्यनिर्वाहकाश्चापि संलक्ष्यन्ते तथाविधा:॥2॥

एवं विवादे संभूते खिद्यत्सु सकलेष्वपि।
शांतिस्सुखं कथं वा स्यात् विना यत्नं भवादृशाम्॥3॥

सर्वत्र समबुद्धीनामास्तिकानां मनस्विनाम्।
ब्रह्मण्याहितचिंतानां सर्वभूतदयावताम्॥4॥

इतत्समीपे कालेऽभून्महायुद्धद्वयं भुवि।
प्रवर्तते महद्युद्धं ऐशान्ये दिशि साम्प्रतम्॥5॥

शमाभिलाषिणस्सर्वे यतन्तेऽद्य समाहिता:।
प्रसरं तस्य युद्धस्य रोद्धुं देशान्तरेष्वपि॥6॥

विक्लबो यद्ययं यत्नस्याद्युद्धं सार्वलौकिकम्।
विनश्येदखिला भूमि: मैवं भूद्वैशसं महत्॥7॥

परस्परं स्नेहभाव: परमात्मानुचिन्तनम्।
एतच्चेदुभयं लोके भविता नान्यथा सुखम्॥8॥

अस्योभयस्य सिद्ध्यै हि सन्ततं यतते भवान्।
तत् साधयतु सर्वेश: इति तं प्रार्थयामहे॥9॥

इत्थम्

नवसालपुरी *महाजन:*

9-10-50 (आंग्ल तिथि)

हृषीकेशतीर्थवासिदिव्यजीवनसंस्थापक श्रीमपत्रमहंसपरिव्राजकाचार्य
श्रीमच्छिवानन्दस्वामी पूज्यपादेभ्य: इयं

स्वागत पत्रिका

नामभक्तिसुसाम्राज्यं आसेतोराहिमालयात्।
स्थापयन् जयतान्नित्यं शिवानन्दसरस्वती॥

हृषीकेशवासिन् हृषीकाणि यन्तुम्
हृषीकेशनामानि हृद्यानि जल्पन्।
हृषीकेशपादाब्जलग्नान्तरंग:
हृषीकेश भक्तिं जगत्यां तनोषि॥

शिवं भारतस्याद्य भक्त्या सुसाध्यं
विचिन्त्यादिशन् भक्तिमार्गं जनेभ्य:।
शिवानन्द धन्याखिलान्यायभाज:
पुनीषे परेशस्य नामातिसर्गात्॥

ज्ञानेन बोद्धुं परेशस्य तत्त्वं
के वा यतन्तेऽद्य योगेन वापि।
पुण्यैश्च निष्कामकर्मादिभिर्वा
तत् त्वं नरान शास्सि भक्तिं परेशे॥

हृषीकेशत: सेतुयात्राभिपाद्य:
प्रजा: पावयत्यार्तिहैरुक्तिजालै:।
शिवानन्दसंज्ञाय पूज्याय तुभ्यं,
नमोवाकमाशास्महे स्वागतं यत्॥

सर्वेषां योगमार्गं सुलभमनुपमं बोधयन् बोधनीयम्
मर्त्यानां चित्तदोषं झटिति परिहरन्नप्रमादैरुपायै:।
नीरोगानाप्तकामान्विदधवनिजान्मोक्षमार्गप्रसक्तान्
मान्यानां माननीयस्त्वमसि परशिवानन्दयोगिन् जगत्याम्॥

वि.सं.2007,
कन्याकृष्ण द्वादशी 22

श्री तपसतीर्थ
(लालगुडि) वासिन: आस्तिका:

इन्द्रप्रस्थपुरवास्तव्यवैदिकसमाज

स्वागत-पत्रिका

स्वस्तिश्रीमद्धृषीकेशाख्यशुद्धगंगातीरनिवासिनः अखिलाध्यात्मविद्यासार-पारंगताः सकलमततत्त्वसारसंवेदनेनाद्वैतमतसारभूत-सच्चिदानन्दस्वरूपब्रह्म-बोधनपारयिष्णवस्तथैवाखिलबुधजनानुजिवृक्षवः शमदमादिषाड्गुण्यपरि-पूर्णस्वान्ताः श्रीमहान्तः श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्याः तत्रभवंतः श्रीमन्तो भवन्तः स्वागतम्॥

सकलदेशवासिशिष्यकोटिजनान्तर्गतास्मद्विनयपूर्वकानेकप्रणति-पुरस्सरीमिमां सुस्वागतपत्रिकां स्वीकृत्य भवदीयकरुणाकटा-क्षाकांक्षिणोऽस्मान् अनवरतमनुगृह्णन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः इति सविनयं प्रार्थयामः।



आनन्द कुटीर के परमसन्त श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज

के

ऋषिकेश-रामेश्वरम् की द्विमासीय यात्रा समाप्त करके विजयान्वित

हृषीकेश वापिस लौटने के उपलक्ष्य में

अभिनन्दनपत्र

श्रीमान्!

आज ठीक दो मास पश्चात् पुनः आपके दर्शन पाकर हम जिज्ञासुओं को जो अनिर्वचनीय आनन्द एवं सौभाग्य की प्राप्ति हुई है उसे शब्दों में व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाकर हम केवल कायेन-मनसा-वाचा शत-शत प्रणाम निवेदन करके ही सन्तोष मान लेते हैं।

मुमुक्षुओं के प्राण!

आपकी अनुपस्थिति में हमारी मनोदशा वैसी ही रही जैसी कि श्रीकृष्ण जी के व्रज से चले जाने के समय गोप-कुमारों की। आपके लौटने की अवधि का निश्चित होना ही हमारी वियोग की विशेषता थी जो कि गोप-कुमारों को उपलब्ध नहीं थी।

दिग्विजयी सन्त!

आप अपने भक्तों के कल्याण के जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकले थे – उसकी उपयोगिता एवं सफलता को जानकर हम लोगों को आप पर तथा अपने सौभाग्य पर जितना भी गर्व हो अनुचित न होगा। स्थान-स्थान पर आपका जो विशाल हार्दिक स्वागत हुआ है वह आपके प्रति जिज्ञासुओं-धर्मप्रेमियों की श्रद्धा-निष्ठा का स्पष्ट प्रमाण है जिसे सुन-सुनकर हमारे हृदय गद्गद् हो रहे हैं।

उत्तराखण्ड के तपस्वी!

केवल भारतवर्ष के ही नहीं, देश-विदेश के जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा भी आपके निर्मल-ज्ञान-सागर के कण बिन्दुओं से शान्त होती है। उनके हृदयों

में भी आपकी विजय-वीणा झंकृत हो उठी है। इस प्रकार आपके विशाल हृदय से निस्सृत सूत्र ने विश्व-भ्रातृभाव के एक नवीन प्रकार को जन्म दिया है, जिसके स्मरण मात्र से असीम आनन्द प्राप्त होता है। वह है – 'अध्यात्म-पथ में देश, जाति, वर्ण, शासक, शासित के भेद-भाव से रहित हम सब एक आत्मा हैं।'

आनन्द कुटीर के सर्वस्व!

आपकी प्रशंसा हम क्या करें। सूर्य को दीपक दिखाने की धृष्टता हम नहीं कर रहे। देश-देशान्तर में आपके द्वारा अपना, अपने स्थान का भाल उन्नत होता देखकर इस असीम आनन्द को संवरण कर लेना भी तो आसान नहीं था। अत: आनन्दोल्लास में बरबस जो छलक पड़ा वही आपके चरण-कमलों तक प्रवाहित हो गया। इसमें हम निर्दोष हैं।

ऋषिमुनि देवेन्द्र!

अन्त में आपकी कीर्ति पताका की परिधि उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होवे, ऐसी भगवान् से प्रार्थना करते हुए हम पुन: एक बार आपको हार्दिक प्रणाम निवेदन करते हैं। भगवान हमारा यह सौभाग्य सब भांति अक्षय करने की कृपा करें।

हम हैं आपके कृपाभिलाषी –

पं. देशराज जी
प्रेसीडेन्ट व्यापार सभा

ला. इन्द्रसेन जैन
सेक्रेटरी टि.ग.मो. यूनियन

देवेन्द्र विशारद
अध्यक्ष विज्ञान प्रेस
तथा विज्ञान प्रेस के
कर्मचारीगण।



द्वितीय परिशिष्ट



इसमें दिग्विजयी के अनमोल वचनों का सारांश संग्रहित है, और उनके अपने संस्मरण भी हैं। किसी भी महापुरुष के संस्मरणों का मूल्य अनादि काल से अमूल्य रहा है और यह भी सच है कि उन-उन संस्मरणों पर मनुष्य जाति की सभ्यता और संस्कृति बनती आई है। अतः श्री स्वामी जी के व्याख्यानों और उनके संस्मरणों के बिना प्रस्तुत ग्रन्थ की पूर्ति नहीं हो सकती। हाँ, इतना अवश्य है कि महाराज के सभी व्याख्यान पुस्तक के विस्तार भय से नहीं दिए जा सके। किन्तु यह भी प्रयत्न किया गया है कि उनके अमूल्य विचारों को किसी भी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में संक्षिप्ततः प्रकाशित कर दिया जाय।



शिवानन्द दिग्विजय के अवसर पर

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज के परम-पवित्र उपदेशों का संक्षिप्त सारांश

'अखिल भारत यात्रा' के अवसर पर प्रत्येक नगर में श्री-चरण महाराज के कई व्याख्यान हुए, जिनका प्रकाशन पुस्तक के विस्तार-भय से किया जाना असम्भव है। किन्तु पाठकों के परिज्ञान के लिए हम महाराज के उपदेशों का संक्षिप्त सारांश, जो 'हंस-क्षीर-न्याय' के समान होगा, दे रहे हैं। श्री स्वामी जी के उपदेशों में इन्हीं भावों की ध्वनि प्रतिध्वनित होती थी, जिसने भारत और लंका में कोटिश: नागरिकों के हृदयों को मोहित और पवित्र किया था। विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक संस्थानों, रेडियो केन्द्रों और देवस्थानों में दिग्विजयी महाराज की आत्मगीता के इन शब्दों ने वह अपूर्व हलचल मचाई, जिसकी पुनरुक्ति इतिहास बार-बार करता रहेगा।

दिग्विजयी के उपदेश

ओऽम्। अमरत्व की सन्तानों और अनादि विभूतिमत्ता के अविनश्वर अवतार! तुमने अनेकों विज्ञानों का अध्ययन किया है। किन्तु एक विज्ञान ऐसा भी है, जिसके जान लेने से अदृश्य पदार्थ दृश्यमान् हो जाते, अश्रुत गीत सुन लिए जाते और अज्ञात रहस्य जान लिए जाते हैं। वही विज्ञान सब विज्ञानों का विज्ञान है, जिसे आत्मविज्ञान कहते हैं। सुनते हैं कि उसी विज्ञान से हम आनन्दमय अमर-जीवन और शाश्वत-शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं। उसे ही ब्रह्मविद्या कहा जाता है। ब्रह्म या आत्मा ही तो सभी नामों और रूपों का परमाधार है। वही मन, इन्द्रिय और प्राण को प्रकाश देता है। कहा है न उपनिषदों ने *'मनस्य मन: प्राणस्य प्राण:'*। यदि उस विज्ञान को प्राप्त कर लोगे तो सभी दु:खों और भौतिक क्लेशों का निराकरण हो जाएगा; साथ-साथ आनन्द का अक्षय भण्डार भी आपको मिल जाएगा। जब आप ब्रह्म के उस परम-विज्ञान का परिज्ञान कर लोगे तो आपका मन सांसारिकता में उपलिप्त नहीं रहेगा, असन्तुष्ट भी नहीं रहेगा, क्योंकि ब्रह्म परिपूर्ण है। उस परमपद को प्राप्त कर लेने पर आपकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हो जाएँगी और आप कामनारहित अवस्था की प्राप्ति कर सकेंगे, जिसे राजयोग में निर्विकल्प समाधि कहा है।

इसीलिए हमने यह शरीर धारण किया है। प्रत्येक के मन में आत्मा को प्राप्त करने के संस्कार वर्तमान हैं, किन्तु पथप्रदर्शन की ही आवश्यकता है और लगन के साथ साधना करना ही वांछित है। सांसारिक चक्कर में हम यह नहीं जान पाए कि किस प्रकार परम-लक्ष्य की प्राप्ति की जाए। अत: आज से हम पुन: जाग जाएँ और आत्म-साधन के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते जाएँ।

कैसे आत्मज्ञान प्राप्त करें?

किन्तु आत्मा की प्राप्ति कैसे की जाए, यह प्रश्न सभी के मन में आता है। आप कितने ही बुद्धिमान् क्यों न हों, आपके पास कितना ही प्रचुर धन क्यों न हो और कितना ही लोकबल भी क्यों न हो, किन्तु जब तक आप साधना नहीं करेंगे, लगन के साथ आत्मा को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं

करेंगे – तब तक आप अन्धकार में ही भटकते रहेंगे। मैं तो आपको ज्यादा पचड़े में डालना नहीं चाहूँगा। यदि सच पूछो तो मैं आपके भटकने का कारण भी अच्छी तरह जानता हूँ। कमी यह है कि आप मन के कार्य-कलाप को समझने की चेष्टा ही नहीं करते और न आपमें साधन करने की तीव्र इच्छा ही है। वैसे तो सभी लोग यही चाहेंगे कि आत्मज्ञान हो जाए और वे जीवनमुक्ति का अनुभव करने लगें। किन्तु साथ-साथ वे अपने परिवार, अपनी समाज-प्रतिष्ठा और अपने वैभव को भी देखते रहना चाहेंगे। यही हमारी कमी है। जिस प्रकार नाव को किनारे बाँधने पर उसे रात-दिन चलाने का भी कोई फल नहीं होता, उसी प्रकार अपना मन दुनियादारी में जकड़ कर नाममात्र की साधना कोई भी मूल्य नहीं रखती। साधना का अर्थ तो यह है कि हम अपने अशुद्ध मन को शुद्ध करें और अपना ध्यान अधिक-से-अधिक परमात्मा की ओर ही लगाएँ। अपने दैनिक जीवन में 'भक्ति-भक्ति' का नाम लेकर पुकारना हमें तब तक शोभा नहीं देता, जब तक हम अपने हृदय में सचमुच परमात्मा की उज्ज्वलता के दर्शन न करें और जब तक हम अपने हृदय के परमात्मा को प्रत्येक रूप में रमा हुआ न जानें। 'मुँह में राम और बगल में छूरी' यह योग नहीं है। इसे भक्ति और आध्यात्मिकता की संज्ञा देना हमारी मूर्खता ही होगी। हमारा जीवन नियमित होना चाहिए और सिद्धान्तों की आधार भूमि पर सुदृढ़ भी।

आप लोग योग और आध्यात्मिकता का नाम सुनकर डरना नहीं। यह गलत धारणा है कि योग और आध्यात्मिकता मनुष्य को जंगली बना देती है और उसे संसार से दूर हटा देती है। योग तो प्रत्येक स्थान में सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु वह योग क्या है? वह है हमारे दैनिक जीवन में दिव्य गुणों का जागना। हमारे दैनिक जीवन से दुर्गुणों का भाग जाना, उनका अस्त हो जाना ही दुनियादारी से हट जाने का अर्थ है। यदि हम सद्गुणों का संचय करेंगे तो आत्मतत्त्व की प्राप्ति कर सकेंगे। अत: चाहिए कि हम स्थिरबुद्धि, निरंहंकारिता, सरलता, ईमानदारी, भद्रता, दानशीलता और पवित्रता के अभ्यास आरम्भ कर दें। वैसे तो एक ही गुण के विकास से आप आनन्द और शान्ति का अनुभव कर सकेंगे, किन्तु ज्योंही एकाध गुण विकसित हो जायेगा, त्यों ही आप अन्य गुणों को स्वत: ही जागृत होता हुआ पायेंगे। इन्द्रियाँ आपको बार-बार विचलित करती रहती हैं। आप छोटी-से-छोटी बात को लेकर दु:खित या अति प्रसन्न हो जाते हो; अपनी चीजों के प्रति तो

ममता और मोह के भाव रखते हो और दूसरों की चीजों को लापरवाही से देखते आते हो। इस आदत को दबाना होगा। अपनी-परायी नाम की कोई चीज नहीं। यह तो स्वार्थपरता का उदाहरण मात्र ही है। यदि आप को इच्छा हो कि आप सच्चे और ईश्वरीय गुणों का संचय करें, तो आज से ही आपको परमार्थ के भावों से परिपूर्ण हो जाना होगा। याद रखो कि इस जगत् में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जिसे आप सदा अपनी कह सकें। धन-दौलत आती तो है आपके पास, किन्तु चली भी तो जाती है किसी दूसरे के पास। पति-पुत्र, स्त्री और पोते भी आते हैं, किन्तु चले जाते हैं और सदा के लिए आपके नहीं बने रहते। इसी प्रकार दुनिया में प्रत्येक वस्तु आपकी होते हुए भी सदा के लिए आपका साथ नहीं दे सकती। अत: उचित यही है कि उन नश्वर चीजों के मोह में न पड़ें और व्यर्थ की चिन्ता मोल न लें। जब तक कोई वस्तु हमारे पास है, उसका उचित व्यवहार करें और यह याद रखें कि किसी भी समय वह वस्तु हमारा साथ छोड़ सकती है। यदि मन में यह भावना सदा बनी रहेगी तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हम आज की तरह दु:खित, चिन्तित और सन्तापित नहीं होंगे। महाराजा जनक इसके ज्वलन्त उदाहरण थे। उन्होंने एक बार कहा था, *'मिथिलायां प्रदग्धायां न मे किञ्चित् विनश्यति'*। अर्थात् मिथिला में आग लगी तो मेरा क्या जाता है? इसका अर्थ यह नहीं कि महाराजा जनक लापरवाह थे। किन्तु इस उदाहरण से यह तात्पर्य है कि महाराजा जनक की अनासक्ति भावना परमार्थ के उस चरम-पद तक पहुँच चुकी थी, जहाँ वे जगत् की प्रत्येक वस्तु को अपना न जानकर प्रत्येक का जानते थे और उनको क्षणभंगुर समझते थे। यही निरासक्ति प्रत्येक मनुष्य में उदय होवे तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मनुष्य-समाज के समस्त दु:खों की इतिश्री हो जायेगी।

दैवी गुण

मुझे यह भी कहना ही पड़ता है कि आज हमारे सामने ऐसे गुरु नहीं, जो इस ज्ञान की दीक्षा दें। आज तो केवलमात्र विश्वविद्यालयों की लोक शिक्षा ही जीवन का आधार बन चुकी है, जिस आधार पर हम आज की संस्कृति को हिलती-डुलती हुई देख रहे हैं। जब तक विश्वविद्यालय मनुष्य को आत्मत्व की शिक्षा नहीं देंगे, विद्यार्थियों को सत्पथ की ओर चलने की प्रेरणा नहीं देंगे और जब तक शिक्षक स्वयं परमार्थ, परोपकार तथा जनहितपरायणता

में प्रवीण नहीं होंगे, तब तक हम मनुष्य-समाज के आतंकित जीवन को यथापूर्व ही पायेंगे।

मैं पूछता हूँ कि क्या जीवन में कुछ आनन्द भी है, जिसके लिए हम परमार्थ जैसी वस्तु को त्याग रहे हैं, उसे भूल रहे हैं? यदि जीवन में कुछ आनन्द है, यदि जीवन मे भोगे जाने वाले भोग अक्षय हैं, तो हम उनको भोगते रहें, कुछ भी आपत्ति का विषय नहीं उठ सकता। किन्तु यदि जीवन में अनुभूत आनन्द अक्षय आनन्द नहीं दे सकते, यदि वे भोग हमारे पास सदा के लिए नहीं रह सकते और यदि वे लोक-वैभव हमारा साथ सदा के लिए नहीं दे सकते तो हम आज ही इनका त्याग करते हैं और आत्मा नाम की ऐसी वस्तु की खोज में जाते हैं, जिसे प्राप्त कर लने पर सभी आनन्द प्राप्त हो जाते, सभी ज्ञान हस्तामलकवत् हो जाते, सभी वैभव करतल-भूमि पर नाचने लगते और सभी शान्तियाँ कर जोड़े हमारी सेवा में युगानुयुगों तक खड़ी रहती हैं।

आत्मा में तन्मय वह जीवन कैसा है? क्या वह इन्द्रजाल है या भानुमती का पिटारा? नहीं, नहीं। वह तो साक्षात् जीवन है, दिव्य गुणों का भण्डार, ईश्वरीय चेतना का आगार, सद्‌गुणों का रत्नाकर और सदाचारशीलता का हिमांचल... जहाँ से नि:सृत और प्रस्रवित होती हैं, आत्म-विज्ञान के प्रकाश की सहस्रधा रश्मियाँ।

आत्मनिष्ठ जीवन इसी देह और इसी जीवन में किसी भी समय प्राप्त किया जा सकता है। आत्मनिष्ठ जीवन प्राप्त करने के लिए यह आवश्यकता नहीं रहेगी कि आप अरण्यों की भूमि में समाहित रहें। आत्मनिष्ठ जीवन को प्राप्त करने के लिये अनिवार्य होगा कि आप अपने दैनिक जीवन को सत्यपरायणता की कसौटी पर रखें और उसे ईश्वरपरायणता के आधार पर प्रतिष्ठित करें। सदा यह याद करते रहें कि सर्वत्र परमात्मा-ही-परमात्मा का अधिवास है। सियाराम मय सब जग जानी। अत: सीताराममय हो जाने से विश्व में कौन-सा पदार्थ ऐसा है, जिसमें सियाराम न हों। प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने और सत्यत: परमात्मा को स्थिर देखने से हम प्रत्येक कर्म सावधानी से करेंगे। ऐसी अवस्था में यह सम्भव नहीं होगा कि हम बेईमानी, बदनीयती, दुराचार का व्यवहार करें, दूसरों को ताड़ित, दूसरों का अनर्थ और दूसरों के प्रति अनुचित बर्ताव करें। बल्कि हम उस समय इस सीमा तक विकास के मार्ग पर चले जाएँगे कि विश्व के प्रति हमारा

कर्त्तव्य असीम हो जाएगा। हम उसकी सेवा के लिए सतत् सन्नद्ध रहेंगे। यह इसीलिए कि परमात्मा के अतिरिक्त विश्व में और किसी भी जीव की सत्ता नहीं। विश्व में आत्मा और आत्मा में ही विश्व को देखने वाला निश्चयत: प्रत्येक कर्म को करते हुए भी निरासक्त और निर्लिप्त ही रहेगा – साथ-साथ आनन्द तथा शान्ति का अधिनायक भी। यही जीवन की साधना है, जिसमें सफलता पाने पर हम आत्मपद के अधिकारी हो सकेंगे।

व्यर्थ के आनन्द त्यागो

रही आनन्द और भोग-विलास की बातें। जो पदार्थ किसी सम्पर्क के कारण हमें आनन्द देते हैं, वे दु:ख के गर्भ ही जाने जाने चाहिये। मिठाइयाँ आनन्द देती हैं, किन्तु उनका परिणाम कितना भयंकर होता है। मिर्चें भी कितना आनन्द देती हैं, किन्तु हम यावज्जीवन उस आनन्द का परिणाम भोगते रहते हैं। गीता में तो यह स्पष्ट कहा है कि प्रारम्भ में आनन्द को देने वाले भोग नहीं भोगे जाने चाहिये, क्योंकि उनका परिणाम निश्चयत: दु:खदायी ही होता है। जो पदार्थ हमें पहले आनन्द देते हैं, वे भविष्य में हमें अकल्पनीय दु:ख ही देंगे। पुत्र के जन्म के समय हमें जितना आनन्द होता है, उससे अधिक दु:ख हमें तब होता है जब वह बीमार होकर कराल-काल के गाल में गिर जाता है। यदि हम पुत्र के विवाह पर एक-दो दिन हँसते हैं, तो उसके मरण के उपरान्त यावज्जीवन आँसू बहाते रहते हैं। क्या इनको सुख कहा जा सकता है? सुख तो उस आनन्द को कहा जाता है, जिसका कभी भी नाश न हो।

हम देखते हैं कि आज का मनुष्य भोग-विलास की ओर उन्मुख हो रहा है। और यह भी सम्भव है कि वह किसी दिन भोग-विलास के रौरव नरक में सदा समाहित हो जायेगा। भगवान करे वह दिन न आए; किन्तु हाँ, वह मनुष्य यदि आज ही सावधान हो जावे तो कितना अच्छा हो। यदि आप लोगों को मालूम हो कि हमारे जीवन के सभी भोग क्षणिक हैं और वास्तव में सुख के दाता नहीं; किन्तु सन्ताप, चिन्ता, भय और रुदन के ही पिता हैं तो मुझे विश्वास है कि आप आज से ही वृथा आनन्द के ढकोसलों से दूर भागोगे।

कितना आनन्द अनुभूत होता था उन ऋषि-महर्षियों को; जिन्होंने आनन्दातिरेक होकर लिख ही दिया कि हमारे आनन्द अविवरणीय हैं और हमारे दिव्य-सुख अमानवीय हैं। आप उनकी अभिव्यक्तियों को पढ़ेंगे तो

पता चलेगा कि वे आनन्द के सागर में विश्राम ही कर रहे थे। मनन करने से स्वीकार करना ही होगा कि छाया के पीछे नहीं दौड़ना चाहिए। संसार के सुख मृग-मरीचिका के समान हैं, आकाश में गन्धर्वनगर की कल्पना के समान हैं और हैं गगन में द्विचन्द्रत्व के आभास के तुल्य। जिस प्रकार आकाश में गन्धर्वनगर नहीं होता, जिस प्रकार मृग-मरीचिका मनुष्य की प्यास को नहीं शान्त कर सकती और जिस प्रकार आकाश में दो चन्द्र नहीं हो सकते, उसी प्रकार संसार-सदृश नश्वर ब्रह्माण्ड-पिण्ड में सुख नाम की कोई भौतिक वस्तु नहीं हो सकती। सुख तो है, किन्तु आध्यात्मिक। आनन्द भी है, किन्तु आत्मतत्त्वसर्जित। चरम-शान्ति भी अवश्य है, किन्तु समाहित मन वाले ईश्वरनिष्ठ साधक में, जो प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक प्रकार से परमात्मा के ही दर्शन करता है और जन-जन में आत्मा के दर्शन कर, कल्याण की परमसोमवती-भावना से ओतप्रोत हो, विश्व के व्यवहारों को सम्पन्न करता रहता है।

सुख और दुःख क्या हैं?

तब आप पूछ सकते हैं कि सुख और दु:ख किसे कहा जाय? यदि विश्व में आत्मा के अतिरिक्त और किसी की भी सत्ता नहीं तो दु:ख की कल्पना का मूल्य ही क्या रहा? सच है कि आत्मा के अतिरिक्त किसी की भी सत्ता नहीं, अत: आनन्द की सत्ता भी आत्मा में ही होनी चाहिए, न कि असत्य संसार में। आत्मा में तन्मय रहना और आत्मा में अनुतिष्ठित रहना सुख है, आत्मा से विलग रहने की भावना ही दु:ख का आदि कारण है। सुख वह है, जो चिरन्तन है। अल्प-संसार में सुख नहीं मिल सकता। किसी-न-किसी दिन इन सुखों का अन्त होगा ही। और जिस दिन ये सुख हमसे दूर होंगे, उस दिन सन्ताप होगा और हम इनको याद कर रोयेंगे किन्तु आत्मा में अनुभूत हुआ सुख निरन्तर है, अत: उसके विछोह का प्रश्न ही नहीं उठता।

हम परमात्मा को भूल गए हैं। असत्य से हमारा जीवन आकीर्ण है। अपवित्रता, कलंक, दुराचरण तथादिक कलुषित कर्म हमारे जीवन को चारों ओर से घेरे हुए हैं। काम, क्रोध, गर्व, मोह, ममता आदि शत्रुओं से जीवन जर्जर हो गया है। हम संसार में ही आनन्द चाहते हैं; पुत्र, धन, दौलत और जग-वैभव में ही आनन्द चाहते हैं। अत: हम अशान्त हैं। कभी भी हम एकान्त में बैठ कर यह विचार नहीं करते कि दुनिया से दूर नहीं तो दुनियादारी से

ही दूर रहना चाहिए। संसार से भाग कर कहाँ जाओगे? किन्तु सांसारिकता से भाग कर परम-परात्पर आत्मा के केन्द्र – अपने हृदय में विश्राम कर सकोगे। संसार से भाग कर जंगलों में जाने से ही आनन्द नहीं मिलेगा। आपको दैनिक जीवन में ही साधना करनी होगी। अनुभव करना होगा कि योग प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। योग केवलमात्र तपस्वी की ही पैतृक सम्पत्ति नहीं, वीतराग की ही अपनी वस्तु नहीं – किन्तु प्रत्येक बालक और प्रत्येक महिला, प्रत्येक युवक और प्रत्येक वृद्ध का जन्मसिद्ध अधिकार है।

अत: आप लोग जान गए कि परमात्मा की भावना से दूर रहना ही दु:ख और परमात्मा के सन्निधान में रह कर अपने जीवन के प्रत्येक व्यवहार को करना ही सुख है। नास्तिकता दु:ख है और धार्मिकता परम सुख है। भक्ति में ही परम सुख है और मदान्धता में परम दु:ख। एकान्त में आनन्द है और द्वन्द्वों में महादु:ख। संयम में शान्ति है और स्वेच्छाचार में महापतन। सत्यपरायणता में महद्-सुख है और असत्यशीलता में रौरव नरक। जनकल्याण की भावना आत्मकल्याण की भूमिका है और पर-अपकार का प्रयत्न आत्म पतन का दृश्य। सर्वभूतहितार्थ ही मनुष्य का जन्म हुआ है और सर्वभूतहित ही आत्मा की सच्ची पूजा है। यही साधक की सच्ची किन्तु कठोर कसौटी है, जहाँ सोना खरा उतरता ही है और नकली धातु पहिचान ली जाती है। ईश्वरीय कार्यों को करने में सुख है और अनीश्वरवादी कार्यों को करने में चिरन्तन दु:ख। इसे जानो और आज से ही अपने जीवन को इसी साँचे में ढालो, जिससे आपके जीवन में आत्मा का सुगठित ओज जन्म ले सके।

माया–कल्पना और आदर्शवाद

आखिर ये भोग कब तक तृप्त कर सकेंगे। जो वस्तु आज आनन्द दिया करती है, वही दूसरे दिन आपके लिए भार-सी हो जाती है। वास्तव में आनन्द वस्तु में नहीं, किन्तु आपकी कल्पनाओं में है, आपके विचारों में है, जिन विचारों में आप उस वस्तु-विशेष को महत्त्व देते हो। दूध आपको सुखकर प्रतीत होता है, किन्तु कब तक? दूसरा गिलास लीजिए और तीसरा लीजिये। अतिशयता आपको वमन करने पर विवश करेगी ही। भोगों की अतिशयता ही तो सभी क्लेशों की माता है। अपनी प्रिय वस्तुओं को महत्त्व देना त्याग दो तो कुछ ही दिनों में अनुभव हो जायेगा कि सच्चा सुख उन विषय-पदार्थों

में नहीं, किन्तु आपकी भावनाओं में और आपके आदर्शवाद में था। अत: आवश्यकता है मनोविचारों पर संयम की। यदि मन में नित्यप्रति जागते हुए विचारों पर नियन्त्रण स्थापित किया जायेगा तो जीवन अत्यन्त सुख से बीत सकेगा और आप किसी भी बात पर मिनट-मिनट में क्षुब्ध नहीं होवेंगे और न गई बातों पर शोच ही करेंगे। इसी प्रकार अन्य विषयों को लीजिए। उनसे आनन्द की प्राप्ति तभी तक कर सकते हैं, जब तक आपकी उनके प्रति श्रद्धा है। जहाँ श्रद्धा गई, तहाँ वह वस्तु घृणा का विषय बन जाती है।

माया मोहित कर रही है। लोग अज्ञानी और विवश पतंगों की नाईं अग्निशिखा को ही आनन्ददात्री समझ कर, सर्वनाश के लिए अग्रसर हो रहे हैं। आज से ही माया के बन्धन से मुक्त हो जाना होगा। जो कुछ भी आप अपनी इन्द्रियों से देखते, सुनते और सोचते हो, वह भुलावामात्र है, माया का बन्धन है। यदि आपकी सच्ची लौ है, यदि आप चाहते हैं कि विषय-भोगों के चक्कर में अपना मार्ग न भूलें तो आज से ही साधना प्रारम्भ कर दो, आज से ही आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर हो जाओ और आज से ही आत्मपरायण, ईश्वरपरायण, सत्यशील और मुमुक्षु बन जाओ। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप अवश्यमेव इन लौकिक तापों से मुक्त हो सकेंगे, जिस प्रकार हमारे अनेकानेक पूर्वज होते आये हैं।

कर्म करो और हृदय को उदार बनाओ

अत: आज से ही अपने हृदय को सुमधुर और कोमल बनाओ। नित्यप्रति भगवान की आराधना करो। वे ही आपको बल देंगे। बिना भगवद्-आशीर्वाद के पथ पर चलना असम्भव होगा। अनेकों जन्मों के पाप-ताप आगे नहीं जाने देंगे। किन्तु भगवद्-अनुग्रह मार्ग को स्वच्छ और निष्कण्टक बनायेगा। अकैतव-भक्ति मार्ग पर जीवन-ज्योति का प्रकाश विस्तारित करती रहेगी। माया के मोहक चमत्कार और विषयों के भूत का भय मार्ग से जाता रहेगा। साथ-साथ सदाचरण को अपने साथ लिए चलो। यदि सदाचरण पर डटे रहोगे तो निश्चित है कि अपने को आत्मा के विशाल मार्ग पर एकाकी नहीं पाओगे। ये दिव्य गुण ही एकाकी मार्ग पर आपको बहलाते और सहलाते रहेंगे। सत्यशीलता, निष्कपटता, तीव्र लगन, निरहंकारिता, प्रसन्नता, नियमित जीवन, सिद्धान्तप्रियता, दयाशीलता, उदारता, पवित्रता, स्थिरता, शान्ति-दान्ति, क्षमा, अनुकूल-व्यवहारपरायणता, नम्रता, निश्चयपरायणता,

सक्रियता, महानता, विशालता तथादिक सुन्दर और मनोहर गुण जीवन के अमूल्य अलंकार बन जाने चाहिये। तभी आप जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति आनन्दपूर्वक कर सकेंगे। याद रखो कि परम पिता परमात्मा सब के पिता हैं। वे ही आपकी करुण पुकार सुनेंगे। यदि आपके पास साधना करने को नैतिक बल नहीं तो विगलित हृदय से प्रार्थना कीजिए, सच्चे दिल से याचना कीजिए। वे आपको सीधी राह पर लगा ही देंगे। जिन्होंने विशाल ब्रह्माण्ड और अनन्त सृष्टियाँ रची हैं और जो इन सबका प्रतिपालन अलौकिक प्रकार से करते हैं, और जिनकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता, उनके आशीर्वाद मिल जाने पर क्या यह सम्भव है कि आपकी करुण पुकार अनसुनी चली जावे? भगवान तो पतितों का उद्धार करने वाले हैं – *'तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।'* मृत्यु के सागर से पतितों को उबारने वाले भगवान हैं। उन्हीं की स्तुति गानी चाहिए, उन्हीं के गुणों का वर्णन होना चाहिए और उन्हीं की पूजा की जानी चाहिए तथा उनका ही एकमात्र आसरा होना चाहिए। वे ही विश्व के नियन्ता हैं, हमारे माता और पिता हैं।

भक्ति के साथ-साथ कर्म भी करते जाओ। आलसी, काहिल और कामचोर मत बनो। आलसी का विश्व अन्धकारमय है और काहिल के लिए विश्व में दु:ख-ही-दु:ख है। यदि निरासक्ति की भावना से कर्म करते, कर्मों को भगवान के चरणों में अर्पण करते जाओगे तो सत्वरत: मुक्ति का अनुभव करोगे और परात्पर-आनन्द की संप्राप्ति भी। गीता में भगवान ने इसका उपदेश दिया है। इसे नित्य के जीवन में ढालना होगा। यदि आप डॉक्टर हैं, तो आपका कर्त्तव्य होगा कि आप दीन-दुखियों की धर्मार्थ चिकित्सा करें। यदि अदालत के कर्मचारी हैं, तो आपको दीनों की सहायता में कोई भी कोर-कसर नहीं रखनी होगी। यदि शिक्षक हैं, तो निर्धन विद्यार्थियों को नि:शुल्क शिक्षा का दान देवें। इसी प्रकार प्रत्येक का कर्त्तव्य निर्धारित किया जाना चाहिये। दुनिया में आप जो कुछ भी कर रहे हैं, जिस किसी स्थान में हैं और जब-जब सम्भव हो, सेवा-ही-सेवा करें तथा जनकल्याण की बलवती भावना से ओतप्रोत रहें। आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा और कलुषित संस्कार विदग्ध हो जायेंगे। हृदय-गगन में ज्ञान का मधुर प्रभात उदित हो जायेगा। सेवा ही पूजा है और सेवा ही सच्चा मोक्ष है। सेवा के लिए हमें आज से ही तैयार होना होगा। यही मनुष्य के जीवन की प्रथम और चरम साधना है।

धर्मपरायणता ही जीवनशक्ति है

कर्मपरायण के साथ-साथ धर्मपरायण भी बनिए। कर्म करने का अर्थ निरर्थक है, यदि आप कर्म का समन्वय धर्म के साथ नहीं करते हैं। धर्मपरायणता ही वह कल्पवृक्ष है, जिसका सुन्दर फल शान्ति और समृद्धि, मुक्ति और कैवल्य है। यही जीवन का ध्येय है। इसीलिए ही आपने मनुष्य देह पाई है। प्रत्येक क्षण अमूल्य है, जो धीरे-धीरे चिरन्तन की गोद में छिपता भी जाता है, जिसे आप पुनः नहीं बुला सकते। कौन जानता है कि हम इस सत्संग भवन से बाहर जाने तक जीवन की श्वासें ले सकेंगे। अतः जिन्हें कुछ करना है जल्दी कर लें। धर्मकार्यों में विलम्ब की आवश्यकता नहीं।

विश्वात्मक प्रेम धर्मपरायणता का आधार है। प्रत्येक प्राणी में भगवान के दर्शन करो। यही विश्वात्मकता है। इसी के आधार पर आप जीवन-मन्दिर का सुन्दर निर्माण कर पाएँगे, जिसमें शान्ति और आनन्द, अमरत्व और विभुत्व का देवता निवास कर सकेगा।

धर्मपरायण व्यवसायी लोभी नहीं होता। वह धनसंचय भी नहीं करता। वह कभी भी असत्यभाषण नहीं करेगा, चोरबाजारी में नहीं कूदेगा और न कोई अन्य पाप ही करेगा। सर्वत्र आराध्य को देखते हुए, वह प्रत्येक कार्य को पूजा की ही भावना से करेगा। ऐसा व्यवसायी ही धन्य है और है विश्व की प्रथम आवश्यकता।

यदि मालिक धर्मपरायण है तो वह अपने सेवकों के साथ समान और उचित व्यवहार करेगा, मानो वे दोनों इस विशाल जीवन-पथ के सहयात्री हों। प्रेम और दया उसके जीवन की ज्योति होगी, जिसके प्रकाश में वह अपना पथ गहनतम अन्धकार में भी खोज सकेगा और ईश्वर के सन्निधान में जा पावेगा। इसी प्रकार सेवक का धर्म भी है। उसको अपने स्वामी में परमात्मा के दर्शन करने चाहिए। तभी वह शान्ति और आनन्द, कल्याण और सफलता को प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति रात-दिन अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा करता रहे, विश्व-शान्ति और आत्म-कल्याण (जन-कल्याण) में योग देवे। वही मानवता का सच्चा सेवक है और समाज का उद्धारक भी। आत्मा का ज्ञाता तो वह है ही।

अतः धर्मपरायण और कर्मपरायण बनो। सदाचारी, पवित्र, परमार्थप्रिय और साधुता के अवतार बनते हुए, इसी देह में अक्षुण्ण कीर्ति के यशभागी

बनते हुए, शाश्वत जीवन के मन्त्र में दीक्षित होते हुए तथा परम कैवल्यधाम में आत्मप्रतिष्ठा को पाते हुए।

योग करो और योगी बनो

साथ-साथ योगाभ्यास करना न भूलो। नित्यप्रति आसन और प्राणायाम का अभ्यास करो। अपने शरीर को स्वस्थ और कार्यानुकूल बनाओ। अस्वस्थ मनुष्य सदा दु:खित रहता है, किन्तु आरोग्य जीवन की प्राप्ति कर आप प्रत्येक कार्य में सफलता की प्राप्ति करोगे। यही योग है। नित्य के जीवन में कुछ हल्के आसन और कुछ सुगम प्राणायाम करना तथा कुछ देर तक प्रात:काल तथा रात्रि को ध्यान में बैठना चाहिए। इस प्रकार आप अपने को सभी दैहिक विकृतियों से परिमुक्त हुआ पाओगे।

वायुमार्ग से जाना, गगनमण्डल में अदृश्य हो जाना तथा मनोनुकूल शरीरों की प्राप्ति करना तथा तथाविध सभी सिद्धियाँ योग की मनोवैज्ञानिक शाखायें हैं; किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो अपने जीवन को पतन से उत्थान की ओर ले जाना है। अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुराचरण से सदाचरण तथा स्वार्थपरता से विश्वकल्याण की ओर अपनी बौद्धिकता तथा कर्मपरायणता को जागृत करना ही योग है। भौतिकता, नास्तिकता, असत्यता, कामुकता और धूर्त्तता से विरत होकर परमात्मिकता, अहिंसा, सदाचरण, इन्द्रिय-संयम तथा शीलपरायणता के मार्ग की ओर अपनी बुद्धि, अपने कर्म तथा अपनी वाणी को अभ्युदित करना ही योग है। योग यदि अपने अन्दर नहीं प्राप्त हो सकता तो और कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता। संसार के प्रत्येक कर्म कुशलतापूर्वक करते हुए प्रत्येक प्राणी आत्मसिद्धि को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य कभी भी ईश्वर को न भूले, क्योंकि जीवन की सच्ची सफलता ईश्वर-भक्ति पर ही निर्भर रहती है।

ज्ञानी बनो और मनन करो

नित्य प्रति उपासना के द्वारा आन्तरिक मल को हटा कर, योगाभ्यास से शरीर को योग्य ओर समर्थ बना, वेदान्तिक विचारों द्वारा अपने को आदर्श और विशाल करते हुए, हमें जप, कीर्तन और सत्संग में विश्वास करना चाहिए। इनका सहयोग ही आपको मनन या विचार के मार्ग से परमार्थ की ओर ले जायेगा। मनन करने से विचार-शक्ति पवित्र होगी। विचार शक्ति

में शक्ति आयेगी। भावनाएँ ही कालान्तर में आपके जीवन का निर्माण कर पायेंगी। ईश्वर का ही मनन करो। परमात्मा के अतिरिक्त किसी की भी सत्य-सत्ता नहीं और उनसे इतर और कोई आदर्श और दिव्य चैतन्य नहीं। अनन्त शाश्वत परमात्मा पर मनन करोगे तो अमर, शाश्वत और परिपूर्ण बन सकोगे।

संकेत – भविष्यवाणी

जीवन छोटा तो है ही और हमें भी कई काम करने हैं। अत: आज और इसी क्षण से जुट जाना चाहिए। कौन जानता है कि 'कल' आयेगा भी या नहीं। न जाने किस समय काल हमारे हाथ पकड़ कर उस लोक को रवाना हो जाय। अच्छा तो यही होगा कि हम काल के बन्धनों में गिर पड़ने से पहले ही अपने को हरि के पार्षदों से सम्पन्न कर लें, जो किसी भी समय हमें काल के आक्रमण से मुक्त रख सकेंगे। आज से ही जप, कीर्तन, सत्संग और स्वाध्याय करना प्रारम्भ कर दो। पवित्र जीवन बिताओ। योग और आत्मज्ञान तो अपने ही अन्दर है। यदि अपने अन्दर नहीं पा सकते तो और कहीं भी नहीं पा सकोगे। यदि बाहर खोजोगे तो असफल ही रहोगे। जंगलों में, कन्दराओं और पर्वतों में केवल निराशा ही मिलेगी। किन्तु अपने अन्दर खोजोगे तो धीरे-धीरे अनन्त-ज्ञान की निधियाँ मिलती जाएँगी और आप आश्चर्यचकित हो जाएँगे कि जिस आनन्द और जिस ज्ञान को आप बाहर खोजते थे, वह तो आपके अन्दर ही वर्त्तमान था, मृग भूल कर कस्तूरी को तृणदल में खोज रहा था। जिस तरह मदिरा में नशा होता है, सागर में लहरें होती हैं, सूर्य में प्रकाश और अग्नि में ताप होता है, जिस प्रकार मेघ में जल और पुष्प में सौरभ होता है, उसी प्रकार प्रत्येक में आत्मा है और अभिन्न आत्मा है। बिना आत्मा के तो उसकी सत्ता ही नहीं।

कामनाओं के मल-विकार को हटाना होगा। दुनिया की खाक छानने से क्या मिलेगा? अपनी सफाई कर लो। बस, आपको स्वच्छ आत्मा प्रतिभासित होगी।

मुझे विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति मुझे अच्दी तरह समझेगा और मेरी बातों को चरितार्थ सत्य समझ कर व्यवहारणीय जानेगा। मुझे आप लोगों के मध्य में आनन्द का जो अनुभव हो रहा है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, जो आपने शान्तिपूर्वक मेरे व्याख्यान

को सुना। मैं आपका कृतज्ञ हूँ, जो आपने मुझे सेवा का यह अवसर दिया। पुनः पुनः मैं आप सब लोगों का ऋणी हूँ, जो आपने इस परम पवित्र अवसर को जन्म दिया और इसे सफल भी बनाया। भगवान का आशीर्वाद आप लोगों पर सदा रहे और आप नित्य साधना के द्वारा अपने-अपने जीवन के निश्चित और निर्धारित क्षेत्रों में आत्मा की अनुभूति कर लें तथा जन-कल्याण (आत्म-कल्याण) की तीव्र भावनाओं से ओतप्रोत हो, अपने जीवन को सरस और सुन्दर, मनोहर और आकर्षक बना लें। वे ही आपको शक्ति दें।

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।

ॐ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति!!!



दिग्विजयी के अपने संस्मरण

(श्री स्वामीजी महाराज ने भारत और लंका में किन-किन विशेषताओं के दर्शन किए और जनता में किस सीमा तक ईश्वर प्रेम की भावना को जागते देखा, उनको संस्मरण स्वरूप यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है। वेदों के उद्भवकाल से लेकर आज तक हम महापुरुषों की वाणी से जो कुछ सुनते आए, वह केवलमात्र उनके संस्मरण ही तो थे, जिनकी अनुभूति उन्होंने तत्कालीन जनता की भावना को लेकर की थी। श्री स्वामी जी के संस्मरण भी उसी मार्ग के उज्ज्वल प्रकाश हैं।)

मुझे आज भी 'अखिल भारत यात्रा' की याद आती है। आदिकाल से विश्व का आध्यात्मिक सिरमौर, भारत आज भी अपने आध्यात्मिक वेष में मेरे सामने सजीव होकर नृत्य करते आता है। आदि मानव की आध्यात्मिक सभ्यता के देश, भारत में मुझे अपने संस्मरणों को अंकित करना ही पड़ा।

परम पिता परमात्मा की कृपा का वर्णन किया ही किन शब्दों में जाय। उन्होंने बार-बार इस पवित्र देश में योगियों, सन्तों तथादिक आचार्यों को आविर्भूत कर जनता के पवित्र पथ को निर्मल और निष्कंटक रखा तथा युगों-युगों में आने वाली जनता को पतन के मार्ग से बचाया। मानवता पर इस प्रकार की कृपा करने के लिए हम अपने आदि सन्तों और आचार्यों के प्रति बारम्बार प्रणाम करना चाहते हैं। उन्होंने ही तो ईश्वर-साक्षात्कार की परम्परा को अमर बनाए रखा। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप समय-समय पर राष्ट्रीय संकटों के भीषण अन्धकार और इतिहास की उथल पुथलों में भी आध्यात्मिक-शक्ति जीवन-सम्पन्न रही और मानवता को असत्य से सत्य, अन्धकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाती रही। आज भी आत्म-ज्ञान के प्रोज्ज्वल-प्रकाश का विस्तार विश्व के इस पवित्र मन्दिर

(भारत) में आलोकित हो रहा है और मनुष्य के प्रत्येक जीवन को आदि-आध्यात्मिक-प्रकृति के सौन्दर्य के दर्शन कराता आ रहा है।

यात्रा के प्रारम्भ होते ही मैंने उत्तर प्रदेश में देखी, ज्ञान और भक्ति की पवित्रमती युगलधाराएँ, जिनका उद्‌गम-अचल था, जनता का भक्ति-पूर्ण हृदय। अयोध्यापुरी के कीर्तनों और वाराणसी की वेदध्वनियों का मधुर राग मुझे सदा स्मरण आता रहेगा। वे मेरी यात्रा के अविस्मरणीय दिन ही रहेंगे, क्योंकि मैंने उन दिनों में वैदिक भारत की प्रगति का दर्शन किया।

बिहार में भी मैंने विशेषता के दर्शन किए। उच्चाधिकारी-वर्ग को भी मैंने सादे वेष में आध्यात्मिक-वृत्तिसम्पन्न देखा। राज्याधिकारी भी आध्यात्मिक-प्रवृत्तियों के उपासक थे। प्रत्येक बिहारी की भक्ति और सादगी सचमुच यहाँ के गौरव का निरन्तर प्रगतिमय इतिहास है। भगवान भी तो पूर्ण समर्पण के उपरान्त ही हृदय में निवास करते हैं।

गौरांग महाप्रभु और श्री रामकृष्ण के देशवासियों ने भी मुझे अपनी भक्ति की अमृतसलिला में स्नान करवाया। स्वामी विवेकानन्द जी की मधुमयी लीला भूमि मेरे प्रवेश होते ही भगवान्नाम संकीर्तन से प्रतिमुखरित हो उठी। मैंने उनमें देखी, सहिष्णुता और एकता की चरम सीमा। वह एकता आत्मैक्य की भूमिका ही थी, जहाँ विश्वबन्धुत्व की भावना तो केवल अभिवचन मात्र है। समग्र बंग देश में मैंने चरम-एकता के विशाल विचारों को आश्चर्यपूर्णरीत्या मनुष्य जीवन से समन्वित देखा।

वहाँ निवास करने वाले मारवाड़ी समुदाय ने भी उदारता और दानशीलता के प्रताप से हृदय और मानव-बाहु को एकांकित कर दिया है। जहाँ धन की गंगा मारवाड़ी परिवारों में बहा करती है, वहीं प्रभु भक्ति का मधुर आलोक भी उनके जीवन का आदर्शमय प्रकाश रहा करता है।

और, जब मैं दक्षिण भूमि की ओर आकृष्ट हुआ तो मैंने आन्ध्र जनसमुदाय की भावुकता के चरम-दृश्य देखे। *'सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्'* की वह नाट्यस्थली ही थी। मुझे सिर-ही-सिर दृष्टिगोचर होते थे। आनन्द-सम्भूत कलरवमात्र ही श्रुतिगत होता था। सचमुच आन्ध्रदेशवासियों की भक्ति की सीमा को नापना असम्भव ही होगा। सब की मुखाकृतियों में मैंने मानव समाज की जीवनाशा के लक्षण देखे और यह परिज्ञान प्राप्त किया कि अभी मानव समाज में मानवता के जीवित रहने की सम्भावना है। मुझे स्पष्ट पता चला कि इतर देशों की भौतिकता और नास्तिक विचारपरायणता

के प्रबल होने पर भी मानवसमाज पतन के कराल कौर से बचा लिया जा सकता है। मानव समाज के उत्थान की आशा के यह लक्षण मैंने प्रत्येक आन्ध्रवासी में देखे।

तात्पर्य यह कि मेंने किसी भी नगर में नास्तिकता को नग्नप्रदर्शन करते हुए नहीं देखा। परमात्मवाद के आगे जन-जन के शीश नत हो जाते थे और ईश्वरपरायणता को सबने एक स्वर से स्वीकार किया। मैंने सुना था कि आजकल के नवयुवक साम्यवाद के प्रवाह में बह कर परमात्मवाद के विनाश पर तुले हुए हैं, किन्तु यह केवल किम्वदन्ती ही रही, क्योंकि मैंने नवयुवकों के हृदयों से भी विश्वास और आस्तिकता के प्रकाश को विकीर्ण होते देखा और उनमें जनसेवा की लगन देखी। आवश्यकता है कि इस प्रकाश में हम खोई हुई वस्तुओं की प्राप्ति करें। राज्यों का कर्त्तव्य होगा कि वे परमात्मवाद, सदाचार और आस्तिकता के द्वारा जन-जन के सुन्दर भावों का उपयोग करें, जिसके फलस्वरूप मनुष्य और मनुष्य का देश किसी सुकथित अनिर्वचनीय आनन्द की समुपलब्धि कर सके।

आज आवश्यकता है कि समाज में समानता के व्यवहार को प्रधानता दी जाय और समानता को ही जीवन का प्रथम कर्त्तव्य माना जाय। वह समानता वेदान्तिक समानता है, जहाँ प्रत्येक जीव ब्रह्म है, परमात्मा है तथा च आनन्दमय है। हिन्दू धर्म की यह विचारधारा आज मनुष्य को आर्थिक साम्यवाद की ओर नहीं; किन्तु आध्यात्मिक साम्यवाद की ओर जाने का सन्देश देती है, जहाँ मनुष्य के हृदय तक एक हो जाते हैं, जहाँ मनुष्य की आत्मा भी एक हो जाती है और मनुष्य-मनुष्य परम-एकता में सम्प्रतिष्ठित हो जाते हैं। वेदान्तिक साम्यवाद पोला साम्यवाद नहीं, जहाँ रक्त और क्रान्ति को ही प्रधानता दी जाती है, जहाँ मनुष्य को एक तो माना जाता है, किन्तु उनके हृदयों को और उनकी आत्माओं को एक नहीं किया जा सकता। जहाँ केवलमात्र एकता का स्वांग ही है। अत: हमारा कर्त्तव्य होता है कि हम मानव समाज के विशल जीवन की सुखमयी शान्ति के लिए वेदान्तिक विचारधारा और व्यावहारिकता का आश्रय लें और उसी आधार पर अपने विचारों, व्यवहारों तथा समाज के निर्माण का सफल प्रयास करें। यही हमारा भारतीय साम्यवाद है, जिसके लक्षण मैंने यात्रा के अवसर पर भारतीय जनता में पनपते देखे।

जब-जब मैं विश्वविद्यालयों तथा अन्य विद्यापीठों में प्रविष्ट हुआ तो मैंने वहाँ के विद्यार्थियों और शिक्षकों में योग के प्रति अखण्ड भक्ति को सजीव

देखा। मैंने अनुभव किया कि उनमें से प्रत्येक योग के प्रति श्रद्धा की भावना रखता था और योगनिष्ठ होने की चाह भी। अत: मुझे विचार आया कि शिक्षा विभाग द्वारा इस अंग को सबल बनाना हमारा कर्त्तव्य होगा। योग सम्बन्धी आवश्यक बातों और आवश्यक व्यवहारों की शिक्षा का प्रसार करना प्रत्येक विद्यापीठ के शिक्षक वर्ग का अनिवार्य कर्त्तव्य होगा, यदि वे जनता की सेवा करना चाहें तो। अमेरिकादि इतर देश भी योग में दिलचस्पी ले रहे हैं और अपनी अभिरुचि की पूर्ति के लिए अनेकों व्यवस्थाएँ भी कर रहे हैं। जब यह अवस्था अन्य देशों की है तो हम भी क्यों न इस विद्या को जीवन दान दें, क्योंकि यह हमारी ही तो सम्पत्ति है, जिसका जन्म हिमालयों के आन्तरिक अंचल से हुआ था, हमारे पुराण पुरुषों द्वारा।

जनता के विचारों में कलुषता का आविर्भाव होता जा रहा है। चलचित्रों ने विचारों और वाणियों में अश्लीलता भर दी है। चलचित्र यदि रहें तो केवलमात्र जन-शिक्षण और जन-उत्थान के लिए ही। यदि मनोरंजन को ही चरम-ध्येय मान लिया जाय तो हम चलचित्रों को समाज का विकार कहेंगे और समाज का दूषण भी। मैंने नगरों की दीवालों पर चित्रों के अश्लील विज्ञापन देखे, जो हमारे देश की मानसिक-शक्ति के अवसान के लक्षण हैं। कुछ-न-कुछ अवश्य किया जाना चाहिए। समाज में दूषण का व्यापक हो जाना संक्रामक है। चित्रों के प्रति हमारा ध्यान अवश्य आकृष्ट होना चाहिए। अश्लील साहित्य की भरमार के वेग को रोकना होगा और जनता के मानसिक विकास के लिए साधनों को शक्तिमय बनाना होगा। मुझे विश्वास है कि इन दो-चार नियमों का पालन करने से हमारे नवयुवक सच्चे नागरिक बन सकेंगे।

जहाँ तक आध्यात्मिक प्रवृत्ति का प्रश्न उठ सकता है, मैंने देखा कि सभी वर्गों के लोगों ने आध्यात्मिकता के सम्मुख किसी भी प्रकार के जातीय या साम्प्रदायिक भेद को नहीं जागने दिया। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान और क्या अन्य जातियों के लोग – सभी ने मेरी अखिल भारत यात्रा के समय पवित्र ज्ञानयज्ञ में भाग लिया और आनन्दपूर्वक मुझे निमन्त्रित किया। मुझे स्मरण है कि चिदम्बरम् (दक्षिण भारत) में मुझे हिन्दू और मुसलमान वर्गों ने एक सार होकर मानपत्र अर्पित किया। तिरुनेलवेली में यही हुआ। वास्तव में आत्मिक-सत्ता में भेदभाव होता ही नहीं। पारस्परिक वैमनस्य और भेदभाव का जन्मदाता तो भौतिक मनुष्य ही है। जहाँ मनुष्य अपने को आध्यात्मिक

सत्ता से एकाकार मानने लगता है या मानने का प्रयत्न करता है, वहाँ द्वैत की छाया भी नहीं रह सकती। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बुद्ध, जैन तथेतर सम्प्रदायों का जन्मदाता तो मनुष्य का भौतिक जीवनमण्डल है। मनुष्य की आध्यात्मिकता के चरम-विकास में जाति और वर्ग, भेद-भाव और सामाजिक विभिन्नताएँ कभी रह ही नहीं सकतीं। क्या किसी ने सूर्योदय के उपरान्त अन्धकार की कल्पना की है?

यही कथा भारतवर्ष के आश्रमों और देवालयों के विषय में भी कही जा सकती है। मैं जिन-जिन देवालयों और आश्रमों में गया, उनकी स्मृति सदा मेरे जीवन में लहलहाती रहेगी। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि भारत की सच्ची सम्पत्ति मन्दिरों और वहाँ के आश्रमों में ही आदिमानव के काल से सुरक्षित रहती आई है। सच्चे शब्दों में कहा जाय तो वे ही भारत के जीवन प्राण रहते आए हैं, जिन्होंने बारम्बार गिरते-रोते हुए देश और देश की जनता को संभाला और उसमें सांस्कृतिक आध्यात्मिक चेतना सम्प्राणित रखी। अत: जब-जब मैं उन देवालयों और आश्रमों को अपने स्मृति-पट पर लहलहाते देखता हूँ तो मुझे सहसा ही हिरण्यगर्भोदय के प्रात:काल का प्रथम मुहूर्त स्मरण हो आता है, जिस समय मनुष्य ने प्रथम बार जीवन प्रभात देखा था। यदि मैं प्रत्येक देवस्थान की महिमा के वर्णन के लिए एक-एक अक्षर भी लिखूँ तो महाभारत के उत्तर-खण्ड की रचना का आविर्भाव हो सकेगा। हाँ, इतना तो अवश्य कहूँगा कि भारत के जीवन की कुंजी देवस्थानों और वहाँ के पवित्रतम आश्रमों में ही है, अन्यत्र नहीं। अन्यत्र तो केवल आडम्बर मात्र है।

तदुपरान्त मुझे भारत के नरेशों की धर्मपरायणता स्मरण हो आती है, जिन्होंने प्रत्येक प्रकार से मुझ हिमालय के भिक्षुक को राजमहलों की सीमाओं में प्रविष्ट होने तो दिया। उनकी श्रद्धा और भक्ति, आध्यात्मिकता और धर्मपरायणता बारम्बार इतिहास के कोरे पन्नों को स्वर्ण-लिपि में चित्रमय करती आ रही है और करती जा रही है। अपनी राज्यश्री के दर्प को दूर किसी सागर के तट पर भूल कर उन्होंने धर्मप्रचार में मेरी सहायता हर प्रकार से की और न केवल मेरी सहायता ही की, किन्तु सच्चे शब्दों में तो यही कहा जा सकता है, उन्होंने विश्व में रहने वाली सभी जातियों के आध्यात्मिक-जागरण में सहयोग दिया। मानव समाज भारत के धर्मपरायण नरेशों के ऋण से उऋण कभी नहीं हो सकेगा और बारम्बार समाज की कथाएँ उनके आध्यात्मिक प्रभाव की पुनरावृत्तियाँ करती रहेंगी।

इस प्रकार मैं लंका पहुँचा, आत्मज्योति का वृक्षदल ले कर। श्री लंका ने मुझे पहचाना और मेरी बातों को सुना। लंका भारत के अत्यन्त सन्निकट है। भारत और लंका का आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक सम्बन्ध एक सूत्रांकित है। भेदभाव की खाई तो भौतिक मनुष्य की ही खोदी हुई है, जिसे प्रेम की नौका द्वारा पार किया जा सकता है। जब मैं गया तो मुझे लंका में कई विभीषण मिले, जिन्होंने धर्मविजय में सहयोग दिया। मैंने सबके घर की दीवारों पर से राम नाम के दीपक की ज्योति रेखा को जागते देखा और हरिनाम की अमृतसलिला को बहते हुए। हरोहरा के गीत गाती हुई पवित्रतमा लंका लाखों की संख्या में सागर के तटों पर आई – राम से युद्ध करने नहीं, किन्तु आत्मविजय में मेरा परामर्श लेने। सीताहरण को सफल बनाने नहीं, किन्तु सांसारिकता से मुक्ति पाने। यही लंका निवासियों ने मेरे सामने व्यक्त किया। मेंने उनके प्रश्नों का उत्तर तथा शंकाओं का समाधान किया। उनको सद्परामर्श दिया। मैंने साम्यवाद के समान किसी भी वाद की ओर उनको आकृष्ट नहीं किया, किन्तु मैंने उनको वादों के भूत से मुक्ति दिलाई। मैं लोकवादों का पुजारी नहीं और संसार को सत्य जानने वालों का अनुयायी भी नहीं। मैं कठोर सत्य कहने वाला हूँ, किन्तु मधुर आत्मा की गीता को गाने वाला भी। लंका ने यही मुझ में देखा और यही मैंने लंका को दिया।

इस यात्रा में मैंने देश की आध्यात्मिक-स्थिति के अतिरिक्त अन्य स्थितियों का भी निरीक्षण किया। मुझे तो यही ज्ञात हुआ कि वर्तमान कष्ट और विवशताएँ केवल मात्र हमारे हाथों की लीलाएँ हैं। मुझे ज्ञात हुआ कि हमने ही अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी है। अत्यन्त गम्भीर परीक्षण के उपरान्त मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि आध्यात्मिक जीवनचर्या अवश्यमेव और नि:सन्देह सभी प्रकार के लोकसंकटों का निवारण कर सकती है। आध्यात्मिक जीवनचर्या रोटी भी दे सकती है और रोटी के आनन्द का अनुभव भी। आध्यात्मिक जीवनचर्या सभी प्रकार के लोक संकटों का निवारण कर सकती है।

इस प्रकार मैंने समग्र भारत में आध्यात्मिकता के जीवन के लक्षण देखे और यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि निरन्तर प्रयत्न करने से देश की आध्यात्मिकता को बलवती बनाया जा सकता है और उसे जन-जन के जीवन की प्राणवायु भी। यदि भारत को आज रोटी और वस्त्र की आवश्यकता है तो आध्यात्मिकता का व्यवहार भी उसके लिए अनिवार्य ही होना चाहिए। रोटी

और वस्त्र की समस्या तो एक छोटी-सी समस्या है, यदि मनुष्य अपने जीवन की महान् समस्या को हल कर ले और यह प्रण कर ले कि वह अपने जीवन को सरल, शान्ति और सच्चाई से प्रपूरित रखेगा।

मैं भारत और सिंहल द्वीप के निवासियों का अत्यन्त ऋणी हूँ और परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं पुनः पुनः इसी प्रकार मानवता की सेवा के सौभाग्य को प्राप्त करता रहूँ – क्योंकि मानवता की सेवा ही परमात्मा की सेवा है और यदि किसी भी सेवा को सच्ची सेवा कहा जाय तो वह मानवता की ही है। मनुष्य ही वह अचिन्त्य और शाश्वत शक्ति है, जिसमें महान् ब्रह्म स्वरूप को समाविष्ट कर पाया और अनन्त काल के लिए मनुष्य के क्षेत्र में आश्चर्यजनक और अद्भुत स्मृति अंकित कर दी। जब तक मानवता में जीवन रहेगा और जब तक मनुष्यता को मनुष्यता पर प्रतिष्ठित रहने का अधिकार है, तब तक ब्रह्म भी शाश्वत और अमर है और उसको केवल मात्र मनुष्य में अपने साक्षात्कार का वरदान प्राप्त होगा।

किन्तु साथ-साथ यह भी सत्य ही है, प्रत्येक भौतिक और आध्यात्मिक पदार्थ में ईश्वर की व्यापकता है, चाहे वह पदार्थ उसके साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त नहीं करता हो। इस प्रकार के अनन्त पदार्थों की सामूहिकता के चिरन्तन स्वरूप सार्वभौम ब्रह्म को, जो स्वयंभू है, प्रत्यंग प्रणाम।



दिग्विजय मण्डल का रूपावलोकन

मण्डल के सदस्यों से मिलिए

स्वामी चिदानन्द सस्वती

आपका व्यक्तित्व और व्यक्तिगत वार्तालाप दिग्विजय के अवसर पर जनता के लिए स्फूर्ति का वरदान रहा। आप में जनता को मुग्ध करने के सभी गुण वर्तमान तथा सक्रिय रहे। यात्रा में आपने व्याख्यानों द्वारा स्वामी जी के उपदेशों को जन-प्रसारित किया। फैजाबाद, बनारस और पटना के नागरिक क्या आपको कभी भूल सकेंगे? अपने शरीर और अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं के लिए आप सदा निश्चिन्त रहे। आपका जीवन गुरुसेवा में तन्मय हो गया है। जब अपना घर ही किसी भले मनुष्य को अर्पण कर दिया तो उसे बुहारने और ताला लगाने की आवश्यकता के लिए आपको चिन्तित नहीं रहना पड़ता। उसी प्रकार जब गुरु के चरणों की सेवा में सब कुछ दे डाला तो फिर अपने पास और रहा ही क्या जिसकी चिन्ता की जाए। स्वामी चिदानन्द जी इसके उज्ज्वल रत्न-प्रकाश हैं।

आप में स्वामी शिवानन्दत्व की मधुर आभा का छायालोक प्राचीर्य को प्राप्त करते जा रहा है। जहाँ हम विश्व के नियमों के अनुकूल व्यवहारपरायणता को आवश्यक जानते हैं, वहाँ आप विश्व के नियमों के पीछे परमार्थ को अनिवार्य बतलाते हैं और जहाँ मनुष्य के नाते हम जीवन की घटनाओं में 'महत्व' नाम की किसी भी वस्तु का अनुभव नहीं करते, वहाँ स्वामी चिदानन्द जी सम्पूर्ण जीवन की सक्रियता को महामाता की अभिप्रेरणा का अभिनय ही जानते हैं। यही ज्ञान, जो स्वामी शिवानन्द जी गुरु महाराज से उनको प्राप्त हुआ, उन्होंने यात्रा के अवसर पर जन-जन के हृदयों में प्रतिष्ठापित किया।

हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और शिवगिरि के अंचल से सिंहलद्वीप की सिन्धुक्षालिता भूमि तक आपने अपने शंख में शिवानन्दत्व का दर्शन गाया और उनके जनहितकारी उपदेशों को दिग्विजयी किया। त्याग और वैराग्य,

बुद्धिमता और परोपकारिता के अचिरपूर्व आदर्श स्वामी चिदानन्द जी को कोटिश: हृदय तक तक याद करते रहेंगे, जब तक 'दिग्विजयी शिवानन्द जी' की स्मृति उनके जीवनों को अपने में एक-सूत्रांकित किए रहेगी। दिव्य जीवन की विश्वात्मक माला के कोह-ए-नूर, तपस्या और आत्मदर्शन के द्रष्टा तथा विशाल-ब्रह्ममय जीवन के स्रष्टा – स्वामी चिदानन्द जी हम भारतवासियों के हृदयों में सदा के लिए अमर रहेंगे और उनकी कहानी भी स्वामी शिवानन्द जी की कहानी के बाद कही जाती रहेगी; क्योंकि उन्होंने अपने जीवन को विशाल-परात्पर जीवन के अध्याय में ही समांकित कर दिया था।

श्री स्वामी नारायण और स्वामी पूर्णबोधेन्द्र जी

'अखिल भारत यात्रा' के प्रकूट-स्तम्भ आप दोनों पर दिग्विजय मण्डल का जीवन अवलम्बित रहा। कोटिश: भक्तों के आन्तरिक उद्गार जब माँ के चरणों में अपना स्नेह उड़ेलने के लिये स्वामी जी की सन्निधि में आते तो उस पवित्र प्रेम के संरक्षक ये ही दो स्वामी जी थे, जिनको सम्भवत: अपने जीवन की चेतना का भी प्रात्यय नहीं रहता था। जनता अपनी सेवा के पुष्प अर्पण करती रहती थी और ये दोनों स्वामी जी अत्यन्त आदर और सावधानी से उस थाती का संरक्षण किया करते थे। 'दिव्य जीवन मण्डल' के विशालात्मक यन्त्र की ये निरन्तर-प्रचलित कीलिका रहे हैं। 'सेवा ही पूजा है' – यही इन्होंने विचारा और कर्मपरायण हुए।

स्वामी शाश्वतानन्द जी...

...यात्रा के अवसर पर स्वामी जी के चरणों की रज को निहार कर चलते थे। कोई भी अवसर यात्रा में ऐसा नहीं आया, जहाँ स्वामी शाश्वतानन्द जी उपस्थित न थे। आपके कीर्तनों की सोमवती स्वर्णधारा में जनता ने अजस्र गति से स्नान किया और आपके उपदेशों ने उनके मनों को प्रभावित भी कर दिया।

स्वामी शाश्वतानन्द जी 'दिव्य जीवन मण्डल' के विशाल कर्मयोगी रहने के सौभाग्य को प्राप्त कर चुके हैं। आपने 'दिव्य जीवन मण्डल' के वे पूर्व दिन भी देखे, जब मण्डल के निरन्तर कर्मपरायण कार्यकर्त्ता अपने जीवन की सुविधाओं को किनारे रख, दिव्य-कार्य में लवलीन रहते थे। आपमें सब से महान् गुण रहे – गुरुसेवा और भगवद्-प्राप्ति की अथक

लगन। इन्हीं दो कारणों ने आपके जीवन को दिव्य आनन्द से संचारित रखा। ऐसे शिष्य संसार में कराग्रगण्य तो हैं ही और पूजा के प्रतीक भी हैं। आप योग वेदान्त फारेस्ट यूनिवर्सिटी वीकली (अंग्रेजी साप्ताहिक) के सम्पादक रह चुके हैं, जिसके द्वारा योग-वेदान्त के दर्शन का प्रचार दूर-दूर तक अत्यन्त सुविधापूर्वक हो रहा है।

योगीराज श्री पद्मनाभ...

... को दिग्विजय के अमरत्व का श्रेय है। उन्होंने ही यात्रा का इतिहास चित्रों में अंकित किया और हर प्रकार से आज भी हम उनके ऋणी हैं। यात्रा के अवसर पर व्यक्तिगत सुविधाओं को किनारे रखकर आपने अपनी कला का उपयोग किया और जितने भी छवि- चित्र सम्भव हुए, उनके द्वारा भविष्य के जनमण्डल के लिए यात्रा को जीवित सत्य का रूप दिया। सम्भवत: उनके ही प्रयत्नों के फलस्वरूप 'शिवानन्द दिग्विजय' को कालान्तर में कोई गल्प पौराणिक कहने का साहस नहीं करेगा। चलचित्रों के सुमधुर योग से आपने यात्रा के चमकते हुए सोने में सचमुच सुहागा ही लगाया। आपने कला का उपयोग किया और उसको परम सफल भी। ऐसे योगी कलाकार को कौन नहीं प्रणाम करना चाहेगा।

श्री स्वामी गोविन्दानन्द और स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

हिमालय के पथ से लेकर सिंहल द्वीप तक ये ही दो स्वामी जी दिग्विजयी के दैहिक सहायक थे, जिन्होंने अनेकों अवस्थाओं में भी स्वामी जी महाराज की अथक सेवा की। सहस्रों मीलों की यात्रा में भी इन्होंने स्वामी जी महाराज के भोजनादि की व्यवस्था समुचित रूप से की, जिसके फलस्वरूप स्वामी जी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। अपने गुरुदेव की व्यक्तिगत परिचर्या में इन दो स्वामी जी ने कुछ भी कोर-कसर नहीं रखी। और, छाया के समान महाराज का अनुसरण कर उनके चमत्कारों को अपनी आँखों से देखा... औरों से कहने के लिए। और इसी प्रकार...

स्वामी ओंकारानन्द जी...

... महाराज की कथा भी गाई जाती है। वे क्षण-क्षण में अपने गुरुदेव के बहुमूल्य उपदेश की पत्रावलियों को जनता में वितरित करते रहते थे। उनको

संकोच नाम की वस्तु का कोई अनुभव ही नहीं। सीधे जनता के बीच धँस जाना और पत्र-पत्रिकाओं को अलकनन्दा की धारा के समान प्रवाहित कर देना, उनकी यात्रानुगत दिनचर्या रही। हम जब विश्वविद्यालयों या अन्य स्थानों में पहुँचते तो हमें सव्रप्रथम उनके दर्शन हाते, क्योंकि वे स्वामी जी महाराज की पुस्तकों के वितरण के लिए हमसे पूर्व पहुँच जाते थे। यह केवल उनकी अपूर्व क्रियात्मकता के परिणाम स्वरूप हम 'शिवानन्द दिग्विजय' के अवसर पर स्वामी जी की पुस्तकों को जन-जन में प्रचारित कर पाए। ऐसे शिष्य किसी भी गुरु की अमर थाती हैं, जिन पर संसार सदा के लिए गर्व कर सकता है।

स्वामी दयानन्द जी...

... भी दिग्विजय के अवसर पर कर्मयोगी के मन्त्र में दीक्षित कर दिए गए। जिस दयानन्द स्वामी जी को हम आश्रम में लोकोत्तर महात्मा के नाम से सम्बोधित करते थे, वे ही दयानन्द स्वामी जी साक्षात् कर्मपरायणता और निरन्तर क्रियाशीलता के अवतार बन उठे। स्थानों-स्थानों पर स्वामी जी के साथ जाना और जहाँ आवश्यकता पड़ी, स्वामी ओंकारानन्द जी को प्रचार और वितरण-कार्य में सहयोग देना – स्वामी दयानन्द जी की लोकोत्तरपरायणता का आदर्श-रूप रहा। उन्होंने शान्तचित्त होकर समस्त कार्य-कलापों को किया और अपने गुरुदेव के धर्म-चक्रप्रवर्त्तन में अपना भी हाथ शिष्य के नाते बँटाया – समस्त मण्डली के लिए तो दयानन्द स्वामी जी माता के समान थे, जिनके हाथों हमें समय-समय पर प्रसाद मिलता रहा।



श्री स्वामी वेंकटेशानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी परमानन्द जी महाराज के विषय में भूमिका में लिखा जा चुका है।

पूजा स्वीकार करो!

हे दिग्विजयी आओ, आज तुम्हें माला पहिनाऊँ – विजय की सौभाग्यवती माला से पूजूँ। आओ दिग्विजयी, तुम्हारे ललाट पर– भव्य और सुन्दर भाल पर केसर, चन्दन और कुंकुम लगाऊँ। आओ दिग्विजयी, तुम्हारे चरणों की शोभा में अपने जीवन की सभी आकांक्षाओं को अनन्त कालों के लिए अर्पित कर दूँ। हे विश्व के उन्नायक, आओ, मेरी पूजा स्वीकार करो और मेरी याचना को पूर्ण; मेरी माला को ग्रहण करो और मेरे जीवन को दिव्य!

–स्वामी सत्यानन्द

हिमालय से सिंहल-द्वीप पर्यन्त

दिग्विजय के अवसर पर ऋषि के चरणाक्षेपण से पुनीत प्रमुख संस्थानों की सूची

हरिद्वार, लखनऊ, फैजाबाद, बनारस, पटना, हाजीपुर, गया, कलकत्ता, वाल्टेयर, राजमहेन्द्रवरम्, विजयवाड़ा, मद्रास, विल्लुपुरम्, चिदम्बरम्, मायावरम्, धर्मपुरम्, तन्जावर, तिरुचिरापल्ली, पुदुकोटै, कनडुकातान्, रामेश्वरम्, धनुषकोटि, तलैमनार, कोलम्बो, कुरुनेगल, मदुरा, विरुधनगर, तिरुनेलवेली, पट्टामडाई, नागरकोविल, कन्याकुमारी, त्रिवेन्द्रवरम्, कोचीन, कोइम्बेतूर, बंगलूर, मैसूर, हैदराबाद, पूना, बम्बई, अमलसाद, बड़ौदा, अहमदाबाद, दिल्ली और ऋषिकेश।

ज्ञानयज्ञोपभृत्

योग-वेदान्त पत्रिका, दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश से स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की संकलित रचनाएँ

दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश द्वारा प्रकाशन – 1954–56

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2012



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

ज्ञानयज्ञोपभृत्

श्री स्वामीजी की योग-वेदान्त से संकलित रचनाएँ

स्वामी सत्यानन्द जी अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के महान्-ज्ञानयज्ञ-अभियान के मुख्य नायक थे। अपने गुरु के बारे में उत्कृष्ट ग्रन्थों को रचने के अलावा, स्वामी सत्यानन्द जी उनके अंग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद, योग-वेदान्त पत्रिका का सम्पादन और साथ-साथ आश्रम-प्रेस का कुशलतापूर्वक संचालन भी करते थे। अपने शिष्य के इस अनुपम योगदान को स्वीकारते हुए स्वामी शिवानन्द जी ने सन् 1954 में घोषित किया था –

प्रभु की कृपा से यह सिद्ध हो चुका है कि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अपनी उत्कृष्ट सेवाओं, तथा सत्य, प्रेम और पवित्रता पर दृढ़ आस्था के कारण श्री स्वामी सत्यानन्द 'ज्ञानयज्ञोपभृत्' की उपाधि के परम पात्र हैं। अत: अपनी शुभकामनाओं के साथ मैं उन्हें यह सम्मान प्रदान करता हूँ, और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वामी सत्यानन्द को स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति, समृद्धि, परमानन्द, सर्वांगीण सफलता, विद्या, तुष्टि, पुष्टि और दैवी ऐश्वर्य से सम्पन्न करें।

योग-वेदान्त में छपे श्री स्वामीजी के कुछ प्रेरक लेख, कथाएँ, कविताएँ एवं पुस्तक-समीक्षाएँ प्रस्तुत हैं। इनके पुनर्प्रकाशन की अनुमति के लिए हम माननीय महासचिव, दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश के अत्यंत आभारी हैं।

– सम्पादक

शिवरात्रि

आगामी 3 मार्च, 1954 को शिवरात्रि का पवित्र पर्व है। उसी दिन तपोभूमि में आश्रमों के प्रांगण, नदियों के तट और देवालयों के गर्भगृह 'हर-हर बम बम नम: पार्वती पतये हर हर महादेव' के परम पवित्र उच्चारण से मंत्र-पुनीत हो उठेंगे। अनेक साधक पवित्र आश्रम में दीक्षित किये जाएँगे। यह दिन त्याग और तपश्चर्या का है, आत्मसंयम और आत्म-निष्ठा का है। शिवरात्रि साधक के जीवन की निशा में अतंद्रित चेतना है, संघर्षमय जागृति है और नवजीवन की ऊषा की जननी है। न केवल आराधना से, अर्चना, अभिषेक और मंत्रपाठ से साधक की शिवरात्रि पूर्ण होती है; न केवल व्रत, उपवास और जागरण से संन्यासी की शिवरात्रि सार्थक होती है, बल्कि चाहिए अज्ञान के अंधकार में प्रकाश की अमित राशि के निरन्तर दर्शन, और उस प्रकाश में जीवन के बीहड़ प्रदेशों में दिव्य पथ को खोज सकने वाली आँखें। तो आओ हम अपने गुरु की सन्निधि में बैठ कर गंगा के किनारे पवित्र प्रतिज्ञाओं का पुनरुच्चारण करें।

योग-वेदान्त, फरवरी 1954



सत्यस्य सत्यम्

दिनकर की स्वर्ण किरण, गंगा की चल जलकण,
तुहिन राशि की शीतलता, पुष्प राशि की नव कलिका,
नभस्वान की मृदुल हिलोर, मेघदूत का रव घनघोर,
मेघराग की चपला चंचल, सरितापति की वीचि तरल,
मैं हूँ 'सत्यस्य सत्यम्'

योग-वेदान्त, अक्टूबर 1954

मैं संन्यासी हूँ

देवों पर मनुष्य ने विजय पाई, समुद्रों को उसने पार किया, आकाश की असीमता को नापा, समुद्र की गहराई खोजी, प्रकृति के तत्त्वों को पहचाना, धर्मों को धारण किया, दु:खों पर विजय पाई, जीवन और मृत्यु के दोनों किनारों को जीवन की कड़ी से जोड़ा, देवत्व को पहचाना, अनन्त जीवन के परमाधार तत्त्व को खोज लिया। सब कुछ पाया, सब कुछ खोया, सब कुछ देखा। फिर भी मनुष्य अधूरा है, उसका जीवन अपूर्ण है, उसकी आशायें असन्तुष्ट हैं। मृत्यु उसका अंत है, और जन्म उस मृत्यु का अभियान।

जीवन के लिए मरण है, और मरण के लिए जीवन। न धर्म, न कर्म, न योग, न विज्ञान, न मंत्र, न तंत्र – कुछ भी नहीं, जो जीवन को पूर्ण बना सके। आत्मनिष्ठ जीवन के नाम पर, योग-निष्ठ जीवन के नाम पर मानी गई पूर्णता भी बन्ध्या-पुत्र के समान सम्पन्न और शिक्षित है (अर्थात् है ही नहीं)।

इस समस्या का समाधान करने वाला अभी तक हुआ नहीं। योगी, तपस्वी, ज्ञानी, महात्मा, वैज्ञानिक सभी हार गये। अनन्त की असीमता के समान यह भी एक रहस्य है। हम या तो जीवन की व्यक्तिगत खोज में खो गये, या जीवन की भौतिक खोज में हार गये, या जीवन की आनन्दमयी सत्ता में सब कुछ भूल गये। किसी ने आत्मा को पहचाना, किसी ने परमात्मा को। किसी ने ईश्वर को जाना, कोई प्रकृति में भटकता रह गया, कोई अनन्त ब्रह्माण्ड को खोजने चला, किसी ने विशाल जलराशि के अन्दर छिपे हुए संसार को खोजा, तो किसी ने विशाल वायुमंडल की परिधि को। किसी ने शान्ति खोजी, किसी ने विप्लव मचाया। पर जीवन की अनन्तमुखी खोज आज तक किसी ने नहीं की।

जीवन का विकास कुछ ही कोणों तक सीमित रहा। हिन्दू मुसलमान नहीं बन सका, न मुसलमान हिन्दू। न गृहस्थ संन्यासी बना, न संन्यासी गृहस्थ। किसी ने संसार को सत्य बताया, किसी ने असत्य। किसी ने कहा, 'एक है', तो किसी ने कहा, 'बहुत', तो किसी ने कहा, 'है ही नहीं'। ज्यों-ज्यों हम खोजते गये, त्यों-त्यों हम खोते गये। जैसे-जैसे हमें ज्ञान मिला, वैसे-वैसे हम अज्ञानी बने। आज युगों की खोज के बाद भी, योगियों, ज्ञानियों, वैज्ञानिकों और महात्माओं की सम्पन्न परम्परा के बावजूद भी जीवन का रहस्य खुला नहीं। पर आज हमें इस जटिलता को दूर करना है।

हम समझ गये कि जीवन महान् है, जटिल नहीं किन्तु अत्यन्त सरल। हम समझ गये, जीवन पवित्र है; कलंक नहीं, अभिशाप नहीं, किन्तु एक सुन्दर वरदान। इन योगियों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, ब्रह्मवेत्ताओं, तत्त्व ज्ञानियों, भक्तों और शास्त्रकारों ने जीवन को सँवारना चाहा। पर इससे क्या? जीवन का असली स्वरूप तो छिप गया न? हम जीवन के ऊपर चढ़े हुए युगों-युगों के इन रंगों को निकालेंगे; इनको बहा देंगे– धर्म रूपी उपाधियों को, वेदों और शास्त्रों की युक्तियों को, सन्तों की अनुभूतियों को और हम देख लेंगे जीवन का वास्तविक स्वरूप। जीवन सरल है, सादा, पवित्र, एक है। विशाल और कण-कण में ओत-प्रोत और अनुप्राणित है। जीवन व्यापक है और सत्यनिष्ठ। उसके ऊपर चढ़े हुए आवरण तो आडम्बर हैं, दंभ और पाखण्ड हैं।

अरे, जीवन को चलने दो, जैसे चलता है, चलना चाहता है। रहने दो अपना ज्ञान, अपनी फिलॉसफी, अपनी आध्यात्मिकता, अपना विज्ञान, अपना सामाजिक नियम और अपनी धार्मिकता। चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन। मुझे पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है। रहने दो मुझे अज्ञानी, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा ज्ञान। नहीं चाहिए तुम्हारी विद्वत्ता। मुझे तो जंगलों में बसना ही प्रिय है। पक्षियों की कल-कूजन के साथ गा लेने दो; मुझे रोको मत। सूखे पत्तों की चरमराहट में मुझे दौड़ने दो। रोको मत। उगते हुए सूरज के सामने मुझे प्रकृति की ओर दृष्टिपात करने दो। वन के पत्तों, सरिता के जल और आकाश की वायु पर मुझे जीने दो। रहने दो अपनी सभ्यता, रहने दो अपना बड़प्पन, रहने दो अपनी कीर्ति और अपना धर्म। मुझे बाँधो मत, मुझे जाने दो, जहाँ मैं चाहूँ। अपने सामाजिक नियमों के बंधन में मुझे मत बाँधो, अपने धार्मिक विश्वासों में मुझे मत भुलाओ, अपनी वैज्ञानिक खोज से मुझे हराओ मत।

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा,
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा।
जा रे क्रन्दन विरह वेदने, ध्वस्त हुई कष्टों की कारा,
कहाँ रहे अब काँटे पथ पर, फूलों से पथ गया सँवारा।।

मैं संन्यासी हूँ! मैं संन्यासी हूँ!

योग-वेदान्त, मार्च 1954

अपने विचार

- मैं किसी योग या दर्शन पर कतई यकीन नहीं करता। मनुष्य को तो उस 'सत्य' की गवेषणा करनी है, जिसके अनन्तर सब असत्य के अस्तित्व में क्षीणता आ जाए।
- मैं जो कुछ करता हूँ – गुरुदेव के मन्तव्य की अभिपूर्ति के लिए ही। कुछ अपनी सकामनिष्ठा से नहीं। इसलिए एक दिन किसी के ऊपर सूर्य की तरह प्रचण्ड किरणें बरसानी पड़ती हैं और दूसरे दिन स्निग्ध चन्द्रमा के सदृश पेश आना पड़ता है। एक दिन किसी के चरण स्पर्श करते हुए यदि मुझे हर्ष है तो दूसरे दिन किसी के अन्दर टेढ़ी उंगली डालते हुए भी मैं अपने को निर्दोष ही समझता हूँ।
- निंदक प्रवृत्ति एक नारी-सुलभ दुर्बलता है। कम-से-कम मैं तो इसे नहीं चाहता।
- गुरु-परिचर्या का अर्थ यह नहीं कि वर्षगांठ के दिन उनका उच्छिष्ट भोजन इत्यादि खाकर बगुलाभगत की तरह दिखाई पड़े। मन, वचन और काया को उनके निमित्त भेंट कर देना ही सच्ची सेवा है।
- लोगों को प्रभावित करना हो या मित्रमण्डली में अपना स्थान कायम रखना हो तो मृदुभाषी होना चाहिए। कुछ बाहर-बाहर से चापलूसी नहीं, बल्कि हृदय के उस मर्मस्थल से बोलना सीखो, जहाँ प्रेम का रत्न छिपा रहता है।
- जो कहता है कि 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ' अथवा जो कहता है कि 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूँ', दोनों में से किसी ने नहीं जाना।
- भक्तियोगी जब नाचकूद करते हैं, तब देखने के लिए एक अच्छा तमाशा रहता है। इसलिए 'भक्तियोग' और तमाशा, दोनों को एक ही समझना चाहिए।
- कुछ पोले वेदान्ती लोग 'घटाकाश-मठाकाश' से ही संतुष्ट रहते हैं, पर वे जिस निष्काम कर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, वह 'कर्मयोग' उनके 'प्रमादयोग' से कोटिगुणा श्रेष्ठ है।
- भीरुता पुरुषों में एक हेय गुण है। दुकान में दो पैसे की चीनी माँगते हुए कई पुरुषों के ऊपर लज्जा का घूँघट देखा है। इसका निराकरण विचारों के द्वारा कर लेना चाहिए।

- कुछ अच्छी वेशभूषा में ग्रामीण पहाड़ियों से मिलिए तो वे आपको डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट कहेंगे। भोलेपन का अर्थ है मनोमालिन्य का तिरोभाव।
- दक्षिणी लोगों के उच्चारण में उत्तर भारतीय छिद्रान्वेषण करते हैं और यहाँ की भाषा पर वे लोग आक्षेप करते हैं। मैं तो समझता हूँ, दोनों को हटाकर एक तीसरा ही ढूँढ निकालना पड़ेगा।
- गुरुदेव का हृदय प्रेम का आवसथ है। इसीलिए वे दूसरों के हृदय पर आघात नहीं करेंगे, चाहे कोई लाखों गलतियाँ क्यों न कर ले!

योग-वेदान्त, अप्रैल 1954



गुरु पंचकम्

गंगातटस्थं चिरयोगिराजं योगेरमन्तं शुचिशान्तमूर्तिम्।
आनन्द संस्थं विपिने वसन्तं काषायवन्तं सततं नमामि॥

ज्ञाने विशालं क्षितिदेह भालं पूर्णाभिरामं परिपूर्ण कामम्।
योगी शिवानन्दमनन्तरूपं कैवल्यवासं सततं नमामि॥

अज्ञानमोहाम्बुधिघोर दुःख निमग्न जीवोर्ववलम्ब भूतम्।
सत्य प्रकाशाय तनोति शुद्धिं प्रज्ञाघनंतं सततं नमामि॥

कल्याणहेतुं कृतधर्मसेतुं श्रीविश्वनाथस्य कृत प्रतिष्ठम्।
धर्मावतारं विमलप्रकाशं विश्वस्य भासं सततं नमामि॥

वेदान्त घोष स्वनुव्यूततत्त्वं संन्यासिवर्यं गुणवद्विहारम्।
सत्यस्य सत्यं सुखसिन्धु सिन्धुं सारस्य सारं सततं नमामि॥

योग-वेदान्त, जून 1954

अपने विचार

- बहुत-से लोग तिल को ताड़ और राई को पहाड़ करना जानते हैं–पर बहुत तो ऐसे भी हैं जो बिना तिल और राई के भी ताड़ और पहाड़ कर देते हैं! क्या खूब है उनकी बुद्धि?
- अपने से छोटों पर प्रेम रखते हुए भी एक नियंत्रण रखना चाहिए। नहीं तो वे शोख हो जाते हैं। आज्ञानुचारी बनने के लिए प्रताड़ना का स्वांग तो दिखलाना ही पड़ेगा।
- सिनेमा के गीत मुझे इतने कर्णकटु लगते हैं कि उनकी कोई मिसाल नहीं! सिनेमा मनुष्य पर कालिमा का पहला दाग है। यह विनाश का पहला द्वार है!
- कोई मुझ से स्पर्धा करता है, यह सुनकर मुझे आश्चर्य नहीं होगा, क्योंकि मैं भी इतना बड़ा होकर किसी से स्पर्धा कर ही लेता हूँ, फिर वह तो एक नादान है!
- अगर मैंने कुछ सीखा है तो यही कि समाज की तरफ से कान समेट बैठो। बाप, बेटे और खच्चर की कथा सब जानते हैं। जब खच्चर को वे अकेले ले जाते थे, तब भी लोगों ने बुरा कहा। जब बेटा बैठकर बाप पीछे चला तब भी लोगों ने ठीक नहीं कहा। फिर बाप और बेटे जब दोनों बैठ गए, तब भी लोग गालियाँ ही देते रहे। इसलिए चतुर पुरुष दुनिया की तरफ कान नहीं देते! हम कुछ भी करें, किसी-न-किसी को बुरा लगेगा ही। चुपचाप अपने मन की करो। दुनिया टर्र-टर्र करे तो अपना क्या बिगड़ता है!
- 'अमुक ने तुम्हारी भर्त्सना की है'–यह सूचना लेकर जो आता है, बस उसी को पकड़ो। निन्दा करने वाला और कोई हो तो रहा करे, पर सबसे बड़ा हाथ इसी का है, जो तुम्हारे पास यह सूचना लेकर आया है।

योग-वेदान्त, अप्रैल 1954

माँ से स्नेह, पिता से रक्षा, पत्नी से प्रेम और सन्तान से सन्तोष मिलता है; पर गुरु तो स्नेह, रक्षा, प्रेम और सन्तोष के साथ-साथ मुक्ति भी दे देता है।

योग-वेदान्त, अप्रैल 1954

तपस्वी का त्यौहार

युग बीते। तपस्वी आग में जलता, शीत में ठिठुरता और वर्षा में भींगता था, उसने शताब्दियाँ तपस्या करते-करते व्यतीत कर दीं। जल पर रहा, पत्तों पर रहा, वायु पर रहा तप करते हुए। एक दिन उसकी तपस्या साकार हो उठी, उसके जीवन में नवीन आलोक छिटक पड़ा, उसके जीवन में तपस्या का प्रकाश चमक उठा, तपस्वी तपस्या के साकार होने पर आनन्द-विभोर हो उठा, उसके अन्तर से गीतों की गंगा छलक पड़ी, जीवन का अभिषेक हुआ, भस्मीभूत देवताओं का उद्धार हुआ और आनन्द का सागर लहरा उठा।

आज कहाँ से आई हो तुम,
मुझको अपना गीत सुनाने।
जीर्ण-शीर्ण इस संन्यासी की,
कुटिया में त्यौहार मनाने॥

स्वर्ण-दीप, नवरत्न-थाल ले,
मुक्ता-मुकुलित माल सजाकर।
किस अतीत का शोक बहाने,
आई हो तुम तापस के घर॥

शीत सहा, और ग्रीष्म सहा,
कितने शिशिर-हेमन्त गये।
कितनी रातें ठिठुर-ठिठुर कर,
बीत गईं और माघ गये॥

इस कुटिया के आगे की,
धूनी कितनी जली बुझी।
कितने आँधी-तूफानों में,
इसकी ज्वाला गिरी उठी॥

यज्ञ हुए कितने इस पर,
कितने काक कुरंग पले।
कितने दुखियों के जीवन के,
दुःख जले, दुर्भाग्य टले॥

क्षत-विक्षत इस भगवे ने,
देखा कितने रत्नों को।
कितने मानव आते-जाते,
शीष झुकाते इन वस्त्रों को॥

मैं नग्न रहा, जलमग्न रहा,
अग्नि जला, तप-संलग्न रहा।
तपती बालू की ढेरी पर,
मैं पंच-तपस्वी मग्न रहा॥

पर्ण लिए, जल-पर्ण लिए,
वायु मिली, जल-वायु मिली।
वायु नहीं तो वायु नहीं,
अब तो ध्यान निमग्न सही॥

वेद पढ़े, सब शास्त्र पढ़े,
न्याय पढ़ा, वेदान्त पढ़ा।
तर्क-सुमज्जित बुद्धि बनी,
ज्ञान जगा और ध्यान लगा॥

भूत-प्रेत को निज वश में कर,
मन्त्र-सिद्धि से पूरित था मैं।
भोग-मुक्ति को दूर हटा कर,
मुक्त, शुद्ध आज बना मैं॥

यह है अम्बर, यह है सागर,
इतने पर्वत और शिवालय।
पर सबका मैं शाहंशाह,
मेरे भू पर सृष्टि-प्रलय॥

यह भोग रोग, यह रंग-राग,
यह धर्म-जनित अन्ध-प्रमाद।
यह मन्त्र-तन्त्र, यह यज्ञ-याग,
सब को तज कर निर्विवाद॥

आज चला हूँ पावन पथ पर,
इसको तज कर, उसको तज कर।
दीप्त-अग्नि, वर्चस्व-समुज्ज्वल,
बन कर भू पर, अम्बर पथ पर॥

पर आई हो तुम दीपक लेकर,
कुटिया में नव ज्योति जगाने।
तापस के कट्टर जीवन में,
करुणा की रस धार बहाने॥

त्यौहार सजेगा जीवन में अब,
तापस-उर में ज्ञान जगेगा।
कितनों कल्पों की सीमा पर,
आज तपस्वी का साज सजेगा॥

आज तपस्या! आई हो तुम,
मुझे जगाने, मुझे हंसाने।
आज तपस्वी तृप्त हुआ,
चलो चलें त्यौहार मनाने॥

योग-वेदान्त, अक्टूबर 1954



स्वतंत्रता क्या है? यह वासनाओं से मुक्ति का नाम है। राजनैतिक स्वतंत्रता अधूरी है; धार्मिक स्वतंत्रता निरर्थक है; आर्थिक स्वतंत्रता रक्तशोषक है; सामाजिक स्वतंत्रता व्यभिचार है–पर पशुस्वभावजनित दुर्बलताओं का पराभव करने पर पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है।

योग-वेदान्त, मार्च 1954

देखो संन्यासी

देखो संन्यासी।
हिमालय की मालाओं की ओर,
गाओ प्रेष्य मन्त्र पवित्र,
'भूः' संन्यस्तं मया
'भुवः' संन्यस्तं मया
'स्वः' संन्यस्तं मया
के अन्तर्गीत।
दो उद्बोधन, नव-बल जग को...
'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'
तार स्वरों में गाओ जीवन गीत!

प्रणव मंत्र का नाद लगा दो,
जन-जन में चिर मंगल ला दो,
गंगा की लहरों की गति में,
जीवन-वीणा के गीत सुना दो।

योग-वेदान्त, अक्टूबर 1954



जो तुम धर्म का बड़प्पन जताते हो, पहले हमें यह बता दो कि कहाँ तक तुम सदाचार का पालन कर पाये हो; या फिर इस धर्म के बाने का ढोंग उतार दो, और ठेकेदारी छोड़ दो। हमें तुम्हारी मेहरबानी चाहिए नहीं।

योग-वेदान्त, अप्रैल 1954

शंकर सुखकर सत्यंकर

शंकर, सुखकर आयु सदा, दे दो नित नव, नित उज्ज्वल।
योग शक्ति माँ, गौरी सुत का कर दो मुखरित चिर-मंगल॥

जिससे रश्मिल योगिराज हे, तेरा शुभ संकल्प मनोबल।
इस अस्सी की असिधारा पर, इन्द्रवज्र-सा शुभ्र तपोबल॥

इस जीवन के वन-उपवन में, तेरा तापस सौंदर्य अमर।
तू झुका धरा पर, उड़ा गगन में, तू मातृशक्ति का वेद मुखर॥

हे जीवन, तुम झरो धरा पर, भरो सुधरतम प्राणों के स्वर।
गौरव-गरिमा गौरीसुत की, चिर उन्नत, चिर-मुक्त सुधर॥

चिर-पावन जग-मातृ-चरण की, ले भव-भव भंजन रेणु उदार।
विजय-कुसुम में वह सौरभ भर कर, सत्यम् शत-शत भरता हार॥

स्वर्ग-चेतना के अंतरतम से, गंगा की छवि धारा में।
शिव-पद-पावन ज्ञान-कुण्ड से, उठती आहुति होम-धरा में॥

कहती वह 'तुम जीओ प्रतिपल, याग-योग के भाल अटल।
तन्त्र-शक्ति के सत्य सरल, कवि-मनीषी निर्बन्ध अचल'॥

योग-वेदान्त, अप्रैल 1955



शिवानन्द-दृष्टान्त-मंजरी

सत्य सरल है, किन्तु आत्मसाक्षात्कार पाए हुए महात्मा के वचन और भी अधिक सरल होते हैं। आध्यात्मिक और सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्य का, पूज्य गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने सुन्दर, विलक्षणात्मक रीति से निरूपण कर, उसे सामान्य कक्षा के मनुष्यों के लिए भी बोधगम्य बनाया है। श्री स्वामीजी ने शास्त्रों के सत्य को किसी भी मानसिक स्तर पर रहने वाले मनुष्य के लिए सुलभ बनाया है। सत्य को समझने के लिए उन्होंने तमाम रीतियों को प्रयुक्त किया है–शास्त्रों पर उन्होंने भाष्य-रचना की है; फिलॉसफी के विषयों पर विद्वत्तापूर्ण थीसिस लिखी हैं; सुन्दर, रोचक और सरस कहानियों और काव्यों में अद्‌भुत रीति से महत्तर तत्त्वों को सहज ही गूंथ लिया है। अब अति प्रभावशाली, उपदेशात्मक कथानकों द्वारा उन्हीं तत्त्वों की पुनरावृत्ति करते हैं। कहानियों के सरस होने के कारण मन उन्हें शीघ्र ग्रहण कर लेता है, घटनाओं के साथ-साथ आध्यात्मिक सत्य भी मनुष्य के मन पर अमिट हो जाता है। शिवानन्द-साहित्य के हिन्दी रूपकार श्री स्वामी शिवानन्द-कृष्णानन्द जी ने भाषान्तर में भी उसी सरसता को निर्विकार रहने दिया है।

धर्मोपदेशक और प्रचारक अपने उपदेशों और व्याख्यानों के साथ इनका समन्वय कर श्रोताओं पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डाल सकेंगे।

योग-वेदान्त, मई 1955



तेरा शुभ सन्देश सुनाने, चन्द्र-किरण जब भू पर आती।
मुक्त कण्ठ हो मेरा रोना, वह दीपक पथ से ले जाती॥

योग-वेदान्त, सितम्बर 1955

टिहरी गढ़वाल के विकास-मार्ग के निर्माण में योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय मुद्रणालय का योगदान

20 सितम्बर, 1951 को टिहरी गढ़वाल के इतिहास में विकास का एक ओर अध्याय जुड़ा, जिस दिन ऋषिकेश नगर से 1 मील की दूरी पर, शिवानन्द नगर के आंचल में छपाई के कार्य का श्री-गणेश 'योग-वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय मुद्रणालय' के उद्‌घाटन के साथ हुआ। इस मण्डल में यह दूसरा प्रेस था, किन्तु अपने ढंग और कार्य में प्रथम और अनूठा था।

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती के आध्यात्मिक धर्म-वितरण-कार्य के सहकार के हेतु इस प्रेस ने एक ट्रिडेल मशीन ($\frac{20x30}{4}$) से कार्य आरम्भ किया। बाद में एक कटिंग मशीन 26" और एक तार-सिलाई की मशीन इसके सहकार हेतु प्रेस में जोड़ दी गई।

तब तक श्री स्वामी शिवानन्द जी की विश्व-विख्यात पुस्तकें और पत्रिकाएँ कलकत्ता, मद्रास आदि नगरों में प्रकाशित की जाती थीं। इस प्रेस के अवतरण के साथ-साथ समस्त शिवानन्द-साहित्य को यहीं से प्रकाशित करने का निश्चय किया जाने लगा।

अत: प्रेस के स्थापित होने के छ: महीने के अन्द-ही-अन्दर एक दूसरी ट्रिडेल् मशीन ($\frac{20x30}{2}$) मंगवा ली गई, तथा प्रेस योग्य अन्य यंत्र भी मंगवा लिये गये। इससे प्रेस का कार्य और भी अधिक प्रगतिशील हो उठा।

किन्तु अब तक ये दोनों मशीनें पाँव से चलाई जाती थीं और एतस्मात् आशाधिक कार्य नहीं हो पाता था। किन्तु नवम्बर 1953 में यह कमी भी दूर हो गई, जब प्रेस-मशीन पॉवर द्वारा संचालित होने लगी। पॉवर-संयोजित-प्रेस के सहकार से शिवानन्द-साहित्य की मात्रा प्रचुर होती गई। इसके साथ जनवरी, 1955 में एक डिमाई फ्लैट् बेड् प्रेस में और भी संयोजित कर दी गई, जिससे प्रकाशन का कार्य सन्तोषजनक रीति से देश-विदेश के उन लोगों की मांग को पूरा करने लगा, जो शिवानन्द-साहित्य के जिज्ञासु हैं।

इस मण्डल में तो यह अपूर्व प्रकाशन केन्द्र है ही, और साथ-साथ इसकी गणना टिहरी-गढ़वाल के विकास के सिलसिले में भी होती है। पर सबसे अधिक गौरव की बात यह है कि इस प्रेस को विश्व के सर्व पवित्र,

जनोपयोगी, लोकोपकारक, जन-भीति-संतारक और उपयुक्त साहित्य को प्रकाशित करने का श्रेय रहा है। रात और दिन कार्य करने पर ही यह प्रेस स्वामी शिवानन्द जी की अति-कौतुका लेखनी के कुछ विशिष्ट अंशों को नव-चित्रित कर पाता है। अहोरात्र मशीनों की खटाखट् टिहरी-गढ़वाल के सिंहद्वार पर यन्त्र युग की चेतना के लक्षण अभिव्यक्त करती है, और हिमांचल की पयोधारदात्री धरित्री के सुरम्य शिखरों में नवयुग के अवतरण का शुभ-शकुन ला रही है।

यद्यपि यह टिहरी गढ़वाल में अब तक एकैव प्रेस रहा था और यन्त्रमय विश्व में ऐसे संख्याधिक प्रेस हैं, किन्तु इसकी महत्ता इसकी चिरन्तन उपादेयता और जग-जनहित, जग-जनसुख की महती महत्त्वाकांक्षा से अद्वितीय और अप्रतुल हो जाती है; क्योंकि यह ऐसे साहित्य को प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त कर चुका है, जिससे कोटिशः दुःखित, पीड़ित, विभ्रमित और हताश व्यक्तियों को सुख, शांति, पथ और आशा की प्राप्ति हुई है। जबकि विश्व भर के संख्याधिक प्रेस केवलमात्र जन-चरित्र-भ्रामक और निम्न-कोटिक साहित्य का ही सर्जन कर रहे हैं।

तब से अब तक इस प्रेस से 90 के लगभग हिन्दी, अंग्रजी और तामिल भाषा में बृहद् ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है, तथा तदतिरिक्त बहुशः पत्र-परिपत्र, चार्ट आदि प्रकाशित हो चुके हैं। इन सब कार्यों के साथ-साथ प्रेस से नियमितरूपेण एक साप्ताहिक पत्र और आठ मासिक पत्र प्रकाशित किये जाते रहते हैं।

प्रेस का सम्पूर्ण आर्थिक भार 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' के तत्त्वाधान में 'दिव्य जीवन मण्डल' द्वारा वहन किया जाता है। प्रेस का कार्यक्षेत्र और भी विशाल है, इसीलिए प्रेस को और भी अधिक कार्यक्षम बनाने का विचार किया जा रहा है। श्री स्वामी शिवानन्द जी के 200 प्रकाशित अंग्रेजी ग्रन्थों तथा 50 हिन्दी अनुवादित ग्रन्थों के पुनः संस्करण के साथ-साथ इसे 150 से अधिक पुस्तकें और भी प्रकाशित करनी हैं, जो कि अभी तक अप्रकाशित ही हैं। तदतिरिक्त श्री स्वामी शिवानन्द जी की लेखनी तो दिनोंदिन प्रगतिशील होती जा रही है, और दिव्य जीवन मण्डल के पत्र-पत्रादिकों की अप्रतिहत गंगा तो प्रवाहशील है ही। यह प्रेस इस होड़ में विजयी और सफल बने – ऐसी सन्धि होनी चाहिए।

योग-वेदान्त, जून 1955

धन्यवाद

8 जुलाई, 1955 के दिन योग वेदान्त पत्रिका अपने शैशव के पाँचवें वर्ष में पदार्पण कर रही है। हम पत्रिका का अभिनन्दन करते हैं। पत्रिका चिरंजीव रहे।

साथ-साथ हम अपने सहृदय पाठकों को 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' की ओर से धन्यवाद देते हैं। आशा है कि वे इस पाँचवें वर्ष भी पत्रिका का स्वागत करेंगे।

पत्रिका के संरक्षकों और हितचिन्तकों के अतीव सहयोग का प्रकाशन किन शब्दों में किया जाए? समय के अभाववश, अभाव और कुभाव रहने पर भी, उनकी सद्प्रेरणा से पत्रिका अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हुई।

अभी तो यह शिशुप्रयास ही है। यौवनकाल की प्रतीक्षा की जा रही है, जब पत्रिका अपने सुदृढ़ कन्धों पर नव-जीवन के समीकरण का भार वहन कर सकेगी और घर-घर जा कर उस कहानी को कहेगी और उस गीता को गाएगी।

हम पुन: पत्रिका का और पत्रिका के प्रेमियों के सहयोग का स्वागत करते हैं। परस्पर सहयोग की कामना और परम पिता परमात्मा के आशीर्वाद की सतत् अभिलाषा कर, हम योग वेदान्त की सन्देशवाहिका को उसकी जन्म-गांठ के अवसर पर बधाई देते हैं।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग,
आरण्य विश्वविद्यालय

योग-वेदान्त, जून 1955



पुस्तक-परिचय –

प्रेम-रस-सिद्धान्त

लेखक – श्रीकृपालु दास
प्रकाशक – गोलोक धाम, 55/83 नवा गंज, कानपुर
पृष्ठ संख्या – 360
मूल्य – 2 रुपए

एक द्रव्य होता है, एक उसका सिद्धांत। द्रव्य की गरिमा होती है, और सिद्धान्त का होता है सूक्ष्मत्व। द्रव्य में संकोच और विकास होता है, पर सिद्धांत निर्विवाद और अपरिवर्तनशील होता है।

द्रव्य की निरपेक्षता सिद्धांत के अन्योन्याश्रित है। द्रव्य का अधिष्ठान होता है उसका सिद्धांत। सिद्धांतों के आधार पर द्रव्य में गुण, धर्म और सभी उपाधियों का समावेश हो सकता है, तब तो फिर द्रव्य द्रवित होकर आर्द्ररूपेण बह निकलता है। इसे हम कहते हैं – रससिद्धांत।

प्रेम का आर्द्ररूपेण द्रवीकरण हुआ अर्थात् अन्तरतम की अनुभूतियाँ सलिलवत् बह निकलीं तो प्रेम-रस-सिद्धांत का अपार अनुभव-सागर हिलोर ले उठा।

इस विशाल सागर में सीपियों की भरमार हुई, मोती चमक उठे, मूंगों की खानें जीवित हो उठीं। वे क्या – जैसे जीवन का चरम लक्ष्य, भगवान का अस्तित्व, अवतार-रहस्य, श्रीकृष्ण का ब्रह्मत्व, राधातत्त्व आदि आदि। यही वे मोती हैं, जो प्रेम-रस-सिद्धांत के परम रम्यमाण सागर में चमक रहे हैं।

कृपालु महाराज ने इसका सूत्र धारण किया, जैसे भगीरथ के तपोबल से गंगा आई थी न, और मिल गई थी विशाल सागर में – उसी प्रकार कृपालु महाराज के भगीरथ प्रयत्न से प्रेम-रस-गंगा बह निकली और प्रेम-रस के मूलभूत सिद्धांतों का उदय हुआ।

कृपालु महाराज का अन्तःकरण बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय की बुद्धत्वमयी अभीप्साओं का आयतन है। उनके विचारों में जीवन के परमार्थ की लक्षणा अभिव्यक्त हो रही है – और उनकी लेखनी, उस पर भी तो

भगवती गीर्वाणी की वीणात्मक-वाणी के तार थिरक रहे हैं। वास्तव में है यह ऐसी ही।

तो फिर कृपालु महाराज ने दासत्व स्वीकार किया है? दासत्व ही तो आधिपत्य की कुंजी है, भला पारमात्म्य का दासत्व नहीं, तो किसका दासत्व स्वीकार किया जाए?

ते सर्वे ज्ञानवृद्धस्य किंकरा: शिष्यकिंकरा:

राधाकृष्णमय ज्ञान के गौरव की प्रौढ़ता को अंगीकार कर, पुरूत्व की यौवनाभिलालसा को चुनौती देने वाले कृपालु महाराज प्रेम-रस-सिद्धांत के वृद्ध-तान्त्रिक हैं, फिर इनका दासत्व दासत्व कहाँ, वह तो परमाधिपत्य ही होगा।

यही अगाध जीवन-प्रणाली इनकी प्रस्तुत पुस्तक में अभिलक्षित होती है। इस में है जीवन का रस, भक्ति की विभोरता, विचारों की प्रवणता और गतिमय माधुर्य। फिर इस पुस्तक के अक्षर-अक्षर में साधुत्व की पूजा-सी हो रही होती है, दृष्टांतों के फूलों से अर्चना-सी हो रही होती है, और विचारों की पंचमुखी आरती से सत्य का मुख पिहित और उज्ज्वल-सा हो रहा होता है। सचमुच कविर्मनीषी की विचारधारा कितनी पवित्र, कितनी संकल्पमयी और कितनी रजत होती है – इसे आज का नास्तिक समझ ही कैसे सके।

मुझे कृपालु महाराज की यह अमर भेंट बहुत पसन्द आई है। अपनी पुस्तकों के ढेर में तो यह रहेगी ही, साथ-साथ जीवन की अनुभूतियों में इसकी स्वर्ण-कला का कौशलपूर्ण एकीकरण होगा – इसकी प्रेमरसमयी गंगा के आचमन से अपना तन, मन और आत्मा पूत हो उठेगा, यही संकल्प है।

उन के युग-चरणों की रज पर
सत्यम् की यह भेंट अमर।

योग-वेदान्त, अगस्त 1955



मानस मुक्तावली

- कामनाओं एवं वासनाओं का दमन, वाणी का संयम, अध्यात्म जग में विचरण, सद्विचारों में रमण एवं योगियों का अनुशीलन करने वाला व्यक्ति निर्मुक्त बन जाएगा।
- यदि अनन्त काल से दु:खित अखिला का असत्य भार उठाना है, असत्य और अधार्मिकता का नाश कर सत्य धर्म की नींव जमानी है तो अपनी पाशविक वृत्तियों को पवित्र बनाओ। यही अध्यात्म-जीवन की कुञ्जी है, जिसे पाने से सुख और शान्ति आपके अनुचर बन जाएँगे।
- दानव की हार मानव की जीत है। दानवता का अनादर मानवता का आदर है और देवों की आराधना।
- अज्ञाताज्ञात के परमाज्ञात पथ पर से अज्ञाताभा की पराज्ञात पुकार सुनने का प्रयत्न किया है? रोते को हँसाने के लिए, पतितों को उठाने के लिए, संस्कृति सभ्यता को जगाने के लिए, अधर्म को मिटाने के लिए, धर्मांधता और भौतिकता को जलाने के लिए, संसृति दु:ख चक्र को भंग करने के लिए प्रयत्न किया है? सेवा को समझा है? प्रेम को अपनाया है? अहिंसा को जीता है? मानवता को पहचाना है? सदैव सभी की अच्छाइयों का ही दर्शन किया है? सत्य की शुभ्र शुचिता को स्वीकार किया है? सोचो तो!

योग-वेदान्त, अगस्त 1955



वह जप जप नहीं, जिसके पीछे चरित्र-सुधार का उद्देश्य नहीं।

योग-वेदान्त, नवम्बर 1955

विनम्र श्रद्धांजलि

इस वर्ष भी अन्य वर्षों की भाँति श्री गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी की वर्षगांठ मनाई जा रही है। देश-देशान्तरों से उनके भक्तों, शिष्यों और धर्म-प्रेमी नायकों ने उनके नाम अपने सन्देश भेजे हैं।

'दिव्य जीवन मण्डल' के नेतृत्व में इस मास के आठवें दिवस को शिवानन्द-जयन्ती का बृहत् समारोह मनाया गया है। देश के कोने-कोने और समुद्र पार से भक्तों का समूह श्री गुरुदेव के आशीर्वाद के लिए आ जुटा है। शिवानन्दनगर का यह समारोह अपूर्व रहा।

श्री स्वामीजी इस युग में अवतरित हुए हैं, जन-समुदाय को जीवन का सत्पथ बतलाने के लिए। वह किसी धर्म-विशेष या सम्प्रदायगत रूढ़ियों के अनुशासन के लिए नहीं, अपितु सभी धर्मों और राष्ट्रों की आत्मा को श्रेय के मन्त्र में दीक्षित करने के लिए प्रकट हुए हैं।

उनका धर्म, सम्प्रदाय का धर्म या राष्ट्र का संकीर्ण सिद्धान्त नहीं; उनका धर्म जटिल तपस्या, कुटिल योग और निर्बल ज्ञान को प्रश्रय देने नहीं, अपितु विशाल जीवन की भव्यता को, जो अज्ञान से आच्छन्न है, आलोकित करने के लिए ही है। जहाँ विश्व में राग-द्वेष है, वहाँ सर्वभूतमैत्री; जहाँ पाप और छल-कपट है, वहाँ पवित्रता; जहाँ काम-क्रोध है, वहाँ संयम; और जहाँ विप्लव और युद्ध है, वहाँ शान्ति – इसके प्रवर्त्तन और स्थापन के लिए अवतार हुआ है।

उनके वेश में कोई आडम्बर नहीं; उनके योग में कोई रहस्य नहीं; उनके प्रेम में कोई स्वार्थ नहीं; उनके कार्य में कोई अंहकार नहीं–वे एक सीधे-सादे और भले व्यक्ति का सच्चा आदर्श उपस्थित कर जनप्रिय और विश्व-वन्द्य बने हैं। 'सीधा जीवन, सात्त्विक चिन्तन, अच्छा कर्म, अच्छी वृत्ति'–यही उनके योग या धर्म या तत्त्वज्ञान या प्रचार का लक्ष्य-बिन्दु रहा है; और इसी को समझाने के लिए उन्होंने विविध साधनों का अवलम्बन ग्रहण किया है। 6+3 का योग तो 9 होता ही है पर 7 और 2, या 5 और 4 अथवा 1 और 8 का योग भी 9 की होता है। शिवानन्द-योग की विविध प्रक्रियाएँ हैं जरूर; पर उन सबका योगफल है–सत्पथगामी जीवन, सद्विचारपूर्ण चिन्तन, सत्कर्मपूर्ण आचरण। धर्म या दर्शन का इससे बढ़कर और ध्येय हो ही क्या सकता है? मोक्ष की यही

परिभाषा है; जीवनमुक्ति के यही लक्षण हैं; आत्म-साक्षात्कार की यही कसौटी है; और जीवन का चरम विकास इस गति पर आकर प्रफुल्लित हो जाता है। इसीलिए शिवानन्द-योग पूर्ण योग है, पवित्र योग है, कल्याणकारी योग है और जीवन का सहकारी योग है। भगवान, इस योगी को अमर बनाओ!

इन्हीं विचारों पर चिन्तन कर शिवानन्द-प्रिय भक्तों ने अपनी लेखनी उठाई है और श्रद्धा के सुन्दर पुष्पों का चयन किया है। वह पाठकों के सामने है।

इस सुन्दर अंक का सम्पादन कर श्री स्वामी शिवानन्द-कृष्णानन्द ने अपने गुरुप्रेम का सुनहरा परिचय दिया है। सभी लेखों का अनुवाद कर (सभी लेख अंग्रेजी में ही थे) तथा उन्हें उचित सौन्दर्य प्रदान कर पूज्य स्वामीजी ने हम पर महान् अनुग्रह किया है। परमेश्वर आपको चिरायु प्रदान करें, और आपकी नवोदित कला को पूर्ण चेतना और प्रभा प्रदान करें! 'योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' की ओर से सभी लेखकों और सहयोगियों को धन्यवाद!

योग-वेदान्त, सितम्बर 1955

जीवन परिचय

यह मिट्टी है या सोना है?
जीवन के इस राग-रंग पर हंसना है या रोना है?
कोई कहते इसमें सुख है,
कोई कहते दु:ख ही दु:ख है,
तुम्हीं मुझे बताओ मेरे साथी, आखिर में जो होना है।
जीवन-सुख का हार पहन लो,
या फिर दु:ख की चोटें सह लो,
कभी नहीं यह कहना साथी, जीवन सुख-दु:ख रोना है।
जीवन में तो सब कुछ धन है,
कंचन भी है, कंकड़ भी है,
सदा यही बतलाना साथी,जीवन सुख है सोना है।

योग-वेदान्त, अक्टूबर 1955

मानस-मुक्तावली

वही इन्सान है, वही साधु है, वही सन्त है!

जंगल के सन्त की आज विश्व को आवश्यकता नहीं; मनुष्य जीवन के सन्त की उसकी मांग है, जो मानव-समाज को पेचीदे मार्ग पर जाने से रोक कर, उसे सीधे और सुगम मार्ग पर ला सके। जिसने मानवता के आत्मकल्याण का पथ खोजा है, जिसका जीवन त्याग और तपश्चर्या से पुनीत हुआ है, जिसके जीवन में गम्भीरतम दार्शनिकता का महनीय आलोक है, जिसका आकर्षण है–भुजबल, संकल्पशक्ति, बुद्धि तथा ज्ञान का अपूर्व समन्वय और जिसका आधार है अपूर्व सेवानुरक्ति और जनहितपरायणता।

उसी को साधु समझो, जिसमें दम्भ न हो, जिसका हृदय क्षमाशील हो, जो न अपने विषय में कहता हो और न कुछ अपने लिए माँगता हो; जो एक क्षण के लिए भी अपनी लोभमयी वृत्तियों को प्रकट नहीं करता; जिसको नश्वर वस्तुओं से प्रेम नहीं, न अविनाशी का विस्मरण–वही साधु है–वही साधु है।

उस साधु और सन्त से हमें कुछ फायदा नहीं, जो केवल एकान्त अथवा कन्दरा में निवास करते हैं। न तो उनका कोई उपयोग है, जो वेद-शास्त्रों में निष्णात हैं या महान् उपदेशक हैं या जो ईश्वरत्व प्राप्त कर एकान्तवास में सुशान्त बैठे हुए हैं; क्योंकि उनके लिए संसार माया है और बन्धन। आत्मज्ञानी के लिए भी क्या संसार बन्धन है? *'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'* का जिसने साक्षात्कार किया है, वही साधु-सन्त और योगी है।

योगी की विचित्र, अत्यन्त रहस्यपूर्ण, वृथा वेशभूषा से संसार भर गया है। क्षीणकाय, अर्द्धनग्न, जटा-जूटयुक्त, विभूति-सम्मित और पद्मासन में बैठे हुए योग को वंश-परम्परा से चित्रित किया है। यह योगी का सच्चा स्वरूप नहीं है। अशिक्षा-पीड़ित भारत में फैली हुई इस अन्ध-परम्परा का खण्डन और विनाश किये बिना, विश्राम नहीं लेना चाहिए।

सन्त का मानस सदा प्रेम, परमार्थ और परहित का विचार करता है। परमेश्वर का चिंतन उसका स्वभाव है। पवित्रता की देवी उसके मानस की अधिष्ठात्री है।

सन्त के पवित्र और दैवी विचार उसके मुखारविंद पर प्रतिबिम्बित होते हैं, उसके उपदेश में प्रतिमुखरित होते हैं। उसके सामान्य संवाद में भी उसकी सत्यता और पवित्रता झलक उठती है। सन्त के विचार उसके वाणी और वर्तन में प्रतिबिम्बित होते हैं। उसका प्रत्येक कार्य प्रेम, पवित्रता और सात्त्विक भावों से छलक उठता है। उसकी अपूर्व आत्मशक्ति का हमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

वही सन्त है जिसने समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब माना है।

वही सन्त है जो जीवन को जान और पहचान कर जीवनयापन कर रहा है।

वह सन्त नहीं है, जिसका संतत्व बाह्य आडम्बर है; जिसकी सेवा की नींव स्वार्थ है, जिसकी महानता और पवित्रता लोगों को दिखाने के लिए एवं नाम-कीर्ति प्राप्त करने के हेतु है। वही साधु है, वही सन्त है, जो स्वयं अपने लिए महान् है; जिसका प्रत्येक सेवाकार्य लोकसंग्रह के लिए होने पर भी जो मानता है कि वह सब कुछ केवल स्वयं के विकासार्थ है।

वह इसलिए सन्त नहीं कहलाता क्योंकि वह लोकसेवा करता है। उसकी आवश्यकता अत्यन्त अल्प होने के कारण भी वह महान् नहीं कहलाता। वह महान् इसलिए है कि 'भला बनना और भलाई करना' अब उसका स्वभाव बन गया है। उस सन्त को सब इसलिए पूजते हैं कि वह स्वप्न में भी किसी का अहित नहीं चाहता।

योग-वेदान्त, सितम्बर 1955



पवित्रता की गंगा साधक के भगीरथ-प्रयत्नों से जीवन की मरुभूमि में बहने लगी; मनुष्य का उद्धार हुआ और शान्ति-समृद्धि-आनन्द के त्रिदल-उत्पल खिल उठे।

योग-वेदान्त, सितम्बर 1955

विद्याधर और लक्ष्मी

कहा जाता है कि जहाँ लक्ष्मी है, वहाँ सरस्वती नहीं और जहाँ सरस्वती है, वहाँ लक्ष्मी नहीं। जनसाधारण के लिए यह सत्य हो सकता है, किन्तु जहाँ व्यक्ति-विशेष का प्रश्न है, वहाँ यह कथन पूर्णरूपेण चरितार्थ नहीं होता। लक्ष्मी और सरस्वती केवल सहिष्णु ही नहीं बनतीं, बल्कि एक-दूसरे से प्रीति भी करती हैं।

विद्याधर ने एक दिन लक्ष्मी से कहा, 'क्यों, हम तो परस्पर घनिष्ठ मित्र थे; क्या भूल गई हमारी मित्रता, जब तुम्हारा सब कुछ मेरा था।'

लक्ष्मी–'प्रीत तो तुम्हीं ने तोड़ी है। तुम्हीं ने मेरा अनादर कर विद्या का वरण किया है और सरस्वती का सत्कार। क्या मैं जीवन में कभी वह दिन भूल सकती हूँ, जब मैं षोडश शृंगार से समलंकृत होकर तुम्हारे द्वार पर आई थी। तुम्हें रिझाने के लिए मैंने अपना सर्वस्व त्याग दिया था। कितना मनाया, कितना समझाया मैंने तुमको; किन्तु तुम एक न माने और मानते भी क्यों? उस समय तो सरस्वती तुम्हारे हृदय की अधिष्ठात्री थी। अब मेरे द्वार पर नाक क्यों रगड़ते हो? मेरे चंचल स्वभाव की कितनी निन्दा की थी तुमने। आज वह चंचल स्वभाव ही मनहर बना है। अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं रही, मेरा प्रिय स्थान मुझे प्राप्त हो गया है।'

विद्याधर–'लक्ष्मी, मेरे कथन का भी जरा विवेकपूर्वक श्रवण करो। उन दिनों मेरी साधना चल रही थी सरस्वती को रिझाने की। उनकी कृपा से, उनके शुभ वर से ही मैं जीवन में प्रगति की ओर अभियान कर सका हूँ। उस समय तुम्हें अपनाने से वे रूठ जातीं और उनका वह रूठना आजीवन बना रहता। आज सरस्वती का निवास स्थान है मेरा मुख और मेरी वाणी। अब मैं तुम्हें सरलता से मना सकता हूँ। और मुझे क्या तुम्हें मनाना पड़ेगा? क्या मैं तुम्हारे स्वभाव से सुपरिचित नहीं? जो तुम्हारा परित्याग करता है उसी को तुम पूजती हो। और अपने पीछे भगवाने वाले को ठुकराना तो तुम्हारा स्वभाव है।'

लक्ष्मी–'विद्याधर, आज तुमने विद्याओं की विद्या पाई है। महा सरस्वती और विद्या तुम्हें वर चुकी हैं। तुमने मुझे त्यागकर भी मुझे अपनाया है। देव, मैं तुम्हारे चरणों की दासी हूँ। वह मनुष्य त्याग कर सकता है जिसका कुछ हो। भिखारी का कैसा त्याग! मैं तुम्हारी थी; इसलिए तो तुमने मुझे त्यागा था। तुम्हारा वियोग होने से ही तुम्हारे मिलन के अपूर्व सुख की अनुभूति कर, मैं उसके महत्त्व को जान सकी हूँ।'

योग-वेदान्त, अक्टूबर 1955

विचित्र संयोग

पट्टामडाई कहाँ?
पवित्र मलय कहाँ?
पूर्व मलाया कहाँ?
बोलो तो सही, सिंगापुर कहाँ

लहलहाते धान के खेतों के बीच बसे पट्टामडाई में
उसने संसृति का सुहाग सजा देखा।
सुदूर मलाया में उसके जीवन का यौवन निखर गया।
सिंगापुर के जन-कोलाहल में उसने जीवन के
अनुभवों के तार सम्हाले और स्वर साधे।
पवित्र मलय की तपोपूत भूमि में उसने आत्मा का श्रृंगार किया
और आज विश्व के चतुर्दिक देशों के असंख्य मानवों का
वह आराध्य देव है।

धन्य है विधि के निर्माण!
कहाँ पट्टामडाई?
कहाँ पवित्र मलय?
कहाँ पूर्व मलाया?
और कहाँ सिंगापुर?
सभी सब शिवानन्द के लीला-स्थान।

योग-वेदान्त, अक्टूबर 1955



संसारी और संन्यासी

संसारी भी त्याग और तपस्या करता है।

और?

संन्यासी भी त्याग और तपस्या करता है।

सच है।

किन्तु–

संसारी के त्याग के पीछे भोग की भावना है। उसकी तपस्या सकाम है, क्षुद्र फलेच्छा की पूर्ति के लिए है।

जिसने स्वयं को जानने के हेतु से स्वेच्छापूर्वक सर्वस्व का त्याग किया, वही तो संन्यासी है। उसकी तपस्या निष्काम होती है, उसका उद्देश्य परमोच्च लक्ष्य तक पहुँचने का है।

त्याग और तपस्या का मूल्य ही क्या, यदि उसका उद्देश्य सर्वव्यापक चेतना की अनुभूति करना न हो।

कष्ट संसारी को निमन्त्रण देता है; किन्तु–

संन्यासी कष्ट को निमन्त्रण देता है।

संसारी विवशता के कारण कष्ट के निमन्त्रण को स्वीकार करता है।

संन्यासी प्रसन्नतापूर्वक कष्ट का भव्य स्वागत करता है।

संसारी के जीवन की दौड़ है, भौतिकता के प्राप्त्यर्थ।

संन्यासी के जीवन की दौड़ है, आध्यात्मिकता की प्राप्ति के हेतु।

दौड़ते तो हैं दोनों; किन्तु एक पीछे की ओर, लक्ष्य से विपरीत दिशा में, और दूसरा आगे की ओर, लक्ष्योन्मुख होकर।

संसारी जीवन की इस भाग-दौड़ में परिश्रान्त हो जाता है, पराजित हो जाता है। उसे इस पथ में मिलते हैं सहस्रों विघ्न और बाधाएँ तथा अन्ततः मृत्यु।

संन्यासी को जीवन की इस दौड़ के पारिश्रमिक स्वरूप मिलता है– अमृतत्व, प्रेमोपहार, मान और कीर्ति, अनन्त सुख एवं चिर शांति; फलतः वह बन जाता है अमर।

अन्ततोगत्वा तथाकथित सुखी संसारी भी अपने मृगमरीचिकावत् सुख की असारता को जान लेता है।

संसारी तब संसारी नहीं रहता, जब वह जीवन की क्षणभंगुरता को जानकर जीवन का यथार्थ मूल्य समझ लेता है।

संसार के जाल में उलझा हुआ है संसारी।

संसार के जाल को सुलझाने वाला है संन्यासी।

संसारी मांगता है भीख, पर सदा भिखारी ही रहता है।

संन्यासी भीख मांगकर त्रिभुवन की सम्पदा का ऐश्वर्यशाली स्वामी बन जाता है।

संसारी लज्जा, शर्म और प्रत्युपकार की भावना से झुकता है।

संन्यासी गौरव, प्रेम तथा नम्रता एवं सौजन्य से झुककर दूसरों को झुकाता है।

संसारी है गुलाम – कंचन, कीर्ति और कामिनी का।

संन्यासी है विजेता – कंचन, कीर्ति और कामिनी का।

संसारी का निवास स्थान है संसार-सागर, जहाँ वह नाव में बैठकर भी डूब जाता है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से संन्यासी का निवास स्थान भी संसार सागर है; किन्तु वह नाव में बैठकर संसार सागर का अतिक्रमण कर जाता है।

योग-वेदान्त, नवम्बर 1955



नश्वर जग के भोग त्यागो

बीत गया हा! समय हमारा,
नश्वर जग के भोगों में ही।
महाभ्रमण से थके हुए हैं,
तब से जग की पथिका में ही॥

आज चलें गंगा तट पर,
ईश्वर-वंदन करते करते।
नश्वर जग का त्याग किये हैं,
'शिव, शिव, शिव' ही होंगे रटते॥

योग-वेदान्त, जनवरी 1956

श्रान्त पथिक

मैं पीछे था,
भाग रहा था जीवन आगे।
मैं हांफ रहा था,
वह दौड़ रहा था,
मुझे पकड़ने।
मेरे पीछे
दौड़े-दौड़े
तीव्र वेग से
आते थे वे।
कभी-कभी मैं
रह जाता था
पीछे, तो वे
बांह पकड़ कर
ठहरा लेते
मुझ निर्बल को।
इसी बीच में,
इसी पकड़ में,
बढ़ जाता था
जीवन आगे
दृष्टि-ओट से ओझल होता।

आज युगों से
खेल यही
दौड़ यही
भाग यही
पकड़ यही।
मैं बेचारा,
बैठा हारा,
जीवन मुझसे,
सदा अकेला।
अब शक्ति नहीं,
वह भक्ति नहीं,
अनुरक्ति नहीं।
पाँवों में वह वेग नहीं।
हाथों में वह जोश नहीं।
आज मौत की घाटी पर–
तीखे, तपते और विचलते
महा भयंकर
कूलों पर,
मैं एकाकी
बैठ गया हूँ।

योग-वेदान्त, नवम्बर 1955



मानस मुक्तावली

शिष्य चार प्रकार के होते हैं; जो गुरु के पास रहकर गुरु की गौरव-महिमा को जान सकें, जो केवल दूर रहकर ही उसका मूल्य पहचान सकें और जो गुरु के पास होने पर या दूर रहने पर भी मूल्यांकन न कर सकें और सबसे उत्तम कोटि का शिष्य वह है, जो अपने और गुरु के बीच के अन्तर का कभी भी अनुभव नहीं करता। उसके लिए क्या दूर? वह बसता है गुरु के अन्तर में और गुरु भी स्थित है उसके अन्तर में।

भावों के विलास का मूल्य एक कौड़ी भी नहीं, फिर इस विलास को मानने वालों के निर्मूल्य में भी कोई शंका है!

सच तो अपने जानने पर ही निर्भर है। आरम्भ में दुनिया यह नहीं मानेगी; क्योंकि वस्तुओं में असत्य का आविष्कार करना तो उसका स्वभाव है। किन्तु सत्य कब तक छिपा रहेगा? सत्य जब शत-शत सूर्यों से भी अधिक ज्योतिर्मय हो उठेगा, तब तीनों लोकों में क्या कोई भी संशय कर सकता है?

तन बदल सकते हो, मन बदल सकते हो, किन्तु आत्मा को भी क्या कोई बदल सकता है? आत्मा तो निर्विकार है। योग्य अधिकारी बनने से पहले तुम उस पर कभी भी अपना आधिपत्य नहीं चला सकते।

सच्ची महानता तो तभी है कि हम गिर कर भी खड़े हो जाएँ।

वही महानता कहलाती है जो मनुष्य के अपराधों पर गौर करने की अपेक्षा उन्हें क्षमा करे।

क्षमा है मनुष्य का कर्त्तव्य, देवों का स्वभाव और दानवों की वैरिण।

संन्यासी का मित्र कौन और बंधु कौन? आवश्यकता क्या और मोह-ममता क्या? उसने किससे क्या लेना? उसे तो देना ही देना है। विपत्ति की बेला में वह किसी को भी मदद दे सकता है और ले सकता है। उस पर कोई ऋण नहीं चढ़ता, फिर बन्धुत्व की क्या आवश्यकता और क्यों?

समस्त प्रपंच का अस्तित्व है केवल दो अक्षरों के छोटे से शब्द 'मोह' पर।

अनुकरण करो तो भीतर और बाहर दोनों का करो। उस अनुकरण से कोई लाभ नहीं, जिसमें आकृति और प्रकृति का मेल नहीं।

सर्वांगीण अनुकरण करो तो केवल संत का।

दान करो तो दिल का।

मनुष्य का यदि कोई मूल्य है तो उसकी मानवता है।

हा मानव, मालिकी की भावना के लिए इतनी पिपासा क्यों? लेने-रखने की इतनी व्याकुलता क्यों? क्या तू अनजान है कि वास्तव में न कुछ आता है, न कुछ जाता है; भेद है केवल रंगरूप का। आवश्यकतानुसार वस्तुओं के नाम और रूप नवीन रूप से मूल्यांकन करवाते हैं। वही उनका सच्चा परिचायक है। फिर भी यह सत्ता-मद क्यों?

विश्व की गति विविधता पर निर्भर है। विश्व के समस्त मानव एक ही विचार और एक ही विधि-विधान की ध्वजा थामे खड़े हो जायें तो?

जो कर्त्तव्य मनुष्य को सच्चा सुख प्रदान न करे, वह कर्त्तव्य है या काष्ठ?

अशक्य लगती बात को मनुष्य घोट-घोट कर शक्य बना सकता है। कार्य में सफलता पाने के लिए मकड़ी मनुष्य के लिए आदर्श उदाहरण है।

वृद्धावस्था में मनुष्य की इन्द्रियाँ शिथिल बन जाती हैं, स्मृति नष्ट हो जाती है, वह सदैव थका-हारा रहता है।

योग-वेदान्त, नवम्बर 1955

किंकर्त्तव्यविमूढ़ता

कोई कहता है, 'घर छोड़ो और योगी बन जाओ, तब भगवान मिलेगा।'
तो कोई कहता है, 'योग धारण करने से क्या, यदि दिल का मैल न गया तो? त्याग मन से करो, मन से। घरबार त्यागने से भला कोई भगवान को पा लेता है?'
एक कहता है, 'यह धर्म-कर्म सब पाखण्ड है, ईश्वर मंदिरों में नहीं, समाज की आत्मा में है। सेवा करो, सेवा। यही जप है, यही तप है, यही साधन है।'
दूसरा कहता है, 'न योग, न व्रत, न जप, न तप और न धर्म काम के हैं। यह सब पाखण्ड है। खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ।'
किसी का कहना है, 'ईश्वर है!'
किसी का कहना है, 'नहीं है!'
और किसी-किसी का कहना है, 'है भी और नहीं भी है!'
जितने मुंह उतनी बातें सुनाई देती हैं। कहिए, किसकी सुनें और किसकी नहीं?

योग-वेदान्त, नवम्बर 1955

कर्म-संन्यास का पथ

आज बहुत दिनों के बाद तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ, क्योंकि इसी बीच मुझे पत्र लिखने का पुराना अभ्यास चर्रा गया है और दूसरी बात यह भी है कि महीने में मैं दो-चार लम्बे-चौड़े पत्र नहीं लिखूँ तो मेरी पहली तारीख आती ही नहीं। आज गुरु-पूर्णिमा थी; सोचा कि किसी को कुछ लिखूँ... पर लिखूँ किसे? सारे के सारे मित्रगण यहीं पधारे हुए हैं... गुरुजी की झोली को भरने और उनकी चरण-रेणु में नाक रगड़ने के लिए।

तो फिर पत्र लिखने का मतलब कुछ और भी हो सकता है। क्या होगा? बताऊँगा, किन्तु तब जब यह निश्चय कर लो कि तुम इस पत्र को ठीक-ठीक समझने का प्रयत्न करोगी और जो कुछ मैं कहूँ उसे मेरा अपना कथन न समझ कर श्री स्वामीजी का आदेश समझोगी। मैं हूँ पत्र लिखने वाला, स्वामीजी पत्र लिखाने वाले और कोई एक है तुम्हारे पास पत्र भेजने वाला।

हिन्दू धर्म में चौथा आश्रम है संन्यास और यह ऐसा आश्रम है, जिसके नियम त्याग और विराग पर अवलम्बित हैं। यद्यपि यह आश्रम सर्वश्रेष्ठ है, तथापि इसकी मर्यादा सीमित है और यदि इसको प्रोत्साहन दिया जाता है तो जननीति पर कुठाराघात होता है, और यदि इसे भुला दिया जावे, तो जीवन के सच्चे आनन्द की आशाएँ भस्मीभूत हो जाती हैं। तब तो फिर यह एक समस्या खड़ी हो गई... पर ऐसी बात नहीं। सोचते-सोचते इसका हल निकल गया और गीता में इसको एक नया स्वरूप मिला। वह क्या था? वह था विदेहराज जनक सदृश महानुभावों का कर्मसंन्यास योग। पर कट्टरवादी भारत की भावना संन्यास के इस आदर्श को केवलमात्र थ्योरी के रूप में ही मानती रही... व्यावहारिक रूप देने से हिचकने लगी। यदि सुधारकों ने इस पर जोर दिया भी, तो जनता की संकीर्ण आँखें उन पर बरसने लगीं। फल यह हुआ कि संन्यास आश्रम कट्टर रहा और कर्म-संन्यास एक फिलॉसॉफी। पर स्वामीजी ने संन्यास को उदार बनाया है और कर्म-संन्यास को एक सम्भावना; यद्यपि इसका श्री-गणेश बहुत पहले हो चुका था। अब यह प्रश्न आता है कि यह कर्म-संन्यास क्या बला है, और कर्म-संन्यासी परमहंस-संन्यासी तथा अन्य संन्यासियों से किस रंग में अलग है?

स्वामीजी का कर्म-संन्यासी एक संन्यासी की परिभाषा का ही रूप है। संन्यास धर्म के मौखिक सिद्धान्त का उसे भी प्रतिपालन करना पड़ता है। वह धार्मिक भी होता है, सदाचारी, विचारशील और विवेकशील भी होता है, उसे अविवाहित ही रहना पड़ता है, राग-द्वेष इत्यादि द्वन्द्वों से वह दूर भागता है... पर वह जंगलों में नहीं रहता, उन्मत्त की भाँति नहीं विचरता, न तो नंगा फिरता है, न निष्कर्मण्य जीवन बिताता है, न तो पलायनवादी बनता है, न रूढिग्रस्त बनकर संन्यासियों की युग-परम्परा से चली आ रही नीति-नियमावलि को ही घोषित करता है। वह तो फौजी सिपाही की तरह वर्दी और सादे कपड़े, दोनों ही पहन सकता है। फौजी सिपाही कर्त्तव्य निभाने की बेला में वर्दी से सुसज्जित और अन्य समय पर सादे कपड़े पहनता है। स्वामीजी का कर्म-संन्यासी भी गेरू वस्त्रधारी होता है, पर वह समय और समाज के अनुकूल बाहरी आचारों को ढील दे सकता है; पर केवल तभी तक, जब तक उससे अपने जीवन का हनन न हो। ऐसे संन्यासी स्वामीजी के सन्निधान में तैयार होते जा रहे हैं। वे संन्यासी मुझ जैसों से भिन्न हैं। जहाँ मेरी आत्मा नियमों और प्रतिबन्धों में जकड़ी हुई पड़ी है, वहाँ उन कर्म-संन्यासियों की चेतना प्रकृति के बहाव के साथ तीव्र प्रगति से अपना पथ पार कर रही है। जहाँ आश्रम में एक सीमा है, वहाँ विश्व उनका परिवार है। मैं संसार से घृणा करता हूँ, पर वे उसमें भी पवित्रता को खोजते हैं। इन आदर्शों को लेकर स्वामी जी का नया ऑर्डर (कर्म-संन्यास) कायम हो चुका है।

योग-वेदान्त, नवम्बर 1955

(राजस्थान सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत)

वर्ष ५ : अङ्क ६ | योग-वेदान्त | दिसम्बर १९५५

सम्पादक : ज्ञानयज्ञोपभृत् श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

★ [योग वेदान्त भक्ति सदाचार और आरोग्य शिक्षा का मासिक पत्र] ★

योग-वेदान्त के दिसम्बर, 1955 अंक का मुख्य पृष्ठ

जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है

जनता में– हे जनार्दन! मैं तुझे देखता हूँ।
दु:खियों में– हे दरिद्रनारायण! मैं तेरा दर्शन करता हूँ।
बालकों में– हे बालगोपाल! मैं तेरी निर्दोषता निहारता हूँ।
अत्याचारियों में– हे क्षमावतार! मैं तेरा क्षमास्वरूप देखता हूँ।
संतों में– हे सत्य स्वरूप! मैं तेरा सनातन सौंदर्य पाता हूँ।
मानव हृदयों में– हे प्रेम सागर! मैं तेरा पय: पान करता हूँ।
सतियों में– हे सत्यनिष्ठ! मैं तेरी शील-संरक्षण शक्ति पाता हूँ।
नश्वर विश्व में– हे अविनश्वर! मैं तेरी नित्यता पाता हूँ।
संसार रंगभूमि में– हे नटनागर! मैं तेरी अनुपम कला से मोहित हो जाता हूँ।
माया मोह में– हे निर्मोही! मैं तेरी निर्ममता सीखता हूँ।
वेदशास्त्रों में– हे अगम्य! मैं तेरा ज्ञानामृत पीता हूँ।
भुवनभास्कर में– हे ज्योतिर्मयी! मैं तेरी अपरिमित तेजोराशि पाता हूँ।
चन्द्रमा में– हे अमृतदेव! मैं तेरी शीतलता पाता हूँ।
प्रकृति में– हे सौंदर्यविधाता! मैं तेरे श्रृंगार पर मुग्ध बन जाता हूँ।
देश, काल और परिस्थिति में–
हे अमरेश! मैं तेरा अबाधित और अपरिवर्तनशील रूप देखता हूँ।

हे ईसा!
जड़-चेतन में–
दृश्य-अदृश्य में–
मैं तुझे विहार करते देखता हूँ।
तेरे ही गीतों की गुंजार सुनता हूँ।
तेरे ही सौंदर्य को निखरते देखता हूँ।
तेरे ही सामीप्य का सदा अनुभव करता हूँ।

योग-वेदान्त, दिसम्बर 1955

THE YOGA-VEDANTA FOREST UNIVERSITY

ANANDA KUTIR, RISHIKESH, HIMALAYAS, INDIA

ENQUIRE "WHO AM I" ! KNOW THE SELF !! AND BE FREE !!!

TAT TWAM ASI

WHEREAS, by the Grace of God, the Fountain of Eternal Bliss, and by the Will of the Almighty, it has been recognised that Sri SWAMI SATYANANDA is worthy of being awarded the sacred title of JNANA-YAJNOPABHRIT in appreciation of Meritorious services rendered in the field of **Dissemination of Spiritual Knowledge** and a firm devotion to Truth, Love and Purity, I hereby make this award in token of such recognition, with my best wishes and devout prayers to the Lord to bless the recipient hereof with health, long life, peace, prosperity, Eternal Bliss, success in all undertakings, Vidya, Tushti, Pushti and Divine Aiswarya.

This 7th day of September 1954.

Swami Sivananda

Chancellor











मानस-मुक्तावली

- मनुष्य जब अपने नैतिक जीवन का मूल्यांकन करने में पूर्ण समर्थ बनता है, तब आध्यात्मिक सिद्धियाँ स्वत: प्राप्त होती हैं। क्योंकि पूर्णत: पवित्र मनुष्य की वृत्तियाँ अन्तर्मुख रहती हैं, वह आत्मा में विश्वास रखने लगता है और अन्तत: वह विश्वास ही उसे सत्य का साक्षात्कार कराता है।
- सिद्ध पुरुषों या साधुओं की सिद्धि का भौतिक सुख के लिए उपयोग करवाना क्या संसारी की शोभा है? सिद्धियों के पीछे भागना क्या साधकों का कर्त्तव्य है? स्वार्थपूर्ति के लिए सिद्धियों का उपयोग करना क्या सन्तों का धर्म है? सिद्धियों के साक्षात्कार का प्रदर्शन क्या साधुता का लक्षण है?
- उसी सन्त ने सिद्धियों का सही मूल्यांकन किया है जो स्वार्थपूर्ति के लिए सिद्धियों का सदुपयोग या दुरुपयोग नहीं करता, जो सिद्धियों को जनता के प्रेय मार्ग के लिए प्रयुक्त न कर उनके श्रेय मार्ग के लिए ही उपयोग करता है, जो साधकों को सिद्धि-जाल में फँसकर गिरने से बचाता है–यही है सच्चे साधु की नि:स्पृहता और सच्चे संन्यासी का त्याग।
- कल मैंने उनसे कहा था कि भगवान नहीं है। मेरा कहने का तात्पर्य यही था कि तुम्हारी अविकसित भावना के सांचे में ढला हुआ व्यक्तित्व भगवान नहीं है। मैं फिर भी कहता हूँ–न तुम्हारी भावना का भगवान भगवान है, न मेरी भावना का भगवान भगवान है। उसे जानने के लिए, उसे पहचानने के लिये अपने को भगवान के सांचे में ढालो, न कि भगवान को भावना के सांचे में।

  किसी व्यक्ति विशेष में अवतार की कल्पना इसलिये नहीं की जाती कि वह सचमुच ईश्वर का अवतार है, किन्तु इसलिए की जाती है कि हम या तुम उसके परे किसी की कल्पना ही नहीं कर पाते, जिसको हम अवतार मानें। यदि तुम या मैं देवत्व के परे कोई व्यक्तित्व देख पाए, तो बस हम उसी में अवतार की कल्पना करने लगेंगे। नगर में जगमगाते सहस्रों प्रकाशों में हमारा मन उसी प्रकाश की ओर आकृष्ट होता है जो सबसे अधिक जगमगाता हो। इसी प्रकार विश्वभर में व्याप्त आत्मज्योति की ओर हम तभी आकृष्ट होते हैं, जब उसका प्रकाश किसी विशेष क्षेत्र से निखर कर जगमगा उठता है। अवतार का यही अर्थ है।

योग-वेदान्त, दिसम्बर 1955

मानस-मुक्तावली

- दु:ख जब असह्य बन जाय, तब समझना कि दु:ख की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके हैं और सुख के सुमधुर प्रभाव के आगमन में क्षणभर की भी देरी नहीं।
- पतन-उत्थान, अस्त-उदय, रुदन-हास्य, भाटा-ज्वार, चढ़ाव-उतार, जय-पराजय–ये तो हैं प्रकृति के सनातन नियम।
- कल का लुटेरा आज संत बना कि नहीं? लो, कल का पापी यह संत बन गया है। दानव ही तो मानव बन सकता है।
- जीवन में हार खाकर, निराश बनकर विधाता को उलाहना देना और हाथ पर हाथ रखकर बैठना मनुष्यत्व के उज्ज्वल मुख पर आसुरी कालिमा पोतना है।
- सुख-दु:ख की सृष्टि मन की कल्पना ही है।
- सतत् स्मरण प्रेम की निशानी नहीं, किन्तु प्रेम के अनेक अंगों में से सतत् स्मरण एक प्रधान अंग अवश्य है।
- क्या कहा? प्रेमी के लिए बलिदान का प्रश्न? स्वेच्छापूर्वक दी गई चीज़ तो भेंट है। स्वेच्छापूर्वक किया हुआ त्याग आत्म-संयम और प्रेम का पारितोषिक है। भेंट दी जाती है, जबकि बलिदान लिया जाता है।
- जहाँ प्रेम है वहाँ स्वतंत्रता कैसी और बन्धन कैसा? प्रेमदाता से मनमानी करने के लिए छुट्टी पाना क्या स्वतंत्रता है? सच्चे प्रेमी को प्रेमपात्र की अनुपस्थिति कभी आनंद प्रदान कर सकती है? फिर प्रेमपात्र का स्मरण करते हुए उसके सिद्धान्तों से मतभेद रखकर अपने सिद्धान्तों के प्रतिपालन की क्यों उसे चाहना? सच्चा प्रेम ही जिसका जीवन सिद्धान्त है, उसे यह सब झंझट क्यों? (गुरु-प्रेम का अभिलाषी प्रत्येक शिष्य इसे जाने, समझे और जीवन में रखे)।
- श्रम बिना सुख कहाँ? पुरुषार्थ बिना प्रारब्ध कहाँ?

योग-वेदान्त, जनवरी 1956



उड़ जा पंछी मौत से दूर

मानव है एक पंछी और उसकी उड़ान है जीवन। जीवन की उड़ान से ऐ मानव, तू मौत रूपी उत्तुंग, भयानक और विकराल पर्वतश्रेणी को पार कर ले। तू शिव और शक्ति को आत्म-समर्पण कर दे। वे तुम्हें आत्मशक्ति देकर तुम्हारे डैनों में अगाध शक्ति भर देंगे। फिर न तू जीवन से थक जायेगा, न मौत से हार खायेगा। तू अविरत गति से ईश्वर के उन्मुक्त साम्राज्य में विचरण करता रहेगा, अनंत युगों तक अमरत्व के अमृतमय उत्संग में खेलता रहेगा। आ, मैं धीरे से, आहिस्ता से तेरे कानों में जीवन का महामंत्र फूकूंगा– वह मंत्र है 'त्याग'।

स्वेच्छापूर्वक आत्म-समर्पण करने का नाम है त्याग। यही है परम पवित्र एवं उच्च आदर्श और श्रेष्ठ भावना। यही है परम कर्त्तव्य। फिर भावना श्रेष्ठ या कर्त्तव्य, इस प्रश्न का स्थान ही कहाँ? त्याग के इस भावनामय कर्त्तव्य से और कर्त्तव्य-भावना से हमें जीवन को पूर्णतया बदल देना है। त्याग के चरणों में हमें प्रेमपूर्वक अपना सारा जीवन न्यौछावर करना है। त्याग में प्रेम सन्निहित है और प्रेम का प्रोज्ज्वल स्वरूप ही त्याग है। त्याग विवेकपूर्ण होना चाहिए। अंधविश्वास से किया गया त्याग क्या त्याग है? त्याग का घमण्ड त्यागी के हृदय की कालिमा है। 'अपने सर्वस्व का मैं बलिदान दे रहा हूँ' इस भावना का स्वप्न में भी प्रवेश त्यागी की लघुता का सूचक है। जिस सिद्धान्त को जीवन में अपनाया, जिस महानुभाव को जीवन समर्पित किया, उनको मरते दम तक और जब तक जन्म लेना पड़े, तब तक वफादार रहना और उसमें किसी भी प्रकार की बाधा पहुँचाने वाले तमाम तत्त्वों से सदा दूर रहना, यही है सच्चा त्याग। त्याग के गौरव गरिमा के लिए त्यागी के दिल में शोक और व्याकुलता नहीं, किन्तु आनंद और उल्लास चाहिए।

त्यागी को तलवार की तरह अपना जीवन बिताना चाहिए। तलवार को जीवन का आदर्श समझकर उसकी तरह जीवन समर्पण करना चाहिए। तलवार एक बार जिसके हाथों में जाती है, उसका वह कभी विरोध नहीं करती। वह इसको अच्छी तरह से जानती है कि उसका आदर-निरादर सब कुछ मालिक के ही हाथों में है। अत: मालिक के हाथों में जाकर उसका वह विरोध नहीं करती। अपने टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी वह आह तक नहीं

भरती। यही तो है त्याग। स्वेच्छा से किया हुआ आत्म-समर्पण ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है, किन्तु ऐश्वर्य के भोग का फल है दुःख और आत्म-समर्पण का फल है सुख। पहले में गर्व है और दूसरे में गौरव।

किसी कवि ने लिखा है कि...

मत हो विरक्त जीवन से,
अनुरक्त न हो जीवन पर।

हमारा जीवन ऐसा ही होना चाहिए। संसार के सुख-भोगों के मध्य में रहते हुए भी हमें उनसे निर्लिप्त रहना चाहिए। हमें संसार से भागना नहीं है, सांसारिकता से भागना है। प्रलोभनों से भागना नहीं है, किन्तु उन्हें पराजित करना है।

संसार से या संसारी से घृणा करना या कठोरता दिखलाना त्याग नहीं है। अनुरक्ति और विरक्ति का मध्यम मार्ग ही त्याग है। राग को वस्तु या व्यक्ति विशेष में सीमित न रख कर समान रूप से विभाजित करने का नाम है त्याग।

त्याग द्वारा हमें कुटुम्ब के बंधन को, समाज के बंधन को और दुनिया के बंधनों को काटना है। सुख-वैभव रूपी लौह-शलाकाओं के संसार-पिंजड़े को तोड़कर उड़ जाना है, अमरता के गीत गाने, स्वतंत्रता का आस्वादन करने, दूर दूर, बहुत दूर विशाल वन में जहाँ... जहाँ सब कुछ अनंत ही अनंत है। 'उड़ जा पंछी मौत से दूर' के परम पवित्र मंत्रोच्चारण के साथ प्रयत्न करते रहना है, जब तक हम वहाँ पहुँच न पाएँ।

योग-वेदान्त, फरवरी 1956



पुरुषार्थ जीवन में सभी वीर करते हैं, किन्तु उन वीरों की सफलता असफलता में परिवर्तित होती है, जो प्रारब्ध से पाये हुए अनमोल रत्न का महत्त्व, कीमत और उपयोग न जानकर उपेक्षा करते हैं। यह पुरुषार्थ नहीं, घमण्ड है।

योग-वेदान्त, फरवरी 1956

आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप

(परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी के महागुजरात एवं सौराष्ट्र परिभ्रमण काल दरम्यान 27 जनवरी 1956 को पाटन में दिए सार्वजनिक भाषण का सारांश)

आप लोगों ने अनेक उपदेशात्मक व्याख्यान सुने होंगे, किन्तु आपने अपने दैनिक जीवन में उनका कितना उपयोग किया? आप यह तो जानते हैं कि यदि घर में पड़ी हुई किसी वस्तु का व्यवहार न करें, तो कुछ ही दिनों में वह अनुपयोगी होगी। ठीक यही दशा उपदेश की है। विद्या का उपार्जन व्यर्थ है यदि उसका समुचित उपयोग न किया जाए। वह विद्या सर्वथा निरर्थक है, जो दूसरों के काम न आए। इसीलिए जो उपदेश हमें मिले हैं यदि हम उनका अनुसरण नहीं करते तो वे निरर्थक ही हैं। वे अधिक काल तक हमारे पास टिक न सकेंगे। हमारे पास कहने को आध्यात्मिकता, सत्य, सदाचार–सभी कुछ हैं। किन्तु वे सब किस काम के? हमें अच्छे और पवित्र जीवनयापन के द्वारा इन्हें अभिव्यक्त करना चाहिए। पशुओं में भी मानवी संस्कार अवश्य दृष्टिगत होते हैं और मनुष्य में भी कुछ पाशविक संस्कार अवशेष रह गये हैं। हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि पाशविक संस्कार मूली में लगी हुई मिट्टी की तरह हममें मौजूद हैं। उसे साफ करना हमारा कर्त्तव्य है।

हमें अपने जीवन में मानवी संस्कारों का विकास करना है तथा पाशविक संस्कारों को हटा देना है। ये जन्मजात पशु संस्कार क्या हैं? जानवरों के जीवन का यदि हम निरीक्षण करें, तो हमें पता चलेगा कि जानवर भोजन करता है, निद्रा लेता है और दूसरों से डरता है। आरामतलब है उसका जीवन। एक कुत्ते का उदाहरण लीजिए। जहाँ कहीं भी उसे भोजन मिले वहाँ खा लेता है। मनुष्य भी यदि ऐसा कर सके तो हम उसे महान् नहीं कह सकते। मनुष्य ही सबसे उच्च कोटि का प्राणी है। पशु जन्म में जब मनुष्यत्व का विकास होता है, तब वह मानव रूप धारण करता है। वैसे ही मनुष्य में जब देवत्व के गुण पनप उठते हैं, तब सन्त का जन्म होता है। सन्त आध्यात्मिकता की चरम सीमा पर जब पहुँच जाता है तब उसके मुक्ति के द्वार उन्मुक्त होते हैं।

लोग कहते हैं कि उपदेश से हमारा जीवन शुभ और पवित्र होता है, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। गार्हस्थ्य जीवन एक परीक्षा है। जो इसमें सफलता

प्राप्त करता है, वह मुक्त हो जाता है, अन्यथा कोल्हू के बैल की भाँति जीवन-कोल्हू में चक्कर लगाता रहता है। हमारे दैनिक जीवन में प्रतिपल कसौटियाँ आती हैं। हमारे कई मित्र हैं और कई शत्रु भी। क्या हम उनके प्रति घृणा, द्वेष, ईर्ष्या से कभी नहीं देखते? अरे, इतना ही नहीं, उनके विनाश की चेष्टा में भी हम प्रवृत्त होते हैं।

मनुष्य समाज और विश्व की इकाई है। जब हमारे समाज की यह इकाई घर में या समाज में लड़ती रहे, तब समाज में शान्ति कैसे रहेगी? मनुष्य को अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर मानसिक शान्ति धारण करनी चाहिए। मानसिक शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब क्रोध को दमन करने में हम पूर्णतया सफल हो सके हों। विचारों के त्याग से शान्ति उपलब्ध नहीं होती। शान्ति की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। आध्यात्मिकता से मन के आलस्य, प्रमाद आदि का त्याग कर देना चाहिए; तब मनुष्य में नवीन चेतना उद्भूत होगी। समाज के प्रति उदासीन वृत्ति धारण करने से शान्ति संप्राप्त होगी, यह समझना भयंकर भूल है। समाज के कल्याण के लिये जो नया मार्ग स्थापित करता है, समाज की शान्ति के लिए जो नये-नये अनुसंधान करता है, वही शान्ति पाता है। जो अपने पास आने वाले को सुख और शान्ति प्रदान करता है, उसे खुश करने का प्रयत्न करता है, उसे ही सुख और शान्ति प्राप्त होती है।

आध्यात्मिकता की सच्ची परिभाषा क्या है? शान्ति। किसी को तनिक भी कष्ट न देना। आध्यात्मिक, राजनैतिक या सदाचार संबंधी विचारों या कार्यों से यदि हम दूसरों के दिल को दुखाते हैं, तो हमें कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। किसी कार्य के करने में यदि आपका उद्देश्य शुभ है तथा दूसरों को शान्ति प्रदान करना ही उसका हेतु है, तो मन की शान्ति अविच्छिन्न रहेगी। भले ही वह कार्य अत्यन्त निम्नकोटि का हो। ध्यान रहे कि बुरे या गलत कामों से हम किसी को भी प्रसन्न नहीं कर सकते। प्रत्येक मनुष्य की प्रसन्नता ही धर्म की सच्ची परिभाषा है। समाज उस व्यक्ति से खुश रहता है जो किसी को भी हानि नहीं पहुंचाता, किसी को भी कष्ट नहीं देता।

पूज्य स्वामी शिवानन्द जी हमेशा यही उपदेश देते हैं कि दूसरों को खुश रखो। यह बात वे जंगल में जाकर अथवा एकांत में बैठकर नहीं समझाते, वरन् समाज में मनुष्यों के बीच रहकर ही समझाते हैं। आपके सिद्धान्त से यदि किसी व्यक्ति की प्रसन्नता पर आघात पहुंचता है, तो आपको उस

सिद्धान्त को अवश्य तिलांजलि दे देनी चाहिये। स्वामीजी मानते हैं कि साधु-संन्यासियों को फूलों की क्या आवश्यकता? पादपूजा का उनको क्या उपयोग? शरीर की यह पूजा क्यों? किन्तु इसके साथ ही उन्होंने जीवन में जिस सत्य का साक्षात्कार किया है, उसे समझना हमारे लिये जरूरी है। वह है भावना। उन्होंने प्रेम का वास्तविक मूल्य पहचाना है। अगाध श्रद्धा से लोग जब भावना का दीप जलाकर, प्रेम पुजापा से उनके पादपद्म की पूजा करना चाहें तो क्या स्वामीजी उनकी कोमल भावना पर कुठाराघात करें? एकाध व्यक्ति यदि ऐसा करे तो हम कह सकते हैं कि शायद वह व्यक्ति मूर्ख होगा, किन्तु सभी तो मूर्ख नहीं हो सकते? ऐसे अवसरों पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों को अलग रखना होगा। ऐसा करने से किसी की भी हानि नहीं होती, वरन् इससे लाभ ही होता है। वह लाभ है औरों को खुशी और आनन्द। यही आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप है।

एक दिन जब एक भिखारी हमारे पास आया और कम्बल मांगने लगा, तब किसी ने कहा कि पिछले साल ही तो कम्बल दिया था, आज फिर क्यों कम्बल मांगने आ गए? श्री स्वामीजी कहने लगे, ''भाई, तुम्हें कम्बल नहीं देना है तो न सही, किन्तु उस भिखारी का अनादर व अपमान न करो। उसे शान्ति प्रदान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। उसके साथ पूर्ण शान्ति से व्यवहार करो।'' शान्ति और आनन्द को अपने जीवन में व्यवहृत करने के असंख्य मौके प्रतिदिन आते रहते हैं; किन्तु कितनी बार हम उन कसौटियों पर खरे उतरते हैं? यह संसार एक स्कूल है, जहाँ हम स्वानुभव तथा दूसरों की गवेषणा से बहुत कुछ सीख सकते हैं। यहाँ असंख्य साधुओं ने मनुष्यों के मध्य रहकर ही अनेक अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं। हिटलर ने युद्ध विषयक अनुसंधान युद्धभूमि में किये थे, न कि चहारदीवारी के अन्दर रहकर। जनसाधारण की यह मान्यता है कि साधुओं को किसी चीज का झंझट नहीं। वे सब तो झंझट में उलझे हुए हैं और इसीलिए वे ही जानते हैं कि संसार सत्य है या झूठ? साधुओं को और काम ही क्या होता है? ऐसे स्थान पर आश्रम की स्थापना कर श्री स्वामीजी ने वास्तविक जीवन द्वारा संसार के इन प्रश्नों का उत्तर दिया है। आश्रम की स्थापना ऐसे स्थल पर हुई है, जहाँ सभी प्रकार के लोग आते हैं, सभी सांसारिक झंझटों को झेलना पड़ता है। श्री स्वामीजी के उच्च जीवन और आदर्श व्यवहार से आकृष्ट होकर भारत के कोने-कोने से लोग उनके दर्शनार्थ वहाँ पधारते हैं। कहाँ-कहाँ से लोग

आकर वहाँ निवास करते हैं। हम सभी आज संन्यासी वेश में आपके सामने हैं। जब हम आए तब हमारी न किसी से जान थी न पहचान। हमने एक-दूसरे को देखा भी नहीं था। मैं जहाँ से आया हूँ कितनी दूरी पर है वह स्थान? किन्तु आज हमारा सम्बन्ध प्रेमभावना से बंधा हुआ है। उन्होंने अपने आत्मज के रूप में हमें अपना लिया है। वे हमसे तथा सबसे ऐसा प्रेम करते हैं जैसा कि पिता पुत्र के साथ क्वचित् ही करता होगा। गृहस्थ लोग तो जब स्वामीजी के दर्शन के लिए आते हैं, तो कुछ-न-कुछ भेंट उन्हें चढ़ाते हैं, किन्तु जब हम आए थे तो अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं आए थे।

स्वामीजी ने हमें यह सिखाया कि संन्यासी होते हुए भी कार्यरत रहो। स्वयं स्वामीजी ब्रह्ममुहूर्त्त में चार बजे से लेकर रात्रि के ग्यारह बजे तक काम करते हैं। आश्रमवासियों को अत्यधिक कार्यभार के कारण कभी-कभी जप, ध्यान, कीर्तन इत्यादि के लिए खास समय निकाल कर साधना करने के लिए भी अवसर नहीं मिलता। स्वामीजी का कहना है कि मन और शरीर को तनिक भी विश्राम न दो। मन को स्वच्छन्द बन कर विचरण करने न दो। उन्हें सदा कार्यव्यस्त रखो, जिससे कि दोनों थक जाएँ, किन्तु इसके साथ ही आध्यात्मिकता की भावना वैसी की वैसी अविच्छिन्न बनी रहे। इसमें जरा भी अन्तर न आवे। गृहस्थों की चुनौती का कितना सुन्दर है स्वामीजी का यह उत्तर! संन्यासी सुबह से शाम पर्यन्त कार्य करते रहने पर भी अपने आध्यात्मिक प्रवाह से क्षण भर भी विमुक्त नहीं होता। सांसारिक पदार्थों की न तो वह चाह करता है और न ही उनके पीछे भागता है। वह तो प्रलोभनों से मुख मोड़ कर आगे ही चलता जाता है। गृहस्थों के उन कार्यों का क्या उपयोग जिनमें आध्यात्मिकता का समावेश न हो। श्री स्वामीजी ने व्यावहारिक जगत् में रहकर विश्व को एक अनूठा अनुसन्धान दिया है। स्वामीजी के जीवन पथ का अनुसरण करने वालों को धर्म के साथ कभी टक्कर नहीं लेनी पड़ती। धर्म और आध्यात्मिकता की पटरियों पर जब हमारे जीवन की रेलगाड़ी चलती है, तभी वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकती है। जीवन ने यदि इनमें से किसी को भी समुचित रूप से स्वीकार नहीं किया, तो जीवन की रेलगाड़ी को टक्कर खानी पड़ती है। फलत: मिलती है अशान्ति। इसीलिए प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय को ही योग कहते हैं। परमार्थ और व्यवहार के संयोग का नाम है धर्म।

इस प्रकार के जीवन में शत्रु और मित्र का भेद नहीं होता और न वहाँ ऊँच और नीच का भेद होता है। समाज से किसी भी व्यक्ति का हमें बहिष्कार

नहीं करना चाहिए। जो भावना हम एक के लिए रखते हैं, वही हमें दूसरों के लिए भी रखनी चाहिए। जीवन और धर्म, परमार्थ और व्यवहार यदि एकरूप होकर नहीं चलते, तो हमें ऐसे जीवन और ऐसे व्यवहार को परिष्कृत करना होगा, अन्यथा वे आपस में टकराकर अशान्ति का सृजन करेंगे।

*　　*　　*　　*

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी, श्री स्वामी भूमानन्द जी, श्री स्वामी शिवानन्द-शान्तानन्द जी तथा श्री मनुवर्य जी इत्यादि के सौराष्ट्र तथा गुजरात के परिभ्रमण के कार्यक्रम का विवरण–

पाटन	20 जनवरी से 3 फरवरी तक
राजकोट, बांदरा, गोंडल, सोमनाथ, जूनागढ़, माउण्ट गिरिनार, बीकानेर, घ्रांगध्रा, अहमदाबाद इत्यादि	4 फरवरी से 14 फरवरी तक

अहमदाबाद	प्रस्थान	11.45 रात्रि	14 फरवरी
सूरत	आगमन	6.30 प्रात:	15 फरवरी
	प्रस्थान	प्रात:	17 फरवरी
बारडोली	आगमन	मध्याह्न	17 फरवरी
	प्रस्थान	10.00 पूर्वाह्न	18 फरवरी
बड़ौदा	आगमन	6.00 सांयकाल	18 फरवरी
	प्रस्थान	7.00 प्रात:	21 फरवरी
अहमदाबाद	आगमन	10.00 पूर्वाह्न	21 फरवरी
	प्रस्थान	8.40 प्रात:	22 फरवरी
राधनपुर	आगमन	6.00 सांयकाल	22 फरवरी
	प्रस्थान	6.30 प्रात:	26 फरवरी
अहमदाबाद	आगमन	9.00 रात्रि	26 फरवरी
	प्रस्थान	प्रात:	1 मार्च
मोडासा	आगमन	प्रात:	1 मार्च
	प्रस्थान	अपराह्न	4 मार्च
अहमदाबाद	आगमन	रात्रि	4 मार्च
	प्रस्थान	4.45 सांयकाल	5 मार्च

रेवाड़ी	आगमन	5.00 सांयकाल	6 मार्च
	प्रस्थान	बाद में सूचित किया जावेगा	

यदि उदयपुर शाखा का कार्यक्रम निश्चित हो गया तो रेवाड़ी के कार्यक्रम में साधारण सा परिवर्तन होने की संभावना है। ऐसी दशा में पार्टी प्रथम उदयपुर जावेगी और तत्पश्चात् रेवाड़ी। कार्यक्रम में परिवर्तन की सूचना रेवाड़ी को समय से पूर्व ही दे दी जायेगी।

योग-वेदान्त, फरवरी 1956



बावरी जोगन

(रात्रि और जोगन का संवाद)

'री जोगन! तुझे मेरे तिमिराच्छन्न रूप से डर नहीं लगता?'

'नहीं, डरती नहीं। जानती है, मेरे जीवन में तुझसे भी अधिक गाढ़ा अंधकार व्याप्त है? मैं अपने काले रूप की ओर देख कर कांप उठती हूँ, थर्रा उठती हूँ, और अट्टहास करती हूँ।'

'जोगन, तेरी बात अजीब है। तुझे अरण्य की विजनता भयावनी नहीं लगती?'

'अरण्य की विजनता को ही मैं वरदान समझने का प्रयत्न कर रही हूँ। साथी के सामीप्य से मुझे डर लगता है।'

'अरे पगली, अपने साथी से भी भला कोई डरा करता है?'

'मेरे साथी का तो इतना विराट् रूप है कि उसके कृष्ण कुंतल केशराशि के घने अंधकार में मैं उलझ जाती हूँ, खो जाती हूँ। सुना है तुमने उनके निखरते सौन्दर्य, उनकी अभिनव, मंगलमयी सुष्मा, मधुर मुस्कान इत्यादि के विषय में? किन्तु... किन्तु, तू जा, मुझे अधिक संतप्त न कर, रहने दे मुझे इसी हालत में।'

योग-वेदान्त, अप्रैल 1956

भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

संक्षिप्त जीवनचरित्र

पूर्व नाम–डॉ. पी.वी. कुप्पुस्वामी अय्यर। जन्म 8 सितम्बर, 1887 को पट्टामडाई (टिन्नीवेली, दक्षिण भारत) में हुआ। विद्यार्थी जीवन आदर्शमय रहा। आपने मलाया जाकर 10 वर्ष डॉक्टर के रूप में दीन रोगियों की सेवा की। 1924 को ऋषिकेश में शंकर-परम्परागत दशनाम संन्यास की दीक्षा ली।

1930 तक ऋषिकेश में सेवा, आत्मसाधना और कठोर तपस्या की। कठोर तपोलीन स्वामी जी ने क्रन्दन की उपेक्षा नहीं की। किसी महात्मा को दवा ला दी, किसी के लिए भिक्षा, तो किसी के वस्त्र धो दिए और किसी के पांव दबाये। लोकोत्तर होकर भी लोक-संग्रह आपकी विशेषता है। आपकी साधना जीवन-साधना नहीं, किन्तु आपका जीवन ही साधना है। 1935 में ज्ञानोदय हुआ, परिव्राजक बन, हिमालय से कन्याकुमारी तक भागवत-धर्मप्रचारार्थ यात्रा की।

16 अप्रैल, 1936 को वैदिक संस्कृति के पुनरोदय, तथा आध्यात्मिक विद्या के व्यापक प्रचार के लिये 'दिव्य जीवन मंडल' की स्थापना की। आपने रोगग्रस्त, अशिक्षित पर्वतीयों के लिये धर्मार्थ चिकित्सा तथा विद्यादान का प्रबन्ध भी किया है। आध्यात्मिक विद्या-प्रसार के लिए 23 अप्रैल 1938 को शिवानन्द प्रकाशन मंडल की स्थापना कर पवित्र ग्रन्थों का प्रकाशनारंभ किया और पश्चिम में योग-वेदान्त शिक्षण केन्द्रों की स्थापना की। 8 सितम्बर, 1938 को दिव्य जीवन (मासिक) का अंग्रेजी संस्करण निकाला, जो भारत की सभी भाषाओं में प्रकाशित होता है। 3 दिसम्बर, 1943 को श्री विश्वनाथ मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा की और अतिरुद्रादि पवित्र यज्ञों का पुनरारंभ किया। सन् 1945 में रोग-निदान तथा शुद्ध भारतीय औषधियों के निर्माण के लिये आयुर्वैदिक औषध निर्माणशाला का उद्‌घाटन किया। सन् 1945 में सर्व-धर्म सम्मेलन और 1947 में सार्वदेशिक साधु मंडल की प्रथम बैठक का आयोजन किया। 1 जनवरी, 1949 को योग-विद्या-प्रचारार्थ ज्ञानज्योति (मासिक) का प्रकाशन आरम्भ किया। वेदान्त-तत्त्वोपदेश के लिये 3 जुलाई, 1948 को योग-वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय साप्ताहिक का श्रीगणेश हुआ। 9 सितम्बर, 1950 से 8 नवम्बर तक हिमालय से लेकर लंका तक समस्त भारत

में इनकी दूसरी दिग्विजय यात्रा हुई। भारत के सभी प्रान्तों में धर्म-विद्या का प्रचार तथा आध्यात्मिक जीवन-संदेश और आदर्श-जीवन का उपदेश दिया।

आपने अब तक संस्कृति, लोकधर्म, योग, दर्शन तथा स्वास्थ्य इत्यादि विषयों पर 200 से अधिक ग्रन्थ रचे हैं। गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, राजयोग-भाष्य तो विश्व को आपकी देन हैं ही, साथ ही आपके अन्य ग्रन्थ हैं, जिनकी स्पष्टता और जीवन-स्फूर्तिमत्ता विश्व के किसी भी दर्शन-साहित्य में नहीं। भारतेतर अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, लैटविया, अफ्रीका, चीन, बर्मा, डेन्मार्क, फ्रांस, ईरान, ऑस्ट्रेलिया और स्वीडन में आपके मण्डल की शाखाएँ हैं, जो ईश्वर, मनुष्य और धर्म की विराट् एकरूपता का ज्ञान जन-जन की अनुभूतियों में ओतप्रोत कर रही हैं। भारत में उनकी संख्या 300 है। पाश्चात्य जगत् के समक्ष आपने भारतीय संस्कृति का वह आदर्श रूप प्रकाशित किया है, जो आज की अनुकूल आवश्यकता है। भारत को पहले निरा-परम्परावादी और अन्धविश्वासी कहा जाता था, आज समस्त विश्व आदर्श-जीवन और उस जीवन की विचारधारा के निश्चित रूप को जानने के लिए तथा अपने हाथों रची गई राग-द्वेषादि की समस्या की सिद्धि के लिए भारत की ओर देख रहा है। आपने अपने साहित्य द्वारा यह सिद्ध किया है कि भारत निरा-परम्परावादी, मूर्ति-पूजक, रूढ़िग्रस्त, असभ्यों और जादूगरों का देश नहीं, अपितु आदर्श सभ्यता एवं व्यावहारिक दर्शन और सत्य परम्परा का प्रथम उदयाचल है। आपका दर्शन सभी विचार-धाराओं का समन्वय है, यह पूर्णयोग है।

॥ ॐ शिवानन्दाय नमः ॥

योग-वेदान्त, मार्च 1956

सेवा धर्म इतना गहन है कि सहज में वह प्राप्त नहीं होता। कर्म सेवा नहीं है। हृदय के सच्चे भाव–दुर्जनता के स्थान पर सुजनता, घृणा के स्थान पर प्रेम के परिस्थापन को ही सेवा कहते हैं। अनाथों के लिए अनाथालय, भूखों के लिए भोजन–यह सब भौतिक सेवा है, प्राणी मात्र की सेवा भी सेवा नहीं कही जाती; सच्ची सेवा है आत्मसेवा; मलिन वासना रूपी आत्मा को आवृत्त करते हुए आवरण को हटाना।

योग-वेदान्त, फरवरी 1956

शिवानन्द-प्रतिध्वनि

(यह भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी के धर्म-सन्देश की प्रतिध्वनि है)

आयुष्मान ने जब भगवान बुद्ध से प्रश्न किया था कि संसार दुःखी क्यों है, तब भगवान बुद्ध ने एक बुढ़िया का उदाहरण देकर समझाया था। गौतमी नामक एक बुढ़िया ने मेरे पास आकर कहा, 'हे भगवन्,मेरा एकलौता बेटा मर गया है, उसे जीवनदान दो।' मैंने कहा, 'हाँ, मैं तुम्हारा दुःख अवश्य दूर कर सकता हूँ, यदि तुम इसके उपाय के लिए जो चीज मुझे चाहिए वह ला दो। थोड़ी सरसों चाहिए ,वह मुझे ला दो। मैं उसे मन्त्रोच्चारण से पवित्र कर दूंगा और फिर तुम्हारा बेटा सजीव हो जायेगा।' गौतमी ने सोचा इसमें कौन सी बड़ी बात है। वह उठ कर चलने लगी। मैंने उसे रोक कर कहा, 'सुनो, मुझे तो उस घर की सरसों चाहिये, जिस घर ने कभी भी मातम न मनाया हो। जहाँ कभी दुःख और मृत्यु ने प्रवेश न किया हो।' बेचारी गौतमी सारे नगर में घर-घर घूमी। किसी ने कहा कि मेरा पिछले साल ही पुत्र मर गया है। किसी ने कहा, 'बहन, चाहे जितनी सरसों ले लो किन्तु मेरे पति हाल में स्वर्गवासी हुए हैं।' एक भी घर ऐसा न मिला जिसमें कभी भी मातम न मनाया गया हो। वह वैसी ही व्यथित दशा में मेरे पास आई। मैंने उसे धीरज देते हुए कहा, 'माँ, इस दुनिया में एक भी घर ऐसा नहीं है, जहाँ मृत्यु ने अपना हाथ न रखा हो। जरा, दुःख और मृत्यु तो प्राणी मात्र के लिए है ही। संसार में ऐसा कोई भी युग नहीं रहा जबकि व्यक्ति को दुःख न हुआ हो।'

दुःख का कारण

मनुष्य को दुःख क्यों? मनुष्य को यदि संसार की वस्तुओं के होने से आसक्ति और मोह होता है तो इसके न होने से उसे व्यथा और दुःख होता है। मनुष्य के दिल में यदि किसी वस्तु के लिए आसक्ति नहीं तो वस्तु के अभाव में उसे दुःख भी नहीं होता। हम आज अखबारों में पढ़ते हैं कि कई आदमी मर गये। हमें क्या लेशमात्र दुःख होता है? नहीं। क्यों हमारी आँखों से आंसू नहीं बहते? इसलिए कि हमें उनसे आसक्ति नहीं है। किन्तु एक बात का अवश्य ख्याल रखना है कि अगर कोई कोमल दिल का व्यक्ति होता तो उसे दूसरों को देखकर अवश्य रोना आ जाता है। उसका हृदय करुणाद्र हो उठता है।

जिस प्रेम, मोह और आसक्ति के कारण हम दु:खी होते हैं, उसी प्रेम, मोह और आसक्ति को यदि हम सारे संसार की ओर व्यक्त करें, तो हमारा दु:ख हवा हो जायेगा। इसमें त्याग की भावना है। इस त्याग का अर्थ घर छोड़कर भाग जाना नहीं है। किन्तु अपनी सहानुभूति का सभी के प्रति समान रूप से विभाजन करने का नाम है त्याग। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी बार-बार त्याग का उपदेश दिया है।

वैराग्य व नाम-भोग

यदि वैराग्य ने समाज का बन्धन तोड़ना चाहा तो उसमें कुछ बुरा नहीं था। फिर भी नैतिक दोषारोपण किया जाता है कि वैराग्य ने समाज को निर्बल बना दिया है। वैराग्य ने यदि समाज को निर्बल बना दिया है तो क्या भोग और राग ने संसार को प्रबल बना दिया है? हमारे देश में जो आज थोड़ा भी धर्म, मनुष्यत्व आदि है, उसका श्रेय वैराग्य को ही है। प्राचीन काल के ग्रीस या रोम की आज हालत देखिए। कुछ मुठ्ठी भर आदमी तो रह गए हैं। कहाँ गई उनकी सभ्यता? आज भारत की सभ्यता देखिए। भारत के गौरव की अक्षुण्णता है उसकी त्यागमय संस्कृति।

जो त्याग करने योग्य है उसका त्याग करो। बुरी बातों का, बुरे विचारों का और बुरे कर्मों का त्याग करो। अच्छी बातें, अच्छे विचार और अच्छे कर्म अपनाओ। इसीलिए जब-जब भगवान से यह प्रश्न पूछा जाता था कि मनुष्य को दु:ख क्यों मिलता है, तब जवाब मिलता था–आसक्ति।

हमारी सामाजिक परिस्थिति ऐसी होती है कि हम दु:ख में फंस जाते हैं। लेकिन उन कष्टों से मुक्ति पाना हमारा काम है। परिवार में ही जो अपना कर्त्तव्य, अपनी करुणा, आसक्ति और प्रेम सीमित है, उसके स्वाद का आनंद हम दूसरों को क्यों नहीं देते? संसार में सभी को यह बात ठीक तरह से समझ लेनी चाहिए कि कष्ट का कोई निवारण नहीं होता। बोलिए, आज कितने दु:खों का निवारण हुआ है? दु:ख की रचना तो होती ही रहेगी। एक व्यक्ति दु:खो की लहरों को काट कर अपना मार्ग बना लेता है जबकि दूसरा व्यक्ति दु:खों के भँवर में फंस कर नष्ट हो जाता है। कठिनाई और दु:ख का इतिहास सुयश का इतिहास है। क्योंकि कष्ट काराओं को सहकर ही हम जीवन के आध्यात्मिक पथ को चुनते हैं। जीवन को जब हम आध्यात्मिक बना देते हैं, तब दु:ख के भंवर से हमें छुटकारा मिलता है।

अखण्ड सुख

यो वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति... आज गुलाब के पुष्प में सुगंध आती है, किन्तु कल क्या होगा? क्या कल भी वही फूल वैसी की वैसी सुगंध देगा? नहीं, वह नश्वर है। हमें तो ऐसा सुख चाहिए जो शाश्वत रहे। बड़े-बड़े महल या साम्राज्य मिलें, किन्तु सुख नहीं मिला तो क्या फायदा? जब तक सुख किसी वस्तु पर निर्भर है तब तक वह क्षणिक है। एक बार आम्रपाली ने अपने पुत्र बाल श्रमण से पूछा, 'बेटा तुम मेरे साथ रहोगे? तुम सुखी होवोगे, तुम बड़े हो जाओगे; फिर मैं तुम्हारा ब्याह करूँगी, फिर ऐसा होगा, वैसा होगा।' बालक पूछता गया, 'इसके बाद? इसके बाद?' अन्त में वह न बता सकी। तब बालक ने कहा,'अन्त में आएगी जरा और मृत्यु। मैं तो ऐसा सुख चाहता हूँ जो शाश्वत हो।' तब स्त्री निरुत्तर हो गई।

सुख कहाँ? बालक खिलौने और मिठाई से प्यार करता है, जब युवक बनता है तब कंचन, कीर्ति और कामिनी को पसंद करता है, प्रौढ़ावस्था में बच्चे और वृद्धावस्था में फिर से युवा होने की तमन्ना करता है। मौत का जब पैगाम मिलता है तब जीवन के लिए तड़पता है। कामनाओं की शृंखला का कहाँ अन्त? जिसे कामना होती है वे शंकराचार्य के बतलाये हुए सत्य को समझें–

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरंगभंगचपला विद्युच्चलं जीवितम्
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना॥

जीवन के दुःख का स्रोत है एषणा और सुख का स्रोत है त्याग।

महान् आश्चर्य?

पाण्डवों की एक कहानी है। जब वे जंगल से जा रहे थे, तब उनको प्यास लगी। वे पानी की खोज में चले। वहाँ एक तालाब था। किन्तु वहाँ पानी पीने से पूर्व यक्ष के प्रश्न का उत्तर देना पड़ता था। नकुल, सहदेव, भीम और अर्जुन वहाँ गए; किन्तु कोई भी वापस नहीं लौटा। तब धर्मराज गए। यक्ष ने धर्मराज को पानी पीने के पहले प्रश्न के उत्तर देने के लिए कहा। पहला प्रश्न था कि इस संसार में सबसे महान् आश्चर्य क्या है? हर रोज लाखों की संख्या

में लोग मर रहे हैं फिर भी मनुष्य अपने आपको अमर समझता है। यही सबसे बड़ा आश्चर्य है। एक सर्प के मुँह में फंसा हुआ मेंढक मक्खी को पकड़ने का प्रयास करता है। इसी तरह हमारे मित्र भी बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाते हैं और भूचाल के एक ही प्रकोप से या किसी दूसरे कारणवश वे गिर जाती हैं। तब निगम होकर अफसोस करने लगते हैं। इसीलिए हम यह दुहराते हैं कि भगवान ने जो कुछ दिया है उसका उपयोग निष्काम भाव से किया जाए। *'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, इदं शरीरम्'* ऐसी भावना बनानी चाहिए और इसीलिए योगियों को शरीर की ओर भी ध्यान देना पड़ता है।

बालि की मृत्यु से व्याकुल तारा को देखकर श्री राम कहने लगे–तुम शोक से सम्पीड़ित क्यों हो? यह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है और जीव तो नित्य है; फिर किसके लिए रोती हो? इससे हमें सीखना है कि सभी के लिए मृत्यु निश्चित है। अत: शोक वृथा है। किन्तु अपने जीवन में भोगने वाले दु:खों को हम तभी मिटा सकते हैं जब हम अपने आनंद और सुख-भोग के लिए दूसरों का शोषण करना छोड़ दें; दंभ और पाखण्ड का त्याग कर सरल जीवन अपनाएँ। आज एक ओर हम दुराचार करते रहते हैं और दूसरी ओर आध्यात्मिकता की बातें। इससे पापों का नाश थोड़े होता है। एक ओर पाप और दूसरी ओर धर्म-कर्म। मिट्टी के फूटे हुए घड़े में लाख बार तुम पानी भरने का प्रयत्न करो किन्तु कभी भी सफल नहीं होओगे। धर्म का भी इसी प्रकार हम जीवन में आचरण करते हैं। हम समझते हैं कि धर्म-कर्म से हमें पुण्य होगा और हमारे पापों का प्रक्षालन हो जाएगा। धर्म-कर्म से पुण्य भले ही होता हो, किन्तु पापों का प्रक्षालन तो नहीं होता। किए हुए पापों का फल अवश्य ही भुगतना पड़ता है। फिर हम ऐसे पापाचार से दूर क्यों न रहें?

साधना करो! साधना करो

आज उपदेश सुन रहे हैं और सुनाते आ रहे हैं, किन्तु जो व्यक्ति एक कान से यह बातें सुन उसे अपने हृदय में अंकित कर लेता है, वही उत्तम कोटि का श्रोता है। इसको श्री स्वामी शिवानन्द जी ने "जीवन में सफलता के रहस्य" में 'तीन खोपड़ियों की कहानी' द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया है।

एक दिन राजा विक्रमादित्य के दरबार में एक राक्षस तीन खोपड़ियाँ लेकर आया और कहने लगा–हे राजन्! अपने दरबार के पंडितों को कहिए

कि इन तीनों में सबसे सुन्दर और उत्तम खोपड़ी को छांट लें। यह कार्य एक सप्ताह के अन्दर होना चाहिए। एक सप्ताह में यदि नहीं हुआ तो मैं अवश्य प्राण हर लूँगा।

विक्रमादित्य ने इस चुनौती को स्वीकार किया और पंडितों के पास फिर से वह बात दुहराई। राजाराम नामक पंडित ने सभी को आश्वासन देते हुए कहा कि वह अवश्य उत्तम खोपड़ी छांट सकेगा।

सातवें दिन जब वह राक्षस दरबार में उपस्थित हुआ तब राजाराम ने कहा–जिस खोपड़ी में एक कान से दूसरे कान तक लोहे की शलाका निकल सकती है वह निकृष्ट है। जिस खोपड़ी में शलाका एक कान से दूसरे कान में नहीं निकलती, किन्तु मुंह के रास्ते निकल जाती है, वह मध्यम कोटि की है। और जिस खोपड़ी में लोहे की शलाका एक कान से हृदय तक पहुंच जाती है वही खोपड़ी तीनों में सर्वोत्तम है। इसका अर्थ वही व्यक्ति सर्वोत्तम है, जो व्यवहारपरायण हो।

हमें व्यवहारपरायण होना ही पड़ेगा, क्योंकि कर्म तो है बीज की तरह। कर्म होते ही उसके बीज अंकुरित होने लगते हैं और यथासमय फिर उसका फल मिलता है।

कष्ट या नयन-अंजन

पूर्ण बनना अत्यन्त मुश्किल है और जब तक हम पूर्ण नहीं बनेंगे तब तक कर्म और उसके फल इत्यादि का चक्कर चलता ही रहेगा। जब तक यह चक्कर चलता रहेगा तब तक कष्ट भी हम पाते रहेंगे। हमें प्रेमपूर्वक कष्ट का स्वागत करना चाहिए, क्योंकि कष्ट द्वारा ही तो हमारे मन के कलुष और दुर्विचार दूर होते हैं। जिन लोगों के जीवन में कष्ट आते हैं वे प्राय: धर्म और सात्त्विक पथ पर प्रयाण करना आरम्भ कर देते हैं।

जीवन में कष्ट के आने से ही तो वीरता, शौर्य, सहनशक्ति और धैर्य का महत्त्व है। जीवन की महत्ता भी कष्ट को सहते हुए आगे बढ़ने में है। कष्ट की भी सीमा होती है। भले हमारे जीवन में अनेक कष्ट आएँ किन्तु उन कष्टों से हमारी आँखें खुलनी चाहिए। कष्ट से आंखें फोड़कर यदि हम अन्धे बन गए तो क्या फायदा?

कष्ट से यदि कुछ शिक्षा पानी है तो हमें वस्तुओं और घटनाओं के आन्तरिक स्वरूप को जानना है, उनके रहस्य को समझने का प्रयत्न करना

है। जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में संपूर्ण परिवर्तन होना चाहिए। जीवन के परिवर्तन का श्री गणेश साहस, स्वार्थ त्याग और सदाचार से करो। संपीड़ित और व्यथित मानवों के कष्ट निवारण के लिए आगे पैर बढ़ाओ। यह मत सोचो कि हम ही स्वयं दु:खी हैं तो औरों के कष्ट को कैसे मिटाएँ? अन्य को सुख-शांति देने से आपको भी सुख सम्प्राप्त होगा। यदि हम कष्ट को सहर्ष स्वीकार करें तो क्या कष्ट कभी भी क्लेश बनकर हमारे जीवन की प्रगति के ज्वार को रोक सकता है? कष्ट हमें न तो कोई नुकसान पहुँचा सकता है और न तो हम उससे अन्धे बन सकते हैं। वह तो हमारा नयन-अंजन है।

जीवन की शोभा और आनन्द कष्ट से ही है। सुख और आनन्द का महत्त्व और मूल्य कौन करता यदि दु:ख और कष्ट का अस्तित्व नहीं होता? धैर्य, साहस और सहनशक्ति जैसे गुणों का क्या कष्ट के बिना आविर्भाव हो सकता है?

कष्ट का अहर्निश चिन्तन करने वालों के लिए जीवन अभिशाप है, कष्ट को विवशता से सहन करने वालों के लिए वह बोझ है, वीरता से सामना करने वालों के लिए वह युद्धभूमि है, कष्ट और आनन्द को समान रूप से समझने वालों के लिए वह वरदान है।

लाला तुतवाड़ी, पाटन (उत्तर गुजरात) में सार्वजनिक सभा में श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी के इस धर्म-सन्देश का उच्चारण किया (रिपोर्टर– श्री रसिक भाई सुथार)

योग-वेदान्त, मार्च 1956



पाना क्या जो खोया हो। जो मेरा ही था उसे पाऊँ कैसे?
याद तो उसे करते हैं, जिसे हम भूलते हैं, जो दूर है। जो सदा आँखों के सामने ही है उसे भूलना कैसे? और उसकी याद कैसी?

योग-वेदान्त, जनवरी 1956

दिव्य जीवन मंडल

उद्देश्य * कार्यक्रम * विविध प्रवृत्तियां * सन्देश

संस्थापक–भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती
जन्म–16 अप्रैल, 1936
उद्देश्य–आध्यात्मिक विद्या प्रसार! भारत में 250 और विदेशों में 50 शाखाएँ अधिकृत रूप में हैं, जिनका संचालन श्री स्वामीजी के तत्त्वावधान में होता है। इस मंडल के अन्तर्गत कई उपमंडल भी हैं, जो इसके उद्देश्य के प्रचार के पूरक हैं।

1. शिवानन्द प्रकाशन मंडल–वैदिक संस्कृति के उदय के लिए, धार्मिक आचार के प्रचार के लिए, इस मंडल ने श्री स्वामी जी की 200 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिनमें श्री गीता का शिवानन्द भाष्य, ब्रह्मसूत्र, राजयोग और सदाचार, आरोग्य, योग तथा संस्कृति-विषयक और भी बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं।
2. औषधि के पवित्र-निर्माण और उनमें शास्त्रीय विधि के अवतरण के लिए आयुर्वेद औषध निर्माणशाला इस मण्डल की आर्थिक सहयोगिनी है।
3. निःशुल्क चिकित्सालय–पर्वत-निवासी रोगियों और तीर्थयात्रियों तथा कुष्ठ-रोगियों का एक मात्र अवलम्ब है। समय-समय पर धर्मार्थ नेत्र-चिकित्सा तथा अन्य कैम्पों का आयोजन किया जाता है।
4. शिक्षा के लिए विद्यापीठ भी है, जिसमें आस-पास के विद्यार्थी आते हैं और आदर्श-शिक्षा प्राप्त करते हैं।
5. योग-वेदान्त और सदाचार के ज्ञान को सार्वभौमिक बनाने के लिए मासिक और साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किए जाते हैं। (अ) (दिव्य जीवन मासिक) डिवाइन लाइफ, (ब) आरण्य विश्वविद्यालय साप्ताहिक–योग-वेदान्त फॉरेस्ट युनिवर्सिटी वीकली (क) स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन–हेल्थ एण्ड लौंग लाइफ (ख) मंडल शाखा समाचार–ब्रांच गजेट (ग) योग-वेदान्त हिन्दी मासिक (घ) पाथ टु गोड रियलयज़ेशन (च) शिवानन्द डे टु डे (छ) स्पीरिच्युल ट्रेन, तथा (ज) लाइट डिवाइन इत्यादि।

6. नि:शुल्क साहित्य द्वारा मंडल के सदस्य, जो बृहद् ग्रन्थों को खरीद नहीं पाते, बहुमूल्य आध्यात्मिक उपदेशों को जान जाते हैं। अत: एक विभाग ऐसा है जो प्रसार के इस अंग का उत्तरदायी है।
7. जन-साधारण को योगासनादि की शिक्षा देने के लिए चलचित्र-प्रदर्शन विभाग भी है, जो 15,000 फुट से अधिक फिल्मों द्वारा योगविषयक ज्ञान को प्रकाशित करता है।
8. भक्तों के प्रश्न-समाधान के लिए स्वामीजी पत्र व्यवहार भी करते हैं। अत: एक विभाग देश-विदेश से आए पत्रों का उत्तर महाराज के आदेशानुसार देता है।
9. शिवानन्दाश्रम दिव्य जीवन मंडल का दूसरा रूप है, जहाँ 150 के लगभग कार्यकर्त्ता साधक रहते हैं और इस पवित्र कार्य में पूर्ण योग्यतानुसार सहयोग देते हैं। शिवानन्दाश्रम इन साधकों की दूसरी दुनिया है, जहां एक पिता और एक विश्वात्मकता का पाठ पढ़ाया जाता है।
10. योग-वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय व्यवहारशिक्षा की संस्था और मंडल का समष्टि रूप है। इसके शिक्षण-सिद्धान्त व्यावहारिक हैं, जो विद्यार्थी में लोक वासना न भर कर, त्याग का पाठ सिखलाते, परन्तु त्याग ही जीवन का विमुख अंग न मान, उसे जीवन का सहयोग और पूर्णयोगी मानते हैं। इसके विद्यार्थी विश्व के कोने-कोने में बसे हैं।
11. साधु समाज में संगठन के दृष्टिकोण से और सभी धर्मों के सामूहिक निर्माण के लिए प्रतिवर्ष मंडल की ओर से अधिवेशन होते हैं, जिनमें तत्कथित समस्याओं का समाधान होता है।
12. साल में 5 बार मंडल के सहयोगी और साधक ऋषिकेश आते हैं और स्वामीजी के सन्निधान में शिक्षा ग्रहण करते हैं। यह अवसर गुरुपूर्णिमा, नवरात्रि, साधना सप्ताह और जन्मदिन के नाम से पुकारे जाते हैं। ऐसे तो नित्य सहस्रों भक्तों का जमघट लगा ही रहता है।
13. दिव्य जीवन संदेश के प्रचार के लिए महात्माओं की मंडलियां जगह-जगह भेजी जाती हैं। वे नगर-नगर में प्रवचन, उपदेश और शिक्षा सप्ताहों का आयोजन करती हैं।
14. अखंड संकीर्तन और महायज्ञ इसका कार्य है, जो 1943 से निरन्तर चौबीसौं घण्टे चला आ रहा है। इसका क्रम अविच्छिन्न रहा है।

15. पुस्तकालय, योगचित्रालय, केन्द्रिय कार्यालय तथा अन्य कई ऐसे विभाग हैं, जिनमें से सेवाभावी साधक अहोरात्र कल्याण में हाथ से हाथ और कन्धों से कन्धा मिलाते हैं। त्यागी होकर भी लोकसंग्रह उनकी अपनी विशेषता है। मंडल नित्यप्रति 300 से अधिक महात्माओं, दीनों तथा अतिथिगणों के भोजन और जलपान का प्रबन्ध करता है, तथा साधकों के जीवन के योग्य सभी सुविधाएँ देता है।
16. समस्त मंडल का आधार और अभीप्रेरक श्री विश्वनाथ मंदिर है, जिसमें नित्य सहस्त्रों आंखे नत होती हैं, भक्ति के आंसू बहाती हैं, सिर झुकते हैं तथा देवता के चरण नवाते हैं। यही मंडल का आदि केन्द्र है।

मंडल का सिद्धान्त जनता में ईश्वरीय प्रेरणा भरना है, जिससे वे जीवन के दु:खों के कारणों को जानते हुए उनका परिहार करना सीखें। विश्व में केवल सामाजिक भावना ही नहीं भरनी है, किन्तु उसके द्रष्टिकोण को सर्वथा पवित्र तथा आध्यात्मिक कर देना है, जिससे मनुष्य और मनुष्य के बीच के भेदभावों का अन्त हो। संसार में द्वन्द्व है, उसको शान्तिमय करना है और प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करे – यह मण्डल का अप्रलेख है। जनता की अनुभूतियों को पवित्र करना और उसके कार्यों को सत्य की ओर उन्मुख करना मंडल का व्यावहारिक सिद्धान्त है।

योग-वेदान्त, मार्च 1956



पाप क्या है? जिसे हमारी अन्तरात्मा इन्कार करती है उसे हम छिपकर करते हैं। जो हमारी अमानत नहीं उसे छीनकर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।
पापी के प्रारब्ध में दु:ख और संताप है; जीवन में शोक और भय है और मृत्यु में विलाप, वेदना और तड़पन है। इस लोक की अधम वासना अन्य लोक में उसके लिए अभिशाप है।

योग-वेदान्त, जनवरी 1956

आज वे पत्थर गिर रहे हैं

भारत के भाल पर आज भी गौरव है मन्दिरों के कारण। हमारी संसृति ने संस्कृति पाई है मन्दिरों से। जीवन के श्रम से थके-हारे का सुखद स्थान है मन्दिर। राजा, महाराजा, सम्राट्, शाहंशाह, चक्रवर्ती सभी के शीश को झुकाने वाला यदि कोई भी है तो वह मन्दिर ही है।

प्राचीन काल से भारत के इतिहास में मन्दिरों ने एक विशेष महत्वनीय स्थान पाया। इन मन्दिरों की प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए भारत को अनेक बलिदान देने पड़े हैं; अनेक बार विदेशियों से महाभयंकर संग्राम करने पड़े हैं। सोमनाथ का जरा इतिहास देखें। इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी महमूद गजनवी ने कई बार उसे तोड़ने का प्रयत्न किया और तोड़ा भी। भारत में इस्लाम का प्रवर्तन शायद इसी कारण हुआ। मुसलमान बादशाहों ने हमारे मन्दिरों पर आक्रमण किए, क्योंकि उन्हें मूर्तियों पर विश्वास न था। वे कुछ चमत्कार देखना चाहते थे। भारतवासियों ने विदेशियों के आक्रमण का वीरता से सामना किया। अपने मन्दिर के गौरव को उच्च रखने के लिए भारतवासियों ने निःसंकोच अपने प्राण कुरबान किए, क्योंकि मन्दिर भारत के लिए पवित्र भावना का प्रतीक रहा है और सदा ही हमने इसकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयत्न किया है। मुसलमान बादशाह केवल दौलत के लिए हमारे मन्दिरों को नहीं तोड़ते थे, किन्तु अपने गौरव के लिए और हमारे पूर्वज भी अपने गौरव की रक्षा के कारण ही तो लड़ते थे।

मन्दिर की महत्ता इस उदाहरण से हम समझ पाएँगे। एक बार श्री गणेश और श्री कार्त्तिकेय से कहा गया कि सारे विश्व की परिक्रमा करके आओ। तब कार्त्तिकेय जी सारी सृष्टि की परिक्रमा करके आये; किन्तु हमारे गणेश जी तो शिव मन्दिर की परिक्रमा करके ही बैठ गए। यह एक रूपक या विनिमय होने पर भी अपने हृदय को समझाने का एक उपाय है। हमारे ऋषि-मुनियों ने नेति-नेति द्वारा भगवान का वर्णन करने का प्रयत्न किया, किन्तु जनता की बुद्धि इससे सीमित हो गई। उसने तो श्रवण, मनन, ध्यान आदि के लिए कोई ऐसा रूपक चाहा, जहाँ ईश्वर की निराकार भावना को वह साकार देख सके। जब तक हम किसी भी वस्तु या भावना को साकार न देखें, तब तक हमें उन पर विश्वास नहीं होता। साकारता का अनुभव करने

के लिए जब-जब मनुष्य ने रहस्यमय वातावरणों में गोते लगाए, तब-तब उसे पता चला कि इससे परे और भी कुछ न कुछ अवश्य है और तब वह अनुभव करने लगा कि इससे परे कोई शक्ति मौजूद है जो विश्व का संचालन कर रही है; किन्तु वह मनुष्य की पहुँच के बाहर है।

हमारे पूर्वजों ने भगवान की चेतना को सबसे पहले आकाश में देखा, ऊषा और सन्ध्या के दर्शन करते ही उनके हृदय से काव्यधारा बह निकली। उन्होंने इस सृष्टि के आश्चर्यों को देखा और फिर उस पर स्तुति मन्त्र रचे गए। मनुष्य और पशुओं का जीवन देखा, तब उन्हें प्राण अर्पण करने वाला विधाता अवश्य होगा, ऐसा सोचने लगे। वृक्षों में भगवान की चेतना देखी। फिर बरगद, तुलसी आदि पेड़-पौधों में और वनस्पति जगत् में भगवान के अस्तित्व का अनुभव किया। इसी तरह ब्रह्म की भावना उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती गई। धीरे-धीरे वे सृष्टि में साकारता का अनुभव करने लगे। तपोभूमियों में ईश्वर की विभूति साकार देखी। विकास की इसी भावना से लोग अपने घर में भगवान को देखने लगे। जब लोगों को बाहर जाकर इस साकार रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करने का समय न रहा, तब घर-घर में देव बन गए। उस समय तो इस प्रथा का आनन्द से स्वीकार हुआ, किन्तु बाद में उसमें अवरोह आ गया। एक तरफ लोग संध्या, ध्यान, पूजन, अर्चन, कीर्तन आदि करते थे, दूसरी तरफ जीवन ऐशो-आराम में व्यतीत करते थे।

अब समय ऐसा आया कि समाज में रोटी, कपड़े और मकान के लिए संघर्ष मच गया। सर्वत्र अशांति फैल गई। देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। लोग व्यवसाय, वाणिज्य और अर्थ-संचय में व्यस्त रहने लगे। समयाभाव के कारण पूजा-पद्धति बन्द हो गई। लोग तीन बार सन्ध्या से ही सन्तोष मानने लगे। फिर वैदिक युग में क्रान्ति हुई। ब्राह्मणों ने सोचा, हर घर में नहीं तो हर मोहल्ले में मन्दिर होना चाहिए। इससे पहले समाज में मन्दिर नहीं थे। फिर काम की अधिकता के कारण लोगों ने नगरों में मन्दिरों का आयोजन किया। आध्यात्मिक मनोरंजन और विश्राम का स्थान अब मन्दिर बन गया। गर्व से उन्मत्त किसी के भी सामने शीश न झुकाने वाले भी मंदिरों को शीश झुकाने लगे। यह मनोवैज्ञानिक भावना है। किन्तु समाज पर क्या परिणाम हुआ कि लोग मानने लगे कि समाज में ऐसी कोई एक महा और पराशक्ति विराजित है; यही भावना घर कर बैठी। मन्दिर में रहने वाली इस शक्ति को पत्थर के रूप में पाप और पुण्य के फल की अधिष्ठात्री मानने

लगे। यह वह शक्ति है, यह वह चेतना है, यह वह विभूति है, जो हमारे मन की मलीनता को और हृदय की कालिमा को धो डालती है। किन्तु आज-आज तो लोग कहने लगे हैं कि हम नास्तिक हैं, हम मूर्तिपूजा या भगवान को नहीं मानते। किन्तु अपने दिल से भी क्या कोई नास्तिक हो सकता है?

हम तो आस्तिक और नास्तिक सभी प्रकार के लोगों से मिलते हैं। हमने यह अनुभव किया है कि एक नास्तिक भी 'भगवान नहीं है' ऐसा कहने से डरता है। हमारी यह धरती पूर्वजों के रक्त की धारा से अभिषिक्त है। इसीलिए हमारे हृदय में भगवान के प्रति जो भावना, भक्ति, श्रद्धा और डर है, उसे कोई भी नहीं मिटा सकता। हमारे अच्छे और बुरे कर्मों का फल देने वाली कोई शक्ति है, उसका हम अनादर नहीं कर सकते।

सब लोग तीर्थों में नहीं जा सकते, इसीलिए अपने घर में एक साधन है गृह-मन्दिर। इसमें भगवान की मूर्ति रखते हैं, उसकी सेवा, पूजा, भक्ति, आरती और अर्चना करते हैं, भोग धराते हैं, अपनी जेब से कुछ निकाल कर भेंट चढ़ाते हैं; यह सब ठीक है; अच्छी भावना है–भगवान को शीश झुका कर चलना। हमें मन्दिरों से श्रद्धा, भक्ति, साधना और नियमितता का पाठ मिलता है। किन्तु देश में जब से इस्लाम धर्म का प्रसार होने लगा, तब से मन्दिरों की प्रतिष्ठा में तिरोभाव आ गया और जब अंग्रेज आए तब दक्षिण भारत को छोड़कर, देश के सभी प्रदेशों में और खासकर के उत्तर भारत में मन्दिरों के निर्माण, पूजा-भाव, प्रतिष्ठा आदि का तिरोभाव हो गया। उत्तर के मन्दिरों की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई। पुजारियों को क्या मिलता है? सिर्फ आठ रुपया। इससे ही अपना निर्वाह तथा मन्दिर की व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसी परिस्थिति में यदि वे अनाप-शनाप बातें कह कर लोगों से पैसे न लें, तो अपना पोषण किस प्रकार से करें? यदि उनको पेटभर खाना मिलता तो क्या धर्म के ठेकेदार कभी भी वैसी अनाप-शनाप बातें करते? यह सब अंग्रेजों के शासन काल में उनकी धर्म के प्रति उदासीन वृत्ति के कारण हुआ।

आज मन्दिरों में कोई आकर्षण नहीं रहा। किन्तु क्या भगवान सर्वत्र नहीं है? विज्ञान भी तो इसे मानता है। लेकिन क्या पत्थर में आग लग सकती है? उससे भोजन बन सकता है? पत्थर से हमारी प्यास नहीं मिट सकती। किन्तु जब ईश्वरीय तत्त्व को योग्य प्रकार से योग्य रूप दिया जाता है, तब हम उसका अनुभव कर सकते हैं। उस विभूति का और उस चेतना का हमें तभी अनुभव होता है। मन्दिरों का अनादर करना हमें शोभास्पद नहीं। यदि

आज मन्दिरों का आदर होता तो गिरते हुए पत्थरों को उठाकर हम मन्दिर की संरक्षा करते; मन्दिर को मन्दिर ही रखने का प्रयत्न करते, न कि खंडहर। आज वे पत्थर गिर रहे हैं, जिनके लिए हमारे पूर्वजों ने खून बहाया। प्रत्येक पत्थर में चेतना परिव्याप्त है; हम पूजा तो करते हैं उस चैतन्य की ही। फिर साम्प्रदायिकता की संकुचित सीमा में रहने का दोष कहाँ?

बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे, सर्वत्र मन्दिरों में और मनमन्दिरों में, मन्दिरों की मूर्तियों में और मानव-मूर्तियों में ईश्वर की निराकार भावना को साकार देखो। पवित्र बन कर पूजा करो। मन्दिर में प्रत्येक क्रिया करते समय उन्हें समझ कर करो। बाह्य क्रियाओं के साथ आन्तरिक क्रियाएँ भी होनी चाहिए। मन्दिर में घी लेकर भगवान के पास दीप जलाते समय अन्तर्दीप भी जला लेना चाहिए। भगवान के मन्दिर में पूजा हम इसीलिए करते हैं कि हमें आन्तरिक क्रियाएँ करने में सहायता प्राप्त हो। और हम पवित्र बनें।

28-1-1956 को लाला तुतवाड़ी (उत्तर गुजरात) में सार्वजनिक सभा में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी ने भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी के इस धर्म-सन्देश का उच्चारण किया (रिपोर्टर–श्री रसिक भाई सुथार, पाटण)

योग-वेदान्त, मार्च 1956

मैं मृत्यु को जीवन की पूर्णाहूति कदापि नहीं मानता और न तो यह ही कहता हूँ कि मृत्यु के पश्चात् उसे 'कहीं जाना है' या 'कहीं नहीं जाना है।' जीवन और मृत्यु, दोनों से मेरा सम्बन्ध होने के कारण मुझे दोनों में दिलचस्पी है। अत: मैं जीवन को सार्थक करता हूँ और मृत्यु का सुहाग सजाता हूँ।

हे मौत से भयभीत होने वालों! आओ, सुहाग सज रहा है, दूल्हन आ रही है, टीका चढ़ रहा है, अग्नि जल रही है। अपना कदम उठाओ और निर्भय होकर दरवाजा पार करो। अरे, तुम समझे नहीं? जीवन के कदम मौत की देहरी से आरम्भ होते हैं और मौत जीवन के दो किनारों को मिलाने वाली नदी नहीं तो और क्या है? हे मृत्यु पुरोहित, गाओ अग्निमुख से, चिताओं के स्वर में। क्या? जीवन संगम के मधुमय मंत्र।

योग-वेदान्त, दिसम्बर 1955

मानस-मुक्तावली

- कहते हैं प्रेम से दिल पसीज उठता है। परन्तु मेरी भी सुनो कि पसीजे हुए दिल प्रेम से ही मिल कर एक नवीन पुष्प की तरह खिल उठते हैं।
- जब नदी उमड़ती है, तब गांव बह जाते हैं, खेती उजड़ जाती है और आबादियाँ निर्जन हो जाती हैं। किन्तु जब मेरे दिल से प्रेम उमड़ कर बाहर निकलता है तो भूले-भटके आ मिलते हैं, रोते हुए हंसने लगते हैं, सूखी खेती लहलहा उठती है और वीरान हृदय आबाद हो उठते हैं। मैं कहता हूँ, वह प्रेम प्रेम नहीं, जिसमें से तूफान उठता हो; वह प्रेम प्रेम नहीं, जो संगठित मानव हृदयों को बहा कर तितर-बितर कर दे। पर प्रेम बंधन नहीं, वह तो शांतिमय मिलन है।
- जब कोई मनुष्य आपकी खुशामद करता है तब समझ लीजिये कि खुशामद आपकी अयोग्यता का सूचक है और खुशामदी के स्वार्थ की पूर्ति की कामना का लक्षण।
- लोग कहते हैं कि बीती को भुला दो और आज की खबर लो; किन्तु मैं कहता हूँ कि वर्तमान सुखी है तो अतीत की मधुर स्मृति उसे और भी सुखद बनायेगी। यदि वर्तमान दु:खी है तो अतीत की स्मृति उसे मधुर ही बनायेगी। यदि अतीत की स्मृति से आपके जीवन में टीस न उठती हो तो उसे विस्मृत करने का अर्थ द्वार पर पधारी हुई लक्ष्मी को उल्टे पाँव वापस लौटाना होता है।
- आस्था से केवल आश्वासन ही नहीं मिलता, वरन् जीवन-पथ का अंधकार नष्ट होकर प्रकाश भी मिलता है।

योग-वेदान्त, मार्च 1956

दिल बदलता तभी है...
जब करुणा, सेवा, प्रीति और सर्वभूत दया मिलकर आपके कर्मों में ओतप्रोत बन अभिव्यक्त होने लगती है।

योग-वेदान्त, अप्रैल 1956

शिवानन्द-प्रतिध्वनि

(यह भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी के धर्मसंदेश की प्रतिध्वनि है)

एक बार एक कुत्ते को टहलते-टहलते हड्डी का एक टुकड़ा मिल गया। उसे लेकर वह एक रास्ते में बैठकर खाने लगा। थोड़ी देर में एक दूसरा कुत्ता आ पहुँचा, फिर बहुत से कुत्ते वहाँ आ धमके और परस्पर हड्डी के उस टुकड़े के लिए खूब झगड़ने लगे। पहले कुत्ते ने लाख प्रयत्न किया; किन्तु वह अपना टुकड़ा न बचा सका और उसे छोड़कर अकेला भाग निकला। यह कथानक सच हो या झूठ, किन्तु इतना अवश्य है कि जब तक मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त करने की अपनी सीमा को भूल कर दरवाजे से बाहर नहीं निकलता तब तक वह दुःख में नहीं फंसता। भोग्य पदार्थ ही दुःखकर होते हैं। उन्हें ही छोड़ना चाहिए, संसार में रहकर भी उन्नत वस्तुओं का उपभोग नहीं करना चाहिए। प्रलोभनों के वशीभूत होकर अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। जब मनुष्य अपनी सीमा का अतिक्रमण कर बाहर कदम रखता है, तभी वह दुःख पाता है।

सब सन्तों की यही एक वाणी रही है कि भोगों का परित्याग करो। इसका अर्थ यह नहीं कि संसार की वस्तुओं का त्याग करो। इसका ठीक अर्थ यह है कि प्रलोभन में न पड़ो। जो प्रारब्ध में है उसकी सीमा से बाहर पग न रखो। यदि कुत्ते ने अपनी सीमा के भीतर रह कर हड्डी का टुकड़ा खाना उचित समझा होता तो उसे टुकड़े से हाथ न धोना पड़ता।

हमारे लिए वस्त्र पहनना, अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखना, आवश्यकतानुसार गृहादि का निर्माण करना और कुछ थोड़ी-सी वस्तुओं को रखना भोग नहीं है; किन्तु जब मनुष्य इन वस्तुओं के प्राप्त्यर्थ अनुचित व्यवहार करता है, प्रलोभन में पड़कर अवैध उपायों का आश्रय लेता है, तब वह लोभ है और हम उसके गुलाम बन जाते हैं। दो दिन हम जब चीजों का उपभोग करेंगे और फिर हम आजीवन के लिए गुलाम बन जाएँगे। इसीलिए सादगी से रहने का उपदेश दिया जाता है। जब हमारे जीवन में सादगी आती है तब आने वाले दुःख भी हल्के से मालूम होते हैं। कीड़े के लिए अखरोट एक बड़ी चीज है, लेकिन पर्वत के सामने वह एक नगणय-सी वस्तु है। ठीक यही बात दुःख के सम्बन्ध में भी है।

संन्यासी के लिए नियम अलग होते हैं और गृहस्थ के लिए अलग। इस प्रकार राजा के लिए भी नियम अलग होते हैं। राजा को घर में वाहन रखना पड़ता है। हरेक व्यक्ति के स्थान के अनुसार वस्तु का स्थान भी बदलना पड़ता है। इसलिए किसी का भी अनुकरण नहीं करना चाहिए। राजा की नकल दूसरे के लिए भोग बन जाती है। हरेक उपयोग की सामग्री भोग की सामग्री बन जाती है। इसलिये उपयोग और भोग अनुकूल एवं उपयुक्त रीति से करना चाहिए।

जब हम किसी भी वस्तु का त्याग करते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया होती है। भोगों से घृणा होने पर विवेकपूर्णक सोचकर अगर त्याग करेंगे तो इससे मन को क्लेश नहीं होगा। किन्तु बलपूर्वक त्याग करने से बुरी आदत फिर आ सकती है। विवेकपूर्ण त्याग से त्याग करते समय आपको बाद में कष्ट नहीं प्रतीत होता। जिस स्थिति में आप रह रहे हैं उस स्थिति के अनुकूल वस्तुओं के उपभोग का आपको पूरा पूरा अधिकार है। बाहर की वस्तुओं के प्रलोभन में नहीं पड़ें, यही आध्यात्मिकता का पहला कदम है।

2-2-1956 को सेक्रेटरी, दिव्य जीवन संघ, पाटण (उत्तर गुजरात) के यहाँ प्रार्थना सभा में श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने भूमण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी के इस धर्म-संदेश का उच्चार किया। (रिपोर्टर– श्री रसिक भाई सुथार)

* * * *

अपने मंगलकारी अनुभवों का प्रसार करते हुए श्री स्वामी सत्यानन्द जी सम्पूर्ण भारत की यात्रा कर रहे हैं और अनेकों साधकों को आध्यात्मिक जीवन में दीक्षित कर रहे हैं। यदि आप अपने नगर में योग का अभियान आरंभ करना चाहें तो नीचे के पते पर पत्र-व्यवहार करें।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी,
द्वारा हनुमान प्रसाद माथुर,
1703, नई सड़क, देहली

योग-वेदान्त, अप्रैल 1956





सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों को 'स्वर्णिम संग्रह शृंखला' के नाम से पुनर्प्रकाशित किया गया है।

इस शृंखला के अंतर्गत यह दूसरी पुस्तक, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की पूर्वाश्रम तथा गुरु-आश्रम की अनुपम रचनाओं का स्वर्णिम संकलन है।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-35-9